

सामवेदसंहिता

भगवत्सायणाचार्य-विरचित-भाष्य-संहिता,

श्रीलक्ष्मी

वङ्गदेशीयासियाटीक्-समाजाभ्यर्थनया

अधीतवेद-“प्रलकम्बनन्दिनी”-सम्पादकेन

श्रीसत्यव्रतसामश्रमिभट्टाचार्येण

वङ्गसामगेन

टीकितां यथावसरं शोधिता च ।

चतुर्थो भागः ।

॥ उत्तरार्चिकः ॥

चतुर्थादि-प्रपाठक-त्रयात्मकः ॥

कलिकाता

गणेशयन्त्रे सुद्वितः ।

॥ मन्त्राणामकारादिक्रमेण सूची ॥

मन्त्रपतीकम्	पृष्ठम्.	
अक्रान्त्यमद्रः (५, २, १, १ = क १७, २, १—२३, २, ५—८)	२६३	२००
अगन्म (५, २, ८, १ = क०)	२८८	२७२
अग्न्यायूषि (६, ३, १२, १ = क०)	५३८	३६६
अग्निवोदेवमग्निभिः (५, १, ८, १ = क०)	१८७	४०३
अग्निन्नरो (६, १, १०, १ = क०)	४२५	६२
अग्निर्जुपतनो (६, २, १०, २ = क०)	४७१	११०
अग्निर्वाणि (६, २, ७, १ = क०)	४६१	१६०
अग्रेलवो (४, १, २२, १ = क ३, २, १८—१२, २, १५)	८५	१४१
अग्रमुद्धवा (६, २, २, १ = क०)	४५६	
अग्रे सुखतमे (६, १, १, ४ = क०)	४८१	१२७
अग्रे सोमं (६, २, १०, १ = क०)	४७१	६
अग्रे सिन्धूनां (४, १, १, ३ = क ८, ३, ११—१३, २, ५)		११५
अचिक्रददृषा (४, १, ३, ६ = क०)	१०	१२०
अच्छानोद्याह्या (६, २, २, २ = क०)	४३६	१२
अजीजनोहिमवमान (६, १, ७, २ = क पर्युषप्रथम)	४०८	४१७
अत्याहिधाना (४, १, ३, ५ = क०)	१८१	४६३
अथानिचनमानां (४, १, १५, ३ = क०)	५८	
अथाद्यश्वःश्वः (६, ३, ७, १ = क०)	५३५	५४
अथलिपोमा (६, ३, ३०, ३ = क०)	५६१	४७४
अथुक्तप्रियं (४, १, ३, ३ = क०)	८	
अध्वर्यो अग्निभिः (५, १, ११, १ = क ४, १, २०—४, २, १—२—३—४—		३१६
५—१६, २, १५—१६)	२०५	४३८
		१११

संज्ञप्रतीकम्	श्रुतम्
अदुहित्वा (६, १, ७, ३ = क पर्युषप्रधन्व)	४०९
अन्तस्तरति (६, १, ११, २ = ज०)	४१९
अपन्नोच्चरावणः (५, १, ३, ६ = ज०)	१८३
अपन्नपवतेमृधो (५, १, ७, १ = ज०)	१८४
अपन्नपवसेमृधः (५, १, १५, २ = क पवस्वदेवआयवग्)	१८८
अपद्वारा (४, २, १, ६ = क प्रकायसुशनेव)	१९९
अपात्रपातं (६, २, १३, २ = क ८, १, ३-१८, १, ३)	४८१
अभिक्रन्दन्कलशं (४, १, १, २ = क ८, २, ११-२३, २, २)	२
अभिगव्यानि (४, १, ६, २ = ज०)	२०
अभिनिष्ठं (६, २, ११, १ = ज ७, २, १७)	७७२
अभिप्रियन्दिवं (४, २, १, १२ = क प्रकायसुशनेव)	१११
अभिप्रियादिबः (५, १, ४, ६ = ज०)	१८८
अभिवस्ता (६, २, १८, २ = क ८, २, १४)	५०४
अभिवायुं (६, २, १८, १ = क ८, २, १४)	५०३
अभिविप्रा (५, १, ४, २ = ज०)	१८५
अभिहित्य (५, १, १६, २ = क ५, १, १२)	२५३
अभिनोवर्षा (६, २, १८, २ = क ८, २, १४)	५०४
अभिनोवाजसातनं (५, १, १६, १ = क ५, १, ३-४-५-६-७-८-१२, १, १५-१६-१७, १, १२-१३-१४-१६-१८, १, १०-१६, २, ६)	२३२
अभ्यर्षखायुध (४, १, ४, ७ = ज०)	१५
अभ्यर्षानपच्युतो (४, १, ४, ८ = ज०)	१६
अधाटयोचना (६, २, ४, १ = क ७, १, १०)	४५०
अभिचक्षविचर्षणिः (६, २, ३, ४ = ज०)	५२१
अयंसोमद्वन्द्व (६, २, १२, १ = क १५, २, ५)	५४३
अयत्तजायसाधनो (४, १, १६, २ = क ६, २, १२-८, १, १०-११)	७६
अयापवस्वधारथा (५, १, ८, १ = ज०)	१८५

मन्त्रप्रतीकम्

अथापवापवस्त्रेना (४, १, २१, १ = ज ३, २, १७—८, २, १०—२३, १, १)
अथावीती (५, १, ६, १ = ज०)	१८२
अथुक्तस्तर (५, १, ८, २ = ज०)	१८६
अथुद्धद्वयुधा (५, २, २१ ३ = ज ६, १, ६)	३७५
अर्चन्यकर्मयतो (४, १, २४, २ = ज ३, २, १८)	१००
अर्धानःसोम (५, २, २०, ३ = ज ६, १ ५—१८, १, ११)	३७२
असर्पिरातिं (५, २, १४, २ = ज ५, २, ८—१०, २, २)	३६६
अवक्रजिणं (६, १, ५, २ = ज ६, १, १५)	४०३
अवस्रदुर्हणायतो (४, १, १८, ३ = ज०)	६२
अथावारैपरि (४, २, २, ६ = ज०)	११८
अथावारैःपरि (५, १, ५, ३ = ज०)	१६०
अषाढसुप्रं (४, २, ८, २ = ज ४, १, ८)	१४१
अथाविसोमोअरुषो (५, २, १३, १ = ज ५, २, ८—८, १, ९—१७, २, ४—२३, २, १०—२०)	३२७
अहवतप्र (४, २, २, १ = ज०)	६
अहग्रमिन्दवः (४, २, २, १ = ज०)	११५
अस्रभ्यंरोदसी (४, २, २, ८ = ज०)	१२०
अस्रभ्यमिन्दविन्द्रियं (४, १, ३, १० = ज०)	१२
असाअस्माददन्वसी (६, २, २, ४ = ज २०, १, १—२१, १, १२)	५१७
अस्रप्रेषाहेमना (६, २, ८, १ = ज ७, २, ६)	४६३
आघालावान् (४, १, १४, २ = ज ३, २, ७)	५४
आघाधेअग्निम् (५, २, २१, १ = ज ६, १, ६)	३७४
आजागटविर् (६, १, ४, १ = ज ६, १, १४—१७, २, ५—१८, २, १३—२३, २, १०)	३६६
आजामिर् (६, २, ३, २ = ज प्रसुन्वानाय)	४३८
आतिदत्तं (४, २, २, १० = ज०)	११२

मन्त्रप्रतीकम्

मन्त्रप्रतीकम्

पृष्ठम्

अष्टाद्विंश (६)	आतेवस्ती (४, २, १२, १ = ज ४, १, १०)	१५५
अन्तश्चरति (६)	आत्वारथे (६, २, ५, २ = ज आत्वासवस्त्वम्)	४५२
अपन्नोत्तराव	आत्वासवस्त्वम् (६, २, ५, १ = ज ७, १, १४-१८, २, १२-१२, ३, २)	४५२
अपन्नपवतेस्त्व	आदित्यैरिन्द्रः (४, १, २२, २ = ज०)	८८
अपन्नपवसेस्त्व	आमःसुताय (५, २, १०, २ = ज ५, २, १०-११, १, १८)	३४८
अपहारा (४)	आमःसोमसंयतं (४, १, ०, २ = ज प्रोषयासौ०)	१२३
अपाम्रपातं (६)	आमस्तोगन्तु (६, २, २०, २ = ज ११, १, १६)	४०८
अभिन्नन्दनका	आपवमानधारय (५, १, ४, ८ = ज०)	१८८
अभिगग्यानि (६)	आपवस्त्वमदिक्तम् (५, १, ५, ४ = ज०)	१८१
अभित्विष्ट	आपानासोविवस्त्वतो (४, २, १, ८ = ज प्रकायसुभनेव)	१०८
अभिप्रियन्दि	आमन्द्रसा (४, २, २, ११ = ज०)	१२१
अभिप्रियावि	आमासुपक्षनैरथ (६, २, १८, २ = ज०)	५००
अभिवस्त्रा	आमित्रे वरथे (४, २, २, ८ = ज०)	११६
अभिवायु (४)	आयज्ञैःपृश्निर् (६, १, ११, १ = ज०)	४२८
अभिविप्रा	आयद्भुवः (४, १, १४, २ = ज ३, २, ७)	५४
अभिहिंसत	आयथोक्षिशनं (४, १, ५, ४ = ज०)	१८
अमीनोव	आरथिमा (४, २, २, १२ = ज०)	१२२
अमीनोव	आवथस्त्वमदि (४, १, २, २ = ज०)	८
	आसुनेविद्यत (६, २, १६, १ = ज०)	५११
	आसोतापरि (६, २, ६, १ = ज २, १, १-७, १, १०-१२, १, १२)	४५८
अभ्यर्षस्व				
अभ्यर्षा	इदंवाष्पदिरं (४, १, १०, २ = ज०)	२८
अभ्याहव	इदंने षष्ठ्योतिषाष्ट्योतिषमं (६, १, ५, ३ = ज०)	५२७
अभिजा	इन्द्रःसदाने (५, १, १०, २ = ज०)	१०१
अयंसो	इन्द्रस्तुम्भ (६, १, ६, १ = ज ८, १, १०-१८-८, १, १-१८-	५२८
अयन्	१८, १, १-५)	५२८
अयार	इन्द्रसौमानम् (५, १, २०, २ = ज ५, १, १३-२२, २, २०)	१५८

मन्त्रप्रतीकम्	वृत्तम्
इन्द्रशब्दोन (६, १, ८, २ = ज ७, १, १२) ...	४६८
इन्द्रशब्दोचिनो (६, १, ८, ३ = ज० ")...	४६९
इन्द्रसोम (६, १, ८, ३ ज परिप्रधन्व) ...	४७०
इन्द्रसोमपवमान (५, १, १२, ३ = ज घर्षादिवः) ..	२१२
इन्द्रसोमराघसे (५, १, २, २ = ज०) ...	१७५
इन्द्रासोमपातवे सदाय (६, २, १, ५ = ज०) ...	५२८
इन्द्रासोमपातवेवृचन्नि (५, २, १८, ३ = ज परित्यज्ये) ...	२५१
इन्द्रायाहिचिचभानी (४, २, ५, १ = ज०) ...	१२७
इन्द्रायाहि नूतुजान (४, २, ५, ३ = ज०) ...	१२८
इन्द्रायाहिचियेपितो (४, २, ५, २ = ज०)...	१२८
इन्द्रायेन्दी (४, १, ११, १ = ज १, १, १८-२०-२१-८, १, ४,— १०, २, ४-१६, १, ११-२२, २, १६-१३, १, १८-१०)	३०
इमंजोमं (४, १, ७, १ = ज १७, १, १५)...	२१
इमाद्विकभुवना (४, १, २२, १ = ज०) ...	६८
जक्षामिमेति (६, १, ८, ३ = ज ६, १, ११-८, २, ११)	४२२
जतत्याचरिनो (५, १, ८, ३ = ज०) ..	१८६
जतनरणा (४, १, २१, २ = ज अथापवा) ...	८८
जतनःप्रिया (६, २, ८, १ = ज०) ..	५२७
जतनोगोमतीर (४, १, ६, २ = ज०) ..	१०
जतनोवाजसातये (५, १, ३, ४ = ज०) ...	१८०
जतप्रिय (६, २, १५, २ = ज साकमुचो)...	४८८
जतमुवन्तु (६, १, १, ४ = ज०) ..	४२५
जतसराजो (६, १, १, २ = ज०) ...	२२३
जतोश्वाधरिने (५, १, ५, १ = ज०) ...	१८८
जतामदन्तु (६, १, ३, १ = ज०) ...	२६५
जहप्रभारत (६, २, २, १ = ज०) ...	

मन्त्रप्रतीकम्

मन्त्रप्रतीकम्

अबुद्धिवा (६, १, ६, १ = ज ६, १, १६) ...	उडुत्येसधुमत्तमा (६, १, ६, १ = ज ६, १, १६) ...
अन्नस्वरति (६, १, ६, १ = ज ६, १, १६) ..	उडुदभि (६, ३, ४, १ ज १४, १, १६) ..
अपन्नोअराव (६, १, ६, १ = ज ६, १, १६) ...	उद्यस्यते (५, १, ९, ३ = ज०) ..
अपन्नपवतेम (६, १, ६, १ = ज ६, १, १६) ...	उपनःसनना (४, १, १५, २ = ज०) ..
अपन्नपवसेम (६, १, ६, १ = ज ६, १, १६) ...	उपप्रत्ते (४, १, १, २४, २ = ज ३, २, १६) ...
अपद्वारा (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उपप्रयत्तो (६, २, १, १ = ज०) ...
अपात्रपातं (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उपस्वकोषु (६, ३, १६, ३ = ज०) ...
अभिक्रन्दन्क (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उपोमतिःपृथ्यते (६, १, ९, २ = ज ६, १, २१-९, २, ११) ..
अभिगव्यानि (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उपोषुजातम् (५, २, २०, १ = ज ६, १, ५-१९, २, ११) ..
अभितिष्ठ (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उभयंशुणवच (५, १, १४, १ = ज ४, २, १६-१८, २, ७) ..
अभिप्रियन्दि (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उभेयदिन्द्र (४, १, १६, १ = ज०) ...
अभिप्रियादि (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उरुगयुतिर् (६, २, ११, ३ = ज ७, २, १७) ...
अभिवस्त्रा (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	उखावेद (४, १, ५, २ = ज०) ..
अभिवायु (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	ऋतमृतेन (६, ३, १३, २ = ज०) ...
अभिविप्रा (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	ऋषिमनाय (५, १, १, २ = ज शिशुञ्जलानं हयतं) ...
अभिहिंस (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतन्त्यंहरितो (५, १, ४, ६ = ज०) ...
अभीनोड (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतन्त्रितस्य घोषणो (५, २, ४, २ = ज०) ..
अभीनोव (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतमुत्यन्दशक्तिपोहजनि (४, १, १३, १ = ज ३, २, ७-१३, २, १४) ..
अभ्यर्ष (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतमुत्यन्दशक्तिपोहरिं (५, २, २, ८ = ज०) ...
अभ्यार्धा (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतमृजनि (५, १, ३, ३ = ज०) ...
अभ्राट (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतेसोमाअभि (५, १, २, २ = ज०) ..
अभिच (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतेसोमाअहृत्त (४, १, ६, १ = ज०) ...
अयंस (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एतोन्विन्द्रंस्त्वाम (६, २, ९, १ = ज ७, १, १२) ...
अयन्त (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एन्द्रनोगधि (५, १, १९, १ = ज ५, १, १२) ...
अया (४, १, ४, १ = ज ४, १, १६) ...	एमेनस्यत्येतन (६, ३, २, २ = ज १०, १, १-११, १, १२) ..
	एवाहृताय (६, १, ८, २ = ज परिप्रधन्व) ..

पृष्ठम्	मन्त्रप्रतीकम्	पृष्ठम्
४०५	एषइन्द्राय (५, ९, ६, २ = ऊ०)	२८७
५२२	एषउख्यपुरुषतो (५, २, २, ३० = ऊ०)	२७५
१६६	एषउख्यवृषा (५, २, ४, १ = ऊ०)	२८०
५८	एषकविर (५, २, ६, १ = ऊ०)	२८७
१००	एषगव्युर (५, २, ६, ४ = ऊ०)	२८८
४३२	एषद्विविधावति (५, २, २, ७ = ऊ०)	२७३
५५२	एषद्विव्यासरत् (५, २, २, ८ = ऊ०)	२७४
४२१	एषदेवःशुभायते (५, २, ५, ३ = ऊ०)	२८४
३७१	एषदेवोऽसमन्तः (५, २, २, १ = ऊ०)	२७०
२२४	एषदेवोरथयति (५, २, २, ४ = ऊ०)	२७१
६०	एषदेवोविषन्मुभिः (५, २, २, ५ = ऊ०)	१)
४७४	एषदेवोविपाकतो (५, २, २, ६ = ऊ०)	२७२
१८	एषधिया (५, २, ७, १ = ऊ०)	२७५
५४०	एषनुभिर्वि (५, २, ६, ३ = ऊ०)	२८८
१६५	एषपवित्रं (५, २, ५, २ = ऊ०)	२८४
२८३	एषपुरुषधियायते (५, २, २, २ = ऊ०)	२७६
२८१	एषप्रलंनजन्मना (५, २, २, ९ = ऊ०)	२७४
५०	एषरुक्मिभिरी० (५, २, ३, ५ = ऊ०)	२७८
२०६	एषवसूनि (५, २, ३, ७ = ऊ०)	२७९
२०७	एषवाजौ (५, २, ५, १ = ऊ०)	२८३
१०४	एषविप्रैरभिरुतो (५, २, २, २ = ऊ०)	२७१
१६	एषविश्वानिवार्या (५, २, २, ३ = ऊ०)	१)
२६७	एषवृषा (५, २, ५, ४ = ऊ०)	२८५
२५२	एषशुक्लादाभ्यः (५, २, ६, ६ = ऊ०)	२८६
५१५	एषशुक्लासिष्यदत् (५, २, ६, ५ = ऊ०)	१)
४१३	एषशृङ्गाणि (५, २, ३, ६ = ऊ०)	२७८
	एषसूर्यं सरोचयत् (५, २, ५, ५ = ऊ०)	२८७

सन्तप्रतीकम्	सन्तप्रतीकम्	पृष्ठम्
सन्तप्रतीकम्	एषसूत्रेणहासते (५, २, ५, ६ = ज०)	२८६
अडहिला (६)	एषस्यपीतये (५, २, ४, ५ = ज०)	२८२
अन्तश्चरति (६)	एषस्यमद्यो (५, २, ४, ४ = ज०)	२८१
अपन्नान्तरा	एषस्यसाधुषीष्वा (५, २, ४, २ = ज०)	२८१
अपन्नपवतेष	एषहितोवि (५, २, ३, ४ = ज०)	२७०
अपन्नपवसे	कणवाइन्द्रं यदक्रत (५, २, १०, २ = ज०)	२७१
अपद्धारा (४)	कणवाइवभृगवः (६, १, ६, १ = ज० ६, १, १६)	४०६
अपान्नापातं (कदामर्त्तम् (५, २, २२, ३ = ज० ६, १, ७)	३७८
अभिक्रन्दन्व	कविमिवप्रशंसं (५, १, १८, २ = ज० ५, १, ११)	२५०
अभिगव्यानि	कविर्वेधस्या (५, २, १२, ३ = ज० असाविसोमो)	३२९
अभिविष्ट	केतुकृषवन्नकेतये (६, २, १४, ३ = ज०)	५४४
अभिप्रियन्ति	गर्भेमातुः पितुः (६, २, ७, २ = ज०)	४६२
अभिप्रिया	गाधन्तिला (५, २, २४, १ = ज० ६, १, ८—१२, १, १—५)	३७९
अभिवस्त्रा	गिरस्तइन्द्र (४, १, ३, ७ = ज०)	११
अभिवायुं	गिरावज्जोन (५, १, १०, ३ = ज०)	२०१
अभिविप्रा	गोषाइन्द्रो (४, १, ३, ८ = ज०)	११
अभिहिंस	घृतम्पवस (६, ३, १, ३ = ज०)	५१३
अभीनोव	घसूच्छेनो (५, १, १, ३ = ज० शिशुञ्जलान्दयंतस्)	१६६
अभीनोव	जनोयनोन्वप्रवो (६, ३, ८, १ = ज०)	५३६
अभ्यर्षक	जुष्टइन्द्राय (५, १, ३, ८ = ज०)	१८३
अभ्यर्षि	ज्योतिर्यज्ञस्य (४, १, १. १ = ज० ८, २, ११—२४, २, २)	१
अभ्याह	नवःघखायो (४, १, १९, १ = ज० ३, २, १२—८, १, १०—११)	७५
अभिच	तंहिराजं (५, १, १४, १ = ज० ४, २, १६—१८, २, ७)	२९४
अयंसं	तनेयज्ञोआयत (६, २, १९, २ = ज०)	५०७
अयन		
अया		

मन्त्र	मन्त्रप्रतीकम्	पृष्ठम्
अनुति		
अन्तश्च	निरखैसप्त (६, २, १६, १ = ज ८, १, ११)	४८८
अपञ्च	लंघविष्ट (५, १, १८, ३ = ज ५, १, ११)	२५०
अपञ्च	लंघरुणउत (५, २, ९, ३ = ज०)	३००
अपञ्च	लं बलस्य (५, २, २०, २ = ज ५, १, १३—१२, २, २०)	२५६
अपद्वा	लं पिप्रस्त्व (४, १, १७, २ = ज परिखानोगिरिष्ठाः)	६३
अपद्वा	लं सुतीनदिन्तमो (५, २, १६, १ = ज लं सोमासिधारयुर्)	३४२
अभिक्र	लं सुष्वाणोश्चिभिर् (५, २, १६, ३ = ज ")	"
अभिगव	लं सूर्येनश्वा (४, १, ४, ५ = ज०)	१५
अभिद्रि	लं सोमासिधारयुर् (५, २, १६, १ = ज० ५, २, ११—१२—१३—१४—१५)	३४२
अभिप्रि	लं हिनःपिता (४, २, १३, २ = ज ४, १, १८)	१५८
अभिप्रि	लं हिराषस्य (५, २, १५, २ = ज ५, २, १०)	३१८
अभिवर	लं हिराश्वतौनाम् (५, १, १८, ३ = ज ५, १, १३)	२५३
अभिवार्य	लं हिराशूःशमिता (६, २, २०, २ = ज २१, १ १६)	५१०
अभिविः	लं ब्रह्मभर (४, २, १३, १ = ज ४, १, १८)	१५७
अभिहिंस	लं मग्ने यज्ञानां (६, ३, १६, १ = ज०)	५४८
अभिनोव	लं मग्ने सप्रथा (६, २, १०, ३ = ज०)	४७१
अभिनोव	लं मिन्द्रयशा (६, २, १२, १ = ज ७, २, १८—१९, २, ७—१८, २, १४)	४७३
	लं मीशिषेसुतानाम् (६, १, ३, ३ = ज०)	३८५
	लं यज्ञै रवीष्टधन् (४, १, ५, ८ = ज०)	१६
अभ्यर्षखा	लं विष्वे चमृत (४, २, ३, २ = ज०)	१२४
अभ्यर्षाना	लं पृश्निन् (४, २, १३, ३ = ज ४, १, १८)	१५८
अधाढ्यो	लं क्रतुमपि (६, ३, १७, २ = ज १३, २, १२)	५५६
अभिचर्चा	लं विश्वसजोषसो (४, १, १७, ३ = ज परिखानोगिरिष्ठाः)	६४
अयंसोमइ	दिवःपीथूषम् (५, १, ११, ३ = ज अर्ध्वर्योश्चिभिः)	२०३
अयत्तज्ञा	दिवोधर्तासि (५, १, १७, ३ = ज ५, १, ८—२१, ३, ८)	२४७
अयापवख	दिवोनाभा (५, १, ४, ४ = ज०)	१८६
	दीर्घं द्यकुश (४, १, १६, २ = ज०)	६१

सन्तप्रतीकम्	सङ्ख्यम्
देवभ्यस्त्वा (५, १, २, ५ = ज०) ...	१०६
द्विर्धषच्च (५, २, १८, २ = ज परित्यर्चयंत) ...	६५१
धर्तादिवः (५, १, १२, १ = ज ४, २, १४—९, १, १६—१५, १, १५—१७, १, २०—२३, २, १६—२३, २, १९) ...	२११
धियाचक्र (६, २, १५, २ = ज०) ...	५५०
ध्वंसयोःपुरुषनयोर् (४, १, ५, ३ = ज०) ...	१८
नकिरस्यसंहत्य (६, २, १४, २ = ज०) ...	४८५
नकिटक्कर्मणा (४, २, ८, १ = ज ४, १, ९) ...	१४०
नकीरेवल्न (६, २, ४, २ = ज० ७, १, १०) ...	४५१
जलाशतच्च (५, १, ७, ३ = ज०) ...	१९५
जससेदुपसीदत (६, २, ३, ३ = ज०) ...	५२०
नराशंसमिह (६, १, १, ३ = ज०) ...	२९७
नवद्योनवति (६, ३, ४, २ = ज १४, १, १६) ...	५२३
नाभानाभिन्न (४, २, १, ११ = ज प्रकायमुशनेव) ...	११०
नाभिघज्ञागां (४, २, ३, ३ = ज०) ...	१२५
नित्यसौख्यो (५, १, ४, ७ = ज०) ...	१८७
भूनभुनानी (५, २, १२, २ = ज परीतोषिच्च) ...	२०६
वृचक्षसन्त्वा (५, १, २, ८ = ज०) ...	१७७
यशपणीनराधमो (६, १, ३, ६ = ज०) ...	३६४
परित्यर्चयंत (५, २, १८, १ = ज० ५, २, १८—१८—२०—६, १, १—२—३— १२, २, १—२—१४, २, १६—१७—१८—१९—२०—२१— १७, १, ८—१७, १, ९—१७, २, ९—२०, २, ४) ...	३५०
परिनौच्यम् (५, १, ६, ३ = ज०) ...	१९३
परिप्रधन्व न्नाय (६, १, ८, १ = ज ६, १, २०—९, २, १०—१०, १, ९— १२, २, ७—१४, १, ४—१७, २, ६—२१, १, १९) ...	०१३

मन्त्रप्रतीकम्

४४४

परिघत्काव्या (४, २, २, ४ = ऊ०)	११७
परिस्त्रानो (५, १, १६, ३ = ऊ० अमौनौवाजसातमे)	२२२
परिस्त्रानस्यसे (५, २, १३, ३ = ऊ० परीतोषिष्ठ)	२०७
परिस्त्रानास इन्द्रो (४, २, १, ७ = ऊ० प्रकाव्यमुग्रमेव)	१०८
परिस्त्रानोगिरिष्ठाः (४, १, १७, १ = ऊ० ३, २, ८—९—१०—८, १, ९— ९, २, ६—१२, १, १८—१४, १, ३—१५, १, ८—९—१०—११ —१२—१६, २, ७)	६३
परीतोषिष्ठता (५, २, १२१ = ऊ० ५, २, १—२—३—४—५—६—७, १, ३—४—७, २, ३—४—९, १, ३—९, २, ४—९, ३, ११—१२, १, १८—१२, २, २०—१५, १, ६—१५, २, १२—१३—१४—२६, १, ५—१६, १, ६, १९, १, १८)	३०५
पर्जन्यः पिता (५, २, १३, २ = ऊ० असाविसोमो	३२८
पर्वधुप्रधन्व (६, १, ७, १ = ऊ० ६, १, १८—१९—९, २, ८—२०, २, ५—६)	४०८
पर्वन्नेवाजसातये (५, १, ३, ३ = ऊ०)	१८०
पवमाननितोशसे (५, २, १५, २ = ऊ० पवस्वदेवआयुषम्)	२२८
पवमानमवस्यवो (५, १, ३, २ = ऊ०)	१७९
पवमानयन्मुहि (५, २, ११, ३ = ऊ०)	३०५
पवमानसुवीर्य (६, ३, १, ८ = ऊ०)	५२२
पवमानस्यजिघ्रतो (५, २, ११, १ = ऊ०)	३०३
पवमानोअभिसृधो (४, २, २, ५ = ऊ०)	११७
पवमानोअसिष्यदत् (६, ३, १, ५ = ऊ०)	५१४
पवमानोरथीतमः (५, २, ११, २ = ऊ०)	३०४
पवस्वदेवआयुषम् (५, १, १५, १ = ऊ० ४, २, १७—१८—१९—२०—१७, १, १)	२२७
पवस्वदेववीतय (५, २, १७, १ = ऊ० ५, २, १७—११, २, १९)	३४७
पवस्वदेववीर (४, १, ३, १ = ऊ०)	८
पवस्वदृष्टिमा (६, ३, १, १ = ऊ०)	५१५
पवस्वसोममहागन्धमुदा (५, १, १७, १ = ऊ० ५, १, ९—११, ३, ८)	३४६

मन्त्रप्रतीकम्

	इष्टम्	इष्टम्
पयस्वसोमसंघे (५, २, १९, १ = ज० ६, १, ४) ...	३६८	३६८
पयोतारः पुनीतन (४, १, ४, ४ = ज०) ...	१४	१८५
पावमानोर्द्धधनु (५, २, ८, ४ = उ०) ...	२९६	३९०
पावमानोर्द्धधनुषिभिर् (५, २, ८, २ = ज०) ...	२९५	२६५
पावमानोः स्वस्थयनीः सुदुवा (५, २, ८, ३ = ज०) ...	२९५	३०१
पावमानोः स्वस्थयनीः सुभिर् (५, २, ८, ६ = उ०) ...	२९७	९
पिबालाश्च (६, २, ५, ३ = ज० आलासद्वयम्) ...	४५४	८०
पिबा सुतस्य (६, २, १६, १ = ज० ८, १, ८—१३, १, १५—११, १, १६—१६, १, १२—१८, २, १६) ...	४९२	१९४
पुनातादक्षसाधनं (४, २, ९, २ = ज० ४, १, १२—७, १, १८—१८—८, १, १८—१४, २, १५) ...	१४४	४०२
पुनानः कलशेषा (५, १, २, ६ = ज०) ...	१७६	५२८
पुनानासखसूषदो (५, १, २, २ = ज०) ...	१७४	१२३
पुनानोवारे (४, १, १२, २ = ज० मृग्यमानाः) ...	३८	१७५
पुरःसन्नं (५, १, ६, २ = उ०) ...	१९३	
पुराभिन्दुर् (५, १, २०, १ = ज० ५, १, १३—२२, २, २०) ...	२५५	३८
पुष्पादि (४, २, १२, २ = ज० ४, १, १०) ...	१५६	१५३
प्रकाशमुग्रनेव (४, २, १, १ = ज० ६, २, ५—१६, २, १९—१३, २, २—६) ...	१०२	१२०
प्रजासूतस्य (५, २, १०, ३ = ज०) ...	३०२	३९६
प्रतिवांसूर (४, १, ८, १ = ज०) ...	२५	२९३
प्रतेषोतारो (५, २, १९, २ = ज० ६, १, ४) ...	३६८	१८६
प्रत्यक्षैपिपोषते (६, ३, २, १ = ज० २०, १, १—१, १, १२) ...	५१५	४३३
प्रथारामघो० (४, २, २, २ = ज०) ...	११६	४८०
प्रमङ्गोष्मरो (६, ३, ७, २ = ज०) ...	५३५	५०६
प्रयुजावाचो (४, २, २, २ = ज०) ...	११६	८८
प्रवाचमिन्दुर् (५, १, ४, ६ = उ०) ...	१८७	२८
प्रवाज्यक्षाः सहस्रधारस् (४, २, १०, १ = उ० ४, १, १५—१३, ३, १) ...	१४९	३२९

मन्त्रप्रतीकम्	मन्त्र	शङ्खम्
परि	प्रवाज्यन्ताः सहस्ररेता (४, २, १०, २ = ऊ४, १, १५—१३, २, १) ...	१५०
परि	प्रबोधिषो (४, २, ७, २ = ऊ० प्रोषयासी०) ...	१३३
परि	प्रबोमिनाय (४, २, ४, १ = ऊ०) ...	१२६
परि	प्रबोर्चोप (४, १, २, ४ = ऊ३, २, १८) ...	१००
परि	प्रसवेतउदीरते (५, १, ५, २ = ऊ०) ...	१८०
	प्रसुखानाया (६, २, ३, १ = ऊ१, २, १०—१८—६, २, १८—१८—२०— ८, १, १—११, २, २—३—१३—१५, १, १६—१६, १, १४—१८, १, १७—१८, १, १८—२०—२१—२२, २, ७)	४३०
प्ररी	प्रसोमयाहीन्द्रस्य (४, २, १०, ३ = ऊ४, १, १५—१३, २, १) ...	१५०
	प्रखानासीरथा० (४, २, १, ४ = उ प्रकाव्यमुशनेव) ...	१०६
	प्रहंससप्तपला (४, २, १, २ = उ प्रकाव्यमुशनेव) ...	१०३
पर्ज	प्रेक्षोअग्नेदोदिहि (६, १, १०, ३ = उ०) ...	४२७
प्रवी	प्रेष्ठवो (५, १, १८, १ = उ५, १, ११) ...	२४८
प्रवी	प्रोषयासीद् (४, २, ७, १ = उ०४, १, ७—६, २, १०—७, २, ११— १०, १, ५—२३, २, १५—१८) ...	१३१
प्रवी	प्रोषदश्लोन (४, २, ८, १ = उ०) ...	१८८
प्रवी	बध्वेवु (६, ३, ३, १ = उ०) ...	५१८
प्रवी	बृहन्निदिभ (५, २, २१, २ = उ६, १, ६) ...	३७५
प्रवी	ब्रह्मप्रजावत् (६, १, ७, ३ = उ०) ...	४६२
प्रवी	भद्रावस्त्रा (६, २, ८, २ = उ७, २, ६) ...	४६४
प्रवी	भरासेध्वा (४, १, ७, २ = उ०१७, १, १५) ...	२२
प्रवी	भिन्निविश्रता (४, १, ८, १ = उ०) ...	२७
प्रवी	भूयामते (६, २, १६, २ = उ पिवातुमस्य) ...	४६२
प्रवी	भधोनव्यापवस्त्र (५, १, २, ७ = उ०) ...	१७७
प्रवी	मत्स्विवायम् (५, २, १, २ = ऊ अकगित्सुद्रः) ...	२६४
प्रवी	मगसपाथि (६, २, २०, १ = ऊ११, १, १६) ...	५०८

सन्तप्रतीकम्	उठम्
सदचुत्वेति (५, १, ४, ३ = ज०)	१८५
सधुसन्तन्नूनपात् (६, १, १, २, = ज०)	३६०
सहत्तत्सीमो (५, २, १, ३ = ज अक्रान्त्यमुद्रः)	२६५
सह्मादन्द्रोय० (५, २, १०, ० = ज०)	३०१
सहानन्तामहीर् (४, १, ३, ४ = ज०) ...	६
सहीमिच्छस्य (४, १, २१, ३ = ज अयापवा)	६०
सहोनोराय० (५, १, ७, २ = ज०) ...	१६४
सङ्गाविप्रता (५, २, ६, २ = ज०) ...	१
साविदन्यत् (६, १, ५, १ = ज ६, १, १५)	४०२
सानोचज्ञाता (६, २, ६, २ = इन्द्रजातुमन्त्रा)	५२८
सूर्वागन्धिनी (४, २, ३, १ = ज०) ...	११५
सृजन्तित्वादश (५, १, २, ४ = ज०) ...	१०५
सृज्यमानःसुहृत्वा (४, १, १२, १ = ज ३, १, १-२-३-४-५, १, ५-८, १, ५-६-८, २, ८-९-९, २, १२-१६, २, ५- १४-२०, २, ७-२०, २, ८ ...	३८
यथाजीकेषु (४, २, ११, २ = ज ४, ५, १६)	१५३
यइद्व (४, २, ६, २ = ज०) ...	१३०
यएकइद्विदंयते (५, १, २२, १ = ज ६, १, ७)	३७५
यःपावमानीरधेत्युषिभिर्	२६४
यःसोमःकल्लोष्वा (५, १, ४, ५ = ज०) ...	१२५
यःक्षीहितीषु (६, २, १, २ = ज०) ...	४३३
यजिष्ठन्नावष्टमहे (६, २, १२, १ = ज ८, १, ६ १८, १, ३)	४८०
यजायथाञ्चपूर्य (६, २, १६, १ = ज०) ...	५०६
यज्ञश्चनस् (४, २, २३, २ = ज०) ...	६६
यज्ञाक्षिष्य (४, १, १०, १ = ज०) ...	२८
यतइन्द्रभयामहे (५, २, १५, १ = ज ५, २, १०) ...	३३८
यर्गदिच (४, २, १४, ३ = ज ४, १, १६-२३, २, १६)	१६१

मन्त्रप्रतीकम्

पृष्ठम्

अस्त्राणीःसन्वाहन्ती (५, २, २३, ३ = ऊ गायन्तिला)	३८०
अदयसूर (६, १, २, १ = ऊ०)	३८२
अदिन्द्रचित् (४, २, १४, १ = ऊ ४, १, १९—२३, २, १९)	१६०
अदिन्द्रप्राग् (५, १, १३, १ = ऊ ४, २, १५)	२११
अदीप्ततेभिर् (६, ३, २, ३ = ऊ २०, १, १—२१, १, १२)	५१६
अद्वाहमेरुशमे (५, १, १३, २ = ऊ ४, २, १५)	२२१
अद्वीडावीन्द्र (४, १, ९, ३ = ऊ०)	२८
अनन्यसे (४, २, १४, २ = ऊ ४, १, १९—२३, २, २९)	१६०
असग्नेष्टत्सु (६, २, १४, १ = ऊ०)	४८३
असिद्धिला (५, २, २९, २ = ऊ ६, १, ७)	६७७
अस्यतइन्द्रः (४, १, १८, २ = ऊ ३, २, ११—२१, १, १४)	७३
अस्यतेविश्वं ४, १, ९, २ = ऊ०)	२७
अस्त्राहिकेशिना (५, २, २३, ३ = ऊ गायन्तिला)	३८१
अस्त्रनिब्रध् (६, ३, १२, १ = ऊ०)	५४१
अस्त्रत्यस्यकाम्या (६, ३, १२, २ = ऊ०)	५४२
अनेदेवाःपवित्रेण (५, २, ८, ५ = ऊ०)	२९७
असोमासःपरावति (४, २, ११, १ = ऊ ४, १, १६)	१५२
अथिब्रश्चिन् (४, १, ४, १० = ऊ०)	१६
अनोमित्रो (४, १, ११, ३ = ऊ इन्द्रावेन्दो)	३१
अजानोनप्रशस्तिभिः (४, २, १, ६ = ऊ प्रकाव्यमुशनेव)	१०७
राधाहिरण्य (४, १, ८, २ = ऊ०)	२६
रेवतीर्नः (४, १, १४, १ = ऊ ३, २, ७)	५३
वयन्तश्चसुराधसो (५, १, १६, २ = ऊ अभीनोवाजसातमं)	२३३
वसुरग्निर्वसु (४, १, २२, २ = ऊ अग्निलग्नो)	९६
वाजीवाजेषु (६, ३, १७, २ = ऊ०)	५४९
वावृधानःशवसा (६, ३, १९, २ = ऊ १२, २, १९)	५५५
वासासर्पनीन्दवः (५, १, ३, ७ = ऊ०)	१८२

मन्त्रप्रतीकम्	पृष्ठम्
विधाङ्बृहत्प्रिबत् (६, ३, ५, १ = ज०) ...	५२५
विधाङ्बृहत्प्रिबत् (६, ३, ५, २ = ज०) ..	५२६
वृष्टिन्दिःपरि (५, १, २, ६ = ज०) ...	१७८
वृष्टिवावारीत्यापेशम् (६, ३, ११, १ = ज०) ...	५४०
वेद्याहिवेषो (६, ३, १४, ३ = ज०) .	५४८
शकेमलासमिधं (४, १, ७, ३ = ज० १७, १, १५) ...	२३
शिष्टाज्ञानंहरिं (५, २, १९, ३ = ज ६, १, ४) ..	३६९
शिष्टाज्ञानंहरितं (५, १, १, १ = ज ९, १, १२-१०, १, ७-१७, १, ७- १८-२३, २, ४-२३, २, ७) ..	१६४
शुक्रःपवस्व (५, १, १७, २ = ज ५, १, ९-२१, ३, ८) ...	२४६
शुक्रमाश्रितायुभिर् (४, १, २, १ = ज०) ...	७
शुक्लीशङ्को (६, ३, १३, ३ = ज १५, २, ५) ...	५४५
शूरधामः (६, २, ११, २ = ज ७, २, १७) ...	४७३
शूरीनी (५, १, १२, २ = ज धर्तादिवः) ..	२१२
श्रायन्तइव (५, २, १४, १ = ज ५, २, ९-१०, २, १) ..	३३६
सर्दरथो (६, ३, १३, २ = ज १५, २, ५) ...	५४३
संवत्सवमातृभिर् (४, १, १९, २ = ज ३, २, १२-८, १, १०-११) ...	७५
सखायश्चानिषीदत (४, २, ९, १ = ज ४, १, १२-७, १, १८-१९- ९, १, १८-१४, २, १५) ...	१४३
सवितस्थाधि (५, २, ७, ३ = ज०) ...	१९५
सन्देवः (५, २, ७, ६ = ज०) ..	१९३
सनदन्त्रशिवः (६, ३, ४, ३ = १४, १, १६) ...	५२३
सनकजै (६, ३, १, ४ = ज०) ...	५१४
सनाचसोम (४, १, ४, १ = ज०) ..	१२
सनाज्योतिः (४, १, ४, २ = ज०) ...	१
सःसादचमुत (४, १, ४, ३ = ज०) ..	१३
सनोभगाय (४, १, १३, ३ = ज० ३, २, ७-२३, २, १४) ...	५१
सनोमन्त्राभिर् (६, ३, १६, २ = ज०) ..	५४८
सन्निवेदो (६, २, १, ३ = ज०) ...	४३४
सपवस्वमदिन्तमः (५, १, ५, ५ = ज०) ...	१९१
सपवित्रेविसत्तणो (५, २, ७, २ = ज०) ...	२९१
सपुनानउप (६, १, ४, २ = ज आजागटिर्) ...	३९७
समस्तमाणी (६, २, १७, १ = ज ८, १, १२) ..	४९९
समस्तमिय / ५. ७. ७०. ३ = ज ४. १. १७) ...	१५६

मन्त्रप्रतीकम्

मन्त्रप्रतीकम्

यस्यानोऽन्वा	समज्ञाविज्ञा (४, २, ८, २ = ज०)	...
यद्यत्तर (६)	समिद्धिणोत (४, १, १३, २ = ज २, १, ७-२३, २, १४)	...
यदिन्द्रचिव (४)	समीपत्यज्ञ (४, २, ८, २ = ज० ४, १, १२-७, १, १८-१८-८, १, १८-१४, २, १४)	...
यदिन्द्रप्राग् (४)	समीचीनासञ्चारत (४, २, १, १० = ज प्रकायमुशनेव)	...
यदीसुतेभिर	समुद्रोक्षप्सु (४, १, २, ५ = ज०)	...
यद्वायनेरुग्रमे	समुप्रियोम्व्यते (६, २, ८, ३ = ज ७, २, ६)	...
यद्दीडावोन्द्र (४)	समातुभिर (६, २, १५, २ = ज साकमुची)	...
यन्मन्त्रसे (४)	सवाज्याया (४, २, ४, २ = ज०)	...
यसम्रेष्टत्सु (४)	सधीजतउरगायस्य (४, २, १, ३ = ज प्रकायमुशनेव)	...
यसिद्धिला (४)	सवर्जिता (६, १, ४, ३ = ज आजाग्विर)	...
यस्यतइन्द्रः (४)	सवाजं (६, २, १४, ३ = ज०)	...
यस्यतेविश्वं ४	सवाजो (५, २, ७, ३ = ज०)	...
युद्धाद्विकी	सवायुम् (४, २, २, ७ = ज०)	...
युञ्जन्तिब्रध्नं (४)	सवीरो (६, १, २, ३ = प्रमुशानाय)	...
युञ्जत्यस्यकाम	सवृषा (५, २, ७, ५ = ज०)	...
यनदेवाःपवि	सद्युः (५, २, ७, १ = ज०)	...
येसोमासःपर	सद्युः (४, १, १८, १ = ज ३, २, ११-२१, १, १४)	...
ययिन्नस्विनं (४)	सहस्रधारंष्टमं (६, २, ६, २ = ज २, २, १-७, १, १७-१२, १, १३)	...
यन्तेमिवो	साकज्ञानः (६, ३, १८, २ = ज०)	...
राजानोनप्र	साकमुची (६, २, १५, १ = ज ८, १, ७-१२, १, ८-१८, २, ४)	...
राधादिरण्य	सुप्रवीरसु (६, १, २, २ ज०)	...
रेवतीर्नः (४)	सुरूपछात्रम् (४, १, १५, १ = ज०)	...
वयन्तेअस्यर	सुषमिद्धो (६, १, १, १ ज०)	...
वसुरग्निर्वह	सुष्वाणासीयद्रिभिर (४, १, २०, ३ = ज सोमाःपवन्त)	...
वाजीवाजीव	सूर्यं खेव (६, १, ८, १ = ज ६, १, २१-८, २, ११)	...
मावृधानःश	सोमःपुनानोअर्पति (५, १, २, १ = ज०)	...
मात्राअर्पन्तो	सोमाअक्षयम् (५, १, ४, १ = ज०)	...
	सोमाःपवन्तइन्द्रवो (४, १, २०, १ = ज ३, २, १३-१४-१५-१६-१५, २, १६-१७-१८-१९, १, १-२३, १, १४)	...
	सोमानांखरणं (६, ३, ११, २ = ज०)	...
	सुक्षुतेभिर (६, ३, ३, २ = ज०)	...
	सिन्धानासोरथा (४, २, १, ५ = ज प्रकायमुशनेव)	...
	सोतादेवो (६, ३, १७, १ = ज०)	...

यस्य निश्चसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्गमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ ७ ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः आरभ्यते* ॥

तत्र

प्रथमखण्डे,† प्रथम-तृचे—

प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ज्योतिर्यज्ञस्यपवतेमधुप्रियं

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पितादेवानाञ्जनिताविभूवसुः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २

दधातिरत्नं स्वधयोरपीचं

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २

मदिन्तमोमत्सरइन्द्रियोरसः ॥ १३ ॥

“यज्ञस्य” अग्निष्टोमादेः “ज्योतिः” दीपकः सोमः “प्रियम्”
इन्द्रादीनां प्रियभूतं “मधु” मधुरसं “पवते” पूयते दशापवि-

* ‘त्रिणवस्तौमिकमिदानीं षष्ठमहः’—इति वि० ।

† ‘वयस्त्रिणवदेवताष्टमम्’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, ३, १३, ५ ।

तत्र शोधयत इत्यर्थः । रसो विशेष्यते—“पिता” पालकः
 “जनिता” फलस्य उत्पादकः “विभूवसुः” प्रभूतधनः तेन
 सम्पादयितुं शक्यत्वात् तादृशः सोमरसः “स्वधयोः” [“स्वधे”—
 इति व्यावापृथिव्योर्नाम (निघ० ३, ३०, १)] “अपीच्यम्”
 [—इति चान्तर्हितस्य (निघ० ३, २५, ६)] व्यावापृथिव्यो-
 र्मध्येऽन्तर्हितं “रत्नं” रमणीयं धनं “दधाति” स्थापयति
 यजमानेषु । स एव पुनर्विशेष्यते—“रसः” रसविता
 “मदित्तमः” मादयित्वतमः “मत्सरः” स सोमः “इन्द्रियः”
 इन्द्रेण जुष्टः इन्द्रिय-वर्धको वा ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ एक २१ ३
 अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्पति

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
 पतिद्विवः प्रतधारो विचक्षणः ।

१ २ ३ २ ३ १ २
 हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 मर्हजानो विभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

* ज्योतिषं यज्ञस्य पवते—ज्योतिरुज्ज्वलं दीप्तिकरं यज्ञस्य पवते पूयते मधु-
 रसं * * * पिता देवानां जनिता विविधेन प्रकारेण जनिता । कथम् ? “अग्नौ
 प्रासादतिः सम्यगादित्य सुपतिष्ठते । आदित्या जायते दृष्टिर्दृष्टेरन्नं ततः प्रजाः”—
 अनेन प्रकारेण जनिता । विभुर्विप्रस्य भावयिता । दधाति धारयति रत्नं स्वधयोः
 अपीच्यम् अविनाशि मदित्तमः मत्सरः भक्षणीयः इन्द्रियः इन्द्रस्य स्वभूतः रसः
 वीर्यम्—इति वि० ।

सोमः “वाजी” वेजनवान् गमनवान् [यद्वा, अश्वसदृशः]
 “अभिक्रन्दन्” अभितः शब्दं कुर्वन् “कलशं” द्रोणकलशम्
 “अर्षति” गच्छति । कीदृशः “दिवः” द्योतमानस्य अन्तरिक्षस्य
 दशापवितलक्षणस्य “पतिः” पालकः स्वामी यद्वा दुलोकस्य
 स्वामी [दिवि हि सोमउत्पन्नः “तृतीयस्या मितो दिवि सोम
 आसीत्”—इति श्रुतेः] “शतधारः” परिमित-धार-पेतः
 “विचक्षणः” विशेषेण द्रष्टा* “हरिः” हरितवर्णः सोमरसः
 “मितस्य” मित्रवर्द्धितकरस्य यज्ञस्य “सदनेषु” “सीदति”
 निषण्णो भवति† । कीदृशः सन् ? “सिन्धुभिः” स्यन्दन-साधनैः
 अविरोमभिः दशापवित्रावयवैः‡ “मर्मृजानः” शोध्यमानः
 “वृषा” वर्षकः फलानाम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२३१ २३ २२ ३
 अग्नेसिन्धूनाम्यवमानोऽर्ष
 १२ २१ २ ३१२ २२
 स्यमेवाचोऽग्निगोषुगच्छसि ।
 २३ १ २ ३१२ २२
 अग्नेवाजस्यभजसेमहृद्वनः
 २२ २१ २
 स्वायुधः सोतृभिः सोमसूयसे ॥ ३॥ १

* “विश्वस्य द्रष्टा”—इति वि० ।

† “मित्र आदित्यविशेषः । अथवा मित्रस्य यजमानस्य सखा सुत्यर्थ-लक्षणेन सम्बन्धेन तस्य दृष्टेः द्रोणकलशप्रभृतिषु सीदति”—इति वि० ।

‡ “अविभिः—तृतीयावयवचर्चनं मिदं षष्ठ्यैकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् । अवेः सभूतेन दशापवित्रेण सिन्धुभिः उदकैरित्यर्थः”—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ७, ३, १४, २ ।

हे सोम ! त्वं “सिन्धूनां” स्यन्दन-स्रभावानां सुदकानाम्
 “अग्ने” पुरस्तात् “पवमानः” पूयमानः सन् “अर्षसि” गच्छसि
 वृष्ट्योदकं जनयितुं माहुतिद्वारान्तरिक्षे गच्छसीत्यर्थः । तथा
 “वाचः” माध्यमिकाया अपि “अग्नियः” ग्राह्यः पूज्यः सन्
 गच्छसि तथा “गोषु” रश्मिषु तेषामग्रे गच्छसि तथा “वाजस्य”
 शत्रूणां मन्त्रस्य लाभार्थेति शेषः । तदर्थं “महाधनं” सङ्ग्रामं
 “भजसे”^{*} सेवसे । कौटुम्भः सन् ? “स्वायुधः” शोभन-प्रहरण-
 साधनायुधः । हे सोम ! तादृशस्त्वं “सोढभिः” अभिषुषवद्भिः
 अध्वर्यादिभिः “सूयसे”[†] अभिषूयसे ॥ ३ ॥ १

॥ मरुतान्धेनु ॥ ज्यो^१२३४ । तिर्य^{५ ४ ५}ज्ञस्यपवतेमधौ^{२ ४ ५ २} ।

हो^{४ ५}प्रायाम् । पितादेवानाञ्जनिता । विभूवासू^{१ २ १}रः ।

दधातिरत्न^{१ २}स्त्रधयोः । अग्रे^{१ २ १}चायारश्मम् । मादिन्ता^{१ ३}रश्

४माः । मत्सर^५ईद्रीयोश्शरा^{२ १ २ १ ४}पुसा^१ई^५५६ः ॥ (१) आ २ ३ ४ ।

भिक्रन्दन्कलशंवाजियौ । हो^{५ ४ ५ ४ ५ ४}प्रातायि । पतिर्हि^{४ ५}वःशत^१

धारो । विचक्षाणा^{२ १}रः । हरिर्भि^१त्रस्यसदनायि । पु^{२ २}सी

दाता^१रश्यि । माम्जा^{२ १ ३ ५}रश्शनाः । अविभिः^{३ १ २}सि । धू^{१ २}भा

* , † “भजते”—इति “पूयते”—इति च च्छ०-पाठः ।

४ १ २ ५ २ ४ ५ २ ४
 श्रियर्वा^४पु^१र्षा^२६५^२६^४॥ (२) आ २ ३ ४ । ग्रो^२सिन्धूना^४म्यवमान
 ५ २ ४ ५ १ २ २ २ २ २ २ १
 औ । हो^४र्षा^५सायि । अग्र^१ेवाचो^२अग्रियो^२गो । पुगच्छा
 १ २ २ २ २ १
 सा २यि । अग्र^१ेवाजस्य^२भजसायि । मह^२द्धाना २ ३ म् ।
 २ १ ३ ५ १ २ १ १ २ ४
 सूवायू २ ३ ४ धाः । सोतृभिः^१सो । मासू ३ या ५ सा^४६
 ५ ६ यि(३) ॥ ११* ॥ [१]

४ २ ५ ४ २ ३ ४ २ ५
 ॥ वरुणसाम ॥ ज्योति^४र्थ्य । ज्ञा ३ स्यपवतो^४मधुप्रि
 १ २ २ २ २ २ १ २
 याम् । पितादेवाना^१ञ्जनिताविभूवमूर^२र्होयि । दधा
 २ २ १ २ १
 तिरत्न^२स्वधयोः । अपीचि^२यार^१३म् । होयि । मदायि
 १ २ १ २
 न्ता^१३माः । मात्सरः । इन्द्रि । यो २ ३ । रसाउवा
 ४ २ ५ ४ २ ३ ४ २ ५ १
 ३ ॥ (१) अभि^४क्र । दा^४३न्कल^५शंवा । जियर्षतायि । प
 २ २ १ १
 तिर्द्दिवः^२शतधारो^१विचक्षणा २ ३ होयि । हरि^१मित्रस्य^१सद
 २ २ १ २ १ १
 ने । पुसी^२दतार^१३यि । होयि । मर्म^२जा^२३नाः । आ

^१ विभिः । ^१ सिन्धु । ^२ भार३यिः । ^{४ ३} वृषाउवा३ ॥ (२) अग्ने
^५ सि । ^{४ २ २ ४ २} धू३नाम्यवमानः । ^५ अर्षसायि । ^{१ २ २ २} अग्नेवाचोअग्नि
^{२ २} योगोषुगच्छसा२३यिहोयि । ^१ अग्नेवाजस्यभजसे । मह
^१ इना२३म् । होयि । ^{२ २} सुवायूर३धाः । ^{१ २} सोतृभिः । ^{१ २} सो
^१ म । ^२ सू२३ । ^१ यसाउवा३ । ^२ ए३ । ^{१ २ १ २ १ २ १ २} इन्दुःसमुद्रमुर्विया
^{२ २ २ १ १ १} विभाती२३४५ (३) ॥ २* ॥ [२] १

अथ द्वितीयः छन्दः—

प्रथमा ।

^{१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २} अष्टक्षतप्रवाजिनोगव्यासोमासोअश्वया ।

^{३ १ २ ३ १ २ २} शुक्रासोवौरयाश्वः ॥ १* ॥

“वाजिनः” बलवन्तः “शुक्रासः” दीप्ताः “आश्वः” वेगवन्तश्च
 “सोमासः” सोमाः “गव्या” यजमानस्य गवेच्छया तथा

* ज० गा० २३ प्र० २ अ० २ सू० १ ।

† क० आ० ५, २, ५, ६ (२ भा० ३६४०) = छ० वे० ७, १, २६, ४, ५ ।

‡ “गव्या”—इति छ०-प्राठः ।

“अश्वया” अश्वेच्छया तथा “वीरया” वीराः पुत्र-भृत्यादयः
तेषां मिच्छया “प्र असृक्षत” प्रासृज्यन्त रसान्वा विसृज्यन्ते ॥१॥

अथ द्वितीया ।

३१ २ ३१ २२ १ २ ३ १ २
शुभमानाऋतायुभिमज्यमानागमस्त्योः ।

१२२ १ २२ १ २
पवन्ते वारे अव्यये ॥ २* ॥

“ऋतायुभिः” यज्ञेच्छुभिः अध्वर्यु-प्रसृतिभिः “शुभमानाः”
अलङ्घ्यमानाः “गमस्त्योः” हस्तयोः हस्ताभ्यां† “सृज्यमानाः”
शोधमानाः “वारे” वाले दशापवित्ते । कौटुशे? “अव्ये”
अविमये “पवन्ते” घृयन्ते ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ २२ २ ३२ २१ २ ३ २ २१ २
तेविश्वादाशुषेवसुसोमादिव्यानिपार्थिवा ।

१२३ १२ २२
पवन्तामान्तरिह्या ॥ ३‡ ॥ २

“ते” सोमाः अभिषूयमानाः “दाशुषे” हविः-प्रदात्रे यजमा-
नाय “विश्वा” सर्वाणि “वसु” वासकानि गवादि-धनानि “आ

* ऋ० वे० ७, १, ३६, ५ ।

† “गमस्त्योः”—गमस्तिभ्यां बाहुभ्यां । ‘गमस्ती बाहू—इति बाहुनामसु पाठात्’
—इति ऋ०-व्याख्या ।

‡ ऋ० वे० ७, १, ३७, १ ।

पवन्तां सर्वतः चरन्तु । वस्त्रित्युक्तं कथं वसूनां विश्वत्वमिति ?]
 उच्यते—“दिव्यानि” दिवि भवानि “पार्थिवा” पृथिवी-सम्ब-
 दानि “अन्तरिक्षा” अन्तरिक्षाणि अन्तरिक्षे भवानि* एव सुक्त-
 प्रकारेण विश्वानीत्यर्थः ॥ ३ ॥ २

पवस्वेति-दशच्चे^१ तृतीय-सूक्ते —

प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ २ २ १ २ ३ १ २
 पवस्वदेववीरतिपवित्रं सोमरं ह्या ।

१ २ ३ १ २ २
 इन्द्रमिन्द्रो वृषाविश ॥ १† ॥

हे सोम ! “देववीः” देवकामः‡ त्वं “रं ह्या” वेगेन
 “पवित्रं” यथा भवति “अति पवस्व” अतिचर किञ्च हे “इन्द्रो”
 “वृषा” सेचकस्त्वं इन्द्रम् “आविश” प्रविश ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
 आवच्यस्वमहिष्मरो वृषेन्द्रोद्युम्नवत्तमः ।

१ २ २ २ ३ २
 आयोनिन्धर्णसिस्सदः ॥ २¶ ॥

* ‘घनानीत्यनुषज्यते’—इति वि० ।

† ऋ० आ० ६, १, २, ४ (२भा प्र० ऋ० वे० ६, ७, १८, १ ।

‡ ‘देवानां भक्षभूतः’—इति वि० ।

¶ ऋ० वे० ६, ७, १८, १ ।

हे “इन्द्रो” सोम ! “वृषा” सेवकाभीष्टदाता वर्षकः “द्युम्न-
वत्तमः” यशस्वितमः “धर्षसि” धर्त्ता त्वं “मही” महत् “सरः”
पानीयम् “अन्धः” अन्नम् “आवच्यस्व” अस्मान् प्रति आगमय
किञ्च “योनि” स्वकीयं स्थानम्* “आसदः” आसीद् च ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
अधुक्षतप्रियम्नधुधारासुतस्यवेधसः ।

२ १ २ २ १ २
अपोवसिष्टसुक्रतुः ॥ ३† ॥

“सुतस्य” अभिषुतस्य “वेधसः” अभिलक्षितस्य विधातुर्यस्य
“सोमस्य” “धारा” “प्रियं” प्रीतिकारं “मधु” अमृतम् “अधुक्षत
दुग्धे स “सुक्रतुः” सुकर्मा सोमः “अपः” “वसतीवरीः”
“वसिष्ट” आच्छादयति ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

२ १ २ २ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
महान्तन्वामहौरन्वापोअर्षन्तिसिन्धवः ।

१ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
यज्ञोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४‡ ॥

हे सोम ! त्वं “यद्” यदा यज्ञे “गोभिः” गोर्विकारैः
पयोभिः “वासयिष्यसे” आच्छादयिष्यसे तदा “मधु” ययिष्यसे

* ‘योनिं द्रोणकलशम्’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, १८, २ ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, १८, ४ ।

प्रवृद्धं “त्वा अनु” त्वाम्प्रति “सिन्धवः” स्यन्दमानाः “महीः”
महत्यः “आपाः” “अर्पन्ति” गच्छन्ति ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

४ १ ४ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
समुद्रोऽसुमासृजे विष्टम्नो धरुणो दिवः ।

१ २ ४ १ २ ३ २
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५* ॥

“समुद्रः” समुद्रवन्ति अस्माद्रसा इति समुद्रः “विष्टम्नः”
“दिवः” स्वर्गस्य “धरुणः” धर्ता च “अस्मयुः” अस्मात्-कामः†
“सोमः” “असु” उदकेषु “मासृजे” मर्मृच्यते पवित्रेऽभिषिच्यते
चेत्यर्थः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अचिक्रदहृषा हरिर्माहानि त्रोन दर्शतः ।

१ २ १ २
स सूर्येण दिद्युते ॥ ६‡ ॥

“हृषा” कामानां वर्षकः “हरिः” हरितवर्णः “महान्”
सर्वोत्तमः “मितः न” यथा सखा तद्वत् “दर्शतः” दर्शनोयः यः
सोमः “अचिक्रदत्” शब्दं करोति सोऽयं सोमः सूर्येण सह
“सन्दिद्युते” समित्येकीभावे सूर्येण सह द्योतत इत्यर्थः ॥

“रोचते”—इति बह्वचावां पाठः ॥ ६ ॥

* ङ० आ० ६, १, २, १ (२ भा० ५५ ४०) = ङ० वे० ६, ७, १८, ५ ।

† ‘अस्मात् भक्तमिच्छुः’—इति वि० ।

‡ ङ० वे० ६, ७, १८, १ ।

अथ सप्तमी ।

^{१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २}
गिरस्तुन्द्रओजसामर्मृज्यन्तेअपस्युवः ।

^{१ ३ १ २ ३ १ २}
याभिर्मदायशुभसे ॥ ७* ॥

हे “इन्द्रो !” “ते” तव “ओजसा” बलेन “अपस्युवः”
कर्मच्छा-सम्बन्धिन्यः ताः “गिरः” स्तुतयः “मर्मृज्यन्त”
शोधयन्ते । “याभिः” “गीभिः” त्वं मदाय “चरन्” “शुभसे”
अलङ्घयसे ॥ ७ ॥

अथ अष्टमी ।

^{१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २}
तन्त्वामदायघृष्यउलोककृत्नुमीमह ।

^{१ ३ १ २ ३ १ २}
तवप्रशस्तयेमहे ॥ ८† ॥

“लोककृत्” लोकस्य कर्त्तारं “तं त्वा” सोम “घृष्यये”
शत्रूणां घर्षण-शीलायण “मदाय” “इमहे” याचामह ।
हे सोम ! पातमिति शेषः । किमर्थम् ? इति, उच्यते—
“तव” “महे” महते “प्रशस्तये” प्रशंसनाय ॥ ८ ॥

* ऋ० वे० ६, ७, १८, २१ ।

† ‘शुभसे शोधये’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, १८, २१ ।

॥ ‘घृष्यये’—अश्वनाथम्—इति वि० ।

अथ नवमी ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

गोषा इन्दो नृषा अस्य श्वसा वाजसा उत ।

३ २ ३ १ २ ३ २

आत्मा यज्ञस्य पूर्यः ॥ ८* ॥

हे “इन्दो” क्लियमान-सोम ! “यज्ञस्य” ज्योतिष्टोमादेः
 “पूर्यः” पुराणः नित्यः आत्मा स्वरूपभूतः [सोमस्य यज्ञस्वर-
 पत्वं प्रसिद्धम्] । तादृशस्त्वं “गोषा” अस्मभ्यं गवां दाता
 “असि” भवसि, “नृषा” नृणां पुत्र-भृत्यादीनां दातासि,
 “अश्वसाः” अश्वानां दाता चासि, “उत” अपिच “वाजसा”
 अश्वानां दाता चासि ॥ ८ ॥

अथ दशमी ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्मभ्यमिन्द्रविन्द्रयम्नधोः पवस्वधारया ।

३ १ २ ३ १ २

पर्जन्यो वृष्टिमा इव ॥ १०† ॥ ९

हे “इन्दो” सोम ! “इन्द्रियम्” इन्द्रेण वृष्टम् इन्द्रियस्य
 वीर्यस्य वा वर्धकं रसं “मधीः” मदकरस्य अमृतस्य “धारया”
 “पर्जन्यो वृष्टिमा इव” यथा वर्षवान् पर्जन्यो मेघः तथा “अस्यभ्यं”
 मेघातिथिभ्यः “पवस्व” क्षर ॥ १० ॥

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य षष्ठस्याध्यायस्य

प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ ९

* ऋ० वे० ६, ७, १८, ५ ।

† ऋ० वे० ६, ७, १८, ४ ।

अथ द्वितीय-खण्डे—

सनाचेति-दशर्चे प्रथमे सूक्ते, प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सनाचसोमजेषिचपवमानमहिश्रवः ।

१ २ ३ १ २

अथानोवस्यसस्त्वधि ॥ १* ॥

हे “महिश्रवः” महद्देव ! “पवमान” सोम ! “सन”†
अस्मद्यागे यजनीयान् देवान् भज “जेषि च” याग-विघ्नकारिणो
राक्षसांश्च जय । “अथ” देवान् प्राप्य राक्षसांश्च जित्वा अन-
न्तरं “नः” अस्मान् “वस्यसः” अयसः‡ “कधि” कुरु अये योऽस्मभ्यं
देहीत्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सनाज्योतिःसनास्वाऽऽर्विश्वाचसोमसौभगा ।

१ २ ३ २ २

अथानोवस्यसस्त्वधि ॥ २॥ ॥

हे सोम ! त्वं “ज्योतिः” तेजः “सन” अस्मभ्यं प्रयच्छ ।
अपिच “स्व” स्वर्गं “सन” अस्मभ्यं देहि । “विश्वा” विश्वानि
“सौभगा” सौभाग्यानि “च” सन सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ६, ७, २२, १ ।

† ‘सना-शब्दः सदावाची । सदा जेषि च श्रवन्—इति वि० । सायण-
मते तु ‘सना’—इति त्रिषापदम् “द्विचोऽतस्त्रिः (६, १, १३५) ”—इति
दीर्घः । विवरणकार-मते तु सना सदार्थमवयवमिति “निपातस्य च (६, २, १२६) ”
—इति दीर्घः । मूले सर्वत्रैव दीर्घान्तः, आख्यानकाले त्रयथायथं ह्रस्वान्त-
प्रतीकमेव गृह्यते ; इयमेव शैलिः आख्यातुः सर्वत्रेति बोध्यम् ।

‡ ‘वस्यसः—वसनीयः’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, २२, २ ।

अथ तृतीया ।

१ २ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
सनादक्षमुतक्रतुमपसोममृधोजहि ।

१ २ ३ १ २
अथानोवस्यसस्कृधि ॥ ३१ ॥

हे सोम ! त्वं “दक्षं” बलं “सन” अस्मभ्यं देहि, “उत”
अपिच “क्रतुं यज्ञं” सन, “मृधः” हिंसकान् शत्रून् “अप
जहि” मारय । सिद्धमन्यत् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवीतारःपुनीतनसोममिन्द्रायपातवे ।

१ २ ३ १ २
अथानोवस्यसस्कृधि ॥ ४३ ॥

हे “पवीतारः” सोमस्य शोधयितार ऋत्विजः ! “सोमं”
“पुनीतन” पावयत दशापवित्ते ण शोधयत किमर्थम् ? “इन्द्राय
पातवे” इन्द्रस्य पानाय । गतमन्यत् ॥ ४ ॥

† सू० वे० ६, ७, १९, ३ ।

‡ सू० वे० ६, ७, १९, ४ ।

अथ पञ्चमी ।

१२ १२ १ १ १२ १२ १ १ १
त्वत्सूर्येन आभजतवक्रत्वातवोतिभिः ।

१ १ १ १ १
अथानोवस्यसस्त्रुधि ॥ ५ ॥

हे सोम ! त्वं “तव क्रत्वा तव कतिभिः” त्वत्कर्त्तृकाभी-
रक्षाभिश्च “नः” अस्मान् “सूर्ये” “आ भज” प्रापय । सिद्ध-
मन्यत् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
तवक्रत्वातवोतिभिर्ज्योक्पश्येमसूर्यम् ।

१ १ १ १
अथानोवस्यसस्त्रुधि ॥ ६ ॥

हे सोम ! “तव” “क्रत्वा” प्रज्ञानेन “तव कतिभिः” पालनेन
“ज्योक्” चिरं पश्येम सूर्यं पश्याम द्रक्ष्यामः । सिद्धमन्यत् ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी ।

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
अभ्यर्षस्त्रायुधसोमद्विवर्हसपरियम् ।

१ १ १ १ १
अथानोवस्यसस्त्रुधिः ॥ ७ ॥

हे “स्त्रायुध” शोभनायुध सोम ! त्वं “द्विवर्हस” द्वयोर्द्यावा
पृथिव्योः स्थानयोः परिट्टटं “रयि” धनम् “अभ्यर्ष” स्तोतृन्-
अभिगमय । सिद्धमन्यत् ॥ ७ ॥

* ऋ० वे० ६, ७, १२, ५ ।

† ऋ० वे० ६, ७, १३, १ ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, १३, १ ।

अथाष्टमी ।

२ २ १ २ २ १ २ २ १ २
अभ्याऽऽर्षानपच्युतोवाजिन्समत्सुसासहिः ।

१ २ २ १ २

अथानोवस्यसस्त्रुधि ॥ ८* ॥

हे सोम ! “समत्सु” सङ्ग्रामेषु “अनपच्युतः” शत्रुभिरनाहतः
“सासहिः” शत्रूणां अभिभविता† त्वम् “अभ्यर्ष” अभिगच्छ
क्षर । गतमन्यत् ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

२ २ १ २ २ १ २ २ १ २
त्वांयज्ञैरवीवृधन्पवमानविधर्मणि ।

१ २ २ १ २

अथानोवस्यसस्त्रुधि ॥ ९‡ ॥

हे “पवमान” शोध्यमान सोम ! त्वां “विधर्मणि” विविध-
फलस्य धारके यज्ञे “यज्ञैः” यज्ञ-साधनैः “स्तोत्रैः” “अवीवृधन्”
यजमाना वर्धयन्ति । गतमन्यत् ॥ ९ ॥

अथ दशमी ।

२ १ २ २ २ २ २ १ २ २ २ १ २
रयिन्नश्चित्रमश्विनमिन्दोविश्वायुमाभर ।

१ २ २ १ २

अथानोवस्यसस्त्रुधि ॥ १० ¶ ॥ ४

* ऋ० वे० ६, ७, २२, २१ ।

† ‘सासहिः’ साधनस्वभावः—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, २३, ४ ।

¶ ऋ० वे० ६, ७, २३, ५ ।

हे “इन्दो !” यागेषु क्लियमान सोम ! त्वं “चित्” नाना-
विधम् “अश्विनम्” अश्ववन्तश्च “विश्वायु” सर्वगामिनं* “रयि”
धनं “नः” अस्त्रभ्यम् “आ भर” आहर । गतमन्यत् ॥ १० ॥ ४

तरत्समन्दीति चतुर्ऋचे द्वितीयसूक्ते—

प्रथमा† ।

१ २ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २

तरत्समन्दीधावतिधारासुतस्यान्धसः ।

१ २ १ २ १ २

तरत्समन्दीधावति ॥ १३ ॥

“मन्दी” देवानां हर्षकरः स सोमः “तरत्” स्तोतृन्
पाप्मनः सकाशात् तारयन् “धावति” दशापविचादधः
चरति । तदेव दर्शयति—“सुतस्य” अभिषुतस्य “अन्धसः”
देवानामन्धकस्य सोमस्य धारा धावतीति । पुनरपि तदेवा-
हाल्यन्तादरार्थं “तरत्समन्दीधावति”—इति॥ [यहास्या ऋचो
यास्केनोक्तोऽर्थो द्रष्टव्यः, तद्यथा—“तरति स पापं सर्वं मदीयं
स्तोति धावति गच्छत्यूर्ध्वं गतिं धारासुतस्यान्धसो धाराभिषुतस्य
सोमस्य मन्त्रपूतस्य वाचासुतस्य (निर० १३, ६)”—इति ॥ २ ॥

* “विश्वायु”—दीर्घाद्युष्णे सह आभर’—इति वि० ।

† “तरत्समन्दीधावतीति-चतुर्ऋचः इन्द्रसिकाभाष्ये विश्वरेणोक्ताः, सप्रयोजनं
तथाप्यत्र सङ्क्षेपेणोच्यते”—इति वि० ।

‡ ऋ० आ० ६, १, २, ४ (२भा० ५-४०)=ऋ० वे० ७, १, १५, १ ।

॥ “तरत्सः”—तरति स पापं यस्य मन्दी धावति सोमस्य । सोमस्य धारा वज्रला
सुतस्याभिषुतस्य अन्धसीधस्य सोम-लक्षणस्य’—इति वि० ।

अथ द्वितीया ।

३१ २३१ २३ १ २ ३१ २
उस्तावेदवसूनाम्नर्त्तस्यदेव्यवसः ।

२५ २ ३१ २
तरत्समन्दीधावति ॥ २* ॥

“वसूनां” धनानाम् “उस्ता” उक्तरणशैला प्रदात्री “देवी”
द्योतमाना स्तूयमाना वा यस्य सोमस्य धारा “मर्त्तस्य” मनुष्यं
यजमानम् “अवसः” रक्षितुं “वेद” जानाति† । सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३१ २ ३२ २ २० १ २
ध्वस्त्रयोःपुरुषन्थोरासहस्राणिदद्वहे ।

२३ २ ३ १ २
तरत्समन्दीधावति ॥ ३‡ ॥

“ध्वस्त्रयोः पुरुषन्थोः” ॥ ध्वस्त्रः कश्चिद्राजा तथा पुरुष-
न्तिष्ठ, तयोर्हभयोरत्रे तरयोग-विवक्षया द्विवचनं द्रष्टव्यं “सह-
स्राणि” धनानां सहस्राणि “आ दद्वहे” वयं प्रतिगृह्णीमः ।
तदस्त्रार्थः प्रतिगृहीतं धनमुत्तममास्त्विति ऋषिः सोमं प्रार्थयत
इति सोमस्य स्तुतिः । सिद्धमन्यत् यथावत्सार एतयोर्देवानां

* ऋ० वे० ७, १, १५, २ ।

† ‘उस्ता दीपा वेद वसूनां, विद ज्ञाने, विद्भू लाभे, विद सत्तायाम्, सर्वज्ञा
धारा’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, १, १४, २ ।

॥ ‘ध्वस्त्रयोः पुरुषन्थोः’—उमान-स्त्रभाषयोः सोम-धारयोरपि त्रीणकलशेन सह
सन्वन्धयोः पापध्वं सकरयोः—इति वि० ।

प्रतिजग्राह एवं तरन्त-पुरुमीढौ प्रतिजगृहतुः । तथाच
शाट्पायनकम्—‘अथ ह वै तरन्त-पुरुमीढौ वैदस्वी ध्वस्वयोः
पुरुषन्व्योः बहु प्रतिगृह्य गरगिराविव मेनाते तौ ह स्माङ्गुल्या
सातं प्रतिगृशाते तावकामयेतामसातन्नाविवेद सातंस्यादात्त
मिवैव न प्रतिगृहीत मिति भावे तच्चतुर्ऋचमपश्यतान्तरेण
प्रत्येतां तयोर्वैतयोरसातंसातमभवदात्तमिवैव न प्रतिगृहीतं
स यः प्रतिगृह्य कामयेत’—इत्यादि ॥ २ ॥

अथ चतुर्थी ।

१२ १२ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
आययोस्त्रिंशतन्तनासहस्राणिचदद्वाहे ।

२ ३ २ ३ १ २
तरन्तसमन्दीधावति ॥ ४* ॥ ५

“ययोः” ध्वस्व-पुरुषन्तयोः “त्रिंशतं” त्रीणि शतानि सह-
स्राणि च “तना” वस्त्राणि “आ दद्वाहे” वयं “प्रतिगृहीतः”
तयोरस्माभिः प्रतिगृहीतं तत् सर्वम् अप्रतिगृहीतमस्त्विति
सोमम् ऋषिः प्रार्थयतइति सोमस्यैव स्तुतिः । गतमन्यत् ॥ ४ ॥ ५

एतेसोमाइति त्वचं तृतीयं सूक्तम्—

तच्च, प्रथमा ।

३ १ २ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २
एतेसोमाअष्टशतगुणानाःशवत्तेमह ।

३ १ २ ३ १ २
मदिन्तमस्यधारया ॥ १† ॥

* ऋ० वे० ७, १, १४, ४ ।

† ऋ० वे० ७, १, १८, १ ।

अथ द्वितीया ।

३१९६१९
सुनदाजःपरिखव ॥ २॥

अथ तृतीया ।

३ २२१२
गृणानोजमदग्निना ॥ २१ ॥ ६

सम्बन्धः पृष्ठ ७, १, २८, ४।

“उत” अपिच हे सोम ! “जमदग्निना” जमदग्नि-नाम्ना
ऋषिणा मया “गृणानः” स्तूयमानः त्वं “नः” अस्माकं
“गोमतौः” गोभिर्युक्तानि “परिष्टुभः” परितः स्तोतव्यानि*
सर्वाणि “इषः” अन्नानि देहीत्यर्थः ॥ १ ॥ ६

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायनस्य सप्तमस्याध्यायस्य

द्वितीयः खण्डः† ॥ २ ॥

इमं स्तोममिति-तृतीयखण्डे‡—

प्रथम-तृचे, ॥ प्रथमा ।

२१७ २१२ २१२ २
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे

१२ २१२ २१२
रथमिव सस्रहेमामनौषया ।

२१७ २१२ २१२
भद्राहिनिः प्रमतिरस्य सत्सु

२१२ १२ २२ २१२ २२
द्यमे सख्ये मारिषामावयन्तव ॥ १९ ॥

“अर्हते” पूज्याय “जातवेदसे” जातानामुत्पन्नानां वेदित्रे,
जात-प्रज्ञाय जात-धनाय वा अग्नये “मनौषया” निश्चितया

* ‘परिष्टुभः—परि समन्तात् स्तौति’—इति वि० ।

† ‘उक्तं ऋषिपुत्राणां’—इति वि० ।

‡ ‘दधस्त्रिंशत्सोमः षष्ठमहः’—इति वि० ।

॥ ‘आग्नेयमाव्यम्’—इति वि० ।

§ इ० आ० १, २, ४ (१भा २०५४०) = ऋ० वे० १, ६, २०, १ ।

बुद्ध्या “इमम्” एतत्सूक्तं स्तामं रथमिव यथा तच्चा रथं संस्करोति तथा “सम्भवेम” सम्यक् पूजितं कुर्मः । तस्याग्नेः “संसदि” सम्भजने “नः” अस्माकं “प्रमतिः” प्रकृष्टा बुद्धिः “भद्रा हि” कल्याणी समर्था खलु अतस्तथा बुद्ध्या स्तुम इत्यर्थः । हे “अग्ने” “तव सख्ये” अस्माकं त्वया सह सखित्वे सति वयं “मारिषाम” हिंसिता न भवामः अस्मान् रक्षेत्यर्थः । [“अर्हते”—अर्हं पूजयाम् (भ्रा० प०) “अर्हः प्रशंसायामिति (३,२,१३३) लटः शचादेशः, शपः पित्वादनुदात्तत्वम् (३,१,४), शतुश्चादुपदेशात्सर्वधातुक-स्त्रेणाद्युदात्तत्वम् (६,१,५६) । महे—मह पूजयाम् (भ्रा० प०) । रिषाम—रिष हिंसायां (भ्रा० प०) व्यत्ययेन शः (३,१, ८५) । तव—“युष्मदस्मदीर्क्षसि (६,१,२११)”—इत्याद्युदात्तत्वम् ॥१॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३
भरामेध्वङ्गणवामाहवीष्पिते

३ १ २ ३ २ २ ३ १
चितयन्तःपर्वणापर्वणावयम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १
जीवातवेप्रतरासाधयाधियो

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
ग्रेसख्येमरिषामावयन्तव ॥ २* ॥

हे “अग्ने !” त्वद्यागार्थम् “इधम्” इन्धन-साधनम् एकविंशति-द्रव्यात्मकं समिक्समूहं “भराम” सम्भराम सम्पादयाम,

तदनु “ते” तुभ्यं “हवींषि चतुपुरोडाशादि-लक्ष्णान्यन्नानि ययं
 “क्षणवाम” करदाम । किङ्कर्तुः ? “पर्वणा पर्वणा”* प्रतिपक्ष-
 मावृत्ताभ्यां दर्शपूर्णमासाभ्यां “चितयन्तः” त्वां प्रज्ञापयन्तः
 स त्वं “जीवातवे” अस्माकं जीवनौषधाय चिरकालावस्थानाय
 “धियः” कर्माणि अग्निहोवादीनि “प्रतरां” प्रकृष्टतरं “साधय”
 निष्पादय । अन्यत् समानम् ॥ [चितयन्तः—चित्ती सञ्ज्ञाने
 (भू० प०) सञ्ज्ञापूर्वस्य विधेरनित्यत्वात् लघूपध-गुणाभावः ।
 पर्वणा—“नित्यवीप्सयोः (८, १, ४)”—इति वीप्सायां द्विर्भावः,
 “तस्य परमास्त्रे ङितम् (८, १, २)”—इति परस्यास्त्रे ङित-सञ्-
 ज्ञायाम् अनुदात्तत्वम् (८, १, १६) । प्रतरां—तरवन्तात्
 प्रशब्दात् क्रिया-प्रकर्षे दर्शमानात् “किमेत्तिङ्ययादाम्बद्रव
 (५, ४, ११)”—इत्यामु-प्रत्ययः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

० १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
 शक्रेमत्वासमिध् साधयाधिय

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
 स्त्वे देवाहविरदन्याहुतम् ।

१ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
 त्वमादित्या आवृत्तान् ह्यऽऽऽऽऽ

२ ३ ३ १ २ २ ३ १ २ २
 स्यग्रेसरस्यमारिषामावयन्तव ॥ ३१ ॥ ७

* ‘पर्वणा—तृतीयेकवचनसिद्धं सप्तम्येकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम्, पर्वणि भूयान्
 समर्थः’—इति वि० ।

हे अग्ने ! “त्वा” त्वां “सन्निधं” सम्यगिष्टं कर्तुं “शक्नेम”
 शक्ता भूयास्व । त्वच्च “धियः”^{*} अस्मदीयानि दर्शपूर्णमासा-
 दीनि कर्माणि “साधय” निष्पादय त्वया हि सर्वं निष्पादयन्ते
 यस्मात् “त्वे” त्वयि अग्नावाहुतम् ऋत्विग्भिः प्रक्षिप्तं चरुपुरो-
 डाशादिकं हविः देवा “अदन्ति” भक्षयन्ति, तस्मात्त्वं साधयेत्यर्थः ।
 अपि च त्वम् “आदित्यान्” अदितेः पुत्रान् सर्वान् देवान्
 “आवह” अस्मद् यज्ञार्थमानय । तान् हि इदानीं वयम्
 “उश्मसि” कामयामहे । अन्यत् पूर्ववत् ॥ [शक्नेम—शक्नु शक्तौ
 (भू० प०), “लिङ्गाशिथङ् (३, १, ८६), अदुपदेशात्तत्सर्व-
 पूधातुकानुदात्तत्वे (६, १, १८६) अङ् एव स्वरः शिथ्यते ।
 अन्तिमिधम्—जि इन्धी दीप्तौ (६० आ०) अस्मात् सम्पदादि-
 —इण कर्मणि क्तिप् । त्वे—सुप्रांसुलुगिति (७, १, ३८)
 । कवचनस्य शे-आदेशः । उश्मसि—वश कान्तौ
 (१० प०), “इदन्तोमसि (७, १, ४६), अदादित्वा-
 ऽपोलुक् (२, ४, ७२), अहिज्येत्यादिना सम्प्रसारणम्
 (६, १, १६) ॥ ३ ॥ ७

११ १२ १ २२ २ १ २ २ १
 ॥ समन्तम् ॥ इमं स्तोममर्चते जातवेदसायि । रथ
 १ २ २ २ १ २ २ २ १ २ १ २
 मिव सममहे मामनौषया । भद्राच्चा२३यिनाः । प्रामतिर
 १ १ २ २ २ १ २ १ २ २ २ १ २ १
 स्यसं ॥ द्यमायि ॥ (१) भरामेधङ्कणवामाहवीष्पिता

* “धीः”—इति कर्मानामसु एकविंशतितमं नैषष्टकम् (२, १) ।

उद्देश्यश्चतुर्थ्यर्थः । तथाहि-सम्प्रदाने चतुर्थी । तच्च “कर्मणा य-
मभिप्रैति स सम्प्रदानम्” (पा०सू०१।४।३२) इति सूत्रात् कर्मणा-
करणभूतेन यमभिप्रैति-ईप्सति तत् कारकं सम्प्रदानमित्यर्थका-
दुद्देश्यम् ।

दर्पणः

चतुर्थ्यर्थं निरूपयति—उद्देश्य इति* । ननु उद्देश्यत्वं कामनाविषयत्वं, तच्च
‘विप्राय गां ददाति’ इत्यत्र क्रियाजन्यफलभागितया कामनाविषये गवादावतिप्रसक्त-
मतस्तद्व्यावृत्तम्, तत्सूत्रप्रामाण्येन दर्शयति—*तच्च कर्मणेत्यादि* । कर्मणेत्यन-
न्तरम्, सम्बन्धमिति शेषः । कर्म चाऽत्र पारिभाषिकम् । “कर्मणा यमभिप्रैति” (पा०
सू० १।४।३२) इति क्रियाव्याप्यमानस्य सम्प्रदानसञ्ज्ञाविधानात् । अत एव
तदकर्मकविषयम् ।

ननु ‘ग्रामं गच्छति’ इत्यत्र ग्रामरूपकर्मजन्यसुखादिफलभागितयोद्देश्ये कर्तव्यप्य-
तिप्रसङ्गोऽत आह—*करणभूतेनेति* । करणत्वं च सम्बन्धक्रियाऽपेक्षम् । क्रियाव्यव-
हितव्यापारवत् एव करणतया व्यापारे कर्मवृत्तित्वलाभेन तद्वृत्तित्वस्य धात्वर्थता-
वच्छेदकफल एव सम्भवात् । कर्मवृत्तितत्त्वजन्यत्वस्य ग्रामजन्यसुखे असत्त्वाच्चोक्ताति-
प्रसङ्ग इति भावः । यमित्यस्यानुपादाने योऽभिप्रैतीत्यर्थस्यापि लाभात् प्रथमान्त-
कर्तव्येतिप्रसङ्गः स्यादतस्तदुपात्तम् ।

यद्यपि ‘गौत्राह्वणस्य भवतु’ इतीच्छाविशेष्यतया गामेवाऽवगाहते; तथापि तस्य
सूत्रफलितार्थपरत्वाच्च दोषः । तथाच—कर्मजन्यतद्वृत्तिफलभागित्वप्रकारको यद्वि-

परीक्षा

ज्ञानादार्थाध्याहारः “स्पृहेरीप्सितः” सूत्रसत्वात्पदाध्याहारश्च क्लृप्तलक्ष्यानुरोधेन व्य-
वस्था काव्या । चतुर्थीवाच्यो य उद्देश्यः स एव दर्शयैस्तमाह—*तच्चेति* । *यमभि-
प्रैति*—यमभिसम्बन्धमिच्छति । एवं च क्रियाकर्मसम्बन्धजन्यफलवत्त्वेनेच्छावि-
विषयो यः स एवोद्देश्यपदेनोच्यते; नत्विच्छाविषयमात्रम् । इच्छाविषयत्वस्य कर्म-
ण्यपि सत्वात् । न च ‘यः पुरुषो ग्रामं गच्छति, तस्य ग्रामसम्बन्धजन्यं सुखं मे जाय-
ताम्’ इत्याकारोच्छावर्त्तत इति कर्तुरपि तादृशोद्देश्यत्वसत्त्वादतिव्याप्तिरिति वा-
च्यम् ? “कर्मणा” इति तृतीयोपादानेन कर्मणः करणत्वं लभ्यते, तत्र करणत्वमभि-
सम्बन्धक्रियां प्रति बोध्यम् । करणस्य च व्यापारत्वनिश्चयमादनुपस्थितस्य व्यापारस्य
कल्पनापेक्षया कर्मत्वप्रयोजकफलस्य व्यापारत्वकल्पनालाघवमिति “धात्वर्थफल-
द्वारं कर्मजन्यत्वं लभ्यते, यथा—‘विप्राय गां ददाति’ इत्यत्र दाधात्वर्थः स्वस्वध्वं-
सविशिष्टपरसत्त्वानुकूलो व्यापारस्तत्र फले स्वस्वध्वंसविशिष्टपरस्वत्वं तद्द्वारा
कर्मजन्यत्वं विप्रवृत्तिसुखस्य ‘ग्रामं गच्छति’ इत्यादौ तु न गम्यधात्वर्थस्य संयोगस्य
कर्तवृत्तिसुखं प्रति जनकत्वम्; अन्यथा सिद्धत्वात् । किन्तु ग्रामवासादेरित्यतिप्रसङ्गा-
भावात् । ‘विप्राय गां ददाति’ इत्यत्रोद्देश्यश्चतुर्थ्यर्थः । स्वस्वध्वंसविशिष्टेच्छा दाधा-
त्वर्थः, गोपदोत्तरद्वितीयार्थः—आश्रयस्तस्य स्वस्वध्वंसविशिष्टे स्वत्वेऽन्वयः, इच्छैव
व्यापारस्तस्मात् फलवैशिष्ट्यामनुकूलतासम्बन्धेनेति विप्रोद्देश्यिका गोवृत्तित्वस्व-
ध्वंसविशिष्टस्वत्वेच्छेति बोधः ।

यि । चितयन्तःपर्वणापर्वणावयाम् । जीवातारश्वायि ।
 प्रातरासाधयाधि । योग्यायि ॥ (२) शक्केमत्वासमिधः
 साधयाधियाः । त्वेदेवाहविरदन्याहुताम् । तुवमारश्
 दी । त्याः आवहृतान्द्युम् । स्यग्यायिसाख्या । औ
 होश्वाहायि । मा । रायिषारश्माश् । होवाश्वायि ।
 वयन्तारश्वाश् । ओश्वाश् । डा(३) ॥ १५ * ॥ ७

अथ द्वितीय-तृचे—

प्रथमा ।

प्रतिवाह्वरउदिते मित्रङ्गुणीषेवरुणम् ।

अर्थमणरिशादसम् ॥ १ † ॥

हे मित्रावरुणौ ! “मित्र” त्वां “वरुण” च “वां” युवां “रिशा-
 दसं” शत्रूणामत्तारम् “अर्थमणं” च “प्रति” प्रत्येकं “गुणीषे”

* ऊ० गा० १७ प्र० १ अ० १५ सू० ।

† ऊ० वे० ५, ५, ९, २ ।

उद्देश्यश्च
मभिप्रैति स
करणभूतेन
उद्देश्यम् ।

चतुर्थ्यर्थं नि
विप्राय गां ददा
मतस्तद्व्यावृत्तम
न्तरम्, सम्बन्ध
सू० १।४।३
तद्वर्त्मकविषय
ननु 'ग्रामं
तिप्रसङ्गोऽत उ
हितव्यापारवत्
वच्छेदकफल ए
प्रसङ्ग इति भ
कर्तृर्यतिप्रसङ्ग
यद्यपि 'य
सूत्रफलितार्थ

शीनादर्थोऽध्या
वस्था काय
प्रैतिः—यम्
विषयो यः
प्यपि सत्वा
ताम्' इत्या
च्यम् ? 'व
सम्बन्धकि
कल्पनापेक्ष
द्वारं कर्म
सविशिष्ट
कर्मजन्यत्
कर्तृवृत्ति
भावात् ।
त्वर्थः, गो
व्यापार
त्वं

स्तुवे । कदा ? इति, उच्यते—“सूरे” सूर्ये देवे “उद्दिते” सति
प्रातरित्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रायाहिरण्ययामतिरियमवृकायश्वसे ।

३ १ १ २ २ ३ १ २

इयं विप्रामेधसातये ॥ २ * ॥

“हिरण्यया” हित-रमणीयेन “राया” धनेन सहितया
“अवृकाय” अहिंस्याय “श्वसे” अस्माकं बलाय “इयम्” इदानीं
क्रियमाणा “मतिः” स्तुतिर्भवत्विति शेषः ॥ [हिरण्यया—इत्यत्र
सुपां सुलुगिति (७, १, ३८) तृतीयैकवचनस्य याजादेशः] किञ्च
हे “विप्राः” प्रजाः ! “इयम्” एव स्तुतिः “मेधसातये”
यज्ञ-लाभाय* च भवतु ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
तेस्यामदेववरुणतेमित्रसूरिभिःसह ।

२ ३ क २ २

इषं स्वधोमही ॥ ३ † ॥ ८

हे “देव वरुण !” “ते” वयं तव स्तोतारः “स्याम”
समृद्धा भवेम । न केवलं वयमेव यजमानाः किन्तु “सूरिभिः”

* ऋ० वे० ५, ५, ८, ३ ।

† ‘विप्राः—ऋत्विजाः, मेधसातये—मेधालाभार्थम्—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ५, ५, ८, ४ ।

स्तोत्रभिः ऋत्विग्भिः सह ; तथा हे “मित्र” देव ! “ते” वयं
“सूरिभिः” सह “स्याम” भवेम । किञ्च “इषम्” अन्नं “स्वध्व”
रुचकञ्च “धौमहि” धारयामहे* ॥ ३ ॥ ८

अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते—
प्रथमा ।

३ २७ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २ २
भिन्वि विश्वा अपदिषः परिबाधो जहीमृधः ।

१ २ ३ १ २ २ २
वसुस्यार्हन्तदाभर ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! त्वं “विश्वाः” सर्वाः “दिषः” देष्ट्रीः शत्रुसेनाः
“अप भिन्वि” विदारय । तथा “बाधः” हिंसकान् “मृधः”
सङ्ग्रामान् त्वं “परि जहि” परिभावय । हे सोम वासुकेन्द्र !
“स्यार्ह” स्मृहणीयं देष्ट्रीणां “वसु” धनं यदस्ति “तत्” “आभर” ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
यस्य ते विश्वमानुषा भूरेर्दत्तस्य वेदति ।

१ २ ३ १ २ २ २
वसुस्यार्हन्तदाभर ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! “ते” त्वां [विभक्ति-व्यत्ययः (३, १, ८५)] “दत्तस्य”
दत्तं “भूरि” बहु “यस्य” यत् धनम् [सर्वत्र कर्मणि षष्ठी वेदि-

* ‘स्वः—सर्गलोकात्, धौमहि—चिन्तयामः’—इति वि० ।

† ऋ० षा० २, १, ४, १० (१भा० ३२९ पृ०) = ऋ० वे० ६, ३, ४८, ४ ।

‡ ऋ० वे० ६, ३, ४८, ५ ।

उद्देश्यश्चः
मभिप्रैति स
करणभूतेन
उद्देश्यम् ।

चतुर्थ्यर्थं नि
विप्राय गां ददा
मतस्तद्व्यावृत्तम्
न्तरम्, सम्बन्ध
सू० १।४।३
तदकर्मकविषय
ननु 'ग्रामं
तिप्रसङ्गोऽत उ
हितव्यापारवत्
वच्छेदकफल ए
प्रसङ्ग इति भ
कर्तव्यतिप्रसङ्ग
यद्यपि ५
सूत्रफलितार्थ

शानादर्थान्वया
वस्था काष्ठ
प्रैति*—यम्
विषयो यः
ण्यपि सत्त्वा
ताम् इत्या
च्यम् ? “व
सम्बन्धकि
कल्पनापेक्ष
द्वाहं कर्म
सविशिष्ट
कर्मजन्यत्
कर्तृवृत्तिस्
भावात् ।
त्वर्थः, गो
व्यापारस्
ध्वंसि

तव्या] “विश्व” सर्वं तदनम् “आनुषक्”—इति आनुपूर्व्या*
सततं सर्वो मनुष्यो “वेदति” जानाति तत् “स्मार्हं” स्पृहणीयं
“वसु” “आभर” ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ २१ २
यद्दीडाविन्द्रयत्स्थिरेयत्पर्शानिपराभृतम् ।

१ २ २ १२ २२
वसुस्मार्हं नदाभर ॥ ३ १ ॥ ८

हे “इन्द्र !” त्वया च “वीडौ” दृढे परैः कम्पयितुमशक्ये
“यत्” धनं “पराभृतं” विन्यस्तं, “यत्” च “स्थिरे” स्वयमचले
पराभृतं, “यत्” च “विपर्शाने” विमर्शन-क्षमे पराभृतं, तत्
“स्मार्हं” स्पृहणीयं “वसु” “आभर” आहर ॥ ३ ॥ ८

अथ तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम्—

तत्र, प्रथमा ।

३ २ २ २४ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २
यज्ञस्य हि स्थित्यविजासस्त्रीवाजेषुकर्मसु ।

१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नीतस्य बोधतम् ॥ १ ३ ॥

* “आनुषमिति नामानुपूर्वस्यानुषक्तं भवति, स्तृणन्ति बर्हिषा अनुषमिष्यन्ति
निगमो भवति”—इति निरु० नै० ६, १४ ।

† ऋ० ऋ० ३, १, २, ४ (१ भा० ४४० पृ०) = ऋ० वे० ६, २, ४९, ६ ।

‡ ऋ० वे० ६, २, १०, ११ ।

हे “इन्द्राग्नी !” युवां “यज्ञस्य” ज्योतिष्टोमादेः “ऋत्विजा
स्थः” ऋत्विजौः ऋतौ काले काले यष्ट्यौ भवथः । अतो
“वाजेषु” सङ्ग्रामेषु कर्मसु यज्ञात्मकेषु च “सस्त्री” संस्नातौ
शुद्धौ सन्तौ* “तस्य” तं मां हे इन्द्राग्नी ! बोधतम् अथवा तस्य
मम† स्तुतिं जानीतम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तोशासारथयावानावृत्रहणापराजिता ।

१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नीतस्यबोधतम् ॥ २ § ॥

हे “इन्द्राग्नी !” “तोशासा”‡ शत्रून् हिसन्तौ, “रथयावा
ना” रथेन गच्छन्तौ, “वृत्रहणा” वृत्रस्य हन्तारौ “अपराजिता”
केनाप्यपराजितौ “तस्य” तं मां “बोधतम्” ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
इदं वाम्नादिरन्मध्वधुस्नाद्रिभिर्नरः ।

१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नीतस्यबोधतम् ॥ ३ § ॥ १०

* ‘सस्त्री—साधन-सभावाः’—इति वि० ।

† ‘तस्य—यजमानस्य’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ३, २०, २ ।

§ ‘तोशासा—दीप्ति-सम्पन्नौ’—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ६, ३, २०, २ ।

उद्देश्यश्च
मभिप्रैति स
करणभूतेन
दुद्देश्यम् ।

चतुर्थर्थं नि
‘विप्राय गां दद
मतस्तद्व्यावृत्त
न्तरम्, सम्बन्ध
सू० १।४।३
तदकर्मकविषय
ननु ‘ग्रामं
तिप्रसङ्गोऽत उ
हितव्यापारवत्
वच्छेदकफल ए
प्रसङ्ग इति भ
कर्त्तर्येतिप्रसङ्ग
यद्यपि ‘ग
सूत्रफलितार्थ

शनादर्थार्थ्या
वत्स्या कायश्च
प्रैति*—यम
विषयो यः
ण्यपि सत्त्वा
ताम् इत्या
च्यम् ? ‘व
सम्बन्धकि
कल्पनापेक्ष
द्वारं कर्म
सविशिष्टप
कर्मजन्यत्
कर्त्तृवृत्तिसु
भावात् ।
त्वर्थः, गो
व्यापारसु
ध्वंसवि

हे “इन्द्राग्नी !” “वां” युवाम् उद्दिश्य “नरः” यज्ञस्य
नेतारः “अद्रिभिः” ग्रावभिः “मदिर” मदकरं “मधु” सोमा-
त्मकम् अमृतम् “अक्षन्” अपूरयन् । सिद्धमन्यत् ॥ ३ ॥ १०
इति सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य सप्तमस्याध्यायस्य
तृतीयः खण्डः* ॥ ३ ॥

अथेन्द्रायेन्दोमरुत्वतइति-चतुर्थखण्डे ॥—
तृचात्मके प्रथम-सूक्तेः प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इन्द्रायेन्दोमरुत्वतेपवस्वमधुमत्तमः ।
३ १ २ १ २ ३ १ २
अकस्योनिमासदम् ॥ १ ॥

हे “इन्दो” सोम ! “मधुमत्तमः” अतिशयेन मधुमान् त्वम्
“अकस्य” अर्चनीयस्य यज्ञस्य “योनिम्” स्थानम् “आसदम्”
उपवेष्टुम् “मरुत्वते इन्द्राय” इन्द्रार्थम् “पवस्व” चर ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २
तन्वाविप्रावचोविदःपरिष्कृएवन्तिधर्णसिम् ।
१ २ ३ १ २
सन्वामृजन्त्यायवः ॥ २ ॥

* ‘उक्तं प्रातःसवनम्’—इति वि० ।

† ‘इदानीं माध्यन्दिनं सवनमुच्यते’—इति वि० ।

‡ ‘इषोष्टधीय-प्रभृतीनि सामानि, तेषां प्रकृतावार्षेयमुक्तम्’—इति वि० ।

॥ क० आ० ५, २, ४, ६ (२भा० १६ पृ०) = ऋ० वे० ७, १, ४०, २ ।

§ ऋ० वे० ७, १, ४०, ३ ।

हे सोम ! “तं” पवमानं “त्वा” त्वाम् “धर्णसि” धर्तारं
“विप्राः” प्राज्ञाः “वचोविदः” स्तोतारः* “परिष्कृण्वन्ति”
अलङ्कुर्वन्ति† । अपि च “त्वा” त्वाम् “आयवः” मनुष्याः‡
“सम्भृजन्ति” सम्यक् शोधयन्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

११ ३१ ३३१ २२३११
रसन्तेमित्रोऽर्थापिवन्तुवरुणःकवे ।

१२ ३१ २
पवमानस्यमरुतः ॥ ३ ॥ ११

हे “कवे” क्रान्तकर्मन् सोम ! “पवमानस्य” क्षरतः “ते”
तव रसं§ “मित्रः” “अर्थापि” च “वरुणः” च “मरुतः” च
एते सर्वे देवाः “पिबन्तु” ॥ ३ ॥ ११

१ २ २ १
॥ इषोवृधोयम् ॥ इन्द्रायेन्दाउ । मरुत्वतायि ।

२ १ १ २ १ २
पवस्वामा २ । धुमन्तमाः । अर्कस्थायो २ । निमा ।

१ ३ ५२ २ २ २ १
स्यारदार३४औहोवा ॥ (१) तन्त्वाविप्राः । वचोविदाः ।

* विप्रा वचोविदः—मेधाविनः ऋत्विजः—इति वि० ।

† परिष्कृण्वन्ति—परिचरन्ति—इति वि० ।

‡ “आयवः”—इति मनुष्य-नामास्तु सप्तदशं नैघण्टुकम् (२, २) ।

§ ऋ० वे० ७, १, ४०, ४ ।

‘रसं वीर्यम्’—इति वि० ।

उद्देश्यश्च
मभिप्रैति स
करणभूतेन
दुद्देश्यम् ।

चतुर्थ्यर्थे वि
विप्राय गां दव
मतस्तद्वावृत्त
न्तरम्, सम्बन्ध
सू० १।४।।
तद्वर्त्मकविषय
ननु 'ग्रामं
तिप्रसङ्गोऽत
हितव्यापारव
वच्छेदकफल
प्रसङ्ग इति
कर्त्तर्येतिप्रसङ्ग
यद्यपि
सूत्रफलिता

शानादर्थोऽप्य
वस्था काश्च
प्रेतिः—य
विषयो यः
ण्यपि सत्त्व
ताम् इत्य
च्यम् ?
सम्बन्धत्रि
कल्पनापेक्ष
द्वारं कर्म
सविशिष्ट
कर्मजन्यत्
कर्त्तृवृत्ति
भावात् ।
त्वर्थः, गं
व्यापारस
ध्वंसवि

परिष्का^२र्णा^१ २ । ति^२धर्ण^१सायि^२म् । सन्त्वा^२मा^२ज्जी^१ २ । ति

आ । या^२र^३वा^३र^३ ३४ औ^५हो^५वा ॥ (२) र^१सन्ते^१मा^१यि । चो

अ^१र्य^२मा । पि^२ब^१न्त^१वा^१ २ । रु^१णः^१क^१वा^१यि । प^२व^१मा^१ना^१ २ ।

स्य^१म । ह^१र^२ता^२ २३४ औ^५हो^५वा । इ^१षो^१वृ^२धे^२ १ (३) ॥ १८ * ॥ [१]

॥ गायत्रीक्री^२च्च^२म् ॥ इन्द्रा^२ये^२न्दा^२ १ औ^५हो । मा^२ ३ रु

त्वा^३ ३४ ता^५यि । पा^१व^१स्वा^१मा । धू^३म् । ता^३ २ ३४ मा^५ ।

मा^१ । प^१व^१स्व^१म^१धु^१मा^१ ३२ । ता^५ २ ३४ मा^५ । अ^१र्क^१स्य^१यो^१ना^१ २

इ^४यि^५म । अ । वा^१हा^१यि । सा^१ २ ३४ दा^५म् । ए^५हि^५या^५ ६

हा ॥ (१) त^५न्त्वा^२वि^२प्रा^२ १ औ^५हो । वा^३ ३ । चो^३ । वो^३ २ ३४ दा^५ ।

पा^१रि^१ष्का^१र्णा^१ । ता^१ ३ यि^१धा । णा^१ २ ३४ सा^१यि^१म् । परि^१ष्कृ

ए^५व^३न्ति^३धा^३ ३२ । णा^१ २ ३४ सा^१यि^१म् । स^१न्त्वा^१मृ^१ज^१न्ता^१ २ ३ यि ।

अ । वा^१हा^१यि । या^१ २ ३४ वा^१ । ए^५हि^५या^५ ६ हा ॥ (२) र^२स

नोमा^२श्चौ^२हो । चो^२श्चर्या^२श्च^२४मा । पायिवन्तु^२वा । रु^२रणः^२ ।
 का^२श्च^२४वायि । पि^२वन्तु^२वरुणा^२श्च^२२ः । का^२श्च^२४वायि । पव^२
 मान^२स्यार^२३ । म । बा^२हायि । रु^२श्च^२४ताः । ए^२द्वि^२या^२६
 हा । चो^२पु^२ई । डा^२(३) ॥ २० * ॥ [२]

॥ वाजदावदावयम् ॥ इन्द्रा^२ये^२न्दा^२उ । म^२रु^२त्वा^२श्च^२३
 ४तायि । पवार^२स्वा^२श्च^२४मा । धु^२म^२त्ता^२र^२माः । आ^२श्च^२३र्का ।
 स्या^२र^२यो । नि^२मो^२श्च^२४वा । सा^२प्र^२दो^२द्वा^२यि ॥ (१) त^२ग^२त्वा
 वि^२प्राः । व^२चो^२श्च^२वी^२श्च^२४दाः । परा^२र^२यि^२ष्का^२ २ ३ ४ ए^२र्वा ।
 ति^२ध^२र्णार^२सायि^२म् । सार^२इ^२न्त्वा । मार^२र्जा । ति^२यो^२श्च^२४
 वा । या^२प्र^२वो^२द्वा^२यि ॥ (२) र^२स^२न्तो^२मायि । चो^२आ^२श्च^२र्या
 २ ३ ४ मा । पि^२वार^२न्तू^२श्च^२४वा । रु^२णः^२का^२र^२वायि । पा^२श्च^२३वा ।
 मार^२ना । स्य^२मो^२श्च^२४वा । रु^२प्र^२तो^२द्वा^२यि(३) ॥ २१ * ॥ [३]

० क० गा० ३ प्र० १ अ० १० सा० ।

† क० गा० ३ प्र० १ अ० २१ सा० ।

उद्देश्यश्च
मभिप्रैति स
करणभूतेन
दुद्देश्यम् ।

चतुर्थ्यर्थं
विप्राय गां द
मतस्तद्व्यावृत्त
न्तरम्, सम्ब
सू० १।४।
तदकर्मकविष
न्तु 'ग्रा
तिप्रसङ्गोऽस्त
हितव्यापारः
वच्छेदकफल
प्रसङ्ग इति
कर्त्तव्येतिप्रस
यद्यपि
सूत्रफलिता

शानादर्थोऽ
वस्था का
प्रेति—र
विषयो य
ण्यपि सत्
ताम् इत्
च्यम् ?
सम्बन्धा
कल्पना
द्वारं क
सविशिष्ट
कर्मजन्य
कर्त्तृवृत्ति
भावात्
त्वर्थः,
व्यापार
ध्वंस

१ ३२ ४ ५ २ २
॥ आश्वसूक्तम् ॥ आश्वोहोवाहायि । इन्द्रायेन्दा

२ १ २ २२ ३२ २ २ १ ३
उ । मरु । त्वते । ऐहीयेही१ । पावस्वमधुमात्तमः ।

२ २ २ २ १ १२
ऐहीयैही१ । आ२यि । आर्का२स्यायो२ । निमा ।

२ ५ २ २ १ ३ ४ ५ २
सारदार२३४औहोवा ॥ (१) आश्वोहोवाहायि । तन्वा

२ १ २ २ २ २ २
विप्राः । वचो । विदः । ऐहीयैही१ । पारिष्कृण्वन्ति

१ २ २ २ १ १
धार्षसिम् । ऐहीयैही१ । आ२यि । सान्त्वा२मार्जा

१ २ ३ ५ २ २ ३ ४
२ । तिआ । यारवार२३४औहोवा ॥ (२) आश्वोहोवा

५ २ १ २ १ २ २ २ २ २ २
हायि । रसन्तेमायि । ओआ । र्यमा । ऐहीयही१ ।

१ २ १ २ २ २ २ २ २
पायिवन्तुवरुणाःकवे । ऐहीयैही१ । आ२यि । पावा

१ १ ३ ५ २ २ २ १ २ २
२माना२ । स्यम । रु२तार२३४औहोवा । शुक्रआज्ज

२ १ १ १ १
ता२३४पुः(३) ॥ ४ * ॥ [४]

५ २ २ ४ २ ५ २ १
॥ आमहीयम् ॥ इन्द्राया२यिन्दोमरुत्वतायि । पवा

^३स्वा१मा२र । ^१धुमा२त्तमाः । ^१अ१र्क२स्ययो । ^१निमा२र३स
^१दाउ । ^{३२२१११}वा३ । स्तौषि३४५(१) ॥ ४ * ॥ [५]

॥ दार्ढ्युतम् ॥ ^{२१}इन्द्रा । ^{२२}इहा । ^१येन्द्रोमरु२त्वता
^{२१}यि । ^{२१}इहा । ^१पवा । ^१इहा । ^१स्वमधुमा२त्तमाः । ^१इ
^{२१}हा । ^{२१}अर्का । ^२इहा । ^१स्ययोनिमा२रसदाम् । ^२इहा१ ॥ (१)
^{२१}तन्त्वा । ^२इहा । ^१विप्रावचो२रविदाः । ^{२१}इहा । ^{२१}परायि ।
^१इहा । ^१कृण्वन्तिधा२रणीसायिम् । ^{२१}इहा । ^{२१}सन्त्वा । ^१इ
^१हा । ^१मृजन्तिआ२रयवाः । ^{२१}इहा१ ॥ (२) ^{२१}रसाम् । ^१इ
^२हा । ^२तेमित्रोआ२र्यमा । ^{३१}इहा । ^{३१}पिवा । ^२इहा । ^२तु
^१वरुणा२ःकवायि । ^{२१}इहा । ^{२१}पवा । ^२इहा । ^२मानस्यमा
^१रुताः । ^१इहा१(३) ॥ १३ † ॥ [६]

उद्देश्यः
मभिप्रैति ह
करणभूतेन
दुद्देश्यम् ।

चतुर्थ्यर्थः
विप्राय गां
मतस्तद्वावृ
न्तरम्, सम्
सू० १।४।
तदकर्मकवि
ननु 'प्र'
तिप्रसङ्गोऽ
हितव्यापा
वच्छेदकफ
प्रसङ्ग इति
कर्त्तव्येतिप्र
यद्यपि
सूत्रफलित

शनादर्थः
वस्था का
प्रैति*—
विषयो ह
ण्यपि स
ताम् इ
च्यम् ?
सम्बन्ध
कल्पनां
द्वारं क
सविशि
कर्मजन्
कर्त्तृवृत्ति
भावान
त्वर्थः,
व्यापा
ध्वंसति

२ २ २ २ २ १ ०
॥ वारवन्तीयोत्तरम् ॥ इन्द्रायेन्दाऔहोहायि । मा

१ ३ ५ २ १ ५ २ १ २
रुत्वा२३४तायि । पवास्वा२३४हायि । मधुमन्ता ३४ ।

३ ४ ४ ५ १ ३ ५ २ ३ ५ २ १ २
आहोवा । इह्वा२३४हायि । उज्ज्वा२३४माः । अकस्य ।

१ ७ २ ३ ४ ४ ५ १ २ ५ ३ २ २
योनिमासा३४ । औहोवा । इह्वा२३४हायि । औहो

५ २ ५ २ २ २ १
३१३३४ । दाम् । एहियाईहा ॥ (१) तन्त्वाविप्राऔहो

२ ३ ५ २ १ ५ १
हायि । वाचोवौ२३४दाः । परायिष्का२३४हा । एवन्ति

३ ३ ४ ४ ५ १ ३ ५ २ ३ ५
धर्णा३४ । औहोवा । इह्वा२३४हायि । उज्ज्वा२३४सीम् ।

२ १ २ १ ७ २ ३ ४ ४ ५ १ ३
सन्त्वाम् । जान्तिआया३४ । औहोवा । इह्वा २ ३ ४

५ ३ २ ५ ५ २
हायि । औहो३१२३४ । वाः । एहियाईहा ॥ (२) रसं

२ २ २ १ २ ३ ५ २ १
न्ते मा । औहोहायि । ओअर्या२३४मा । पिवातू२३

५ १ २ ३ ४ ४ ५ १ ३ ५
४हायि । वरुणःका३४ । औहोवा । इह्वा२३४हायि ।

२ ३ ५ २ १ १ २ १ ७ २ ३ ४ ४ ५
उज्ज्वा२३४वायि । पवमा । नास्य मह३४ । औहोवा ।

^{१ ३} इहार्^५३४हायि । ^{३ २} औहो^{५ २}३१२३४ । ताः । ^{५ २} एहियाईहा ।

^४ हौ^४५ई । डा(३) ॥ १६ * ॥ [७]

^{१ २ २ १ २ २ १ २} ॥ इहवद्वामदेव्यम् ॥ तन्वाविप्रावचोविदः । ^१ इहा ।

^{१ २} परिष्कृ^{१ २}ण्वन्ति^{१ २}धर्णासारग्रिम् । इहा । सन्त्वामृजन्तार

^{१ २} यि । इहा३ । ^{१ ५ ५} यार३४वोइहायि(२) ॥ १८ * ॥ [८]

^{२ २ १ २} ॥ मार्गीयवाद्यम् ॥ ^१ रसौहोवा । ^{३ २} तेमारयि । चो

^{२ ३} अर्यार३४मा । ^५ पिबन्तुव । ^{१ १} रुणाःकाश्वा^{१ २}रयि । ^{१ २} पव ।

^२ औ^२३होयि । ^५ मार३४ना । ^{१ १ ३} स्यारमार३४^{५ २}औहोवा । ^२ ए३ ।

^{१ १ १ १ १} रुता२३४५ः(३) ॥ २० * ॥ [९] ११

* ऊ० गा० २२प्र० २ख० १६सा० ।

† ऊ० गा० २२प्र० १ख० १८सा० ।

‡ ऊ० गा० २२प्र० १ख० २०सा० ।

मृज्यमानेति-प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम्*—

तत्र प्रथमा ।

३ १ २

३ १ २ २ २

मृज्यमानः सुहस्त्यासमुद्रे वाचमिन्वसि ।

३ २ ३ १ २

३ १ २ २ २

२ २ १ २

३ २ २ २

रयिमिशङ्गम्वज्जलम्पुरुस्पृहम्पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥

हे “सुहस्त्या” [हस्ते भवा हस्त्या अङ्गुलयः] शोभनाङ्गुलिक सोम ! “मृज्यमानः” शोध्यमानः त्वं “समुद्रे” अन्तरिक्षे कलशे वा “वाचं” शब्दम् “इन्वसि” प्रेरयसि । किञ्च हे “पवमान” पूयमान सोम ! “मिशङ्ग” हिरण्यैः मिशङ्गवर्णं “वज्जलं” प्रभूतं “पुरुस्पृहं” बहुभिः स्पृहणीयं “रयि” धनम् “अभ्यर्षसि” स्तोतृणामभि चरसि प्रयच्छसि ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ ३

३ १ २

३ २ ३ १ २

३ १ २

पुनानोवारेपवमानोअव्ययेवृषोअचिक्रददने ।

३ १ २

३ १ २

२ २

३ १

देवानां सोमपवमाननिष्कृतङ्गोभिरञ्जानो

अर्षसि ॥ २ ॥ १२

* ‘बृहती, अक्षिणोरन्ध्र-प्रभृतोनि ब्राह्मणोक्तानि’—इति वि० ।

† ऋ० आ० ६, १, ५, ७ (२ भा० ३८७ पु०) = ऋ० वे० ७, ५, १६, १ ।

‡ ऋ० वे० ७, ५, १६, २ ।

उद्देश्य
मभिप्रैति
करणभूतेन
उद्देश्यम्

चतुर्थ्यं
विप्राय गां
मतस्तद्व्याप
न्तरम्, स
सू० १ । ४
तदकर्मकवि
ननु “
तिप्रसङ्गोऽ
हितव्यापा
वच्छेदकफ
प्रसङ्ग इति
कर्त्तव्येतिप्र
यद्यपि
सूत्रफलित

शानादर्थो
वस्था क
प्रैतिः—
विषयो
प्यपि स
ताम् इ
च्यम् ?
सम्बन्ध
कल्पना
द्वारं व
सविशि
कर्मजन
कर्त्तृवृत्ति
भावात्
त्वर्थः,
व्यापा
ध्वंस

“अयं” सीमः “वृषः” वृषभसदृशः* सन् “पुनानः” अभिषूय-
माणः सर्वं शोधयतु “अव्यये” अविमये “वारे” वाले पवित्रे
“पवमानः” पूजमानः सन् “वने” वननीये “उदके” काष्ठे
कलशे वा† “अचिन्तदत्” शब्दमकरोत् । [अथ प्रत्यक्षवादः]
हे “सीम ! पवमान !” त्वं “गोभिः” गव्यैः क्षीरादिभिः‡
“अज्ञानः” अज्ञानमानः॥ सन् “निष्कृतं” संस्कृतं§ देवानां
स्थानम् “अर्षसि” गच्छसि ॥ २ ॥ १२

॥ औत्तोरन्ध्रम् ॥ मृज्यमानाः । सुहस्तियाः । सा
मूद्रायिवा । चमिन्वसायि । रायीरुपायिशा । गम्ब
जलाश्म । पूरुरस्पृरुहाम् । पवमा । ना । औ
हो । भियोरुहवा । पापसोह्वायि ॥ (१) पवमाना ।
भियर्षसायि । पावाश्माना । भियर्षसायि । पूनाः

* ‘वृषा उ इति पदपुराणः’—इति वि० समस्तस्यैष छेदः पदकारस्य तथाहि—

१२२ ३
“वृषा । उ”—इति ।

† ‘वने—काष्ठमये द्रोणकलशे अथवा वने उदके महीकृते’—इति ।

‡ ‘गोभिः—उदकैः अथवा गो-सम्भूतैः क्षीरैः’—इति वि० ।

॥ ‘अज्ञानः—सिद्धीयमाणः’—इति वि० ।

§ ‘निष्कृतं स्थानम्’—इति वि० ।

उद्देश
मभिप्रैति
करणभूते
दुद्देश्यम्

चतुष्टयं
विप्राय ग
मतस्तद्वय
न्तरम्, स
सू० १ ।
तदकर्मका
ननु
तिप्रसङ्गो
हितव्याप
वच्छेदक
प्रसङ्ग इति
कर्त्तर्येति
यद्या
सूत्रफलं
श्रीनादयं
वस्थाय व
प्रैतिः—
विषयो
प्यपि स
ताम् इ
च्यम् ?
सम्बन्ध
कल्पना
द्वारं इ
सविशि
कर्मजन
कर्त्तृत्वा
भावात्
त्वर्थः,
व्यापा
ध्वंसा

४ ५ २२ १२ १ ५ १२ ९
नोवा । रेपवमा३ । नोआरव्यार३४यायि । वृषोअ ।

१ २ २ ५ ४ ५
चा । औ३हो । क्रदोर३४वा । वा५नो६हायि ॥ (२)

२२ १ २ ४ ५ २
वृषोअचायि । क्रददना३यि । वार्षी३आचायि । क्रद

१ २ ४ ५ २ १
दना३यि । दायिवा३ना५सो । मपवमा३ । नना३यि

१ ५ १२ २ १ २ २ १
ष्का२३४र्त्ताम् । गोभिर । जा । औ३हो । नओ२३

५ ४ ५
४वा । पा५सो६हायि(३) ॥ १ * ॥ [१]

२ १ २ २ २ २
॥ स्वारैड्मौक्षोरन्ध्रम् ॥ मृज्यमानः सुहृत्स्या । समु

१ २ १ २ १ ७ २ २ २
द्रेवोवा । चामिन्वसि । रायिन्पिशा ३ । हा ३ हा ।

१ २ २ २ १ २ २ २ १
गम्बज्जलम्पुरुष्यहम् । पवमाना३ । हा३हा । भियर्षा

१ २ २ २ १ २ २ १ २
२३३यि ॥ (१) पवमानाभियर्षसि । पवमानोवा । भाय

१ २ २ २ २ २ २ २ २ १ २
र्षसि । पूनानोवा ३ । हा ३ हा । रेपवमानोअव्यये ।

१ २ २ २ १ ५
वार्षीअचा३यि । हा३हायि । क्रदद्वार३ना३४३यि ॥ (२)

^{१ २ २} वृषोअचिक्रददने । ^{१ २} वृषोअचोवा । ^{१ २ २} क्राददने । ^१ दायि
^{२ २} वानासोऽ । ^{२ २} द्वाऽहा । ^{१ २ २} मपवमाननिष्कृतम् । ^१ गोभा
^२ यिरञ्जाऽ । ^२ द्वाऽहा । ^{२ ५} नोअर्षाऽऽसाऽऽयि । ^२ ओऽऽ
४५ई । डा(३) ॥ २ * ॥ [२]

^{२ १ २ २} ॥ वाजजित् ॥ ^१ मृज्यमानःसुहा । ^१ स्त्रियार । समू
^१ र्हो । ^२ द्रेवार्हो । ^{२ २} चामिन्वसायि । ^१ रयारयिर्हो
^१ यि । ^{२ १} पिशार्हो । ^{२ २} गम्बज्जलाम् । ^{२ २} पूरुस्पृहाम् । ^१ पवा
^१ र्हो । ^२ मानार्हो । ^{२ २} भीयर्षसाऽऽउवारऽ ॥ (१) ^{१ २ २} पवमा
^{२ १} नामिया । ^१ षसारयि । ^१ पवार्हो । ^२ मानार्हो । ^{२ २} भौ
^१ यर्षसायि । ^१ पुनार्हो । ^२ नोवार्हो । ^{२ २} रेपवमा । ^{२ २} नो
^१ अव्ययायि । ^१ वृषोर्होयि । ^१ अचारयिर्होयि । ^{२ २} क्राद
^२ द्वाऽऽउवारऽ ॥ (२) ^{१ २ २} वृषोअचिक्रदात् । ^१ वनारयि ।

* ज० गा० ३प्र० १च० २सा० ।

† “बार्हद्वाजजिदोत्तपोरन्ध्रम्” — इति ख० पु० पाठः ।

(६)

उद्दे
मभिप्रैति
करणभू
दुद्देश्यम्

चतु
विप्राय
मतस्तद्व
न्तरम्,
सू० १।
तदकर्मक
ननु
तिप्रसङ्गे
हितव्या
वच्छेदक
प्रसङ्ग इ
कर्त्तव्येति
यद्य
सूत्रफलि

शानादथ
वस्थ्या
प्रेति*
विषयो
प्यपि
ताम्
च्यम्
सम्बन्
कल्पन
द्वारं
सविदि
कर्मज
कर्त्तृत्वा
भावा
त्वर्थः
व्याप
ध्वंस

^१वृषो^१र^१होयि । अचा^१र^१यिहोयि । ^{१२१}क्राद^२दनायि । देवा
^१र^२हो । ना^१सो^१र^१हो । मपवमा । नानिष्कृताम् । गो
^१भा^१र^१यिर्होयि । अज्जा^१र^१हो । नो^{१२१}अ^२र्षसा^२१उवा^२र^२३ ।

^{१२१२}वा^२जौजि^२गी^२श्वा^२१(३) ॥ ३ * ॥ [३]

॥ वरुणसाम ॥ ^१मु^२ज्यमानः^१सु^१हृ^१स्योवा । ओवा । सा
^{२२२}मु^१द्रेवा । चमायिन्वा^१सी^२र । रा^१र^१श्यीम् । पा^१र^१श्यि
^१शा । गम्ब^१ज्जलम् । पु^२हृ^१र^१श्वायि । स्पृ^१हा^१श्मा । पव
^{२२२}मा^१नाभि^१यर्षसि । पा^१र^१श्वा । मा^१नाभि^१यौ^१३ । हो^१३हो^१२३
^४४ । वा । षा^४पु^४सो^४द्वायि ॥ (१) पवमानाभि^१यर्षसो^१वा ।
^१ओवा । पा^१वमाना । भि^१या^१र्षा^१सा^१रयि । पू^१र^१श्ना ।
^१नो^१र^१श्वा । रे^१पवमा । नो^१आ^१र^१श्वायि । व्य^१या^१श्वा ।
^{१२}वृ^१षो^१अ^१चि^१क्र^१द^१दने । वा^१र^१र्षो । आ^१चि^१क्र^१दौ^१३ । हो^१३१२३

* क० गा० ३प्र० १अ० ३सा० ।

४। वा। वा॒पुनोई॒हायि ॥(२) वृ॒षोअ॒चि॒क्रद॒द्वनो॒वा।

ओ॒वा। वा॒र्षोअ॒चि। क्र॒दा॒द्वा॒शना॒रयि। दा॒र॒यि॒वा।

ना॒र॒इ॒सी। म॒प॒व॒मा। न॒जा॒र॒इ॒हायि। कृ॒ता॒इ॒मा।

गो॒भि॒र॒ज्जानो॒अर्ष॑सि। गो॒र॒इ॒भायिः। आ॒ज्जान॒ओ॒इ।

हो॒इ॒हो॒र॒इ॒४। वा। पा॒पु॒सोई॒हायि(३) ॥ ४ * ॥ [४]

॥ अ॒ङ्गि॒र॒सा॒ङ्गोष्ठ॑म् ॥ हा॒उ॒हा॒उ॒हा॒उ॒वा। मृ॒ज्य॒मा

नः॒सु॒ह॒स्था। इ॒हा। उ॒पा॒र॒इ॒४५। स॒मु॒द्रे॒वा॒च॒मि॒न्

सि। इ॒हा। उ॒पा॒र॒इ॒४५। र॒यि॒म्पि॒शङ्ग॒म्व॒ज्जलं॑पु॒रु॒स्यु

ह॒म्। इ॒हा। उ॒पा॒र॒इ॒४५। प॒व॒मा॒ना॒भि॒य॒र्ष॑सि। इ॒

हा। उ॒पा॒र॒इ॒४५ ॥(१) प॒व॒मा॒ना॒भि॒य॒र्ष॑सि। इ॒हा। उ॒

पा॒र॒इ॒४५। प॒व॒मा॒ना॒भि॒य॒र्ष॑सि। इ॒हा। उ॒पा॒र॒इ॒४५।

पु॒ना॒नो॒वा॒रि॑प॒व॒मा॒नो॒अ॒व्य॑ये। इ॒हा। उ॒पा॒र॒इ॒४५। वृ॒षो

उद्दे
मभिप्रैति
करणभू
दुद्देक्ष्य

चतुः
विप्राय
मतस्तद्व
न्तरम्,
सू० १ ।
तदकर्मव
ननु
तिप्रसङ्ग
हितव्या
वच्छेदक
प्रसङ्ग इ
कर्त्तव्येति
यह
सूत्रफलि

शानाद
वस्था
प्रेतिः
विषयो
ण्यपि
ताम्
च्यम्
सम्बन्
कल्पन
द्वारं
सविदि
कर्मज
कर्त्तव्य
भावा
त्वर्थः
व्याप
ध्वंस

^२ ^{१२२} ^१ ^{४११११} ^{१२२} ^१
अचिक्रददने । इहा । उपार३४५ ॥ (२) वृषोअचिक्रद

^{२२} ^१ ^{३११११} ^{१२२} ^{१२२} ^१
दने । इहा । उपार३४५ । वृषोअचिक्रददने । इहा ।

^{३११११} ^{२२२२२} ^{२२} ^२ ^१
उपार३४५ । देवाजासोमपवमाननिष्कृतम् । इहा ।

^{३११११} ^{२३} ^५ ^५ ^{१२} ^{२२} ^{२२} ^२
उपार३४५ । हाउहाउहाउवा । गोभिरञ्जानोअर्षसि ।

^१ ^{३११११}
इहा । उपार३४५ (३) ॥ ५ * ॥ [५]

^{११२२} ^{१२१} ^२ ^२
॥ सम्मतम् ॥ मृज्यमानःसुहस्तिया । समुद्रेवाऽच

^१ ^२ ^१ ^१ ^{२१}
मिन्वसायि । रयिम्पार३यिशा । गाम्बजलम् । पुहस्प

^२ ^{३३१} ^{२२२} ^१ ^२ ^१
हाम । औहो३४वाहायि । प । वामार३ना ३ । हो

^२ ^२ ^१ ^२ ^{११२२२} ^१ ^{२१}
वारहा । भियर्षा२३सा३४यि ॥ (१) पवमानाभियर्षसा

^२ ^२ ^{१२२} ^{२१} ^२ ^{२२}
यि । पुनानोर३वा । रेपवमा । नोआव्याया । औ

^{२४३२२} ^१ ^२ ^{१२} ^२
हो३वाहायि । वृ । षोआ२३चा३यि । होवा३हायि ।

^१ ^२ ^{१२२} ^{१२१} ^२
क्रदद्वा२३ना३४यि ॥ (२) वृषोअचिक्रददनायि । वृषो

* ऊ० गा० ३प्र० २अ० ५सा० ।

अचायिक्रद्वनायि । देवाना^{२१}र^{२२}सो । मापवमा । न
नायिष्कार्त्ताम् । औहो^१र^३वा^{३२}हायि । गो । भायिरा^{१२}
र^२ञ्जा^१र । होवा^१र^२हा । नोअषार^{२१}र^२सा^२र^१यि । ओ
र^२र^१४५ई । डा(३) ॥ ५ * ॥ [६]

॥ त्रिणिधनमायास्यम् ॥ मृज्यमानः सुहाहाउहोवा ।
स्तायासार^१र^२४५मू । द्रोवा^१र । चमा^{३२}र^३४५यि । न्वार^३र^३४
सी । रया^{१२}र^३४ । औहोवा । पिशङ्गम्बङ्गलार^१म् । पुरु
र^३४५ । स्प^३र^५र^{१२}४हाम् । पवा^{३२}र^५४ । औहोवा । मानार^१ ।
भिया^{३२}र^५४५ । पार^५र^{१२}४सी ॥ (१) पवमानाभियाहाउहोवा ।
षासायिपार^{१२}र^३४वा । मानार^१ । भिया^३र^५४५ । पार^३र^५४सी ।
पुना^{१२}र^३४ । औहोवा । नोवार^{१२}र^५पवमार^१ । नोआ^{३२}र^५४५ ।
व्यार^३र^५४ये । वृषो^{१२}र^३४ । औहोवा । आचार^१यि । क्रदा

उद्दे
मभिप्रैति
करणभू
दुद्देइयः

चतुश्च
विप्रायः
मतस्तद्वः
न्तरम्,
सू० १ ।
तदकर्मक
ननु
तिप्रसङ्ग
हितव्या
वच्छेदक
प्रसङ्ग इ
कर्तव्येति
यच्च
सूत्रफलि

शनादः
वस्था
प्रेति-
विषयो
ण्यपि
ताम्
च्यम्
सम्बन्ध
कल्प
द्वारं
सविनि
कर्मज
कर्तृवृ
भावा
र्थः
प
स

३४५त् । वार३४ने ॥ (२) वृषो अचिक्रदद्वाउहोवा । वा ।

वानायिवा३३र्षा । अचारयि । क्रदा३४५त् । वार३४

ने । देवा३४ । औहोवा । ना३ सोमपवमार । नना

३४५यिः । कार३४त्ताम् । गोभा३४ । औहोवा । आ

ज्जा३ । नआ३४५ । षा३४५ । षा३४सी (३) ॥ ६* ॥ [७]

॥ अभीवर्त्तम् ॥ पवा३मा३नाऽभियर्षसोवा । पावमा

ना । भियार्षा३सा३यि । पूनानोवा३१२३४ । रेपवमा ।

नोआव्या३या३यि । वृषोआ३चा३यि । क्रदा३त् । वा

२३४५ । नार३४५यि (२) ॥ ८† ॥ [८]

॥ कालेयम् ॥ वृषोआ३चिक्रददनायि । वृषोअचा

यि । क्रददना३यि । देवाना३सो३ । मार३४ । पव

* ऊ० गा० ८ प्र० १ अ० ६ सा० ।

† ऊ० गा० ८ प्र० १ अ० ८ सा० ।

‡ “महाकालेयम्”—इति ख० पु० पाठः ।

माननिः । ^{४२ ५ २ २ १२ ३ २}क्राशर्त्ताम् । गोभायिरजौ । वा३४३ । ओ

^{५ ४२ ४}३४वा । नोआपुषसायि । होपुई । डा(३) ॥ ८ ॥ [८]

^{५ ४५२ ३२ २ ३२ ४२ ५ १}॥ पौरुमीढम् ॥ पवमा । नाभा३४औहोवा । आ

^{२ १ १२ २ १ २ १२ २}र्षसि । पवमाना । भियर्षा३सायि । पुनानोवा । रे

^{२ २ १ २ २ १}पवार३मा । नोअव्ययायि । वृषोआर३चायि । क्रद

^{१ २ १ १ १ १ १}द्वार३४पुना६पुइयि । द्वा३यार३४पु(२) ॥ १२ ॥ [१०]

^{२५ ५ ५ २}॥ आङ्गिरसाङ्गोष्ठम् ॥ ^२हाउहाउहाउवा । पुना

^{१२२ २२ १ २२ २ १ २२ १ ३ १ १ १ १ १ २ २}नोवारेपवमानोअव्यये । इहा । उपार३४पु । वृषोअ

^{१ २२ १ ३ १ १ १ १ २ २ २ २ २}चिक्रदहने । इहा । उपार३४पु । देवानां सोमपव

^{२ १ ३ १ १ १ १ २५ ५ ५}माननिष्कृतम् । इहा । उपार३४पु । हाउहाउहाउ

* ऊ० गा० ८प्र० २० २सा० ।

† ऊ० गा० ८प्र० २० १२सा० ।

‡ 'प्रतोदगोष्ठम्'—इति ख० पु० पाठः ।

वा । गोभिरञ्जानोऽर्षसि । इहा । उपा २३ ४

५(२) ॥ ५* ॥ [११]

॥ कण्वरथन्तरम् ॥ पावमानाभियर्षसायि । पवमा

ना । भाश्यार्षाशसायि । पुनानोवारिपवमानोऽव्यया

२३४ ऐही । वृषोऽचार२३४ चायि । क्रदा३१ उवा२३ । ए३ ।

वनआ(२) ॥ १४ † ॥ [१२]

॥ कण्वरथन्तरम् ॥ मार्यमानः सुहस्तिया । समुद्रे

वा । चाशमायिन्वाशसायि । रयिमिशङ्गवज्जलम्पुहस्पृ

चार२३४ मैही । पवमा२३४ ना । भिया३१ उवा२३ । ए३ ।

षसआ(१) ॥ ७ ‡ ॥ [१३]

॥ अर्कपुष्योत्तरम् ॥ मृज्यमानः सुहस्त्या । ऊवायि ।

* ज० गा० १८ प्र० २ अ० ५ सा० ।

† ज० गा० १८ प्र० २ अ० १४ सा० ।

‡ ज० गा० २० प्र० २ अ० ७ सा० ।

उहे
मभिप्रैति
करणभू
दुहेइया

चतुः
विप्राय
मतस्तद्
न्तरम्,
सू० १ ।
तदुक्तं
ननु
विप्रसङ्ग
हितव्या
वच्छेदव
प्रसङ्ग इ
कर्त्तव्येति
यद्य
सूत्रफलि
शानाद
वस्था
प्रेतिः
विषये
ण्यपि
ताम्
व्यम्
सम्बन्
कल्पः
द्वारं
सर्वि
कर्मज
कर्त्तृवृ
भावा
त्वर्थः
ताप
सि

^{२२ १} औहोवा^२ । ^{१२२ २} समुद्रेवाचमिन्वसि । ^१ ऊवायि । ^{२२ १} औहो

^{१ २ १ २ १ २ १ २} वा^२ । ^१ रथिमिशङ्गम्बज्जलम्पुरुस्पृहम् । ^{२२} ऊवायि । ^{२२} औ

^१ होवा^२ । ^{१ २२ २ १ २} पवमानाभियर्षति । ^१ ऊवायि । ^{२२ २} औ । ^{२ १} हो^२ ।

^३ वा^२३४ । ^{४२ २} औहोवा ॥ (१) ^{१ २२ २ १ २} पवमानाभियर्षति । ^१ ऊवायि ।

^{२२ १} औहोवा^२ । ^{२ १२ २ २२ १ २२ २ १ ३२} पुनानोवारेपवमानोअव्यये । ^१ ऊवायि ।

^{२२ १} औहोवा^२ । ^{१ २ २} वृषोअचिक्रददने । ^{१ २२ १} ऊवायि । ^{२२ १} औ । ^{२ १} हो^२ ।

^३ वा^२३४ । ^{४२ २} औहोवा ॥ (२) ^{१ २ २} वृषोअचिक्रददने । ^{१ २२ १} ऊवायि ।

^{२२ १} औहोवा^२ । ^{१ २ २} वृषोअचिक्रददने । ^{१ २२ १} ऊवायि । ^{२२ १} औहोवा

^{२ १ २ २ २ २ २} २ । ^{२ १} देवानां सोमपवमाननिष्कृतम् । ^{२२} ऊवायि । ^{२२} औ

^१ होवा^२ । ^{१ २ २ २ २ २ २} गोभिरञ्जानोअर्षसि । ^१ ऊवायि । ^{२२ १} औ । ^{२ १} हो^२ ।

^३ वा^२३४ औहोवा । ^{४२ २} अक्कस्यदेवाः परमेवियो रमा २ ३

^{१ १} ४५ न३) ॥ ८ * ॥ [१४] १२

एतमुत्थमिति त्वचात्मकं तृतीयं सूक्तम्—

तत्र, प्रथमा ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतमुत्थन्दशन्निपोमृजन्तिसिन्धुमातरम् ।

१ २ ३ १ २

समादित्येभिरख्यत ॥ १ * ॥

“सिन्धुमातरं” यस्य सोमस्य सिन्धवीणा नवः मातरी भवन्ति । “त्यं” तम् “एतम्” इमम् सोमं “दश श्लिपः” दश-सङ्काका अङ्गुलयोगेण “मृजन्ति” शोधयन्ति । अपि च सोऽयम् “आदित्येभिः” § आदित्यैः “समख्यत” सङ्गच्छते ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ २ २ २ १ २ ३ १ २ ३ २ २ २

समिन्द्रेणोतवायुना तु तएतिपवित्रया ।

१ २ ३ १ २

संसूर्यस्यरश्मिभिः ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, १, १९, २ ।

† “सिन्धवः”—इति निघण्टु-प्रथम-तृतीयदशे नदीनामसु पठितम् ।

‡ —तासु नव “इमस्मै गङ्गे (१, ६, ७, ५)”—इति बहुकृतुता ज्ञेयाः । तथाहि—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रौ, परुष्णी (इरावती), असिनी, सरङ्गुधा, वितस्ता, चार्जिकीया (विपाटा) ;—इत्येता नव ।

¶ “श्लिपः”—इति निघण्टावङ्गुलिनामसु तृतीयम् (२, ५) ।

§ “वङ्गलञ्छन्दसि (७, १, १०)”—इति भिष ऐसभावः ।

॥ ऋ० वे० ७, १, १९, २ ।

उत्थं
मभिप्रै
करणम्
दुद्देश्य

चतु
विप्राय
मतस्तत्र
न्तरम्,
सू० १ ।
तदकर्म
न
तिप्रस
हितव्य
वच्छेद
प्रसङ्ग
कर्त्तर्य
य
सूत्रफा

शनाद
वस्था
प्रेतिः
विषयं
ण्यपि
ताम्
च्यम्
सम्ब
कल्प
द्वारं
सर्व
कर्मज
कर्त्तृ
भाव
त्वर्थ
प्रा
१६

“सुतः” अभिषुतः सोमः “पवित्रे” “इन्द्रेण” “सम् एति”
सङ्गच्छते । “उत” अपि च “वायुना” समेति “सूर्यस्य
“रश्मिभिः” किरणैरपि समेति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ १ १ २ ३ १ २
सनोभगायवायवे पूष्णे पवस्वमधुमान् ।

१ २ ३ १ २ २
चारुमित्रे वरुणे च ॥ ३ * ॥ १३

हे सोम ! “मधुमान्” मधुररसः “चारुः” कल्याण-रूपश्च
सोऽभिषुतः त्वं “नः” अस्माकम् यज्ञे “भगाय” भगाख्याय
देवाय “वायवे” “पूष्णे” च “मित्रे” मित्राय देवाय “वरुणाय”
च “पवस्व” क्षर ॥ ३ ॥ १३

१ २ १ २ १ २ १ २
॥ इह वदाम देव्यम् ॥ एतमुत्पन्दशक्षिपः । इहा । मृ

१ २ १ २ १ २ १ २
जन्तिसिन्धुमातरा २म् । इहा । समादित्येभिरा २ । इहा

१ ५ ५ १ २ २ २ २ १ २ २ २ १
३ । स्या २३४तो ईहायि ॥ (१) समिन्द्रेणोतवायुना । इ

२ १ २ १ २ १ २
हा । सुतएतिपवित्रा २ । इहा । स २ सूर्यस्यरा २ ।

१ २ १ ५ ५ १ २ २ १ २ २ १ २
इहा ३ । श्मा २३४यिभो ईहायि ॥ (२) सनोभगायवायव ।

उ
मभिप्रै
करण
दुहेइय

चतु
विप्राय
मतस्तद
न्तरम्
सू० १
तदकर्म
न
तिप्रस
हितव्य
वच्छेद
प्रसङ्ग
कर्त्तव्य
य
सूत्रफ

शनाद
वल्था
प्रेति
विपर
ण्यपि
ताम्
चयम
सम्ब
कल्प
द्वारं
सवि
कर्म
कर्त्त
भाव
त्वर्थ
॥

इहा । पूष्णे पवस्वमधुमारन् । इहा । चारुमिन्त्रेव

रुहे । इहाइ । णारुइयिचाइहायि(३) ॥ ६ * ॥ [१]

॥ अयासीमौयम ॥ एताइमूइत्यन्दमत्तिपाः । मृज

न्तिसायि । धुमारताइरुइराम् । सामादित्यारइयि ।

भिराइख्यापुताइपुइ ॥ (१) समाइयिन्त्रे इणोतवायुना । सु

तणतायि । पवारइयिचाइ ३ ४ आ । सासूरिया २ ३ ।

स्यराइश्मापुयिभाइपुइयिः ॥ (१) सनोइभाइगायवायवायि ।

पूष्णेपवा । खमारधूरुइरुमान् । चारुमिन्त्रा २ ३ यि ।

वरुइणापुयिचाइपुइ(३) ॥ १४ * ॥ [२] १३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य सप्तमस्याध्यायस्य

चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

* ऊ० गा० ३ प्र० २ अ० ७ सू० १ ।

† ऊ० गा० २ प्र० २ अ० १४ सू० १ ।

‡ “उक्तो माध्यन्दिनः पवमानः” — इति वि० ।

अथ पञ्चमे खण्डे*—

रेवतीर्न-इति लृचात्मकं† प्रथमं सूक्तम्—

तत्र, प्रथमा ।

३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रेवतीर्नः सधमादइन्द्रे सन्तु तु विवाजाः ।

३ २ ३ २ ३ १ २
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १‡ ॥

“क्षुमन्तः” अन्नवन्तः “याभिः” गोभिः सह “मदेम” हृष्येम
“इन्द्रे” “सधमादे” अस्माभिः सह हर्षयुक्ते सति “नः” अस्माकं
ता गावः “रेवतीः” क्षीराज्यादि-धनवत्यः “तु विवाजाः”
प्रभूत-बलाश्च “सन्तु” ॥ [रेवतीः—रयि-शब्दात् मतुपि “रयेर्मती
बहुलम् (६, १, ३४ वा०)” —इति सम्प्रसारणम्, परपूर्वत्वे,
“इन्द्रीरः (८, २, १५)”—इति मतुपो वत्त्वम्, “वाच्छन्दसि
(६, १, १०६)”—इति पूर्वसवर्णदीर्घः, “रे-शब्दाच्च मतुप
उदात्तत्वं वक्तव्यम् (६, १, १०६ वा०)”—इति रे-शब्दादु-
त्तरस्यापि भवतीति पूर्वमेवोक्तम् । सधमादे—मदं लप्ति योगे
क्षीरादिकः, सह मादयतीति सधमादः “सधमादस्थयोश्चन्दसि
(६, ३, ८६)”—इति सह-शब्दस्य सध आदेशः, याथादिना
(६, २, १४४)—उत्तर-पदान्तोदात्तत्वे प्राप्ते “परादिश्चन्दसि

* ‘इदानीं’ षष्ठानि—इति वि० ।

† ‘रेवतीषु वारवन्तीयं षष्ठं भवति’—इति वि० ।

‡ ऋ० आ० २, २, १, ८ (१मा० ३५३पृ०) = ऋ० वे० १, १, ३०, ३ ।

उ
मभिप्रै
करणः
दुहेश्

च
विप्रा
मतस्त
न्तरम्
सू० १
तदकर्म
न
तिप्रस
हितव
वच्छेद
प्रसङ्ग
कर्त्तव्यं
य
सुत्रफ
शना
वस्था
प्रेति
विषय
ण्यपि
ताम्
च्यम
सम्ब
कल्प
द्वारं
सवि
कर्म
कर्त्तृ
भाव
त्वर्थ
या
वै

बहुलम् (६, २, १८८)”—इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । तुवि-
वाजाः—बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिसंस्वरत्वम् (८, २, १) । क्षुमन्तः
—दु क्षु र कु शब्दे (अदा० प०), अस्मात् क्षिपि तुगभाव-
श्छान्दसः, “ऊचनुङ्भ्यां मतुप् (६, १, १७६)”—इति मतुप-
उदात्तत्वम् । मदेम—मदी हर्षे (दि० प०), व्यत्ययेन शप्,
अदुपदेशात्सार्वधातुकानुदात्तत्वे शपः पित्वादनुदात्तत्वम्,
ततो धातुस्वरः शिष्यते ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आघत्वावांत्मनायुक्तस्तोतृभ्योधृषवीयानः ।

३ २ ३ ३ २ ३ २ २
चणोरक्षचक्रयोः ॥ २ * ॥

हे “धृष्णो !” धार्ष्ट्ययुक्तेन्द्र !† “त्वावान्” त्वसदृशी देवता-
विशिषः, “त्मना” आत्मना अस्मदनुग्रह-बुद्ध्या युक्तः “ईयानः”
अस्माभिर्याच्यमानः “स्तोतृभ्यः” स्तोतृणामनुग्रहाय तदभीष्टमर्थं
“व” अवश्यम्‡ “आ चणोः” आनीय प्रक्षिपतु । तत्र दृष्टान्तः
—“चक्रयोः” रथस्य चक्रयोः “अक्षं न” यथा अक्षं प्रक्षिपति तद्वत् ॥
त्वावान् वतुप्प्रकरणे “युष्मदस्मज्जां कन्दवि सादृश्य उपसङ्गता

* ऋ० वे० १, २, ३०, ४ ।

† ‘धृष्णो—धारण-संभावः’—इति वि० ।

‡ ‘व—इति पद-पूरणः’—इति वि० ।

नम् (५, २, ८४ वा०)"—इति वतुप् "प्रत्ययोत्तर-पदयोश्च
(७, २, ८८)"—इति मपर्यन्तस्य त्वादेशः, "आ सर्वनाम्नः
(६, ३, ८१)"—इति दकारस्यात्वं, वतुपः पिच्चादनुदात्तत्वे
(३, १, ४) प्रातिपदिक-स्वरः शिथ्यते । लृता—"मन्त्रे-
व्याङ्गदेरात्मनः (६, ४, १४१)"—इत्याकार-लोपः । घृणो—
जि घृवा प्रागल्भ्या, "वसिष्ठधि-घृषि क्षिपेः क्लृ, आम-
न्वितानुदात्तत्वम् । ईयानः-ईङ् गतौ, (दि० आ०) छन्दसि
लिट् (३, २, १०५), तस्य "क्षिष्टः कानज्वा (३, २, १०७)"
—इति कानजादेशः, "अचिश्र् धातु (६, ४, ७७)"—इत्या-
दिना इयङादेशः, "चिन्तः (६, १, १६३)"—इत्यन्तोदात्तत्वम् ।
ऋणोः—ऋण गतौ (तना० उ०) लङि व्यययेन तिपः सिपि
(३, १, ८५), "इतश्च (३, ४, ८७)"—इतीकारलोपः,
"तनादि-ह्रज्भ्य उः (३, १, ७९)"—सर्वधातुकगुणः
(७, ३, ८४), "बहुलच्छन्दसमाङ्गीगोऽपि"—इत्यङागमा-
भावः, विकरण-स्वरेणान्तोदात्तत्वम् । अक्षम्—"अक्षस्यादेवनस्य
(फि० २, १२)"—इत्याद्युदात्तत्वम् । चक्रागोः—अकारस्थिका-
रच्छान्दसः (३, १, ८५)" ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ १२ ३१२ ०२ ३२

आयद् वः शतक्रतवा कामञ्जरितृणाम् ।

३१७ ३१२ २२

ऋणोरक्षत्रशचीभिः ॥ ३ * ॥ १४

हे "शतक्रतो" इन्द्र ! "यत्" "दुवः" धनं कामिताय-

उ
मभिर्प्रै
करण
दुहेः

न
विप्रा
मतस्त
न्तरम्
सू० १
तदकर्म
न
तिप्रस
हितव
वच्छेद
प्रसङ्ग
कर्त्तव्यं
उ
सूत्रफ

शाना
वस्थ
प्रेति
विप
ण्यमि
ताम्
चयम
सम्ब
कल्प
द्वारं
सवि
कर्म
कर्त्तृ
भाव
त्वर्थ
न्या
रि

रूपम् स्तोत्रभिः आप्तव्यमस्ति तं कामं "जरितृणां" स्तोत्रृणा-
मनुग्रहाय "आ ऋणाः" आनीय प्रक्षिपसि । तत्र दृष्टान्तः—
"शचीभिः" कर्मभिः शक्रटोचित-व्यापार-विशेषैः "अक्षं न" यथा
अक्षं प्रक्षिपति तद्वत् ॥ [शचीभिः—शची-शब्दः शार्ङ्गरवादित्वात्
(४, १, ७३) ङीबन्तत्वादाद्युदात्तः (३, १, ४) ॥ ३ ॥ १४

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
॥ वारवन्तीयोत्तरम् ॥ रेवतीर्नाञ्चौहोहायि । सा

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
धामार२३४हायि । इन्द्रायिसार२३४हा । तुतुविवा३४ ।

३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
औहोवा । इहार२३४हायि । उज्जवा२३४जाः । जुम

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
न्तः । याभिर्मदा३४ । औहोवा । इहार२३४हायि ।

३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
औहो३१२३४ । सा । एहियाईहा ॥ (१) आघत्वावा

३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
औहोहायि । तानायूर३४क्ताः । स्तोत्रृभ्योर२३४हायि ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
धृष्णुवीया३४ । औहोवा । इहार२३४हायि । उज्जवा

३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
२३४नाः । ऋणोर । ज्ञानचक्रा३४ । औहोवा । इहा

३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
२३४हायि । औहो३१२३४ । योः । एहियाईहा ॥ (२)

^{१२ २ २ १ २} ^{१ २ ५} ^{१२ १}
 आयद्वा औहोहायि । शतक्रार२४ताउ । आकामा२३
^५ ^{१ १} ^{३२ ४२ ५} ^{१ ३} ^५
 ४०हायि । जरितृ३४ । औहोवा । इहार३४हायि ।
^{२ ३} ^५ ^{२ १२ २} ^{१ ७ २} ^{३२ १२ ५}
 उज्जवा२३४णाम् । ऋणोर । क्षान्नश्चा३४ । औहोवा ।
^{१ ३} ^५ ^{३२ २} ^{५२} ^५
 इहार्२३४हायि । औहो३१२३४ । भीः । एदियाईहा ।
^४
 हो५ई । डा(३) ॥ ७ * ॥ [१] १४

सुरूपकलमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र, प्रथमा ।

^३ ^{२ ३ १ २ ३ १ ३} ^{३ १ २}
 सुरूपकलमृतये सुदुषामिवगोदुहे ।

^{२ ३ २ ३ २}
 जुहमसिद्यविद्यवि ॥ १ + ॥

“सुरूपकलम्” श्रीभन-रूपोपेतस्य कर्मणः कर्त्तारमिन्द्रं
 “कृतये” अस्मद्वचनार्थम् “द्यवि द्यवि” प्रतिदिनं “जुहमसि”
 आह्वयामः ॥ [द्यो-शब्दः प्रातिपदिक-स्वरणान्तीदात्तः (फि० १, १),
 “नित्य वीप्सयोः (८, १, ४)”—इति द्विर्भावः, ‘तस्यपरमाग्रे ङितम्

* क० गा० ३प्र० २ख० ७सा० ।

† क० आ० २, २, २, ३ (१भा० २६६३०) = ऋ० वे० १, ४, ७, १ ।

मभिः
करण
दुहेः

च
विप्रा
मतस्त
न्तरम्
सू० १
तद्वत्
न
तिप्रस
हितः
वच्छेः
प्रसङ्ग
कर्त्तर्य
र
सूत्रप

शाना
वस्थ
प्रेति
विष
ण्या
ताम
च्यम
सम्भ
कल्प
द्वारं
सवि
कर्म
कर्त्तृ
भाद
त्वश्
व्या
त्वं

(८, १, २) “अनुदात्तञ्च (८, १, २)” — इति द्वितीयस्यानुदा-
त्तत्वम् । जुहमसि—इत्यत्र “इदन्तोमसि (७, १, ४६)” — इति
इकार आगमः, प्रत्यय-स्वरेण (३, १, ३) इकारउदात्तः] आह्वाने
दृष्टान्तः—“गोदुहे” गोधुगर्थं [गां दोग्धोति गोधुक्; सत्सु
द्विषेत्यादिना (३, २, ३१) क्तिप्, कदुत्तरप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २,
१३६)] “सुदुघाम् इव” सुधु दोग्ध्री गामिव यथा लोके यो
दोग्धा तदर्थं तस्य आभिमुख्येन दोहनीयां गामाह्वयन्ति तद्वत्
[सुधु दुग्धे इति सुदुघा, “दुहः कव्वश्च (३, २, ७०)” — इति कप्
प्रत्ययः हकारस्य च घकारः, कित्वाद् गुणाभावः (१, १, ५),
कपः पित्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरेणोकार उदात्तः (६, १, १६२) ॥ १॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उपनःसवनागहिसोमस्यसोमपाःपिव ।

३ १ ३ ३ १ ३ १ २

गोदाइद्रेवतोमदः ॥ २ * ॥

हे “सोमपाः” सोमस्य पातरिन्द्र ! सोमं पातुं “नः” अस्मदी-
यानि “सवना” सवनानि त्रीणि “उप” समीपे “आ गहि” आगच्छ
[सवना—सूयते सोम एष्विति सवनानि सुपो डादेशः (७, १, ३६)
टिलोपश्च (६, ४, १४३), “लिति (६, १, १८३) — इति त्वयात् पूर्वस्या-”

* ऋ० वे० १, ४, ७, १ ।

कारस्य उदात्तत्वम् । गहि—इत्यत्र गमेः “बहुलशृङ्गन्दसि (२, ४, ७३)—इति शपो लुक्, हेर्ङित्त्वादनुदात्तोपदेशेत्यादिना (६, ४, ३७) मकार-लोपः, “अतोहेः (६, ४, १०५)” —इत्यामीय-शास्त्रीये लुकि कर्त्तव्ये “असिद्धवदत्राभात् (६, ४, २२)” —इति आभाच्छा-स्त्रीयो मकार-लोपोऽसिद्धवद् भवति] । आगत्य च “सोमस्य” सोमं “पिब”, “रेवतः” धनवतः तव “मदः” हर्षः “गोदा इत्” गोप्रद एव, त्वयि हृष्टे सति अस्माभिर्गावो लभ्यन्त इत्यर्थः ॥२॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अथाते अन्तमानां विद्यामसुमतीनाम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २
मानो अतिस्थ आगहि ॥ ३ * ॥ १५

“अथ” सोमपानानन्तरं हे इन्द्र ! “ते” तव “अन्तमा-नाम्” अन्तिकतमानामतिशयेन तव समीपवर्त्तिनां “सुम-तीनां” शोभन-मति-युक्तानां शोभन-प्रज्ञानां पुरुषाणां मध्ये स्थित्वा “विद्याम” वयं त्वां जानीयाम [यद्वा, सुमतीनां शोभन-बुद्धीनां कर्मानुष्ठान-विषयाणां लाभाद्ये मिल्यध्याहारः बहुव्रीहि-पक्षे पूर्वपद-प्रकृति-स्वरापवादो “नञ्-सुभ्याम् (६, २, १७२)” —इत्युत्तर-पदान्तोदात्तः । कर्त्तृधारय-पक्षेऽपि अव्यय-पूर्वपद-प्रकृति-स्वरापवाद-कृतस्वरेणान्तोदात्ततैव (६, २, १३८) । अतो मतुपि ऋसादन्तोदात्ताच्च सुमति-शब्दात् परस्य नामो “नाम-

न्यतरस्याम् (६, १, १७७)”—इत्युदात्तत्वम्] । त्वमपि “नः”
 अस्मान् “अति” अतिक्रम्य “माख्यः” अन्येषां त्वत्स्वरूपं मा प्रक-
 थयः [ख्या प्रकथने (अ० ५०)]—इत्यस्य लुङि “अस्यतिवक्ति-
 ख्यातिभ्योऽङ् (३, १, ५२)” । आगाहि—गमेः शपो लुकि
 ङित्त्वादनुदात्तोपदेशेति (६, ४, ३७) मकार-लोपस्यासिद्धवद्वा-
 भादिति (६, ४, २२) असिद्धवद्भावात् “अतो हेः (६, ४, १०५)”
 —इति लुङ् न भवति ॥ ३ ॥ १५

उभेयदिन्द्रोदसीति-द्वचात्मकं तृतीयं सूक्तं ;

तत्र, प्रथमा ।

३ १ २ २ २ १ २ २ २ १ २
 उभेयदिन्द्रोदसी आपप्रायोषाद्व ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
 महान्तन्वामहीनाः सम्राजश्चर्षणीनाम् ॥

३ १ २ २ २ ३ १ २ २ २
 देवीजनिचयजीजनद्भ्राजनिचयजीजनत् ॥ १ * ॥

हे “इन्द्र !” “उभे” “रोदसी” द्यावापृथिव्यौ “यत्” यः
 त्वम् “आ पप्राथ” स्वतेजसा आपूरयसि [प्रा पूरणे, आदादिकः
 (५०)]. छान्दसो लिट् (३, २, १०५)] “उषा इव” यथा उषाः
 स्व-भासा सर्वं जगदापूरयति तद्वत् त्वं “महीनां” महतां देवा-
 तांमपि “महान्तम्” अधिकं “चर्षणीनां” मनुष्याणामपि

* सू० आ० ४, १, ४, १० (१ भा० ७७७ पृ०) = सू० वे० ८, ७, २२, १ ।

मभिः
 करण
 दुहेः

च
 विप्रा
 मतस्
 न्तरम्
 सू० १
 तदक्र

तिप्रः
 हितः
 वच्छेः
 प्रसङ्ग
 कर्तव्य

सूत्रप

शाना
 वस्थ
 प्रेति
 विष
 ण्या
 ताम
 चय
 सम्भ
 कल
 द्वारं
 सवि
 कर्म
 कर्तृ
 भाव
 त्वः
 व्या
 त्वं

“सम्प्राजम्” ईश्वरम् इन्द्रं “त्वा” त्वाम् “देवी” देवनशीला
 “जनित्रो” साधु-जनयित्री अदितिः “अजीजनत्” अतः कार-
 णात् सा “भद्रा” कल्याणी प्रशस्ता “जाता” [जनेर्ण्यन्तात्
 साधुकारिणि ढन् (३, २, १३४), “जनिता मन्त्रे (६, ४, ५३)” —
 इति इडादौ णि-लोपो निपात्यते, ऋत्रे भ्यइति ङीप् (४, १, ५)
 ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ १ १ १ २ ६ २ ३ १ २
 दीर्घञ्छ्रुशंयथाशक्तिम्बिभर्षिमन्तुमः ।

१ १ ३ २ ३ १ २ २ २
 पूर्वेणमघवन्पदावयामजोयथायमः ।

३ १ २ १ २ ३ १ २ २
 देवीजनित्रजजीजनद्भद्राजनित्रजजीजनत् ॥ २ * ॥

“दीर्घम्” आयतम् “अक्षुशं” सृष्टिं “यथा बिभर्षि” एव
 मायतां “शक्ति” हे “मन्तुमः” मन्तु ज्ञाने, तद्वन् ! [“मतुवसो
 ऋः (८, ३, १)” — इति सम्बुद्धौ नकारस्य कृत्वम्] ईदृशेन्द्र !
 बिभर्षि धारयसि [डु भृज् धारण-पोषणयोः जौहोत्यादिकः, स्त्री
 “भृजामित् (७, ४, ७६)” — इत्यभ्यासस्येत्वम्] हे “मघवन्”
 धनवन्निन्द्र ! यथा “पूर्वेण” देहस्य पूर्वभागे वर्त्तमानेन “पदा”

पादेन “अजः” द्वागः “वयां” शाखां आकर्षति तथा पूर्वोक्तया
शक्त्या आलप्यामः शत्रून् [नियच्छसि—यमेर्लेटाङ्गागमः, “बहुलं
छन्दसि (२, ४, ७३)”—इति शपो लुक्] । गतमन्यत् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

११ ३ १२ २२ ३ २
अवस्मदुर्हणायतोमर्त्तस्यतनुहिस्थिरम् ।

३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधस्पदन्तमीङ्ध्रियोअस्मां अभिदासति ॥

३ १२ २२ ३ १२ २२
देवीजनित्रयजीजनद्भद्राजनित्रयजीजनत् ॥ ३* ॥ १६

“दुर्हणायतः” दुःखप्रद-हरणमाचरतः “मर्त्तस्य” मनुष्यस्य
शत्रोः “स्थिरं” दृढं बलम् “अव तनुहि” अवततं नीचीनं
कुरु । “स्म”—इति पूरकः । “तम्” शत्रुम् “ईम्” एनम्
अधस्पदं पादयोरधस्ताद्वर्त्तमानं “क्षधि” कुरु । “यः” शत्रुः
“अस्मान्” “अभिदासति” उपक्षिपति† । समानमन्यत् ॥ ३* ॥ १६

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य सप्तमस्याध्यायस्य

पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

* अट० वे० ८, ७, २१, ३ ।

† ‘अभिदासति—हिसां करोति’—इति वि० ।

मभि
करण
दुहे

विप्रा
मतस्म
न्तरम्
सु० १
तदक
तिप्र
हितव
वच्छे
प्रसङ्ग
कर्त्तव्यं

सूत्र
शाना
वस्थ
प्रेति
विप
र्ण्या
ताम
क्षय
सम्प
कल
द्वारं
सति
कर्म
कर्त्त
भा
त्व
व्या
ध्वं

अथ षष्ठे खण्डे*—

परिस्नानइति-तृचात्मके प्रथमं सूक्तम्,

तत्र, प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परिस्नानोगिरिष्ठाःपवित्रेसोमोअचरत् ।

१ २ ३ १ २
मदेषुसर्वधाअसि ॥ १ † ॥

अयं “सोमः” “पवित्रे” दशापवित्रे “पर्यचरत्” परितः
क्षरति । कौटुशः सन् ? “स्नानः” शब्दायमानः [“सुवानः”-
इति बहुचानां पाठः] स्यमानः “गिरिष्ठाः” गिरिस्थायी ग्रावसु
वर्त्तमान इत्यर्थः । हे सोम ! स त्वं “मदेषु” मादकेषु सोढुषु
“सर्वधा असि” सर्वस्य धाता दाता च भवसि ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वंविप्रस्त्वङ्गविर्मधुप्रजातमन्धसः ।

१ २ ३ १ २
मदेषुसर्वधाअसि ॥ २ ‡ ॥

* ‘इदानीं सार्वभौमो वक्तव्यः । तव च वेदन्वत-प्रभृतीनि सामानि, ब्राह्मणो-
क्ताः—इति वि० ।

† ख० आ० ५, २, ४, ८ (२भा० २६५०) = ऋ० वे० ६, ८, ८, १ ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, ८, २ ।

हे सोम ! “त्वं” “विप्रः” विविधं प्रीणयिता विप्रसदृशो वा
त्वच्च “कविः” मेधावी, अतस्त्वम् “अन्वसः” अन्नात् जातं
“मधु” मधुरसं प्रयच्छ सौति शेषः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

^{१२ १२३ १ २ ३ १२ ३ १ २}
त्वेष्विषसजोषसो देवासः पीतिमाशत ।

^{१ २ ३ १ २}
मदेषु सवधा असि ॥ ३ * ॥ १७

हे सोम ! “त्वे” त्वयि “पीतिं” पानं “विष्वे देवासः” सर्वे देवाः
“सजोषसः” समान-प्रीतयः सन्त “आशत” प्राप्तवन् ॥ ३ ॥ १७

^{१ २ ४ २ ४}
॥ तृतीयवैदन्वतम् ॥ पाऽ५रि । खानोऽगाश्चिरि

^{५ २ १ १ २ १ १ २ २ १ २ १ २ १}
ष्ठाः । पवित्रे सो । मोश्चक्षरात् । पवित्रे । सोमो २३ ।

^{४ ५ ३ ४ २ ४ ५ २ १}
क्षरात् ॥ (१) तूऽ५वम् । विप्राश्स्तूश्चक्नवायिः । मधु

^{२ १ २ ३ २ १ २ १ २ ४ ५}
प्रजा । तमन्वसाः । मधुप्रजा । तमा २३ । धासाः ॥ (१)

^{० २ ४ २ ४ २ ५ २ १ २ २ १ २ ३ २}
तूऽ५वे । विश्वेऽसाश्चोषसाः । देवासः पायि । तिमा

* ऋ० वे० ६, ८, ८, ३ ।

मभि
कर
दुहे

विप्र
मतस्
न्तरस्
सू०
तदक

विप्र
हित
वच्छे
प्रस
कर्त्त

सूत्र

शना
वल्
प्रेति
विष
ण्या
ता
च्य
सम्
कल्
द्वा
सति
कर्म
कर्त्त
भा
त्व
अय
प्र

^{११} शता । ^{५२२} देवेसः ^२ पौ । ^१ तिमा^४२३ । ^{४ ५} शता । ^१ औयि ।

^२ मदी । ^२ वा^५३४३ औ^१३४वा । ^{२१} पुवा । ^{२ १२} सर्वधाः । असायि ।

^२ मा^{५२२}२३४ औ^२होवा । ^{२ २ १२ ३ १ १ १ १} ए३ । पुसर्वधाअसी^२३४५ ॥ ८* ॥ [१]

॥ वैदन्वताद्यम् ॥ ^{१ २} पारी । ^{२ २} खानोगिरिष्ठाः । ^१ पवा

^२ रयिन्ने^५२३४सो । ^{५२ १} मोअक्षारा^{१ २}२त् ॥ (१) तूवाम् । विप्र

^१ त्वङ्गविः । ^२ मधू^५२प्रा^{२ १}२३४जा । ^{२ १} तमन्वामासा^२२ः ॥ (२)

^{१ २} तूवे । ^{२ २} विश्वेसजोषसः । ^{१२ ३ ५ २ २ १} देवा^२२सार^३३ःपौ । ^{२ २ १} तिमाशा

^१ ता^२२ । ^२ मदायिपूसा^५३ । ^{५ २ २ १ ५ ४} ई^२३या^{२ १}३ । ^५ वंधो^४२३४वा । आ

^५ पूसो^५६हायि ॥ ८ ॥ [२]

॥ चतुर्थवैदन्वतम् ॥ ^{५ २} औ^{१ २ ३ २ १}३होयि । इहहाहहायि ।

^{३ ५ २ ३ ५ २ ३ ५} औ^२३हो^५२३४वा । ^{२ ३ ५} परायिस्वा^{२ ३ ५}२३४नो । ^५ गिरा^५२३४यिष्ठाः ।

मभि
कर
दुहे

विप्र
मत्स
न्तर
सू०
तद्व

तिप्र
हित
वच्छे
प्रसा
करी

सूत्र

शीन
वस्
प्रेति
वि
ण्य
ता
च्य
सम्
क
दा
सर्ग
क
क
भा
त
त
ध

पावित्रे२३४सो । सोअशार२३४रात् ॥ (१) तुवंवा२३४यि

प्रः । तुवङ्गा२३४वीः । मधुप्रा२३४जा । तमन्वा२३४

साः ॥ (२) तुवंवा२३४यिश्च । सजोषा२३४साः । देवासा

२३४पी । तिमाशार२३४ता । मदायिषू२३४सा । वर्धा

आ२३४सौ । औ२३४होयि । इहहाहहायि । औ२३४होर

३४५वाइ५ई । ए३ । उपा२३४५ (३) ॥ १० * ॥ [३]

॥ ऐध्रवाहाद्यम् ॥ परिस्तुवाइहा । नोगायि । रा

यिष्ठाओ२३४वा । ई२३४हा । पवित्रेसोमो३४आ । चा

रादो२३४वा । ई२३४हा ॥ (१) तुवंविप्रइहा । तुवाम् ।

कावाओ२३४वा । ई२३४हा । मधुप्रजाताइमा । धा

साओ२३४वा । ई२३४हा ॥ (२) तुवेविश्वइहा । सजो ।

षासाओ२३४वा । ई२३४हा । देवासःपीतीइमा । शा

ता^{२, १}ओ^५र^३३४वा । ई^३र^५३४चा । म^{२१}दायि । षू^{२, ३}साओ^३र^३३४
वा । ई^५र^३३४चा । व^४धाः । व^१धार^७आ^३र^३३४पू^३सा^३६५६यि ।
ई^३र^५३४चा(३) ॥ ८ * ॥ [४]

॥ स^१त्त^{२ २}हितम् ॥ परि^१सु^{२ २}वानः । गा^१र^२यि^१रि^२ष्टाः । प^२वा
र^१यि । च^२र^२३सो । मो^{१ २}आ^१र^२क्षारात् । तु^२वंवि^२प्र^२स्तु ।
वा^१र^२क्वा^१यिः । म^२ध^१र^१ । प्रा^१र^२३जा । त^१मा^१र^१न्धा^१साः ।
तु^{१ २ २}वेवि^१श्च^{२ २}स । जो^१र^{२ २}ष^१साः । दे^{१ २}वा^१र^२ । सा^१र^२३ःपौ । ति
मा^१र^२णा^१ता । मा^१र^२३दा^१यि । पू^१र^२सा । व^१धा^२र^२३ः । हा
उ^५वा३ । आ^५र^५३४सी(३) ॥ ६ * ॥ [५]

॥ ज^२रा^१बो^२धी^२यम् ॥ परि^१सु^{१ २}वो^१वा । नो^१गि^{२ २}रि^{१ २}ष्टाः । प^{२ २}वा
यि^२च^२र^१३सो । मो^२आ^{१ २}र^{१ २}क्षारात् ॥ (१) तु^{१ २}वंवि^{१ २}प्रो^{१ २}वा । तू^{१ २}व^{१ २}ङ्क
वा^{२ २}यिः । म^{२ २}ध^२प्रा^१र^१३जा । त^१म^१न्धा^{२ २}साः ॥ (१) तु^{२ २}वेवि^१श्चो

ममि
कर
दुहे

विप्र
मत्स
न्तर
सू०
तद्व

विप्र
हित
वच्चे
प्रस
कत्

सूत्र

शनि
वस्
प्रेति
वि
ण्य
ता
च्छ
सम
क
द्वा
सा
क
क
म
त्त
र
छ

१ १ २ १ २ १ २ १
वा । साजोषसाः । देवासाः^{२२}पौ । तिमाशाता । म

१ ४ ५ २ २
दायिषू^१सा^४र^५श्वा । धाः । असो^३३४^२५^२ई । डा(३)॥१८॥[६]

१ १ १ २
॥ सुहपोत्तरम् ॥ परितुवौ^१हो^१र । इया । नोगिरा

१ १ २ १
यिष्ठा^१रः । पवित्रे^{१२}सौ^१हो^{२२}र । इया । मोअ^१क्षारा^{२२}रत् ॥ (१)

१ १ १ १
तुवविप्रौ^१हो^१र । इया । तुव^१क्कावा^१रयिः । मधुप्रजौ^१हो^१र ।

१ १ १ २ १ १
इया । तमन्वासा^१रः ॥ (२) तुवेविश्वौ^{२२}हो^१र । इया । स

२ १ २ २ १ १
जोषासा^२रः । देवासा^२पौ^२हो^२र । इया । तिमाशाता^२र ।

२ १ १ २ १ १
मदेषु^२सौ^१हो^१र । इया । र्वधा^२आ^२र^२सा^२३४^२यि । ओ^१र^१३

४५^१ई । डा(३) ॥ ३१ ॥ [७]

२ २ २ २
॥ हाविशतम् ॥ हाउपरि^२स्त्रानो^२गिरि^२ष्ठा^२हाउ । प

१ २ २ १ २ ३ ५ २ २
वित्रे^१सो^२३ । मोअ^१क्षार^१३४^३रात् ॥ (१) हाउतुवविप्रस्तुव

१ २ १ २ ३ ५ २ २
क्कविर्हाउ । मधुप्रजा^१३ । तामन्वा^१३४^३साः ॥ (२) हाउ

* ज० गा० १२ प्र० १ अ० १८ सा० ।

† ज० गा० १४ प्र० १ अ० १३ सा० ।

र र र र २२ १२ २ १ २ ३
तुवेविश्वेसजोषसोह्वाउ । देवासःपौ३ । तायिमाशा२

^५ ३४ता । ऐ^२रहो^१ आ^२रयिहो^२ । मदा^१यिबू^२श्सा^२ । वधाः^{१२} ।

३ ५२२ २१ ३११११
 आ१सार३४औहोवा । इविमतेर३४पू३ ॥ ८ * ॥ [८]

॥ श्रामादम् ॥ परिशुवानरे । हीरेहीर ३४ या ।

गिरिष्ठाए^१रहीए^{१५२}रहीरया । पवित्रे^१सोमो^{१५२}अन्नरहै^१रहीए^१

२ १ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

विरैरहीरेरहीर्या । मधुप्रजातमन्धसरेरहीर्या ॥२॥

२१ ४२ २५
॥ दावसुनिधनम् ॥ परिसुवारश्नोगिरिष्ठाहाउ ।

१ २२२ २ १ २ १ २ २
पावित्रेसो । मोआश्वाशराश्त् । होवाश्हायि ॥ (१)

१ ४ ५ १ २२ १ २
तुवंवारश्यिप्रस्तुवङ्गविर्हाउ । माधुप्रजा । तमान्वा१

१ २ २ २ २२ ४२ २
सारश्ः । होवाश्हायि ॥ (२) तुवेवारश्यिश्चेसजोहाउ ।

१ २२ २ १ २ १ २ २ १
दायिवासःपौ । तिमाशाशतारश् । होवाश्हायि । म

२ १ २ २ १ २ ३
दायिपू१सारश् । होवाश्हा । वर्धाः । आ१सारश्४

५२ २ २ २२ २ १ १ १ १
औहोवा । ए३ । दावसू२३४५ (३) ॥ १० * ॥ [१०]

१ २२
॥ प्रतीचीनेडङ्गाशीतम् ॥ परिसुवानः । गा२यिरि

१ २२ २ २ १ ७ २२ २
ष्टाः । पावित्रेसो । मोआक्षराश्३४त् । हाहोयि ॥ (१)

१ २ १ २२ १ ७
तुवविप्रस्तु । वा२ङ्गवायिः । माधुप्रजा । तमान्वासा

५२ २ १ २ २ २ १
२३४ः । हाहोयि ॥ (२) तुवेविश्वस । जो२षसाः । दा

मरि
करा
दुहे

विप्र
मतर
न्तर
सू०
तद्व

तिप्र
हित
वचं
प्रस
कर्त

सु३

शं
वस्
प्रे
वि
ण्य
ता
अ
सं
का
द्वा
सां
क
क
भ
त
उ
६

र २ र १ ७ ३२ २ १ र २
यिवासःपी । तिमाशतार३४ । चाहोयि । मदेषुसार्वा
२ १ २ ४ ५ ४ ५
३धाः । असा । औ३होवा । ईडा(३) ॥ ११ * ॥ [११]

२ र र र र १ २
॥ हविष्कृतम् ॥ परिसुवानोगाहाउरायिष्ठाः । प

१ र २ २ २ र
वित्रेसो । मोआहारा३रात् ॥ (१) तुवंविप्रस्तुव^२हाउ
१ २ १ २ २ २
कावायिः । मधुप्रजा । तमन्वा२३साः ॥ (२) तुवेवि
२ र र १ २ २ २
असजोहाउषासाः । देवासःपायि । तिमाशार३ता ।
१ २ १ २ १ २ ५ र
मदा२हो३यि । पूर३सा । व३धाः । आ२सा२३४ औ
२ २ १ ३ १ १ १ २
होवा । हविष्कृते२३४५(३) ॥ १२ * ॥ [१२]

१ २ र १ र र २ २
॥ गौषूक्तम् ॥ परिसुवानोगौ । होहोवाहायि । रि
१ २ र र २ १ १
ष्ठाः । पवित्रेसोमऔ२ । ऊवायि । ऊवा२यि । ला
१ ३ १ र २ २ २
रा३त् ॥ (१) तुवंविप्रस्तुवौ । होहोवाहायि । कवायिः ।

* ऊ० गा० १५ प्र० १ अ० ११ सा० ।

† ऊ० गा० १५ प्र० १ अ० १२ सा० ।

मनि
कर
हुं

वि
मत
न्त
सू०
तद

ति
हि
वच
प्रस
क

सु:

श्री
व

५३

五

संज्ञा-सूत्रम्

10

1

मधुप्रजातमौ२ । ज्वायि । ज्वा२यि । धामा२ः ॥ (२)

^१तु^२वेवि^३श्वे^४सजौ । ^५हौ^६होवा^७हायि । ^८पसाः । ^९दे^{१०}वासः^{११}पी

^२तिमौ२ । ^१ऊवायि । ऊवा२यि । ^१शाता२ । ^{२२}मदेषुस

वर्धोर । ऊवायि । ऊवारयि । शातार । मदेषुस

व०धौ२। ऊ०वा०यि। ऊ०वा०र०यि। आ०सा०र०यि। हो०

३ ५२२ २१२२३ ११११
२वा२३४औहोवा । अग्निराज्जता२३४५ः(३) ॥ ७* ॥[१३]१७

ससुन्वे-इति-प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम्.

तत्र, प्रथमा ।

१ २ ३ १४ २४ ३ २ ३ १ २ १ १४ २४

सत्तुन्वेथोवसूनांयोरायामानेतायइडानाम् ।

५ ४ २ ७ ४ ५

सोमोयस्तुक्ष्मिनाम् ॥ १ ॥

“सः” सोमः “सुन्वे” अभिषुवे ऋत्विग्भिः, यः सोमः वसूनां धनानाम् “आनेता”, यश्च “रायां” रान्ति प्रयच्छन्ति क्षीरादि-कमिति रायो गावः तेषा मानेता, यश्च “इङ्गानाम्” अन्नानाञ्च, यश्च सोमः “सुक्ष्मिनीनां” सुनिवासानां शोभन-सनुद्य-युक्तानां गृहानाम् आनेता विद्यते, सोऽभिषुतोऽभूदिति ॥ १ ॥

* क० गा० १ प्र० २ अ० ७ सा० ।

† क० आ० ६, २, ४, ५ (२भा० २३३ पृ०) = सू० वी० ७, ५, १२, ३

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
यस्यतइन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
आयेन मित्रावरुणाकरामहण्ड्रमवसेमहे ॥ २ ॥ १८

हे सोम ! “यस्य” प्रसिद्धस्य “ते” तव रसम् “इन्द्रः”
“पिबात्” पिबति [पा पाने (भ्रा० प०), लेटगङ्गागमः]
“यस्य” यच्च सोमं “मरुतः” पिबन्ति, “वा” अपि च “वार्यमणा”†
एतन्नामकेन देवेन सह “भगः”‡ देवः “यस्य” यं सोमं पिबति,
“येन” सोमेन “मित्रावरुणा”॥ मित्रावरुणौ वयम् “आ
करामहे” अभिमुखीकुर्महे । तथा “महे” महते “अवसे”
रक्षणाय येन च सोमेन “इन्द्रम्” अभिमुखीकुर्महे, तं त्वाम-
भिषुणीमीत्यर्थः ॥ २ ॥ १८

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
॥ दीर्घम् ॥ सासू । न्वेयोवसू२३नाम् । योरा२
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
यामा२ । नेतायइडा२३नाम् । सो२३माः । यःसुक्षि

* ऋ० वे० ७, ५, १९, ४ ।

† सुपांसुलुगित्यात्वे (७, १, ३९) रूपम् ।

‡ “भगो व्याख्यातः (३, १६) । तस्य कालः प्रागुत्पन्नात् तत्क्षेपा
भवति— * * * । अन्वी भग इत्याहुः दुत्पन्नेन दृश्यते । प्राञ्चि मस्याक्षिणी
निर्जवानेति च ब्राह्मणं जनं गच्छतीति वा जनं गच्छत्यादित्य उदयेन”—इति
निर० ६० ६, १३-१४ ।

म
क
दुवि
म
न्त
सु
त
वि
हि
व
प्र
क

सु

श
व
प्रे
ति
प
त
उ
स
व
व
र
त

^१ तार३४^{५ ५}यिनोद्हायि ॥ (१) ^{१ २} सोमाः । ^१ यःसुक्षितार ३ यि

^२ नाम् । ^१ यास्या^१ रताई^२ र । ^२ द्रःपिवाद्यस्यमहूर^२ रताः । ^१ या

^१ स्या^२ रताई^१ र । ^२ द्रःपिवाद्यस्यमहूर^२ रताः । ^१ यार ३ स्या ।

^{१२ २ १२} वार्यमणाभा २३४^{५ ५}गोद्हायि ॥ (२) ^{१ २} यास्या । ^{१२ २} वार्यमणा

^२ भारश्गाः । ^१ आये^१ रनामी^१ र । ^{१२ २ २ १२} त्रावरुणाकरामारश्हा

^१ यि । ^१ आये^१ रनामी^१ र । ^{२ २ १२} त्रावरुणाकरामारश्हायि । ^१ आ

^२ रश्चिन्द्राम् । ^{१ २ २ १} अवसेमार३४^{५ ५}होद्हायि (३) ॥ ११* ॥ [१]

^{२ १ २ ४} ॥ सफम् ॥ ^{२ १ २ ४} ससुन्वेश्यः । ^{२ १ २ ४} वासूर३४नाम् । ^{२ १ २} योरा

^{२ १ २ २} यारम् । ^{२ १ २ ४} आनायिताश्याइः । ^{२ १ २ ४} इडा३२३ ४ नाम् । ^{२ १} सो

^१ नाः । ^{२ ४} याःसूश्शी३ । ^{२ १} ता३४^५यिनोद्हायि (१) ॥ १४* ॥ [२] ॥ १८

* क० गा० ३ प्र० २ अ० ११ सा० ।

† क० गा० २ प्र० १ अ० १४ सा० ।

तंव इति-तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् ;

तत्र, प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तंवः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिषु उन्नह्व्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥ १ * ॥

हे “सखायः” ऋत्विजः ! “वः” यूयं “मदाय” देवानां मदार्यं
“पुनानं” पूयमानं तं सोमम् “अभि गायत” अभिष्टुत । “तम्”
इमं सोमं “शिषु न” शिषुमिव अलङ्कारैः क्षीरादिभिश्च स्वादू-
कुर्वन्ति, तद्वत् “ह्व्यै” हविर्भिः मिश्रणैः “गूर्त्तिभिः” स्तुति-
भिश्च “स्वदयन्त” स्वादूकुर्वन्ति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सवत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।

३ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदोमतिभिः परिष्कृतः ॥ २ † ॥

“हिन्वानः” प्रेर्यमाणः “इन्दुः” सोमः वसतीवरीभिः
“समज्यते” सम्यक् सिक्तो भवति ‡ । तत्र दृष्टान्तः—“वत्स-

* ख० आ० ६, २, ३, ३ (२भा० २०८५०) = ऋ० वे० ७, ५, ८, १ ।

† ऋ० वे० ७, ५, ८, २ ।

‡ ‘इन्दुः हिन्वानः याज्यमानः, अज्यते अजं च प्रणि सनीप्रिभिः’—इति वि० ।

इदं वक्षी यथा “मादभिः”^{*} गोभिः समक्तो भवति, तद्वत् ।
 कीदृशः ? “देवावीः” देवानां रक्षकः, “मदः” मदकरः
 “मतिभिः” स्तुतिभिः “परिष्कृतः” अलङ्कृतः [भूषणार्थं “सम्प-
 युपेभ्यः (६, १, १३७) ”—इति सुङ्गागमः, “परिनिविभ्यः
 (८, ३, ७०) ”—इति सुटः षत्वम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
 अयन्दक्षायसाधनोयं शर्धायवीतये ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
 अयन्देवेभ्योमधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ १८

“अयं” सोमः “दक्षाय” बलाय वर्द्धनाय वा “साधनः”
 साधयिता भवति, तथा “अयं” सोमः “शर्धाय” बलाय “वीतये”
 देवानां भक्षणार्थं च भवति, “सुतः” अभिषुतः, “अयं” सोमः
 “देवेभ्यः” इन्द्रादिभ्यः “मधुमत्तरः” अतिशयेन माधुर्य-युक्तो
 भवति अत्यन्तं मदकरो भवतीति वा ॥ ३ ॥ १८

३ ३ ५ ३
 ॥ कार्णश्रवसम् ॥ तां३४वः । सार३४खा । सार

५ २ २ २ २ १ २ २ २ २
 ३४खा । योमदार३या । पूनानम । भिगायार३ता ।

* ‘मातृभिः—तृतीया-वज्रवचनमिदं चतुर्थी-वज्रवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम्’—इति वि० ।

→ ऋ० वे० ७, ५, ८, ३ ।

७अ० ६ख० ३सू० १, २, ३] उत्तराचिकः ।

७७

^{१ २ १ २ ३ २ १ २ २}
शायिगुनह । व्यःखदया२३ । तगूर्तिभा३४३यिः ॥ (१)

^{३ ५ २ ५ २ १ २ १}
सार३४व । त्सा२३४ई । वमातृ२३भायिः । आयिन्दु

^{२ २ २ १ २ १ २ १ २ १ २}
र्हिन्वा । नोअज्या२३तायि । दायिवावीर्मा । दोमति

^{१ २ ३ २ ३ ५ ३}
भार३यिः । परिष्कृता३४३ः ॥ (२) आ२३४यम् । दार३

^{५ २ १ २ २ १ २ २ १ २}
४शा । यसाधार३नाः । आय३शङ्गा । यवीता३४या

^{१ २ २ १ २ २ ३ २ २ १}
यि । आयन्देवे । भ्योमधुमाधतरः सुता३४३ः । ओ२३

४५ई । डा(३) ॥ १२ * ॥ [१]

^{२ २ १ २ २ १}
॥ सुज्ञानम् ॥ तंवःसखा । योमदाया । पुनाना]

^{२ १ २ १ २ १}
मा२ । भिगायता । शिगुन्नाच्चा२ । व्यैःख । दा

^{५ २ २ १ २ १ १ १ १ १}
२यार३४औहोवा । तगूर्तिभिरे३उपा२३४५(१) ॥ १० * ॥ [२]

* ऊ० गा० ३५० २अ० १२सा० ।

† ऊ० गा० ८५० १अ० १०सा० ।

म
क
दुवि
म
न्त
सू
तति
हि
व
प्र
क

स

श

व

प्रे

रि

प

र

र

र

र

र

र

र

र

र

॥ काशीतम् ॥ तंवः सखा । योमदारश्याः ४ । पु

नानमा । भिगायारश्याः ४ । शिष्टुन्नहा । व्यैः सुदयन्त

गू । ता रयि । भारश्याः ४ । औहीवा । ऊ रश्याः ४

पा(१) ॥ ११ ॥ [३] १८

सोमाः पवन्त इति-लचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् ;

तत्र, प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्द्रोऽस्रभ्यङ्गातुवित्तमाः ।३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मित्राः खाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥

“गातुवित्तमाः” अतिशयेन मार्गस्य लभकाः “इन्द्रवः”
दौताः “सोमाः” “पवन्ते अस्मभ्यम्” अस्मदर्थं क्षरन्ति आग-
च्छन्ति वा । कौटुशाः ? “मित्राः” देवानां सखिभूताः,
“खानाः” सुवानाः अभिषूयमाणाः “अरेपसः” पाप-रहिताः,
अतएव “स्वाध्यः” शोभेन-ध्यानाः “स्वर्विदः” सर्वज्ञाः स्वर्ग-
प्रापका वा ॥ १ ॥

* ऊ० गा० ८ प्र० १ अ० ११ सू० ।

† ऊ० आ० ६, २, १, ४ = (२ भा० १५८ पृ०) — ऋ० वे० ७, ५, २, ५ ।

अथ द्वितीया ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तेपूतासोविपश्चितःसोमासोदध्याशिरः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सूरासोनादर्शतासोजिगत्नवोध्रुवाधृते ॥ २ * ॥

“पूताः” पवित्रेण परिपूताः, “विपश्चितः” मेधाविनः,
“दध्याशिरः” दध्यामिश्रणाः, “धृते” वसतीवर्याख्ये उदके
“जिगत्नवः” गमन-शीलाः “ध्रुवाः” तत्र स्थिर्येण वर्त्तमानाः
“ते” “सोमासः” सोमाः “सूरासः न” सूर्या इव “दर्शतासः”
पात्रेषु सर्वदर्शनीया भवन्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सुष्वाणासोव्यद्रिभिश्चितानागोरधित्वचि ।

१ २ ३ १ २ ३ ० ३ १ २ ३ १ २

इषमस्रभ्यमभितःसमस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ‡ ॥ २०

“गोः” अनुदुहः “अधित्वचि” अधिषवण-चर्मणि “चिताना”
ज्ञायमाना “अद्रिभिः” ग्रावभिः विविधैः “सुष्वाणासः” स्तूय-
मानाः “वसुविदः” वसुनो लभकाः “एते” सोमाः अस्रभ्यम्

* ऋ० वे० ७, ५, ३, १ ।

† ‘दर्शतासः—सर्वस्य द्रष्टारः’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, ५, ६, २ ।

“इषम्” अन्नम् अभितः “समस्वरन्” सम्यक् शब्दयन्ति प्रय-
च्छन्तीति यावत्* ॥ ३ ॥ २०

म
क
ड

वि
म
न्त
सू
त
ति
हि
व
प्र
क

स

र

र

र

र

र

र

र

र

र

र

र

र

॥ गौरीवितम् † ॥ सोमाः । पवा३ । तइन्दवाः ।

अस्मभ्यङ्गातुवित्तमार३ः । मायितास्त्वाना३१२३ः । अ

रेप्रपसाः । सूवाधिया३१२३ः । सुवोवा । वाप्रयिदोई

हायि ॥ (१) तेपू । तासो३ । विपश्चिताः । सोमासो

दध्याशिरार३ः । सूरसोना३१२३ । दशाप्रतासाः । जा

यिगत्नवा ३ १ २ ३ः । ध्रुवोवा । घाप्रूर्तोदहायि ॥ (२)

सुष्वा । णासो३ । वियद्रिभायिः । चितानागोरधित्व

चार३यि । आयिषमस्मा३१२३ । म्यमाप्रभिनाः । सा

मस्वरा३१२३न् । वसोवा । वाप्रयिदोईहायि(३) ॥ १ ३ ३ ॥ [१]

* ‘समस्वरन्— उन्मादयन्’—इति वि० ।

† ‘महागौरीवितम्’—इति ख० पु० पाठः ।

‡ ऊ० गा० ३ प्र० २ अ० १६ सा० ।

॥ मधुश्चन्निधनम् ॥ सोमाः पवन्त इन्द्रवा इण । असु
 भ्यङ्गाश्तूवित्तमाः । हाश्हा । औश्होश्वा । आयिही
 २ । मित्रास्त्वानाश्चारेपसाः । हाश्हा । औश्हो
 श्वा । आयिही २ । ह्यवाधियाः । हाश्हायि । औ
 श्होश्वा । आयिही २ । सुवः । वारयिदारश्च औहो
 वा ॥ (१) तेषूतासो विपश्चिता इण । सोमासो दाश्धात्रा
 शिराः । हाश्हा । औश्होश्वा । आयिही २ । सू
 रासो नाश्दार्शतासाः । हाश्हा । औश्होश्वा । आ
 यिही २ । जायिगन्तवाः । हाश्हायि । औश्होश्वा ।
 आयिही २ । ध्रुवाः । घार्त्ताश्च औहोवा ॥ (२) सु
 घ्राणासो वियद्रिभाश्चिरे । चिताना गोश्चाधित्वचा ।
 हाश्हा । औश्होश्वा । आयिही २ । इषमस्माश्भ्या
 (११)

मा
क
डवि
म
न्त
सू
तरि
हि
व
प्र
क

स

प्र

द

द

द

द

द

द

द

द

^२मभिताः । ^२हा ^२हा । ^५औ^२हो^२वा । ^१आयिहो^१२ ।

^१साम^२खरा^२न् । ^२हा^२हायि । ^५औ^२हो^२वा । ^१आयिहो

^१२ । वसु । ^१वार^३यि^५दा^२२४औ^२हो^२वा । ^२मधु^१स्तु^३ता^१२४

^१प्रः(३) ॥ १४ * ॥ [२]

॥ वाङ्मनङ्गौच्चम् ॥ ^{२२}सो^१माः^२पा^५वा^३१२३४ । तइ ।

^{३२}दवा^२३ । ^२अ^१स्म^१भ्य^२ङ्गा^२३१२३४ । ^५तु^३वि । ^३तमा^२३ । ^३मि^१त्रा

^२स्त्वाना^५३१२३४ । ^{३२}अ^२रे । ^१पसा^२३ । ^१सु^२वा^२धी^२या^२३१२३४ ।

^४सु^१वा^१प्र^१वि^१दा^५उ ॥ (१) ^{१२}ते^१पू^५ता^३सो^३३१२३४ । ^३वि^३पः । ^३चि^२ता

^{२२}३ । ^२सो^५मा^३सो^३दा^२३१२३४ । ^५धि^३या । ^३शि^२रा^२३ । ^{२२}सू^१रा^१सो

^२ना^५३१२३४ । ^{३२}द^२र्श । ^२ता^२सा^२३ । ^२जि^५गा^३न्वा^२वा^२३१२३४ ।

^४ध्रु^२वा^२प्र^५धृ^३ता^३उ ॥ (२) ^{२१}सु^२घ्रा^५णा^३सो^३३१२३४ । ^३वि^३य । ^३द्रि^२भा

^{२२}३यिः । ^२चि^५ता^३ना^३गो^२३१२३४ । ^५अ^३धि । ^३त्व^२चा^२३यि । ^{२१}इ^१षा

मास्त्रा^२३१२३४ । भ्यम । भिता^५३ः । समास्त्रा^{३ २}३१२३

न । वसू^४पुविदाउ(३) ॥ १५ * ॥ [३]

५ २ २ ३ २ ४ ५ २ १ २ १
॥ ऐडकौच्चम् ॥ सोमाःपवन्तइन्दवाः । अस्त्राभ्यङ्गा ।

२ ३ २ १ २, ३ ५ २ २ १ २ २ १ २ १ २
तुवित्तमाः । मायित्वाओर^{२, ३}३४वा । खानाअरेपसा २ ३

१ १ २ २ २ १ २ १ २ ५ २ २ ३ २ २ २ २
४ पुः । सुवाधियाः । सुवर्वा^{२ १}२३यिदा^२३४३ः ॥ (१) तेपूतासो

३ ४ ५ २ २ १ २ २ १ २ २ २ १ ३ ५
विपश्चिताः । सोमासोदा । धियाशिराः । खराओ^{३, ४}२३

५ २ २ १ २ २ २ १ २ १ १ १ ३ २ १ २ १ २
४वा । सोनदर्शतासा^{२ २ १ २ १ १ १}२३४५ः । जिगन्वाः । ध्रुवाघा

२ ५ २ २ २ २ ३ ४ ५ २ १
२३र्त्ता^२३४३यि ॥ (२) सुघ्राणासोवियद्रिभायिः । चिता

२ २ १ २ ३ २ १ २, ३ ५ २ १
नागोः । अधित्वचायि । आयिषाओर^{२, ३}३४वा । अस्त्र

२ १ ३ १ १ १ १ २ २ १ २ १ २
भ्यमभितार^२३४५ः । समस्त्रान् । वसुवा^२२३यिदा^२३४३ः ।

१
ओर^१३४५ई । ई । डा(३) ॥ १६ † ॥ ४]

२ २ २ २ ४ ५ ५ २
॥ श्यावाश्चम् ॥ सोमा^{२ २}३१ः । पा३व । तइ । दा३

● क० गा० ३प्र० २अ० १५सा० ।

† क० गा० ३प्र० २अ० १६सा० ।

मा
क
डुमि
म
न्त
सु
त
मि
हि
व
प्र
व

^५ वः । ए^१हिया । आ । स्म^२भ्यज्जातू । वि । तमा^१रः ।
^{१२} ए^२हिया^२ । मि^२त्रास्स्व^२ाना^४आ^५इ^{२२}रे^५ । पा^५र^{२२}इ^५साः । ऐ
^{१२} ह्य^२र^२यि । ए^२हिया^२ । सु^२वा^२धि^२याः^४सू^२श्वा^२ः । वा^२इ^२४^२५^२यि
^५ दो^{२२}इ^२ह्या^२यि ॥ (१) ते^२पू^४इ^५ । ता^२ इ^५ सो । वि^५पः । चा^२ इ
^४ यि^५तः । ए^५हिया । सो । मा^२सो^२द^२धा^२यि । आ ।
^१ शि^{१२}रा^२रः । ए^२हिया^२ । सू^२रा^२सो^२ना^२दा^२इ^२र्मा^५इ^५ । ता^५र^५इ^५४^५साः ।
^{२२} ऐ^{१२}ह्य^१र^१यि । ए^१ह्य^१र^१यि । जि^१ग^१त्न^१वो^१ध्रू^१श्वा^१ः । घा^१ इ
^४ ४^५ ५^५ र्त्तो^२इ^२ह्या^२यि ॥ (२) सु^२घ्वा^२इ^२ । णा^२इ^२सो । वि^५य ।
^२ द्रा^४इ^५यि^५भिः । ए^५हिया । चा^१यि । ता^२ना^२गो^२रा । धि । त्व^२चा
^{१२} र^१यि । ए^१हिया^१ । इ^१ष^१म^१स्त्रा^१भ्या^१इ^१मा^१इ^१ । भा^५र^५इ^५४^५यि^५ताः ।
^{२२} ऐ^{१२}ह्य^१र^१यि । ए^१ह्य^१र^१यि । स^१म^१स्त्रा^१न्वा^१ इ^१ह्य^१इ^१ । वा^१ इ
^५ ४^५ ५^५ यि^५दो^५ इ^५ ह्य^५ यि^५ (३) ॥ १६ * ॥ [५]

॥ आन्धीगवम् ॥ सोमाःपवन्तश्चा१यिन्दावाः । अ
 स्मभ्यम् । गातूर३वा । ऊम्मा२१५२ । तमामित्रास्त्रा
 नाअरेपसा२३४५ः । सूवा३उवा । धी२याः । ह२उवा ।
 विदा । औ३होवा ॥ (१) तेपूतासोविपाश्चायिताः । सो
 मासः । दधार३वा । ऊम्मा२१५२ । शिरःसूरासोन
 दर्शतासा२३४५ः । जायिगा३उवा । त्ना२वो । ध्रू२३
 वाः । घृता । औ३होवा ॥ (२) सुघ्राणासोवियाक्ष्द्रा
 यिभायिः । चितानाः । गोरार३धा । ऊम्मा२१५२ ।
 त्वचीषमस्मभ्यमभिता२३४५ः । सामा३उवा । स्त्रा२रा
 न् । वा २३ह । विदा । औ३होवा । हो ५ ई ।
 डा(३) ॥ १७ * ॥ [६]

॥ निषेधम् ॥ सोमाःपवन्ता ३ इन्द्रवाः । अस्माभ्य

मा
क
डुभि
म
न्त
सु
तारि
हि
व
प्र
व

र

३
४
५

६

७

८

९

१०

११

१२

१३

१४

१५

^१ ^२ ^१ ^१ ^१ ^४ ^५ ^१
 ज्ञा । तुवित्तमा^२रः । इ^१हा^३ । मायिचा^४र^५स^१स्वानाः । हा^१
^३ ^३ ^१ ^१ ^१ ^१ ^४ ^५
 हो^३र^३४हा । अरेपा^१र^२३साः । इ^१हा^३ । सूवा^१३धीयाः ।
^२ ^१ ^५ ^३ ^४ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१
 हा^२हो^१र^५४हा । सुवा^३र्वा^४प्रयिदा^१६^५६ः ॥ (१) तेपू^१तासो
^१ ^२ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१
 वा^१रयिपश्चिताः । सोमा^२सोदा । धिया^१शिरा^१रः । इ^१हा^१
^१ ^२ ^४ ^५ ^२ ^३ ^५ ^२ ^१ ^२
 ३ । ह्यरा^१३सोना । हा^२हो^३र^५४हा । दर्श^१ता २ ३ साः ।
^१ ^१ ^२ ^४ ^५ ^२ ^३ ^५ ^३ ^२
 इ^१हा^३ । जायिगा^१३त्नावाः । हा^२हो^३र^५४हा । ध्रुवा^३र
^४ ^२ ^१ ^१ ^१ ^२ ^१
 घा^१प्र^२र्त्ता^३६^५६यि ॥ (२) सुष्वा^१णासोवा^२श्यद्रिभायिः । चि^१ता
^१ ^२ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^५
 नागोः । अधित्वचा^१रयि । इ^१हा^३ । आयिषा^१३मास्मा ।
^२ ^३ ^५ ^२ ^१ ^२ ^१ ^१ ^१ ^४
 हा^२हो^३र^५४हा । भ्यमभा^१र^२३यिताः । इ^१हा^३ । सामा^१३स्व
^५ ^२ ^३ ^५ ^३ ^२ ^४ ^३ ^१ ^१ ^१
 रान् । हा^२हो^३र^५४हा । वसू^१र्वा^२प्रयिदा^३६^५६ः । हे^३र^५४
^१
 पू^१(३) ॥ १८ * ॥ [७]

^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१ ^१
 ॥ कौ^१च्चाद्यम् ॥ सोमाः^२पवौ^१हो । ता^१इन्द्रवाः । अस्म

^{१ १ ४} भ्यङ्गा३ । ^{२ २ १ २ २} त्वाश्रयिताप्रमादप्रदः । मित्रास्वानौहो ।

^{२ २ १ २} आरेपसाः । ^{२ २} सुवाधिया३ः । ^{१ २ ४} सूवाश्रयिर्वाप्रयिदादप्रदः ॥ (१)

^{२ २ २ २ २} तेषूतासौहो । ^{२ २ १} वीपश्चिताः । ^{२ २ २ २} सोमासोदा३ । ^{१ २} धाआ३

^४ शाप्रयिरादप्रदः । ^{२ २ २ २ २} सूरामोनीहो । ^{२ १ २} दर्शतासाः । ^२ जिग

^{१ २ ४} त्वो३ । ^{२ २ १ २ २} भ्रूवाश्रयिताप्रमादप्रदयि ॥ (२) ^{२ २ १ २ २} सुष्वाणासौहो ।

^{२ २ १} वीयद्रिभायिः । ^{२ २ २} चितानागो३ः । ^{१ २ ४} आधाश्रयित्वाप्रचादप्र

^{१ १ २} यि । ^{२ २ १} इषमसौहो । ^२ भ्यामभिताः । ^१ समस्वरा३न् । वा

^{२ ४} सूवाप्रयिदादप्रदः (३) ॥ १ * ॥ [८]

^{४ २ १} ॥ यज्ञायज्ञीयम् ॥ ^{४ २ ४} सोमाऽप्रःप । वा ३ न्ता ३ इन्दा

^{४ १} वाः । ^{२ १ २ २} आत्मभ्यङ्गा । ^{१ १ २} तूवायित्ताशमाः । ^{१ २ १ २} मित्रास्वा ।

^{२ २ १} नाआर३रे । ^{२ २} ऊम्मायि । ^{१ २} पा३साः । ^{२ २} सूवाधियःसुवा३

^{२ २} विदाउ ॥ (१) ^{१ २} दास्तायि । ^{२ २ २} पूतासोविपश्चितःसोमासोदा ।

म
क
डभि
म
न्
सु
तति
ति
व
प्र
व

१

४

१

^{२ १ २ २ १ १ २ १}
धा३आशा३यिराः । सूरा३सः । नदा३र्शा । ऊम्मा

^{२ २ १ २ ३ २ १}
यि । ता३साः । जायिगत्त्वोध्वार्धुताउ ॥ (२) तायि

^{२ १ २ २ २ २ २ १ २ २}
सू । घ्राणासोव्यद्रिभिश्चितानागोः । आ३धायित्वा३चा

^{१ १ २ १ २ २}
यि । इषा३म । स्मभ्या३मा । ऊम्मायि । भा३यिताः ।

^{१ ३ २ १ १ १}
सामस्वरन्वसू३रविदाउ । वा३४पू(३) ॥ १४ * ॥ [८] २०

अथायापवेति-ट्चात्मकं पञ्चमं सूक्तम्,

तत्र, प्रथमा ।

^{३ २ ३ १ २ १ २}
अयापवापवसू३नावसूनि

^{३ १ २ ३ १ २ ३ १ २}
मा३श्चत्वइन्दोसरसिप्रधन्व ।

^{३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १}
ब्रधूश्चिद्यस्यवातीनजूतिं

^{२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २}
पुरुमेधाश्चित्तकवेनरन्धात् ॥ १ * ॥

हे सोम ! “अया” अनया “पवा” पवमानया “धारया”
“एना” एनानि “वसूनि” धनानि “पवस्व” क्षर [पवा—

* ऊ० मा० २३ प्र० १ अ० १४ सा० ।

† ऊ० आ० ६, १, ४, ८ (२ भा० १४२ पृ०) = ऋ० वे० ७, ४, २१, २ ।

पूज् पवने (क्वा० प०) “अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३, २, १७८)”
—इति विच् प्रत्ययः, आर्द्धधातुक लक्षणी गुणः, “सावेकाच
(६, १, १६८)”—इति तृतीयाया उदात्तत्वम्] । तथा हे
“इन्द्रो !” त्वं “मांश्चत्वे” मन्यमानानां चातके “सरसि” उदके
वसतीवर्याख्ये “प्रधन्व” प्रगच्छ । “यस्य” सोमस्य शोधने
सति “ब्रध्नश्चित्” सर्वेषां प्रज्ञापको मूलभूतो वा आदित्योऽपि
“वातः न” वायुरिव “जूति” विगं प्राप्तः सन् किञ्च “पुरुमेध-
श्चित्” बहुविध-यज्ञ इन्द्रोऽपि “तकवे” [तकतिर्गति-कर्मसु
पठितः (निघ० २, १४, ६८), अस्मादौणादिक उन् प्रत्ययः]
सोमं गच्छतु ; मद्यं “नरं” कर्मनेतारं पुत्रं “धात्” ददातु
प्रयच्छतु । स त्वं प्रधन्वेति पूर्वेणः सम्बन्धः ॥

“यस्य”—“अत्र”—इति पाठौ, “जूति”—“जूतः”—इति,
“धात्”—“दात्”—इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

उतनएनापवयापव

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

स्वाधिश्रुतेऽत्रवायस्यतीर्थे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ २

षष्ठिः सहस्रानैगुतोवसूनि

३ २ ३ १ २ ३ १ २

वृत्तन्नपक्वन्धूनवद्रणाय ॥ २ * ॥

मा
क
डुभि
म
न्
सु
तति
ति
व
प्र
व

हे सोम ! “उत” अपिच “अवाय्यस्य” सर्वैः अवणीयस्य तव “श्रुते” प्रसिद्धे [यद्वा, षष्ठ्यर्थे चतुर्थी श्रुत-शब्दस्य] “तीर्थे” स्थाने “नः” अस्माकं स्वभूते यज्ञे “एना” अनया “पवया” पूयमानया “धारया” अधिकं “पवस्व” क्षर । “नैगुतः” नीचीनं गन्तवे* [न शब्दायन्त इति निगुतः शत्रवः, तेषां हन्तृत्वेन सम्बन्धी] सोऽयं सोमः “षष्ठि” षष्ठि-सङ्ख्याकानि “सहस्रा” सहस्राणि “वसूनि” धनानि “रणाय” शत्रूणां जयार्थं धनवत् अस्मानकम्पयत् प्रायच्छदिति यावत् । कथमिव ? “वृक्षं न पक्वं” पक्व-फलं वृक्षं यथा कम्पयति फलार्थी, तद्वत् ॥२॥

अथ तृतीया ।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

महीमे अस्य वृषनाम प्रूषे

२ २ ३ १ २ ३ १ २

मांश्च त्वेवापृशनेवावधत्ने ।

१ २ ३ १ २ ३ २ २ २ ३

अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापा

२ ३ २ २ १ २ ३ २

मित्रांश्चापाचितो अचेतः ॥ ३ ॥ २१

“मही” महते प्रभूते “वृषनाम” [सुपां सुलुगिति (३, ३. ३६) सुपो लुक्] वृषनामनी वर्षण-नमने, शराणां वर्षणं, शत्रूणां नम-

* ‘नैगुतः—निगुतानां नितरां गोपितानाम्’—इति वि० ।

† सू० वे० ७, ४, २१, ४ ।

नम्, “इमे” एते द्वे कर्मणौ “अस्य” सोमस्य “शूषे” सुखकरे*
भवतः ; ये च कर्मणौ “मांश्चले” [अश्वनामैतत् (निघ० १, १४, १८)]
अश्वैः क्रियमाणे युद्धे† तत्साध्यत्वादु युद्धमिह गृह्यते] “वा”
अपिवा “पृश्ने” स्पर्शन-साध्ये बाहु-युद्धे “वधन्ने” शत्रूणां
हिंसन-शीले भवतः । साऽयं “निगुतः” नीचैः शब्दायमानान्
शत्रून् “अस्त्रापयत्” अस्त्रपत् अबधीदित्यर्थः । किञ्च
“स्नेहयत्” प्राद्रवयत् सङ्ग्रामाच्छत्रून् । अथ प्रत्यक्षः । हे
सोम ! स त्वम् “अमित्रान्” शत्रून् “अपाचेत” अपगमय ।
तथाच “अपाचितः” अग्नि-चयन मकुर्वतः नास्तिकांश्च‡ “इतः”
अस्मच्छकाशात् अपाचेत अपगमय [अञ्चतिर्गतिकर्मा (आ० प०)]
॥ ३ ॥ २१

॥ औष्टाद्यम् ॥ ^{२२ १२} औहोहायि । ^{१ २} अयोहायि । ^{१ २} पवा
^{२ २ २१ २} वस्त्रैनावह्वरन्नी । ^{५ २} औश्हायि । ^{१ २} इहा । ^{५ १ २} ईश्या । मा॥
^{१ २} श्वत्वइन्द्रोसरसिप्रधारन्वा । ^{२१ २} औश्हायि । ^{५ २ १} इहा । ^{२ २} ई३
^{२ २} या । मा॥ ^{१ २} श्वत्वइन्द्रोसरसिप्रधारन्वा । ^{२१ २} औ ३ हायि ।

* ‘शूषे—स्त्रापयामः, अथवा शूषे शीषणाय’—इति वि० ।

† ‘मांश्चले—संहनीयलाय’—इति वि० ।

‡ ‘अपाचितः—पतिता चेतना भवन्ति’—इति वि० ।

म
क
दुम
न
स
त
ति
ति
व
३
६

^{३ २} इहा । ^{५ २} ईश्या । ^१ ब्रध्नश्चिद्यस्यवातो नजूरतीम् । ^{२ २ २ १} औश्

^२ होयि । ^{३ २} इहा । ^{५ २} ईश्या । ^{१ २ २} पुरुमेधाश्चित्तकवेनरारक्षधा

^{५ २} त् । ^{३ २} औश्होयि । ^१ इहा । ^३ ईर । ^{५ २ २} यार३४ । ^{५ २ २} औहोवा ॥ (१)

^{५ २ २} औहोहायि । ^{१ २} उतोहायि । ^{१ २ २} नणनापवयापवार३खा । ^५ औ

^२ होयि । ^{३ २} इहा । ^{५ २} ईश्या । ^{१ २ २} अधिश्रुतेश्रवायियस्यतारप

^१ यिर्यायि । ^{५ २} औश्होयि । ^{३ २} इहा । ^{५ २} ईश्या । ^१ षष्ठिम्सह

^{२ २ २ २ १} स्नानैगुतोवस्त्र३नी । ^{५ २} औश्होयि । ^{३ २} इहा । ^{५ २} ईश्या । ^१ वृ

^{१ २ २ २ १} क्षन्नपक्कन्धूनवद्रणा३श्या । ^{५ २ २} औश्होयि । ^{३ २} इहा । ^{५ २} ईर ।

^३ यार३४ औहोवा ॥ (२) ^{५ २ २} औहोहायि । ^{१ २} महोहायि । ^२ मे

^२ अस्यवृषनामशूर३षायि । ^{५ २ १} औश्हायि । ^{३ २} इहा । ^{५ २} ईश्या ३

^{१ २ २ २ २ २ १} माश्चत्वेवापृश्ननेवावधार३त्रायि । ^{५ २ १} औश्हायि । ^{३ २} इहा ।

^{५ २} ईश्या । ^{१ २} अस्त्रापयन्निगुतस्त्रेहया३श्चा । ^{५ २ १} औश्होयि ।

इहा । इ^१श्या । अपामित्रा^१अपाचितो^१अचार^१श्रयिताः ।

औ^१श्होयि । इहा । इ^१र । या^१२३४ । औ^१होवा ।

ए३ । दौ^१दिहो^११(३) ॥ १७ * ॥ [१]

॥ इहवद्वासिष्ठम् ॥ औ^१होवा^१हा^१इ^१होयि । इहा ।

अथापवा । पवस्वै । नावसूना । मा^१श्चत्व^१आयि । दो

इसर । सिप्रधन्वा । ब्रध्नश्चिद्या । म्या^१इवा । तोनजू

तीम् । पुरुमेधाः । चित्तक । वा^१३४श्रयि । ना^१शरा^१५

न्वा^१इपुईत् ॥ (१) उत्तनए । ना^१इपव । यापवस्वा । अ

धि^१श्रुतायि । अवायि । यस्यतायि^१थायि । षष्ठि^१सहा ।

स्वा^१नैगु । तोवेसूनी । वृ^१क्षन्नापा । क^१धून । वा^१३४श्रत् ।

रा^१शणा^१पुया^१इपुई ॥ (२) म^१होमे^१आ । म्या^१इवृष । नाम

अ^१षायि । मा^१श्चत्वेवा । पु^१शने । वा^१वध^१त्रायि । अ

म
क
७मि
म
न
स
त
मि
म
व
१
२

१२ २१ २३४५ १२२२२ २ १
स्वापयात् । निगुतः । खेद्यच्चा । औहोवाच्चाश्चोयि ।

३२ १२ २१२ २ २ ४
इच्चा । अपामित्रात् । अपाचि । तोश्च । आश्चा

प्रयिताईपुद्ः(३) ॥ १० * ॥ [२]

२ २ १ १ २२ १
॥ वार्त्ततुम् ॥ अयापवोवा पावस्वना । वमूरश्च

२ १२ २ २१ २ १२१
नी । माश्चत्वइन्दोसरसि । प्रधाश्चन्वा । ब्रधश्चिद्य

२ १ २ ३ १ २ १
स्य । वा । तोनाजूश्चतीम् । पुरु । मायि । धाश्चि

१ ४ २ ५ २
त्ताकाश्च । वारश्चिनाश्च । राश्चधोईच्चायि ॥ (१) उत

१२ १ २२ १ २ १ २ २
नओवा । नापवया । पवारश्चस्वा । अधिश्चुतेश्चवायि

२१ २ १ २१२२१ २
य । स्यताश्चयिर्यायि । षष्टिश्चस्वानै । गू । तोवा

२ ५ १ २१ १ ४
सूश्चनी । वृक्षाम् । ना । पाक्नधूनाश्च । वारश्चद्रा

२ ५ २२ १ २ १ २२
श्च । णाश्चधोईच्चायि ॥ (२) मच्चौमओवा । स्यावृषना ।

१ २ १२ २२ २२ १ २
ममूरश्चपायि । माश्चत्वेवापृश्नेवा । वधाश्चत्रायि ।

१ २ २ १ २ १ २ ५ १
 अस्वापयन्निगुतः । स्वे । द्वायार३४च्चा । अपा । मा
 २ १ १ ४ २
 यि । त्रा^५अपाचार३यि । तो२३आ३ । चा३४५यितो
 ५
 ६च्चायि(३) ॥ १* ॥ [३] २१

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य सप्तमस्याध्यायस्य

षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ सप्तम-खण्डे—

प्रथमतश्चेत्, प्रथमा ।

२ ३ २ ३ १ २ २ २ ३ २ २ ३ २ २ ३ २ २
 अग्ने त्वन्नो अन्तमउतत्राताशिवोभुवोवरूथ्यः ॥ १ ॥ ‡

हे “अग्ने !” “वरूथ्यः” वरणीयः सम्भजनीयः । यद्वा, वरूथ्यैः
 परिधिभिर्वृतः त्वं “नः” अस्माकम् “अन्तमः” अन्तिकतमः “भुवः”
 भव । “उत” अपिच “त्राता” रक्षकः “शिवः” सुखकरश्च भव ॥
 “भुवः”—“भवः”—इति पाठौ ॥ १ ॥

* ऊ० गा० २३प्र० २अ० १सा० ।

† ‘यज्ञायज्ञियमग्निष्टोभसाम’—इति वि० ।

‡ ऊ० आ० ५, २, २, २ (२भा० ८८८ प्र०) = ऋ० वे० ४, १, १६, १ ।

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
 वसुरग्निर्वसुश्रवाअक्षानक्षिद्युमत्तमोरभिन्दाः ॥ २* ॥

“वसुः” वासकः “अग्निः” सर्वेषामग्रणीः “वसुश्रवाः” व्याप्तान्तस्त्वं† “अक्ष” आभिसुख्येन “नक्षि” अस्मान् व्याप्नुहि । “द्युमत्तमः” अतिशयेन दोषिमान् त्वं “रयिं” पश्वादि-लक्षणं धनं “दाः” अस्मभ्यं देहि ‡ ॥

“द्युमत्तमः”-“द्युमत्तमम्”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 तन्त्वाशोचिष्ठदौदिवःसुन्नायनूनमीमहेसखिभ्यः ॥ ३॥ २२

हे “शोचिष्ठ” अतिशयेन शोचिष्मन् ! “दौदिव” स्वतेजोभिर्दीप्साम्ने ! “त” “त्वा” त्वां “सुन्नाय” सुखाय [सुन्नमिति सुखनामैतत् (निघ० ३, ६, १७)] तदर्थं “सखिभ्यः” समान-ख्यातिभ्यः पुत्रेभ्यः § सुखार्थञ्च “नूनम्” “ईमहे” याचामहे ॥ ३ ॥ २२

* ऋ० वे० ४, १, १६, २ ।

† ‘वसुश्रवाः’—अग्नेन धनेन च सम्पन्नः—इति वि० ।

‡ ‘रयिन्दाः’—रयिं धनं ददातीति रयिन्दाः,—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ४, १, १६, ४ ।

§ ‘सखिभ्यः’—ऋत्विगभ्यः—इति वि० ।

^२ तार३माः । ^{१५ २२} रयौ३हो । ^{२२ २} वाहा३४यि । ^१ आ२३४यिन्दो
^५ ईहायि ॥ (२) ^{२२} तन्वा३४ । ^२ शोचिष्टदीदिवः । ^५ ओ३वा ।
^{२ १२} सुन्नाया२नू । ^१ नारमायि । ^२ मार३हायि । ^{१५ २२} सखौ३हो ।
^{२२ २} वाहा३४यिईहायि(३) ॥ १५ * ॥ [२] २२

अथ द्वितीय-तृचैः—

प्रथमा ।

^{३ २३} इमानु३कम्भुवना३सीषधेमेन्द्र३स्यविश्वेचदेवाः ॥ १३ ॥

“इमा” इमानि परिदृश्यमानानि भुवनानि “नु” क्षिप्रं
 “सीषधेम” साधयेम वशीकरवाम । “कम्”—इति पूरकः
 [यद्वा, इमानि सर्वाणि भूतजातानि अस्मभ्यं कं सुखं सीषधेम
 साधयन्तु ; पुरुषव्यत्ययः (३, १, ८५)] । “इन्द्रश्च” “विश्वे” सर्वे
 अन्ये “देवाः च” स्तुत्या प्रीत्या “इमम्” अर्थम् साधयन्तु ॥

“सीषधेम”—“सीषधाम”—इति पाठौ ॥ १ ॥

* ऊ० गा० १२ प्र० २ अ० १५ सू० ।

† ‘गौतमस्य भद्रम्’—इति वि० । सामैतद्वृत्तगानस्य ।

‡ ऊ० आ० ५, २, २, ६ (भा० ८० २ पृ०)=ह० वे० ८, ८, १५, १ ।

अथ द्वितीया ।

१ १ २ ३क १२ ३१ २ ३१२ १२ ३१ २

यज्ञञ्चनस्तन्वञ्चप्रजाञ्चादित्यैरिन्द्रःसहसौषधातु ॥२*॥

“नः” अस्माकं “यज्ञ” ज्योतिष्टोमादिकञ्च यागं “तन्व” शरीरञ्च “प्रजां” पुत्रादिकाञ्च “आदित्यैः” अदिति-पुत्रैः अन्यै-
र्देवैः सह वर्त्तमानः “इन्द्रः” “सौषधातु” साधयतु ॥

“सहसौषधातु”-“सहचौकपानि”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १७ १ १ १ ३१ २ ३१ २ ३१ २

आदित्यैरिन्द्रःसगणोमरुद्भिरस्मभ्यम्भेषजाकरत् ॥३†॥२३

“आदित्यैः” अदिति-पुत्रैः मित्रादिभिः “मरुद्भिः” च
“सगणः” गण-सहितः “इन्द्रः” “अस्माकम्” अस्मभ्यम् “भेष-
जानि” ओषधानि “करत्” करोतु ॥

“भेषजाकरत्”-“भूत्ववितातनूनाम्”—इति पाठौ ॥३॥२३

* ऋ० वे० ८, ८, १५, २।

† ऋ० वे० ८, ८, १५, ३।

अथैकगर्गात्मकं सूत्रं प्रवोर्चीपेति, चतुरक्षरात्मिका*

काविदियमृशूपा ; यथा बह्वृचानां

“भद्रन्नोअपिवातयमनः”—इत्येक

एव पाद ऋगात्मकश्च

तद्वत् १० ॥

^१ ^{२२}
प्रवोर्चीप ॥ १ ॥ २४

हे ऋत्विग्यजमानाः ! “वः” यूयम् “उप” समीपे “प्रार्च”
प्रकर्षणेन्द्रं पूजयत ॥ १ ॥ २४

^{२१} ^२ ^३
॥ उदङ्शपुत्रम् ॥ प्रवाः । आयिन्द्रायवृत्रहान्तमा
^२ ^१ ^२ ^२ ^२ ^१ ^२
२३या । वायिप्रायगायङ्गाश्थाश्ता । याञ्जुजौवाश् ।
^२ ^१ ^१ ^१
उप । षाऽरतोऽऽपुहायि ॥ (१) अर्चा । ताचर्कम्मरु

* वस्तुतस्तु “प्रवोर्चीप”—इति नैषा चतुरक्षरात्मिका ऋक् प्रत्युत इन्द्रयार्चिक-
श्रुतायाः “प्रवइन्द्रायवृत्रहन्तमाय (५, १, १० । १भा० ८२५४०)” —इत्यस्याः प्रतीकं
“प्रवः”—इति, किञ्च “अर्चन्त्यर्कमयतःसर्का (५, १, १, ८ । १भा० ८२४४०)” —इत्यस्याः
प्रतीकम् “अर्च”—इति, तथैव “उपप्रक्षेमधुमतिक्षिप्तः (५, १, १, ८ । १भा०
८२३४०)” —इत्यस्याः प्रतीकम् “उप”—इति, एवमेव सम्पन्नं “प्रवोर्चीप”
—इति, कङ्कगान-द्वितीयप्रपाठकान्तिमसुदंश पुत्रनाम (१००४०) सामैवात्र बह्वृचानां
मन्थथा तस्य मूलौभूत-द्वचस्यालाभ एव सर्वथा स्यात् । अन्यथाप्यदर्शनात् ।

† ‘उदङ्शपुत्रोऽक्तावाकसाम । “प्रवइन्द्राय”—“अर्चन्त्यर्कम्”—“उपप्रक्षे”—
एषस्तु च ऋक्सिका-भाष्ये उक्तार्थः—इति वि० ।

ताःसुवारश्कर्काः । आस्तोभतिश्रुतोऽयूश्वा । सआश्उ
वाश् । उप । आऽरयिन्द्रोऽपुहायि ॥ (२) उपा । प्रा
क्षेमधुमतायिज्ञिया २३न्ताः । पूष्येमरयिन्वाऽइम्माश्वा
यि । तआ ३ उवा ३ । उप । आऽ २ यिन्द्रो ३ पु
हायि(३) ॥ १८ * ॥ [१] २४

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य सप्तमस्याध्यायस्य
सप्तमः खण्डः † ॥ ७ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थाश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ७ ॥

॥ इति चतुर्थस्यार्द्धः प्रपाठकः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्तक-श्रीवीर-
बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण
विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे
उत्तराग्रन्ये सप्तमोऽध्यायः ‡ ॥ ७ ॥

* क० मा० ३प्र० २अ० १८सा० ।

† 'षष्ठमहः समाप्तः । षष्ठ्यवच्छेदः समाप्तः'—इति वि० ।

‡ 'इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमार्द्धः'—इति वि० पदकारादिसप्तम्यसम्मतम् ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्गमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ ८ ॥

॥ अथाष्टमाध्यायप्रारम्भते * ॥

तत्र,

प्रकाव्यमिति प्रथमे खण्डे—

द्वादशर्चः[†] प्रथमे सूक्ते—

प्रथमा ।

१ २२ ३ १ २ ३ २

प्रकाव्यमुशनेवब्रुवानो

३ २ ३ १ ३ १ २

देवोदेवानाञ्जनिमाविवक्ति ।

१ २ २ १ २ २ २

महिव्रतःशुचिवन्धुःपावकः

३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २

पदावराहोअभ्येतिरेभन् ॥ १ ‡ ॥

“उशनेव” एतन्नामक ऋषिरिव “काव्यं” कवि-कर्म स्तोत्रं
“ब्रुवाणः” उच्चारयन् “देवः” स्तोता “देवानाम्” इन्द्रादीनां
“जनिमा” जन्मानि “प्र विवक्ति” प्रकर्षेण ब्रवीति [वच परि-

* ‘इदानीं कन्दोसा वक्तव्यः । ते च तयः यूढञ्ज्यस्काबुधुमः प्रतिपदो भवन्ति
त्रिष्टुभां लोकजगत्यः जगतीनां गायत्र्याः । ब्राह्मणेन ऋषय उक्ताः—इति वि० ।

† ‘प्रकाव्यमुशनेव ब्रुवाण इति द्वादशर्चोभवति । चतुर्विंशस्तौमिकश्चेदमहः’
—इति वि० । द्वादशर्चः खण्डइति यावत् ।

‡ क० छा० ६, १, ४, २ (१ भा० १०९४०) = ऋ० वे० ७, ४, १२, २ ।

भाषणे (अदा० प०) व्यत्ययेन विकरणस्य स्तः (३, १, ३६),
 “बहुलच्छन्दसि (७, ४, ७८)”—इत्यभ्यासस्येत्वम्], “महि-
 व्रतः” प्रभूतकर्मा, “शुचिबन्धुः” [वध्नन्ति शत्रूनि बन्धूनि
 तेजांसि बलानि वा] दीप्ततेजस्कः, “पावकः” पापानां शोधकः,
 “वराहः” वरश्च तदहश्च वराहः [“राजाहः सखिभ्यष्ट्च
 (५, ४, ६१)”—इति टच् समासान्तः ; तस्मिन्नहनि अभिषूय-
 माणत्वेन तद्दान् ; अर्थ आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् (५, २, १२७)]
 तादृशः सोमः “रेभन्” रेभनं शब्दं कुर्वन्, “पदा” पदानि
 पात्राणि “अभ्येति” अभिगच्छति ; यद्वा, यथा कश्चन वराहः
 पदा पादेन भूमिं विक्रममाणः शब्दं करोति तद्वत् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२३ २ ४ १ २ ३ २७ ३

प्रद्वसासस्तृपलावगुमच्छा†

२७ ३ १ २

मादस्तवृषगणात्रयास्तुः ।

३ २३ १ २ ३ १ २

अङ्गोषिणः स्यवमानसखायो

३ १ २ ३ १ २ २ ३ २

दुर्मर्षवाणमप्रवदन्तिसाकम् ॥ २ § ॥

● “तृपलं”—इति

† “मन्युम्”—इति

‡ “आङ्गूष्य”—इति

॥ “साकं प्रवदन्ति वाणम्”—इति च

} ऋ०-पाठाः ।

§ ऋ० वे० ७, ४, ११, २ ।

“हंसासः” शत्रुभिर्हन्वमाना हंसा इव आचरन्तो वा*
 “वृषगणाः” एतन्नामका ऋषयः† “अमात्” शत्रूणां बलात्
 तासिताः सन्तः “तृपला” तृपलं [सुपां सुलुगिति सीराकारा-
 देशः (७, १, ३६) । तृपल-शब्दः क्षिप्र-वाची, तदुक्तं यास्क्येन
 —“तृप्रप्रहारी क्षिप्रप्रहारी (निरु० नै० ५, १२)”—इति]
 क्षिप्रं प्रहारिणः‡ “वग्नुम्” अभिषव-शब्दम्¶ “अच्छ” अभि-
 लक्ष्यः§ “अस्तं” यज्ञगृहं “प्रायासुः” प्रायासिषुः प्रगच्छन्ति ।
 ततः “सखायः” स्तुत्य-स्तोतृत्व-लक्षणेन सम्बन्धेन सखिभूताः
 स्तोतारः “अङ्गोषिणं” सर्वैरभिगन्तव्यं॥ [यद्वा, अङ्गोषिणं
 स्तोत्रार्हं], “दुर्धर्मं” शत्रुभिः दुर्धरं दुःसहम् ; एवंविधं
 “पवमानं” सोमम् उद्दिश्य “वाणं” वायुविशेषं** “साकं” सहैव
 “प्र वदन्ति” प्रवादयन्ति तदुपलक्षितं गानं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

* ‘हंसासः—आदित्य-रश्मयः’—इति वि० ।

† ‘वृषगणाः—सेनार. सङ्घाताः’—इति वि० ।

‡ तृपला—लोक-वधस्य, पालकाः—इति वि० । “सोमो वेन्द्री वा”—इति
 निरु० नै० ५, १२ ।

¶ ‘वग्नु’—बलम्—इति वि० ।

§ ‘अच्छ—आप्तम्’—इति वि० ।

॥ ‘अङ्गोषिणम्—उप दाने दीप्तौ च * * * दीप्तं सोमं’—इति वि० ।

** ‘वाणं—वाहित-विशेषम्, यथा वाणस्य शततन्त्रिकस्य जायते शब्दः तद्वत्
 सोमस्य जायमानस्य सद्धान् शब्दः’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३
सयोजत*उरुगायस्यजूतिं

३ १ २ ३ १ २ ३
वृथाक्रीडन्तम्मिमतेनगावः ।

३ १ २ ३ १ २ ३
परीणसङ्कृणुतेतिगमशृङ्गो

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
दिवाहरिर्दृश्येनक्तमृजः ॥ ३ ॥

“सः” सोमः “उरुगायस्य” बहुभिः स्तुत्यस्य आत्मनः
“जूतिं” गतिं॥ “योजते” युनक्ति अन्तरिक्षे प्रेरयति । “वृथा
क्रीडन्तम्” अनायासेन विहरन्तं गच्छन्तं सोमं “गावः” अन्यो
गन्तारः “न मिमते” न परिच्छिदन्ति मातुं न शक्नुवन्तीत्यर्थः ।
किञ्च “तिग्मशृङ्गः” [शृङ्गवन्ति हिंसन्ति तमांसौति शृङ्गाणि
तेजांसि] तीक्ष्ण-तेजस्कः “परीणसं” [बहुनामैतत् (निघ० ३,
१, ७) बहुविधं तेजः] “कृणुते” करोतु अन्तरिक्षे वर्त्तमानो
यः सोमः “दिवा” अहनि “हरिः” हरितवर्णः “दृश्ये” दृश्यते

* “सरंसत” — इति ऋ० पाठः ।

† ऋ० वे० ७, ४, १२, ३ ।

‡ ‘उरुगायस्य—बहुविधस्य गानस्य’ — इति वि० ।

॥ ‘जूतिं—प्रतिशब्दम्’ — इति वि० ।

§ ‘परीणसं—परि समन्ताद् गावो नीयन्ते परीणसः, तम्’ — इति वि० ।

न प्रकाशत इत्यर्थः, “नक्त” रात्रौ तु “ऋजः” ऋजुगामी*
विष्यष्टः प्रकाशयुक्तो दृश्यते† ॥ [दृष्टे—दृष्टेः कर्मणि लिटि
रूपम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

२ ४ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रस्नानासोरथाइवार्वन्तो नश्रवस्यवः ।

१ २ ३ १ २

सोमासोरायेअक्रमुः ॥ ४३ ॥

“स्नानासः” अभिषव-वेलाया सुपरवेष्णा शब्दं कुर्वन्तः
“सोमासः” सोमाः “रथा इव” यथा शब्दं कुर्वन्तो रथाः तथा,
“अर्वन्तो न” यथा शब्दं कुर्वन्तो अश्वाः तथा, “श्रवस्यवः”
शत्रुभ्यः सकाशादवमिच्छन्तो “राये” यजमानानां धनाय
“प्राक्रमुः” प्रगच्छन्ति ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

३ २ ४ १ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विन्वानासोरथाइवदधन्विरेगभस्योः ।

१ २ ३ १ २

भरासःकारिणामिव ॥ ५ § ॥

* ‘ऋजुः—ऋ गतौ नक्तज्ञो भवति’—इति वि० ।

† ‘एतदुक्तं भवति—दिवाभिषिक्तः सोमो रात्रिपर्यायेषु पुनर्निषिच्यते, योऽभि-
षवं करोति तस्यायं दोषः सम्पद्यते’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३४ ।

§ यूपस्य गतां उपरवा उच्यन्ते । तद्विधायकहेतुत्वात् कात्यायन-सूत्रम्—“दक्षि-
णस्थानसोऽधः प्रउगं खनत्युपरवानभ्यादि करोत्यवटवदिति (८, ४, १५)” । यथा
यूपस्यावटः क्रियते तथावायुपरवानां कांस्यतुरो गर्तानभिस्वीकारं सारभ्यं परिलेखनं
पूर्वकं कुर्यादिति च तदर्थः ।

§ ऋ० वे० ६, ७, ३४ ।

“रथाइव” युद्धदेशं प्रति यथा रथाः तथा* “हिन्वानासः”
यागदेशं प्रति गच्छन्तः† सोमाः ऋत्विजां “गमस्त्वोः” बाह्वीः
“दधन्विरे” धीयन्ते । तत्र दृष्टान्तः—“भरासः” भराः “कारि-
णामिव”‡ यथा भारवाहानां बाह्वीर्धीयन्ते तद्वत् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
राजानोनप्रशस्तिभिः सोमासोगोभिरञ्जते ।

३ २३ ३ २३ १ २
यज्ञोनसप्तधातृभिः ॥ ६ ॥

“सोमामः” सोमाः “प्रशस्तिभिः” प्रशस्ताभिः स्तुति-
रूपाभिः वाग्भिः “राजानो न” यथा राजानः§ “सप्तधातृभिः”॥
सप्त-होताभिः “यज्ञो न” यथा च यज्ञः तथा “गोभिः” गोवि-
कारैः पयोभिः “अञ्जते” अज्यते संस्क्रियत इति ॥ ६ ॥

* ‘रथाइव—गमन-समावाः’—इति वि० ।

† ‘हिन्वानासः—पूयमानाः’—इति वि० ।

‡ ‘कारिणाम् इव—कारिणः रथ-वाहकाः अथवा भराः सङ्ग्रामाः सङ्ग्राम-कारिणः’
—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ६, ७, ३४ ।

§ ‘राजानो न—न शब्द उपसर्गार्थः राजान इव, राजानो यथा प्रशस्तिभिः
बन्धन्ते सेव्यन्ते तद्वत् सोमासः गोभिरिज्यते; उदकैः क्षीरैर्वा’—इति वि० ।

॥ ‘सप्तधातृभिः—सप्त षषट्कारिणो सप्त धातारः अथवा सप्त ऋत्विजिंसि सप्त
धातारः’—इति वि० ।

अथ सप्तमी ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परिस्नानासइन्द्रवोमदायवर्हणागिरा ।

१ २ ३ १ २
मधोअर्षन्तिधारया ॥ ७ * ॥

“स्नानासः” सुवानाः अभिषूयमाणाः “इन्द्रवः” सीमाः
“वर्हणा” महत्या “गिरा” स्तुतिरूपया वाचा युक्ताः सन्तः
“मदाय” मदार्थं “मधोः” मधुर-रसस्य “धारया” “परि अर्षन्ति”
परितो गच्छन्ति ॥

“परिस्नानासः”—“परिसुवानासः”—इति पाठौ, “मधोः”
—“सुताः”—इति च ॥ ७ ॥

अथ अष्टमी ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आपानासोविवस्वतोजिन्वन्तउषसोभगम् ।

२ ३ २ ३ १ २
सूराअण्ववितन्वते ॥ ८ † ॥

“विवस्वतः” दीप्तिमतः इन्द्रस्य “आपानासः” आपानभूताः
“उषसः” “भगं” शोभां “जिन्वन्तः” प्रेरयन्तः “सूराः” सरन्तः‡

* ऋ० वे० ६, ७, ३४ ।

† ऋ० वे० ६, ७, ३८ ।

‡ ‘सूराः’—सूर्योदय दीप्तिमतः—इति वि० ।

सोमाः “अथर्वं वि तन्वते”* अभिषव-वेलाया सुपरवेषु शब्दं
कुर्वन्ति ॥

“जिन्वन्तः”-“जनम्”—इति पाठौ ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

१ ३ १ २ ३ २ २ १ २ ३ १ २
अपद्वारामतीनाम्प्रत्नाऋण्वन्तिकारवः ।

२ २ १ २ ३ १ २
वृष्णोहरसआयवः ॥ ८ ॥

“मतीनां कारवः” स्तुतीनां कर्त्तारः “प्रत्नाः” पुराणाः
“वृष्णः” सेचकस्य सोमस्य “हरसः”† आहर्त्तारः “आयवः”
मनुष्याः ऋत्विजः “द्वारा” यज्ञस्य द्वाराणि “अप ऋण्वन्ति”
विवृण्वन्ति ॥ ८ ॥

अथ दशमी ।

३ १ २ २ १ २ ३ १ २
समीचीनासआशतहोतानःसप्रजानयः ।

२ १ २ २ २ ३ १ २
पदमेकस्यपिप्रतः ॥ १० ॥

* ‘अथर्वं वितन्वते—सूक्तं वितानं कुर्वन्ति’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, ३५ ।

‡ “हरसः”—इति तु ऋग्वेदीयर्द्धः, सामवेदीयसु “हरसे”—इति, पद-ग्रन्थे
तथैव दर्शनात्, व्याख्यातञ्चैवमेव विवरणकृतापि—‘हरसे दौर्गम्ये’—इति ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, ३५ ।

“समीचीनासः” समीचीनाः* “जानयः” जाति-सदृशाः
 “एकस्य” सोमस्य “पदं” स्थानं “पिप्रतः” पूरयन्तः “सप्त
 होतारः”† यज्ञे “आशत” व्याप्नुवन्ति ॥

“आशत”-“आसत”—इति पाठौ, “जानयः”-“जामयः”
 —इति च ॥ १० ॥

अथैकादशी ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
 नाभानाभिन्नआददेचक्षुषासूर्यन्दृशे ।

३ १ २ २ ३ १ २

कवेरपत्यमादुहे ॥ ११ ॥

“नाभि” यज्ञस्य नाभिभूतं सोमं “नः” अस्माकं “नाभा”
 नाभौ अहम् “आददे” सोमं पीत्वा नाभि-स्थाने करोमीत्यर्थः ।
 किमर्थम् ? “चक्षुषा” “सूर्यं” “दृशे” द्रष्टुम् । किञ्च, “कवेः”
 क्रान्त-कर्मणः सोमस्य “अपत्यम्” अंशम् “आ दुहे” आ
 पूरयामि ॥

“चक्षुषासूर्यन्दृशे”—“चक्षुश्चिसूर्यंसचा”—इति पाठौ ॥ ११ ॥

* ‘समीचीनासः—समीचीन-गुणाः सोमाः’—इति वि० ।

† ‘होतारः—देवानामाकातारः । सप्त जानयः—सप्त जनाः, वषट्कारिणः—
 होता, मित्रावरुणः, ब्राह्मणाच्छसी, पोता, नेष्टा, अच्चावाकः, आग्नीध्र इति’
 —इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३५ ।

¶ ‘कवेः अपत्यम् आदुहे—कविर्मेधावी ब्राह्मणः तस्यापत्यत्वं गच्छति सोमः, तेन
 निष्पादितत्वात् । आदुहे दुहते दशपविवात् सोमम्’—इति वि० ।

अथ वादशी ।

^{३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २}
अभिप्रियन्दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहाहितम् ।

^{१ २ ३ १ २}
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ * ॥ १

“सूरः” सुवीर्यः इन्द्रः “चक्षसा” चक्षुषा “दिवः” दीप्तस्य
आत्मनः “प्रियं पदम्” अध्वर्युभिः “गुहा” गुहायां हृदये “हितं”
निहितं पीतं सोमम्[†] “अभि पश्यति” ॥

“प्रियम्”-“प्रिया”—इति पाठौः ॥ १२ ॥

^{२ २ २ २ १ २ ३}
॥ पार्थम् ॥ ओ३हो३होयि । प्रकावियाम् । उ३
^{२ २ ४ ४ २ २ १ २ १ २ ३ ४}
ने । वज्रवाणाः । देवो देवा । ना३ञ्जनि । माविव
^{४ २ १ २ १ २ ३ ४ ५ २ २ १}
त्ती । मद्भिन्नताः । शुचिव । धूःपवाकाः । पदावरा ।
^{२ १ २ २ ४}
हो३अभि । आ३४३यि । ती३रा ५ यिभा ६ ५ ईन् ॥ (१)
^{२ १ २ २ ३ ४ ५ २ २ १}
प्रह्सासाः । तपला । वग्ममच्छा । अमादस्ताम् ।
^{२ १ २ ३ ४ ५ २ २ १ २ १ २}
वृषग । णाअयामूः । अङ्गोषिणाम् । पवमा । न३

* ऋ० वे० ६, ७, ३५ ।

† ‘गुहायां द्रोणकलशे हितं सोमाख्यं पदम्’—इति वि० ।

‡ “चक्षसा”—“चक्षुषा”—इति च बोध्यम् ।

^{३ ४ ५} सखायाः । ^{२ १} दुर्मर्षेवा । ^{२ १} णाश्मप्रव । ^२ दाश्४३ । ^{२ ४} तीश्सा

^{२ २ १} पूकाईपूईम् ॥ (२) ^{२ १ २} सयोजनायि । ^{२ ३ ४ ५} उरुगा । ^{२ २ १} यस्यजूतीम् ।

^{२ २ १ २} वृथाक्रौडा । ^२ जा ३ म्निम । ^{२ ३ ४ ५} तेनगावाः । ^{२ २ १} परीणसाम् ।

^{२ १ २} कृणुते । ^{२ ३ ४ ५} तिग्मशृङ्गाः । ^{२ २ २} ओश्होश्होयि । ^{२ १} दिवाहरा

^{२ १ २} यिः । ^२ दृष्टशे । ^{२ ४} नाश्४३ । ^{२ ४} क्ताश्मापूत्राईपूईः (३) ॥ ५* ॥ [१]

^{२ २ २} ॥ वाराहम ॥ ^{२ १ २} हाउहाउ । ^{२ १ २} ऊप । ^{२ १ २} प्रकावियाम ।

^{२ १ २} उशने । ^{२ ३ ४ ५} वज्रवाणाः । ^{२ २ १ २ २} देवोदेवा । ^{२ १} नाश्चनि । ^{२ ५} मा

^{४ ४ ५} विवक्ती । ^{२ १} महिब्रताः । ^२ शुचिवाश् । ^{२ ३ ४ ५} धूपवाकाः । ^{२ २ २} पदा

^२ वरा । ^{२ १} हो ३ अभि । ^२ आ ३ ४ ३ यि । ^{२ ४} तीश्रापुयिभाई

^{२ १ २} ४ ईन ॥ (१) ^{२ १ २} प्रहसासाः । ^{२ ३ ४ ५} तृपला । ^२ वयुमच्छा । ^२ अ

^{१ २} मादस्ताम् । ^{२ १} वृषग । ^{२ ३ ४ ५} णाअयासूः । ^{२ १ २} अङ्गोषिणाम् ।

^२ पवमा । ^{२ ३ ४ ५} नसखायाः । ^{२ १} दुर्मर्षेवा । ^{२ ० १} णाश्मप्रव । ^२ दा

३४३ । ती३सा५का६५ईम् ॥ (२) सयोजतायि । उरू
 गा । यस्यजूतीम् । वृथाक्रीडा । ताश्मिम । तेन
 गादाः । परीणसाम् । कृणुते । तिग्मशृङ्गाः । चाउ
 हाउ । ऊप् । दिवाहरायिः । ददृशीना३४३ । क्ता
 श्मा५र्जा६५ईः (३) ॥ १६ * ॥ [२]

॥ प्रवङ्गार्गवम् ॥ प्रकावियाम् । उशनेवा । ब्रू
 र्वाणाः । देवोदेवा । नाञ्जनिमा । वारयिवक्तायि ।
 महिब्रताः । शुचिवन्धः । पारवाकाः । पदावरा ।
 होअभियायि । ती३रेभा३नाउ ॥ (१) प्रच्च०सासाः ।
 तृपलावा । मूर्मच्छा । अमादस्ताम् । वृषगणाः ।
 आ३र्यासूः । अङ्गोषिणाम् । पवमानाम् । सा३खा
 याः । दुर्मर्षवा । णंप्रवदाः । ती३साका३श्माउ ॥ (२)

^{२२१}सयोजतायि । ^{२१२}उरुगाया । ^{१२}स्याऽजूतीम् । ^{२२ १२}वृथाक्कीडा ।

^{२१}तन्मिमते । ^{१२}नारिगावाः । ^{२२१}परीणसाम् । ^{२१२}कृणुतेतायि ।

^१ग्माऽष्टगाः । ^{२२१}दिवाहारायिः । ^{२१२}ददशेना । ^{१२}क्ताऽमृज्रा

^{११११}३१३ । वार३४५ः(३) ॥ ३ * ॥(३)

॥ कुत्ससारथीयम् ॥ ^{३ ५}हो४वा । ^{३ २}उज्जवा३ । ^{४ ५}होवा ।

^{२१२ २१}प्रकावियाम् । ^{२१२}उशने । ^{२३४ ५}वब्रुवाणाः । ^{२२१२ २२}देवोदेवा । ^२ना

^१श्ञ्जनि । ^{२ ३४ ५}माविवक्त्री । ^{३ २१}महिब्रताः । ^{२१}शुचिब । ^{२ ३}धूःप

^{४ ५}बाकाः । ^{२१२ २१}पदावरा । ^{२ १}हो३अभि । ^{२ ३४ ५}ऐतिरेभान् ॥(१) प्र

^{१ २२१}हृत्सासाः । ^{२१२}तृपला । ^{२३४ ५}वग्नुमच्छा । ^{२१२ २१}अमादस्ताम् । ^{२१}वृष

^{२ ३४ ५}ग । ^{२१२ २१}णायत्रासूः । ^{२१२}अङ्गेषिणाम् । ^{२ ३४}पवमा । ^{२ ३४}नत्सखा

^५याः । ^{२१२१}दुर्नर्षवा । ^{२ १}णा३प्रव । ^{२ ३४ ५}दन्तिसाकाम् ॥(२) स

^{१ २१}योजतायि । ^{२१२}उरुगा । ^{२ ३४ ५}यस्यजूतीम् । ^{२१२ २२१}वृथाक्कीडा । ^२ता

१ २ ३ ४ ५ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ ४ ५ २ ३ ४ ५ २
 इमिम । तेनगावाः । परीणसाम् । कृणुते । तिम
 ४ ५ २ १ २ ३ १ २ ३ ४ ५ २
 गृह्णाः । दिवाहरायिः । ददृशे । नक्तमृज्जाः । हो४
 ५ ३ २ ४ ५ ५
 वा । उज्जवा३ । होवा६हाउवा(३) ॥ ६* ॥ [४] १

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य अष्टमस्याध्यायस्य

प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे —

असृग्रमिति द्वादशर्चः† प्रथमं सूक्तम् ;

तत्र, प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 असृग्रमिन्दवः पथाधर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।

३ १ २ ३ १ २
 विदाना अस्य योजना ॥ १ ‡ ॥

“अस्य” अनेन यजमानेन कृतान् “योजना” तद्देवता-
 योग्यान् सम्बन्धान् “विदानाः” जानन्तः “सुश्रियः” शोभन-
 अयणाः “असृग्रम्” हविर्दानात् सृज्यन्ते ॥

“योजना”-“योजनम्”—इति पाठौ ॥ १ ॥

* ज० गा० २३प्र० २अ० ६सा० ।

† “द्वितीयो द्वादशर्चः”—इति वि० खण्डः—इति यावत् ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, २८ ।

अथ द्वितीया । .

१४ ३ १ १ ३ २ ३ १ १ १ २ २

प्रधारामधोअग्रियोमहीरपोविगाहते ।

३ २ ३ १ २ १ १

हविर्हविःषुवन्द्यः ॥ २ ॥

“हविःषु” हविषां मध्ये “वन्द्यः” स्तुत्यः “हविः” हवि-
दात्मकः यः सोमः “महीः” महतीः “अपः” वसतीवरीः “वि-
गाहते”, तस्य “मधोः” सोमस्य “अग्रियः” सुख्या धाराः प्रपत-
न्तीत्यर्थः ॥

“मधोः”--“मध्वः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ १ १ ३ १ २ २ १ १ २ २

प्रयुजावाचोअग्रियोवृषोअचिक्रददने ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २

सद्माभिसत्योअध्वरः ॥ ३ ॥

“अग्रियः” हविषां मध्ये सुख्यः सोमः “युजाः” युक्ताः
“वाचः” प्रकरोतीत्यर्थः । एतदेव दर्शयति—“वृषः” ॥ कामानां
वर्षकः “सत्यः” सत्यभूतः “अध्वरः” हिंसा-वर्जितः सोमः

* “हविषु”—इति ख० ग० पु०-पाठः ।

† ख० वे० ६, ७, २८ ।

‡ ख० वे० ६, ७, २८ ।

॥ “वृषोअचिक्रदत्”—इति मूलस्य “वृषः”, “अचिक्रदत्”—इति छेदमवलम्ब्य
आचष्टे साधणः, परमेष पदग्रन्थ-विरुद्धः तत्र “वृषा”, “उ”, “अचिक्रदत्”—इति
छेद-दर्शनात् ; अतएव विवरणकार आह—“वृषा सेक्ता, उ इति पदपूर्णाः”—इति ।

“सद्य” यज्ञगृहं “अभि” प्रति “वने” उदके अचिक्रदत् शब्दं
करोतीत्यर्थः ॥

“वृषोअचिक्रदत्”—“वृषावचक्रदत्”—इति पाठौ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

२ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
परियत्काव्याकविर्नृम्णापुनानोअर्षति ।

१२ ३ १ २
स्वर्वाजीसिषासति ॥ ४ * ॥

“कविः” क्रान्तकर्मा सोमः “नृम्णा” नृम्णानि बलानि[†]
“पुनानः” शोधयन् “काव्या” काव्यानि कवि-कर्माणि स्तोत्राणि
“यद्” यदा “परि अर्षति” परिगच्छति, तदा “स्वः” स्वर्गे
“वाजी” बलवान् अन्नवान्वेन्द्रः[‡] “सिषासति” यागं प्रत्यागन्तुं
स्वकीयं बलं सम्भक्तुमिच्छति ॥

“पुनानः”—“वसानः”—इति पाठौ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१२ ३ २३ ३ २ ३ १ २
पवमानोअभिसृधेविशोराजेवसीदति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
यदीमृण्वन्तिवेधसः ॥ ५ † ॥

* ऋ० वे० ६, ७, २८ ।

† ‘नृम्णा धनेन’—इति वि० ।

‡ ‘वाजी’—वेगवान्, अथवा चरुपुरोडाशादि-लक्षणेनाग्निं नान्नवान् स्वर्गलीकं
यजमानस्य साधयति—इति वि० ।

¶ ऋ० वे० ६, ७, २८ ।

“यद्” यदा “ईम्” एनं* सोमं “वेधसः” कर्मणां कर्त्तारः
 ऋत्विजः† “ऋण्वन्ति” प्रेरयन्ति, तदा “पवमानः” चरन्नेष सोमः
 “सूधः” स्पृष्टमानान् याग-विघ्नकारिणः राक्षसादीन् “अभि
 सौदति” नाशयितुमभिगच्छति । तत्र दृष्टान्तः—“विशः
 राजा इव” यथा राजा विशः स्पृष्टमानान् मनुष्यान् नाशयितु-
 मभिगच्छति तद्वत् ॥ ५ ॥

अथ प्रष्टी ।

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २

अव्यावारेपरिप्रियो हरिर्वनेषु सौदति ।

३ १ २ ३ १

रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

“हरिः” हरितवर्णः “प्रियः” देवानां प्रियतम एव सोमः
 “वनेषु” उदकेषु‡ सम्पृक्तः “अव्याः” अवेः “वारे” बाले “परि
 सौदति” किञ्च “रेभः” अभिषव-वेलायाम् उपरवेषु शब्दं
 कुर्वन् “मती” मत्वा स्तुत्या॥ “वनुष्यते” सेव्यते ॥ ६ ॥

* ‘ईम्’—इति पदपूर्णाः—इति वि० ।

† “वेधाः”—इति मेधावि-नामसु निघण्टौ दृश्यते (३, १५)

‡ “अव्यो”—इति ऋ०-पाठः ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, २८ ।

§ ‘वनेषु उदकेषु सौदति, अथवा वनेषु काष्ठमयेषु द्रोणकलशेषु पक्ष्मससादिषु
 सौदति’—इति वि० ।

॥ ‘मती’—बुद्ध्या ऋत्विज्यमानानाम्—इति वि० ।

अथ सप्तमी ।

२ ३ १२ २२ ३ १ २ १ १२ २२
सवायुमिन्द्रमश्विनासाकम्मादेनगच्छति ।

२ ३ १ २ ३ १ २
रणायोअस्यधर्मणा* ॥ ७ १ ॥

“यः” यजमानः “अस्य” सोमस्य “धर्मभिः”‡ कर्मभिः
क्रयणाभिषवादिभिः “रण”॥ रमते, “सः” यजमानः “वायुम्,”
इ, न्द्रम्,” “अश्विना” अश्विनौ च “मदेन” “साकं” सह
“गच्छति” प्राप्नोति ॥ ७ ॥

अथाष्टमी ।

२ ३ १२ २२ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
आमित्रेवरुणेभगेमधोःपवन्तर्ज्मयः§ ।

३ १ २ ३ १ २
विदानाअस्यशक्नभिः ॥ ८ ॥

* “धर्मभिः”—इति ऋ० पाठः ।

† ऋ० वे० ६, ७, २८ ।

‡ धर्मभिरिति ऋग्वेदीयपाठमवलम्ब्यैवेदं प्रतीक-ग्रहणं व्याख्यानञ्च ; विवरण-
द्वयाख्यातन्तु सामवेदीयम् तथाहि—‘धर्मणा कर्मणा’—इति ।

॥ “रणाः” दीर्घान्तश्रुतिः “रणाचीऽतस्तिष्ठः (६, ३, १३५)”—इति तच्च दीर्घः ।

§ “सिवावरुणाभगंसध्वः”—इति ऋ०-पाठः ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, २८ ।

येषां यजमानानां “मधोः” सोमस्य “जर्मयः” तरङ्गाः
 “मित्रावरुणा” * मित्रावरुणौ देवौ “भग”† भगाख्यं देवञ्च
 प्रति “पवन्ते” चरन्ति, ते यजमानाः “अस्य” सोमस्य इदं
 सोमं “विदानाः” जानन्तः “शक्नभिः” सुखैः‡ सङ्गच्छन्त इति
 शेषः ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

३ १ २ ३ २ ७ ३ १ ९ ३ १ ९
 अस्रभ्य॑ ॒रोदसी॑रयि॒मध्वो॑वाजस्यसातये ।

२ ३ १ २ ३ १ २
 अ॒वोव॑सू॒निसञ्जित॑म् ॥ ९ ॥

हे “रोदसी” व्यावाष्टिभ्यो ! युवां “मध्वः” देवानां माद-
 यितुः “वाजस्य” सोमात्मस्यान्नस्य “सातये” लाभाय§
 “अस्रभ्य” “रयि” धनं “अवः” अन्नञ्च॥ “वसूनि” वास-
 कान्यन्यान्यपि पश्वादीनि “सञ्जितं” सञ्चयन्तः** प्रयच्छत-
 मित्यर्थः ॥ ९ ॥

*, † ऋग्वेदीयपाठादुसारेणेदं प्रतीकग्रहणम् । विवरणकृता तु सुष्ठूच्यते—
 ‘मित्रे, वरुणे, भगे-सप्तम्येकवचनं चतुर्थ्येकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम्, मित्राय, वरुणाय,
 भगाय’—इति ।

‡ ‘शक्नभिः—शक्तेः कर्मभिः’—इति वि० ।

¶ ऋ० वे० ६, ७, ९८ ।

§ ‘सातये—दानार्थम्’—इति वि० ।

॥ अवः—अन्नं यशो बलं वा’—इति वि० ।

** ‘संयतं—सम्यक् यतम्’—इति वि० ।

अथ दशमी ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आतेदक्षमयोभुवंद्विहमद्यावृणीमहे ।

२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमापुरुस्पृहम् ॥ १० * ॥

हे सोम ! यष्टारो वयं “ते” तव स्वभूतं “दक्षं” बलम्
“अद्य” न अस्मिन् यागदिने “आ” आभिसुख्येन “वृणीमहे”
सम्भजामहे । कीदृशम् ? “मयोभुवं” सुखस्य भावकम् “द्विह”
धनादीनां प्रापकम् “पान्तं” शत्रुभ्यो रक्षकम् “पुरुस्पृहं”
बहुभिः स्पृहणीयं कामानाम् ॥ १० ॥

अथैकादशी ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आमन्द्रमावरेण्यमाविप्रमामनीषिणम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमापुरुस्पृहम् ॥ ११ † ॥

हे सोम ! “मन्द्र” मदकरं स्तुत्यं वा त्वाम् “आ वृणीमहे”
“वरेण्यं” सर्वैर्वरणीयं सम्भजनीयञ्च ; किञ्च “विप्र” मेधाविनं
त्वां तथा “मनीषिण” मनसईषा मनीषा तद्वन्तं स्तुतिमन्तं
वा त्वामावृणीमहे [प्रत्येकं विशेषणापेक्षया आ-इत्युपसर्गः

* ङ० आ० ६, १, २, १ (२ भा० ५६ पृ०) = ऋ० वे० ७, २, ६, ३ ।

† सूत्रे तु “निपातस्य च (६, २, १३६)” — इति दीर्घान्तः “अद्या” — इति ।

‡ ऋ० वे० ७, २, ६, ४ ।

कतः* ; किञ्च “पान्तं” सर्वेषां रक्षकम् “पुरुस्पृहं” बहुभिः
स्पृहणीयं च त्वां सम्भजामहे ॥ ११ ॥

अथ दादशी ।

२ ३ १६ १२६ २३ १ २ ३२
आरयिमासुचेतुनमासुक्रतोतनूष्वा ।

२ २ १ २ ३ १ २
पान्तमापुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥ २

हे “सुक्रतो” शोभन-प्रज्ञ सोम ! त्वदीयं “रयिं” धनम्
वयम् “आ”‡ वृणीमहे । किञ्च, “सु चेतुनम्” [चिती
सज्ज्ञाने (म्वा० प०) भावे औणादिक उन प्रत्ययः]
सुज्ञानञ्च । किञ्च “तनूषु” अस्मत्पुत्रेषु च धनं सुज्ञानञ्च त्वम्
“आ” विधेहि यद्वा पुत्रार्थं वयमावृणीमहे । तथा “पान्तं”
सर्वस्य रक्षकं “पुरुस्पृहं” बहुभिर्यष्टृभिः काम्यमानं त्वां सम्भजा-
महे ॥ १२ ॥ २

इति सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रयस्य अष्टमस्याध्यायस्य

द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

* विवरणकारस्त्वन्यथैव याचष्टे—‘आमस्म—आनुपूर्वेण मन्द्रं बलम्’—इति,
‘आवरेणम्—आभिसुख्येन वरेण तत्’—इति, ‘आवप्रम्—अतिशयेन विपश्चितम्’
—इत्यादि च ।

† ऋ० वे० ७, २, ६, ५ ।

‡ अत्रायन्यथा व्याख्यानं विवरणकृता—‘आरयिम्—आभिसुख्येन धनवन्तम्’
—इत्यादि ।

॥ ‘उक्तं बहिष्यमानम्’—इति वि० ।

अथ तृतीय-खण्डे, *प्रथम-दृष्टे—

प्रथमा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
मुद्धानन्दिवो अरतिमृथिव्या

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
वैश्वानरमृतआजातमग्निम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविः सम्राजमतिथिञ्जनाना

३ १ २ १ २ ३ २
मासन्नः पात्रञ्जनयन्तदेवाः ॥ १ ॥

“मुद्धानं” शिरोभूतं, कस्य ? “दिवः” द्युलोकस्य, “मृथिव्या”
प्रथितायाः भूमिः “अरति” गन्तारम् [यद्वा, गन्तव्यं स्वामिनं],
“वैश्वानरं” विश्वेषां नराणां सम्बन्धिनम्, “ऋते” [ऋतमिति
सत्यस्य यज्ञस्य वा नाम (निघ० ३, १०, ६) । निमित्त-सप्तम्येषा
(२, ३, ३६ वा०)] ऋतनिमित्तम् “आ” आभिमुख्येन जातं सृष्ट्या-
दावुत्पन्नं “कवि” क्रान्तदर्शिनं “सम्राजं” सम्यग्राजमानं
“जनानां” यजमानानाम् “अतिथिं” हविर्वहनाय सततं
गन्तारं [यद्वा, अतिथिवत् पूज्यम् “आसन्” आसनि [द्विती-
यार्थं सप्तमी (३, १, ८५), अग्नि-लक्षणेनास्येन हि देवा हवींषि
भुञ्जते] “नः” अस्माकं “पात्रं” पातारं रक्षकं वैश्वानरमग्निं

* ‘ददानीमाव्यानि’—इति षि० ।

† ङ० आ० १, २, २, ५ (१ भा० १०४ पृ०) = घ० वे० ७, २४ = ऋ० वे०
४, ५, ८, १ ।

“देवाः” स्तोतारः ऋत्विजः देवा एव वा “आ जनयन्”
यज्ञाभिमुख्येन अजीजनन् अरण्योः सकाशात् उदपादयन् ॥

“आसन्नः पात्रम्”-“आसन्नापात्रम्”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ २२ ३ १ २ ३
त्वाविश्वे अमृतजायमानं

२ ३ २ ३ २ ३ १२ २२
शिष्टुन्नदेवा अभिसन्नवन्ते ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३
तवक्रतुभिरमृतत्वमायन्

१२ २ ३ २ ३ १२ २२
वैश्वानरयत्पित्रोतदीदे ॥ २ * ॥

हे “अमृत” मरण-रहिताग्ने ! “विश्वे देवाः” स्तोतारः
“जायमानम्” अरण्योः सकाशात् उत्पद्यमानं त्वां “शिष्टुं न”
पुत्रमिव “अभि सं नवन्ते” अभिसंस्तुवन्ति [यद्वा, दीव्यन्तीति
देवा रश्मयः ते सर्वे जायमानं त्वामभिसन्नवन्ते अभिगच्छन्ति,
यथा पितरः पुत्रमभि गच्छन्ति], अपि च हे वैश्वानर अग्ने !
“यद्” यदा “पित्रोः” पालयित्रोः द्यावा-पृथिव्योर्मध्ये “अदीदेः”
दीप्यसे, तदानीं “तव” त्वदीयैः “क्रतुभिः” कर्मभिः ज्योतिष्टो-
मादिभिर्यागैः “अमृतत्वम्” देवत्वम् “आयन्” यजमानाः प्राप्नु-
वन्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां

३ १ २ ३ २ ३ १ २ २
महामाहावमभिसन्नवन्त ।

३ २ क २ २ २ १ २
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां

२ १ २ ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य केतुञ्ज नयन्त देवाः ॥ ३ * ॥ ३

“नाभिं यज्ञानां”†, “सदनं रयीणां” धनानां स्थानमेक-
नित्यं, “महां” महान्तम् “आहावम” आह्वयन्ते अस्मिन्नाहुतय
इत्याहावः तादृशं [यद्वा, वृद्ध्युदक-धाराणामाहाव-स्थानीय मेव-
भूतम्] अग्निम् “अभि सं नवन्त” स्तोतारः सम्यक् स्तुवन्ति ।
तथा “वैश्वानरं” विश्वेषां नराणां सम्बन्धिनम् अध्वराणां
यज्ञानां “रथ्यं” रथिनं, यथा रथी स्व-रथं नयति तद्वन्नेतारं
रंहितारं गमयितारं‡ “यज्ञस्य” “केतु” प्रज्ञापकम्॥ एवं-
विधमग्निं “देवाः” स्तोतार ऋत्विजो देवा एव वा§ “जन-
यन्त” जनयन्ति मय्यनेनोत्पादयन्ति ॥ ३ ॥ ३

* ऋ० वे० ४, ५, ८, २ ।

† ‘नाभिं यज्ञानां—प्रधानभूतं सदनम्’—इति वि० ।

‡ ‘रथ्यं—रथभूतं रंहणीयं वा’—इति वि० ।

॥ ‘केतु’—ध्वजम्’—इति वि० ।

§ ‘देवाः—दानवन्त ऋत्विजः’—इति वि० ।



अथ द्वितीय-लृचे—

प्रथमा ।

११ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ २

प्रबोमित्राय गायतवरूणाय विपागिरा ।

१ २ ३ २ ३ २

महिच्छत्रावृतम्बृहत् ॥ १ * ॥

हे मदीया ऋत्विजः ! “वः” यूयमित्यर्थः । “मित्राय”
 “वरूणाय” “विपा” व्याप्तया “गिरा” स्तुत्या “गायत” स्तुतिं
 कुरुत [स्तुत्या स्तुतेत्येतत् पाकं पचतीतिवत्] । हे “महिच्छत्रौ”
 प्रभूत-बली युवाम् “ऋतं” यज्ञं† “बृहत्” महत् अपि प्रशस्तं
 स्तुत्यर्थमागच्छतमिति शेषः [अथवा “महत्” प्रभूतम् “ऋतं”
 स्तोत्रं शृणुतमिति शेषः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

सम्राजाया घृतयोनी मित्रश्चोभावरूणश्च ।

३ २ ३ १ २ ३ २

देवादेवेषु प्रशस्ता ॥ २ ‡ ॥

“या” यौ “मित्रश्च” “वरूणश्च” [परस्परापेक्षया च-शब्दः]
 “उभा” उभौ “सम्राजा” सम्राजानौ सर्वस्य स्वामिनौ “घृतयोनी”

* ऋ० वे० ४, ४, ६, १ ।

† ‘ऋतं सत्यम्’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ४, ४, ६, २ ।

उदकस्योत्पादको “देवा” द्योतमानौ “देवेषु” मध्ये “प्रशस्ता”
प्रकर्षेण स्तुत्यौ तौ स्तुत्या गायतेति पूर्वत्रान्वयः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तानः शक्तमार्थिवस्य महोरायो दिव्यस्य ।

१ २ ३ २ ३ १ २
महिवाङ्मन्त्रदेवेषु ॥ ३ * ॥ ४

“ता” तौ देवौ “नः” अस्मदर्थं “पार्थिवस्य” पृथिवी-सम्ब-
द्धस्य “दिव्यस्य” दिविभवस्य च “महः” महतः “रायः” धनस्य
“शक्त” समर्थम्, भवतं दातुमिति शेषः । हे देवौ ! “वा”
युवयोः “महि” महत् पूज्यं “मन्त्र” बलं देवेषु प्रसिद्धं, स्तुत-
इति शेषः ॥ ३ ॥ ४

अथ तृतीय-तृचे—

प्रथमा ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रायाहिचित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
अण्वीभिस्तनापूतासः ॥ १ † ॥

“चित्रभानो” हे विचित्र-दीप्ते “इन्द्र !” अस्मिन् कर्मणि
“आयाहि” आगच्छ । “सुताः” अभिषुताः “इमे” सोमाः

* अत्रैव पुनः ६, २, ११, १=८० वे० ४, ४, ६, ९ ।

† य० वे० २१, २=८० वे० १, १, ५, ४ ।

“त्वायवः” त्वां कामयमाना वर्त्तन्ते । “अण्वीभिः” * [अङ्गुलि-
नामैतत् (निघ० २, ५, २)] ऋत्विजा मङ्गुलिभिः सुता
इत्यन्वयः । किञ्च, ते सोमाः “तना” नित्यं “पूतासः” शुद्धाः
ऊर्णा-पवित्रेण शोधितत्वात् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ १२ ३२ ३ १२ १२ ३ १२

इन्द्रायाहिधियेषितोविप्रजूतः सुतावतः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

उपब्रह्माणिवाघतः ॥ २ * ॥

हे “इन्द्र !” त्वम् “आयाहि” अस्मिन् कर्त्तव्ये आगच्छ ।
किमर्थम् ? “वाघतः” [ऋत्विङ्नामैतत् (निघ० ३, १८, ३)]
ऋत्विजः “ब्रह्माणि” वेद-रूपाणि स्तोत्राणि “उप” एतुम् ।
कीदृशस्त्वम् ? “धिया” अस्मदीयया प्रज्ञया “इषितः” प्राप्तः,
अस्मद्भक्त्या प्रेरित इत्यर्थः । “विप्रजूतः” यथा यजमान-भक्त्या
प्रेरितः तथान्यैरपि विप्रैः मेधाविभिः ऋत्विग्भिः प्रेरितः ।
कीदृशस्य ? “वाघतः ?” “सुतावतः” अभिषुत-सोम युक्तस्य ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रायाहितूतुजानुपब्रह्माणिहरिवः ।

३ १ २ ३ १ २

सुतेदधिघ्नश्चनः ॥ ३ ‡ ॥ ५

* ‘अण्वीभिः—सूक्ष्माभिः वीथिभिः’—इति वि० ।

† ऋ० वे० १, १, ५, ५ ।

‡ ऋ० वे० १, १, ५, ६ ।

[हरि-शब्दः इन्द्र-सम्बन्धिनोरश्वयोर्नामधेयम् “हरी इन्द्रस्य,
लोहितोऽग्नेः (नि० १, १५, १-२)”—इति तदीयाश्व-नामत्वेन
पठितत्वात्] हे “हरिवः” अश्व-युक्तेन्द्र ! त्वं “ब्रह्माणि” आनेतुम्
“आ याहि” । कीदृशस्त्वम् ? “तूतुजानः” त्वरमाणः । आगत्य
च अस्मिन् “सुते” सोमाभिषव-युक्ते कर्मणि “नः” अस्मदीयं
“चनः” [अन्न-नामैतत् (निरु० नै० ६, १६)] हविलक्षणमन्नं
“दधिष्व” धारय स्वीकुर्वन्त्वित्यर्थः ॥ ३ ॥ ५

अथ चतुर्थ-लघु—

प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमीडिष्वयोर्अर्चिषावनाविश्वापरिष्वजत् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
कृष्णाकृणोतिजिह्वया ॥ १ * ॥

हे स्तोतः ! “तम्” अग्निम् “ईडिष्व” स्तुहि, “यः” अग्निः
“अर्चिषा” ज्वाला-रूपेण तेजसा “विश्वा” सर्वाणि “वना”
वनान्तराण्यनि “परिष्वजत्” परिष्वजति परितो वेष्टयति, यश्च
तानि वनानि “जिह्वया” ज्वालाया दग्धा “कृष्णा” कृष्णवर्णानि
“कृणोति”, तमीडिष्वेति सम्बन्धः ॥ १ ॥

* ऋ० वे० ४, ८, २८, ५ ।

अथ द्वितीया ।

१ ३ २ ३ १ २ १ १ २ २ ३ १ २
 यइङ्गआविवासतिसुम्नमिन्द्रस्यमर्त्यः ।

३ १ २ २ १ २ ३ २

द्युम्नायसुतराअपः ॥ २ * ॥

“यः” “मर्त्यः” मनुष्यः “इङ्गे” दीप्ते अग्नी “सुम्न” सुख-
 करं हविः “इन्द्रस्य” [चतुर्थर्थे षष्ठी (२, ३, ६२)] इन्द्राय
 “आविवासति” परिचरति प्रयच्छति, तस्य मर्त्तस्य “सुम्नाय”
 द्योतमानायान्नाय तदर्थं “सुतराः” सुखेन तरणीयाः “अपः”
 उदकानि वृद्ध्यात्मकानि, इन्द्रः करोत्विति शेषः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २
 तानोवाजवतीरिषआशून्पिपृतमर्वतः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

एन्द्रमग्निञ्चवोढवे ॥ ३ † ॥ ६

हे इन्द्राग्नी ! “ता” तौ युवां “वाजवतीः” अन्नवतीः “इषः”
 इष्यमाणा “वृष्टीः” [यवा, वाजी बलं तद्वतीः इषः अन्नानि]
 “आशून्” शीघ्रगाम् “अर्वतः” अश्वांश्च “नः” अस्मभ्यं “पिपृतम्

* ऋ० वे० ४, ८, १६, १ ।

† ऋ० वे० ४, ८, १६, १ ।

पूरयतम् प्रयच्छतम् । किमर्थम् ? “इन्द्रम्” “अग्निञ्च” “आ
वोढवे” आ समन्तात् वोढुं हविर्भिः प्रापयन्तु ॥ ३ ॥ ६

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य अष्टमस्याध्यायस्य

तृतीयः खण्डः * ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ-खण्डे,† प्रथम-तृचे—

प्रथमा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
प्रोअयासीदिन्द्रुरिन्द्रस्यनिष्कृतं

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
सखासख्युर्नप्रमिनातिसङ्गिरम् ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
मर्यइवयुवतिभिःसमर्षति

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
सोमःकलशेशतयामनापथा ॥ १ ॥

“इन्दुः” सोमः “इन्द्रस्य” “निष्कृतं” संस्कृतं स्थान सुहरं “प्रो
अयासीत्” प्रैव गच्छति ; गत्वा च “सखा” सखिभूतः “सख्युः”

* ‘उक्तं’ प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यौमिकम्—इति वि० ।

† ‘इदानीं’ साध्यन्दिनं सवनम् । दृषापवत्रवारयेति सक्तानि-प्रथतीनि सामानि
ब्राह्मणेनोक्तार्थानि, पुनानः सोमघारयेति कष्व-रथक्त्वाभूतानि सामानि बार्हस्प-
तानि—इति वि० ।

‡ ख० आ० ६, २, १, ४ (२भा० १७२पृ०) = ख० वे० ७, २, ११, १ ।

इन्द्रस्य “सङ्घिरं” सम्यग् गिरणाधारभृतम् उदरं “न” “प्र
मिनार्ति” हिनस्ति, किञ्च “मर्यं इव युवतिभिः” मर्त्ती यथा
तरुणौभिः स्त्रीभिः सह सङ्गतो भवति तद्दयमपि सोमो युव-
तिभिर्मिश्रण-शीलादिभिर्वसतीवरौभिरङ्घ्रिः सह “समर्षते” सङ्ग-
च्छते अभिषव-काल-पश्चात् सोमः “शतयामना” अनेक-यामन-
साधन-वित्तोपेतेन “पथा” मार्गेण दशापवित्र-सम्बन्धिना
“कलशे” द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः यद्वैकमेव वाक्यम्—यथा
मर्यां मर्त्तगां युवतिभिः सह सङ्गच्छते एवं कलशे शत-यामना
पथा सङ्गच्छते ॥

“शतयामना”—“शतयान्ना”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२३ १२ ३१२ ३१९
प्रबोधियोमन्द्रयुवोविपन्युवः

११२ ३१९
मनस्युवःसंवरणेष्वक्रमुः ।

२३१ २३ क २९ ३२ ३
हरिङ्गीडन्तमभ्यनूषतस्तुभो

२ ३२ ३ २३ १ २
भिधेनवःपयसेदशिश्नयुः ॥ २ * ॥

हे सोमाः “वः” युष्माकं “धियः” ध्यातारः† “मन्द्रयुवः”
मदकरं शब्दं कामयमानाः “पनस्युवः” स्तुतिं कामयमानाः

* ऋ० वे० ७, ३, १५, २ ।

† ‘धियः—बुद्धयः’—इति वि० ।

हे “इन्दे” दीप्त ! “सोम !” “पवमानः” त्वं “नः” अस्माकं
 “संयतं” सङ्गृहीतं “पिप्युषी” प्रवृद्धम्* “इषम्” अन्नम्
 “जर्मिणा” प्रवाह-रूपेण तदीयेन रसेन “पवस्व” प्रयच्छेत्यर्थः ।
 “या” इट् “नः” अस्माकम् “अहन्” अहनि अङ्गः “त्रिः”
 त्रिषु सवनेषु “अससुषी” अप्रतिबन्धो† “दीहते” । किम् ?
 “क्षुमत्” शब्दोपेतं सर्वत्र श्रूयमाणं “वाजवत्” बलवत् “मधुमत्”
 माधुर्योपेतं “सुवीर्य” शोभन-सामर्थ्यं पुत्रं दीहते । ता मिषं
 पवस्वेति समन्वयः ॥

“जर्मिणा”-“अन्नियम्”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ७

॥ प्रवङ्गार्गवम् ॥ ^{१२ १२} प्रोअयासायित् । ^{१ १} इन्दुरिन्द्रा । स्या
^१ रेनिष्कृताम् । ^{१ २ १} सखासख्युः । ^{२ १} नप्रमिना । ^१ तारयिस
^{१ १} ज्जिराम् । ^{१ १} मर्यद्वा । ^{१ १} युवतिभायिः । ^१ सारमर्षनायि ।
^{१२ १} सोमःकला । ^{१२ १} शेशतया । ^{१२ २} मारनापथा३१७ ॥ (१) प्रवो
^१ धियो । ^{२ १} मन्द्रयुवो । ^१ वारयिपन्युवाः । ^{२ १} पनस्युवाः ।
^{२ १} संवरणायि । ^१ पूरवक्रमूः । ^{२ १२} हरिङ्गौडा । ^{२ १} तमभ्यन् । षा

* ‘पिप्युषी’—पानेच्छाम्—इति वि० ।

† ‘अससुषी’—आसुष्येण—इति वि० ।

^१रतस्तुभाः । ^{१ १२}अभिधेना । ^{२ १}वःपयसायित् । ^१आरेशिश्र
^{२ १}यूश्राउ ॥ (२) ^{२२ १२}आनःसोमा । ^{२ १}संयतम्यायि । ^{१२}प्यूरुषीमि
^{२ २ १}षाम् । ^{२ १}इन्दोपवा । ^{१२}स्वपवमा । ^{२ २}नारुजन्मिणा । यानो
^{१२}दोहा । ^{२ २ १}तेत्रिरहान् । ^१आरसश्रुषायि । ^{२ १२}लुमदाजाः ।
^{२ १}वन्मधुमात् । ^{१२ २ १}सूरवीरियाश्माउ । ^{१ १ १ १}वारश्शु(३) ॥ ७* ॥ [१]
^१॥ कावम् ॥ ^{२ २}प्रवो । ^२अयासौदिन्दुरिन्द्रा । ^२स्यनि
^१ष्कार्त्ताश्म । ^{१ २}सखासख्युर्नप्रमिना । ^{२ १}तिसङ्गायिराश्म ।
^१मर्यद्वयवतिभायिः । ^{२ १}समर्षातारश्यि । ^{१ २ ४ ५}सोमाश्काला ।
^{२ २ १}शेशतायाश्श । ^{१ २ ४}मानाश्पाशुथाश्शु ॥ (१) ^{२ १}प्रवोवा । ^२धि
^२योमन्द्रयुवो । ^{२ १}विपन्यूवाश्शः । ^१पनस्पुवःसंवरणायि । ^२पु
^१वक्रामूरः । ^{१ २}हरिंक्रौडन्तमभ्यनू । ^{२ १}षतत्त्वभारश्शः । ^१आ
^{२ ४ ५}भौशधेना । ^{२ १}वःपयासाश्शयित् । ^{१ २ ४}आशाश्शयिश्श ५ यू ६

२२ १ २ २ २ १
 ५ ६ ॥ (२) आनोवा । सोमसंयतम्यायि । प्युषीमायि
 १ २ २ २ १ २ २ २
 पाश्म । इन्दोपवस्त्रपवमा । नजर्मायिणा २ । यानो
 २ २ २ १ १ २ ४ ५ २
 दोहतेत्रिरहान् । असशूषारश्चि । क्षूमाश्वाजा । व
 १ १ २ ४
 न्मधूमारश्चत् । सूवाश्चिरापुयाथपूद्म (३) ॥ १० * ॥ [२]

वर २ ३ २ ५ २
 ॥ लौशाद्यम् ॥ प्रोअयासीत् । इन्दुरिन्द्रा २ ३ ।
 ४ २ २ ५ ३ २ ३ ५ १ ४ २
 स्याश्निष्कृतम् । सखासख्युः । नप्रमिनारश्च । तीश्स
 ३ ५ ३ २ ३ ४ १ ४ २ ३ ५
 क्षिरम् । मर्यद्भव । युवतिभारश्चिः । साश्मर्षति ।
 ३ २ २ ५ १ २ ४
 सोमः कला । शेषतया २ ३ । मनाश्पापुथाद्पूद्म ॥ (१)
 ३ २ २ ५ १ ४ २ ३ ५ ३ २ ३ ५
 प्रवोधियः । मद्रयुवोरश्च । वाश्चिपन्युवः । पनस्युवः ।
 १ ४ २ २ ५ ३ २ ३ २ ५ १
 सवरणारश्चि । षूवक्रमुः । हरिक्कीड । तमभ्यनूरश्च ।
 ४ २ ३ ५ ३ २ ३ २ ५ १ २
 षाश्तस्तुभः । अभिधेना । वःपयसारश्चि । अशा
 ४ ३ २ ३ २ ५ १
 श्चिश्चापुयूद्मपूद्मः ॥ (२) आनःसोम । संयतपा २ ३ यि ।

४ २२ ३५ ३ २२ ३५ १ ४ २२ ३
 षू३षीमिषम् । इन्दोपव । स्वयमा २३ । ना३ज्जिर्मि
 ५२ ३२ २२ ३२ ५ १२ ४ २ २ ५२ २ २
 णा । यानोदोह । तेत्रिरहा२३न् । आ३ससुषी । क्षम
 ३२ ५ १ २ ४
 हाजा । वन्धुमा २३ त् । सुवा ३ यिरा ५ या ६ ५
 ६ म् (३) ॥ ११ * ॥ [३]

॥ यज्ञसारथिम् ॥ प्रोआया२३४सीत् । इन्द्रा२३
 ५ १ २ १ २ १ ३ २ १ ३
 ४यिन्द्रा । स्थानिष्कृता३म् । होयि । सखासा२३४
 ५ १ ३ ५ १ २ १ २ १
 ख्यः । नप्रामी२३४ना । तायिसङ्गिरा३म् । होयि ।
 ३ २ ३ ५ २ ३ ५ १ २ १ २
 मर्याई२३४वा । युवाती२३४भायिः । सामर्षता३यि ।
 १ ३ २ १ ३ ५ २ २ १ ३ ५ १ २ २
 होयि । सोमाःका२३४ला । शेषाता२३४या । माना
 १ २ १ ३ २ १ ३ ५ २ १ ३
 पथा३ । हो२३४५ई ॥ (१) प्रवोधी२३४यो । मन्द्रायू२
 ५ १ २ १ २ १ ३ २ ३ ५
 ३४वो । वायिपन्युवा३ः । होयि । पनास्यू२३४वाः ।
 २ ३ ५ १ २ १ २ १ ३ २ ३
 संवारा२३४णायि । पूर्वक्रमू३ः । होयि । चरायिङ्गा

^५ २ ^५ १ २ १ २ ^१
२३४यिडा । तमाभ्यार३४नू । पातसुभा३ः । होयि ।

^{३२} ^३ ^५ ^२ ^३ ^५ ^१ ^२ ^१ ^२
अभायिधेर३४ना । वःपायार३४सायित् । आशिश्यू३ः ।

^१ ^{३२} ^३ ^५ ^२ ^१ ^३ ^५
होर३४पुई ॥ (२) आनाः सोर३४मा । संयातार३४म्यौ ।

^१ ^२ ^१ ^२ ^१ ^{३२} ^३ ^५ ^२ ^१ ^३
षूषीमिषा३म् । होयि । इन्दोपार३४वा । स्वपावार३

^५ ^१ ^२ ^१ ^२ ^१ ^{३२} ^३ ^५
४मा । नाजन्मिणा३ । होयि । यानोदोर३४हा ।

^{३२} ^५ ^१ ^२ ^१ ^२ ^१ ^३ ^२ ^३
तेत्रीरार३४हान् । आसश्चपा३यि । होयि । क्षुमादा

^५ ^२ ^१ ^५ ^५ ^१ ^२ ^१ ^२ ^१
२३४जा । वन्माधूर३४मात् । सुवीरिया३म् । हो २ ३

४५ई । डा ३ ॥ ५ ॥ [४]

^{३२} ^२ ^१ ^२ ^१ ^२ ^१
॥ वाराहम् ॥ हाउहाउ । ऊप् । प्रोअयासायित् ।

^२ ^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^२ ^१ ^२ ^१
इन्दुरि । द्रस्यनिष्कृताम् । सखासख्यूः । नप्रमि ।

^{३२} ^३ ^४ ^५ ^२ ^१ ^२ ^१ ^२ ^१ ^३ ^४ ^५
नातिसङ्गिराम् । मर्यादवा । युवति । मिःसमर्षता

^२ ^२ ^१ ^२ ^१ ^२ ^१ ^३ ^२ ^४
यि । सोमःकला । शेषत । या । मना३पा५ या ६ ५

२१२ २१ २२, ३ ४ ५ २१
६ ॥ (१) प्रवोधियो । मन्द्रयु । वीविपन्युवाः । पनस्यु

२१ २२, ३ ४ ५ २१ २ २१
वाः । संवर । णेषुवक्रमूः । हरिङ्गोडा । तमभ्य ।

२२ ३ ४ ५ २ १ २ २१ २ २
नूपतस्तुभाः । अभिधेना । वःपय । सेत् । अग्राइयि

४ २२ १ २ २१ २ २ ३ ४ २
आपयूइ५इः ॥ (२) आनःसोमा । संयतम् । पिष्युषी

५ २१ २ २१ २२, ३ ४ ५ २ २२
मिषाम् । इन्दोपवा । स्वपव । मानजर्म्णिणा । या

१२ २ २२ २ २ ४ ५ २ २ २
नोदोहा । तेन्निर । हन्नसश्चुवायि । चाउचाउ ।

१ २ १ २ २ १ २ ३ २ ४
ऊप् । क्षुमद्वाजा । वन्धु । मत् । सुवाशरापूयाइ५

इम् (३) ॥ १५ * ॥ [५]

२२ १ २ २ ४ १
॥ अपामीवम् ॥ प्रोआ । यासीदिन्दुरिन्द्राइस्याइनि

१ ५ २ १ २ ४ २ ३ ५ २
ष्कृतम् । सखा । सख्युर्नप्रमिनाइतीइसङ्गिरम् । म

१ २ ४ २ ३ ५ २ २ १ २
र्याः । इवयुवतिभाइयिःसाइमर्षति । सोमाः । कल

२ ३ २ ४ २ १ २ २
शेगयया । मनाइपाइयाइ५इ ॥ (१) प्रवो । धियोमन्द्र

^४ ^{२३५} ^{२१} ^२ ^४ ^{२३५}
 युवोश्वाश्विपन्युवः । पना । स्युवःसंवरणाश्विषूश्वक्रमुः ।
^{२१} ^{२२} ^४ ^{२३५} ^{२१} ^{२२}
 चरायिम् । क्रीडन्तमभ्यनूष्पाशतस्तुभः । अभायि । धे
^२ ^{२२} ^४ ^{२२} ^{२२}
 नवःपयसेत् । अशाश्विआप्रयूहपूहः ॥ (२) आनाः । सो
^४ ^{२२} ^५ ^{२१} ^२ ^४
 मसंयतम्याश्विषूश्वीमिषम् । इन्दो । पवस्वपवमाश्ना
^{२२} ^५ ^{२२} ^२ ^४ ^{२३५}
 शर्ज्मिणा । यानो । दोहते । त्रिरहाश्नाश्सश्वषी ।
^{२१} ^{२२} ^४
 क्षुमात् । वाजवन्मधुमत् । सुवारयिरा पू या ई ५
 ई म् (३) ॥ १८ * ॥ [६] ७

अथ नकिरिति प्रगाथरूपे द्वितीयसूक्तेः—

प्रथमा ।

^{२३१२} ^{२२} ^{३२३१} ^{२३१२}
 नकिष्टङ्गमणानशयश्चकारसदावृधम् ।
^{२३२३} ^{२३१२३१} ^{२३१२} ^{३२२२}
 इन्द्रन्नयज्ञैर्विश्वगूर्तमृध्वसमधृष्टन्धृष्टणुमोजसा ॥ १ ॥

* क० गा० २३प्र० २अ० १८सा० ।

† 'उक्ती माध्यन्दिनः पवमानः । वृहत्पृष्ठं वामदेखं मैवावरणं साम अभि-
 निधनं काण्वं ब्रह्मसाम वैखानसमच्छावाकसाम'—इति वि० ।

‡ क० आ० २, २, १, १ (१भा० ५०२प्र०) = च० वे० ६, ५, ८, ३ ।

“तं” जनम् अन्धो मर्षको जनः “कर्मणा” हननादि-व्यापारेण “नक्तिः नशत्” नैव व्याप्नोति, “यः” “इन्द्रं चकार” इन्द्रमेवानुकूलं यज्ञैः साधनैश्चकार । कौटुश-मिन्द्रम् ? “सदावधं” सर्व्वदा वर्द्धकं, “विश्वगूर्तं” सर्व्वैस्तुल्यम्, “ऋध्वसं” महान्तम् “ओजसा” स्त्रीयेन बलेन “अधृष्ट” शत्रुभिरनभिभूतम् “धृष्णुं” शत्रूणांमभिभवन्शीलम् ॥

“धृष्णुमोजसा”—“धृष्णमोजसम्”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ ३१२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
अषाढमूग्रमृत्तनासुसासहिंयस्मिन्नहोरुजयः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सन्धेनवोजायमाने अनोनवुर्द्यावश्चाभीरनोनवुः ॥ २ * ॥ ८

“अषाढम्” असोढम् “उग्रम्” उद्गूर्णबलं “मृत्तनासु” शत्रुसेनासु “सासहिम्” अमिभवितारमिन्द्रं† स्तौमीत्यर्थः, “यस्मिन्” इन्द्रे “जायमाने” “महोः” महिभ्यः “उरुजयः” बहु-वेगाः “धेनवः” हविरादिना प्रीणयित्राः अजा गाव एव वा‡ “समनोनवुः” समस्तुवन् । न केवलं धेनव एव अपि तु “द्यावः” द्युलीकाः “क्षामीः” पृथिव्यश्च ¶ समनोनवुः, तत्रत्याः सर्व्वे

* ऋ० दे० ६, ५, ८, ४ ।

† ‘सासहिं—साधन-सम्भावम्’—इति वि० ।

‡ ‘धेनवः—गावः, आपः आदित्य-रश्मयो वा’—इति वि० ।

¶ ‘क्षामीः—दुलोकात् क्षेपणसमर्थाः आदित्य-रश्मयः’—इति वि० ।

प्राणिनो नमन्त इत्यर्थः “त्रिवृतो लोकाः”—इति श्रुतेः बहु-
वचनम् ॥

“क्षामीः”—“क्षामः”—इति पाठौ ॥ २ ॥ ८

॥ वेदानसम् ॥ न किष्टाश्कर्मणानयात् । यश्चाका

रा । सदावृधारम् । सदावृधाम् । इन्द्रानया । ज्ञे

विश्वम् । तमाश्भर्वतारम् । तमृन्वसाम् । अधाष्ट

न्धा । षण्माजसारम् । षण्मोजसारम् ॥ (१) अधृष्टाश्

न्धृष्णमोजसा । अधाष्टन्धा । षण्मोजसारम् । षण्मो

जसा । अधाष्टम् । ग्रम्पृतना । सुसारसहारयिम् ।

सुसारसहीम् । यस्मायिन्महायिः । उरुजया २३ः । उरु

जयाश्४३ः ॥ (२) यस्मिन्माश्हीरुजयाः । यस्मायिन्म

हायिः । उरुजयारम् । उरुजयाः । सन्धायिनवो ।

जायमाने । अनोश्नवूरम् । अनोनवूः । द्यावाक्षामा

यिः । अनोनवूरः । अनोनवूरः । ओर ३४ ५ई ।

डा(३) ॥ ६ * ॥ [१] ८

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थस्य अष्टमस्याध्यायस्य
चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम खण्डः, प्रथमं लघु—

प्रथमा ।

१ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २
सखायआनिषीदतपुनानायप्रगायत ।

१ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
शिषुन्नयज्ञैःपरिभूषतश्रिये ॥ १ ॥

हे “सखायः” सखीभूताः स्तोतार ऋत्विजः ! “आ निषी-
दत” स्तोतुमुपविशत । अथ “पुनानाय” पूजमानाय सोमाय
“प्रगायत” प्रकर्षेण गायत तमभिष्टुत । ततः अभिष्टुतं सोमं
“यज्ञैः” यजमानायेः हविर्भिर्भिन्नैश्च “श्रिये” शोभार्थं “परि-
भूषत” परितोऽलङ्कृत । तत्र दृष्टान्तः—“शिषुं न” यथा
शिषुं बालं पुत्रं पितर आभरणैरलङ्कुर्वन्ति तद्वत् ॥ १ ॥

* उ० गा० ४ प्र० १ अ० ६ सा० ।

† ‘उक्तानि छद्धानि’—इति वि० ।

‡ ‘इदानीमाभवेः पवमानः’—इति वि० ।

॥ ८० आ० ६, १, २, ३ (२भा० २०६४०) = ऋ० वे० ७, ५, ७, १ ।

अथ द्वितीया ।

१२ ३२७ ३ १ २ ३ १ ९ ३ १ २

समीवत्सन्नमातृभिः सृजता गयसाधनम् ।

३ २ १ २ ३ १ २ २

देवाव्यां ऽश्मद्मभिप्रिदिशवसम् ॥ २ * ॥

हे ऋत्विजः ! “गय-साधनं” गृहस्य साधनभूतम्[†] “ईम्”
 एनं[‡] सोमं “मातृभिः” मातृभूताभिः वसतौवरौभिः “संसृजत”
 सम्मिश्रयत, कथमिव ? “वत्सन्न” यथा वत्सं मातृभिः गोभिः
 संयोजयन्ति तद्वत् । कौटुम्भम् ? “देवाव्यं” देवानां रक्षकं
 “ऋद्” मदन-हेतुं “द्विशवसं” द्विगुण-वेगम् अतिशयित-वत् वा
 यदा द्यौर्लोकयोस्तत्र स्थिता देवमनुष्या इत्यर्थः, तेषां हविर्हिन-
 प्रदानेन प्रवर्द्धयितारं तं सोमम् “अभि” सं सृजत ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुनानादक्षसाधनं यथाशर्द्ध्यवीतये ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यथामित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ८

* ऋ० वे० ७, ५, ७, २ ।

† “गयः”—इति निघण्टौ गृहनामस्त्रायं पदम् (३, ४) । विवरणकृता त्वेवं
 व्याख्यातम्—‘गयः प्राणाः, देवानां प्राण-साधनार्थं मिश्रणं सोमस्य’—इति ।

‡ “ईम्”—इति ऋ० वे० द्यौय-पाठमवलम्ब्यैव व्याख्या सामवेद्योयपाठस्तु “ई”—इति
 ॥ ऋ० वे० ७, ५, ७, २ ।

“दक्षसाधनं” बलस्य साधनं* धनानां वृद्धेर्वा साधकं सोमं
 “पुनाता” पवित्रेण पुनीत [पूज् पवने (उ०) क्रगादिः ;
 तस्माज्जोति “तप्तनप्तनयनाय (७, १, ४५)”—इति तस्य
 तवादेशः, पित्त्वादीत्वाभावः “शर्द्दाय” वेगार्थं† “वीतये”
 देवानां पानार्थं यथा भवति तथा “मित्राय” “वरुणाय” च
 “शन्तमम्” अतिशयेन सुखं यथा भवति तथा पुनीतेत्यर्थः ॥

“शन्तमं”-“शन्तमः”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ९

॥ प्रवम् ॥ हाऽ। वोश्चा। वोश्चाश्। हा। ओ
 २३४वा। हायि। साखाया२३४आ। नौषी१दा२३४ता।
 पूनाना२३४या। प्रा२३४गा। या२३४ता। शायिगुन्ना
 २३४या। जैःपारा२३४यिभू। पा२३४त। आ२३४यायि॥(१)
 सामी१वा२३४त्साम्। नामा१तृ२३४भायिः। सार्जी१ता२३
 ४गा। या२३४सा। धा२३४नाम्। दायिवा१वा२३४
 याम्। मादा१मा२३४भौ। द्वा२३४यिशा॥(२) वा२३४

* ‘दक्षसाधनं—श्रीघ्न-कर्म-कर्त्तारम्’—इति वि० ।

† ‘शर्द्दाय—बलाय’—इति वि० ।

‡ ‘श्ववः’—इति ख० पु० पाठः ।

^५ साम् । ^{२ २} पूनातार३४दा । ^५ चासाधार३४नाम् । ^{२ १} याथा
^३ दार३४र्द्धा । ^५ यार३४वी । ^२ तार३४यायि । ^५ यथामार३४
^५ यिना । ^{२ १} यावाहू३४णा । ^५ यार३४श । ^३ तार३४माम् ।
^२ हाऽ । ^२ वो३हा । ^२ वो३हा३ । ^२ हा । ^५ ओ३४वा । ^२ हा
^{५ २} ३४ । ^२ औहोवा । ^{१ २ १ २ २} ए३ । ^{१ २ २ २ ३ १ १} अतिविश्वानिदुरितातरेमार३
^{१ १} ४५(३) ॥ १२ * ॥ [१]

^{२ २} ॥ सुज्ञानम् ॥ ^{२ १} सखायआ । ^{२ २ १} निषीदता । ^{२ २ १} पुनाना
^{२ १} यार । ^{२ १} प्रगायता । ^{२ १} शिशुन्नायार । ^{२ १} जैःप । ^{२ १} रारयि
^३ भू३४औहोवा । ^{५ २ २} षतश्रियए३ ॥ (२) ^{२ २} समीवक्षाम् । न
^{२ १} मातृभायि । ^{२ १} हजतागार । ^{२ १} यसाधनाम् । ^{२ २ २ १} देवावायार
^१ म् । ^१ मदम् । ^{१ ३} आरभार३४औहोवा । ^{५ २ २} दिशवसमे३ ॥ (१)
^{२ २ २} पुनातादा । ^{२ १} क्षसाधनाम् । ^{२ २ १} यथाशार्द्धार । ^{२ १} यवीतया

यि । यथामायित्रा २ । यव । छुरणा २३४ औहोवा । य

शन्तममे ३उपा २३४५ (३) ॥ १८ * ॥ [२]

॥ देवोदासम् ॥ सखा ३१ । यच्चा ३१२३४ । निषी ।

दा३ता । पुना ३१ । नाया ३१२३४ । प्रगा । या३ता ।

शिगू ३१म् । नया ३१२३४ । जैःप । रा३यिभू । षता

३१ । श्रिया ३ । ओर ३४वा ॥ (१) समी ३१ । वत्सा ३१२

४म् । नमा । तृ ३भायिः । छजा ३१२३४ । यसा ।

सा३नाम् । देवा ३१ । विया ३१२३४म् । मदम् । आ

३भायि । हिशा ३१ । वसा ३म् । ओर ३४वा ॥ (१)

पुना ३१ । तादा ३१२३४ । क्षसा । धा३नाम् । यथा

३१ शर्द्धा ३१२३४ । यवी । ता३यायि । यथा ३ । मित्रा

^५ ३१२३४ । ^{२ २} यव । ^{४ ०} रुद्रणा । ^{२ २} यशा३१ । ^१ तमा३म् । ^१ औ

^५ २३४वा । ^३ ऊ३३४पा(३) ॥ १८ * ॥ [३]

॥ पौष्कलम् ॥ ^{२ १ २ २ ४ ५} सखाया३अनि । ^{२ ३} षीदार ३ ^५ ४ता ।

^{२ १ २ २ १} पुनानाया । ^{२, ४} प्रागाया२३४ता । ^५ शिशून्नाया । ^{२ १ ०} जैःपार ^१

^३ रा२३४५यिभू६५६ । ^{२ १ ३ १ १ १ १} षतश्रिये२३४५ ॥ (१) ^{२ १ २ ४ ५} समीवा३त्सन्न ।

^{२ ३} मातृ२३४भायिः । ^५ हजातागा । ^{२ १ २ २ १} यासाधा २ ^{२, ३} ३ ^५ ४नाम् ।

^{२ २ १} देवावियाम् । ^० मदारमार२३४५भा६५६यि । ^{१ ३} दिशवसार ^{२ १ ३ १}

^{१ १ १} ३४५म् ॥ (२) ^{२ १ २ २ ३ ५} पुनाता३दक्ष । ^{२, ३} साधा२३४नाम् । ^५ यथा ^{२ १}

^{२ १} शर्दा । ^{२, ३} पावीता२३४यायि । ^५ यथामित्रा । ^{२ १} यवारु२३ ^० ३

^{२ १ ३ १ १ १ १} ४५णा६५६ । ^{२ १ ३ १ १ १ १} यशन्तमार२३४५म् (३) ॥ १८ † ॥ [४]

॥ शौक्तम् ॥ ^{५ २} सखा । ^{३ २, ३} यत्राओ२३४वा । ^५ निषायि । ^{२ १}

“वाजी” बलवान् वेगवान् वा “सहस्रधारः” बहुधारायुक्तः
 सोमः “अव्यम्” अविभवं “वारं” वालं पवित्रं “तिरः” व्यव-
 धायकं कुर्वन् “प्राक्षाः” विविधं प्रचरति [चरतेर्लुङि रूपम्] ॥
 “प्रवाजी”-“प्रसुवानः”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१३क१२ ७१२ ३१२ ३ १२ १२ ३ २
 सवाज्यक्षाः सहस्ररेता अङ्गिर्मु जानोगोभिः श्रीणानः ॥२*॥

“सः” सोमः “अक्षाः” चरति । कोट्यः ? “सहस्ररेतः”
 बहु-रेतस्कः “बह्वदकः” “अङ्गिः” वसतीवरीभिः “मृजानः”
 मृज्यमानः “गोभिः” गाविकारैः क्षीरादिभिः “श्रीणानः”
 श्रियमाणः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ २
 प्रसोमयाक्षीन्द्रस्यकुक्षानृभिर्यमाणो अद्रिभिः सुतः ॥३†॥१०

हे “सोम !” “नृभिः” ऋत्विग्भिः “येमानः” नियम्यमानः‡
 “अद्रिभिः” यावभिः “सुतः” अभिषुतः “इन्द्रस्य” “कुक्षा”
 [सप्तम्या डादेशः (३, ४, ३८)] कुक्षौ उदरभूते कलशे वा
 “प्रयाहि” प्रकर्षेण गच्छ [संहितायां येमान इत्यत्र णत्वम्]
 ॥ ३ ॥ १०

* ऋ० वे० ७, ५, २१, ६ ।

† ऋ० वे० ७, ५, २१, ७ ।

‡ येमानः—सूचमानः—इति वि० ।

॥ सोहविषम् ॥ ^{१ २ १ २ १} प्रवाजियक्षाः । ^{१ १ २ १} सहस्रधारास्ताशयि

^५ रा२३४ः । ^{१ १} हायि । ^{२ १ २} पवित्राम् । ^५ विवारार२३४^५ हायि ।

^३ आ२३४व्योईहायि ॥ (१) ^{१ २ १ २ १} सवाजियक्षाः । ^{१ १ २ ३} सहस्ररेताअ

^५ ज्ञार३४यिः । ^{२ १ २} हायि । ^{२ १ १} मृजानाः । गोभायिआ२३४यि

^५ हायि । ^{१ ५ ५} णार३४नोईहायि ॥ (२) ^{१ २ २ १} प्रसोमयाक्षी । इन्द्र

^३ स्यकुक्षानृभा२३४यिः । ^५ हायि । ^{२ २ १ २} येमानाः । ^{२ १} अद्रिभार

^५ ३४ । ^{१ ५ ५} यिर्हायि । ^{१ २ १ २} सूर३४तोईहायि (३) ॥ १५ * ॥ [१]

॥ जराबोधोयम् ॥ ^{२ २ १ २} प्रवाजियोवा । ^{१ २ १} क्षाः । ^{२ १} सहार

^{१ २ १} रक्षा । ^{१ २ १} धारस्तायिराः । ^{१ ४ ५} पवाथिनाश्वार३यिवा । रम् ।

^{३ २} अव्यो३४पूई । ^{२ २ १ २ १} डा । ^{२ १} सवाजियोवा । ^{२ १} क्षाः । ^{२ १} सहार

^{२ २ १} रक्षा । ^{२ ४ ५} रेतार्ज्ञायिः । ^{५ २} मृजानाश्वो२३भायिः । श्री ।

^{२ २ १} णानो३४पूई । ^{२ २ १ २ १} डा । ^{१ २ १} प्रसोमयोवा । ^{२ १} हायि । ^{२ १} इन्द्रास्था

अथ द्वितीया !

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००
यञ्जानीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्थानाम् ।

२३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००
ये वाजनेषु पञ्चसु ॥ २ * ॥

“ये” वा सोमाः “आर्जिकेषु” ऋजौकानामदूरभवाः आर्जि-
कादेशास्तेषु† तथा “कृत्वसु” कृत्वानइति देशाभिधानम्,
तेषु‡ कर्मवत्सु देशेषु च ; किञ्च “पस्थानां” सरस्वत्यादीनां
नदीनां॥ “मध्ये” समीपे च ये सोमा अभिषूयन्ते [“ऋषयो वै
सरस्वत्यां सत्रमासतेत्यादिषु॥ नदीतीरे यज्ञकरणस्य श्रवणात् ;
किञ्च “जनेषु पञ्चसु” निषाद-पञ्चमाश्रित्वारो वर्णा पञ्चजनास्तेषु ॥
च “ये वा” सोमा अभिषुताः । ते सोमा अस्माकमभिमत-फलं
ददात्वित्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ २ ॥

* सू० वे० ७, १, ५, ३ ।

† ‘आर्जिकेषु—ऋजुषु’—इति वि० ।

‡ ‘कृत्वसु—कृतेषु स्थानेषु’—इति वि० ।

॥ ‘पस्थानां—गृहाणाम्’—इति वि० । “पस्थाम्—इति निषण्णौ वृद्ध-नामसु
वृद्धं पदम् (३, ४,) ।

॥ “ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत । ते कवचमैलूषं सोमादनयन् दास्याः पुनः
कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षितेति । तं वक्षिष्वीद्वक्षन्मनं पिपासां हन्,
सरस्वत्या उदकं मा यादिति”—इति ऐत० ब्रा० ।

॥ जनेषु पञ्चसु—‘पञ्चजनाः, यजमानश्चत्वारः ऋजिजः’—इति वि० ।

५ ३ १ १२ १ १ १ १ १
प। चत्तो ३४ ५ई । तेनोवृष्टोवा । दायिवस्परायि ।

१ १ २ १ २ १ ४
पवान्ता२३मा । सुवैरायाम् । खानादा१यिवा२३साः ।

५ ३ २
इ। दवो३४ ५ई । डा(३) ॥ १६ * ॥ [१ ११

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायनस्य अष्टमस्याध्यायस्य
पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—

आतेवत्स इति दृष्टात्स कं प्रथमं सूक्तम्,—

तत्र प्रथमा ।

१ १ १ १ १ २ १ १ १ १ १ १ १
आतेवत्सोमनोयमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।

१ १ १ १ १ १ १
अग्नेत्वाङ्गामयेगिरा ॥ १ १ ॥

हे “अग्ने!” “वत्सः” ऋषिः “ते” तव “मनः” “परमा-
च्चित्” उत्कृष्टादपि “सधस्थात्” द्युलोकात् “आ यमत्”
आयमन्ति आगमयन्ति । केन साधनेन ? “त्वां” “कःमये”

* क० मा० ४प्र० १ख० १६पा० ।

† ख० पा० १, १, १, ८ (१भा० १०५४०) = य० वे० १९, ११५ = ऋ० वे०

कामया अभिलषन्त्या “गिरा” स्तुत्या [“कामये”—इत्यत्रापि
 शे आदेशः पूर्ववत् । यद्वा त्वां कामये अभिलषामि] ॥

“कामये”-“कामया”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २७ १२७ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
 पुरुत्राहिसदृङ्सिदिशोविश्वा अनुप्रभुः ।

३ १ २

समन्तुत्वाह्वामहे ॥ २ * ॥

हे अग्ने ! “पुरुत्रा हि” बहुषु हि देशेषु त्वं “सदृङ् असि”
 समान-द्रष्टा भवसि अतएव “विश्वाः” सर्वा दिश “अनु” लक्ष्य
 “प्रभुः” ईश्वरी भवसि । ईदृशं “त्वा” त्वां “समन्तु” सङ्ग्रा-
 मेषु रक्षणार्थं “ह्वामहे” आह्वामहे ॥

“दिशः”-“विदिशः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
 समन्तस्त्रिभुवसेवाजयन्तोह्वामहे ।

१ २ ३ १ २

वाजेषुचित्राधसम् ॥ ३ * ॥ १२

“समन्तु” समदेषु सङ्ग्रामेषु “वाजयन्तः” बलमिच्छन्तो
 वयम् “अवसे” रक्षणार्थम् “अग्निं ह्वामहे” । कौटुम्भम् ?
 “वाजेषु” सङ्ग्रामेषु “चित्राधसम्” याचनीय-धनम् ॥ ३ ॥ १२

* ऋ० वे० ५, ८, २६, ३ ।

† ऋ० वे० ५, ८, २६, ४ ।

॥ वात्सम् ॥ आतेवत्साः । मनोयमत् । परमात् ।

चित्स धारश्स्थात् । अग्रायित्वाश्क्काश् । मयोवा । गा

पुयिरोद्दहायि ॥ (१) पुरुत्राही । सहड्डसि । दिशो

विश्वाः । अनुप्राश्भूः । समात्सूश्त्वाश् । हवोवा ।

मापूद्दोद्दहायि ॥ (२) समत्मूवा । गिमवप्ते । वाजयन्तः

हवामाश्दहायि । वाजायिषूश्चाश्यि । त्ररोवा । धा

पूसोद्दहायि (३) ॥ १७ ॥ [१] १२

अथ द्वितीय-ल्लेखे—

प्रथमा ।

१२३१ २३१ २ ३ १ २
त्वन्नइन्द्राभरओजोनृम्णंशतक्रतोविचर्षणे ।

१ २ १ २ २ १ २
आवीरम्पृतनासहम् ॥ १ १ ॥

हे “शतक्रतो” बहुकर्मन् ! “विचर्षणे” विद्रष्टः इन्द्र ! त्वं
 “नः” अस्माभ्यम् “ओजः” बलं “नृमणं” धनं च “आ भर”
 आहर । “वीरं” वीर्योपेतम् “पृतनासह” सेनानामभि-
 भवितारं त्वाम् “आ” याचामहे इति शेषः ॥

“आभरओजः”-आरुताओजः—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ २२ ३१ २३ २३ १२ ३१ १
 त्वं हि नः पिता वसो त्वन्माता शतक्रतो बभूविथ ।

१ २ ३ १ २
 अथा ते सुखं भूमिहे ॥ २ * ॥

हे “वसो” वासयितः ! “शतक्रतो” बहुकर्मन्निन्द्र ! त्वं “नः”
 अस्माकं “पिता” पितृवत्पालको “बभूविथ” भव “त्वं” “माता”
 मातृवद्धारकश्च बभूविथ । अथ च वयं “ते” तव स्वभूतं “सुखं”
 सुखम् “भूमिहे” याचामहे ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ २ ३ १ १
 त्वं शुक्निपुरुह तवाजयन्तमुपब्रुवे सहस्रत ।

१ १ ३ १ १
 सनो राखसु वीर्यम् ॥ ३ † ॥ १३

[सहसा बलेन स्तोत्रभिर्युक्तः कृतः सहस्कृतः] हे “सह-
स्कृत” इन्द्र ! [स्तुत्या हि देवताया बलं वर्धते, तस्य सम्बोधनम्]
—“शुषिन्” अतएव बलवन् ! “पुरुहुत” पुरुभिर्बहुभिर्यजमानै
राहुतेन्द्र ! “वाजयन्तं” बलमिच्छयन्तं त्वाम् “उपब्रुवे” उप
स्तौमि । “सः” त्वं “नः” अस्मभ्यं सुवीर्यं धनं “रास्त्र” देहि ॥

“सहस्कृत”-“शतक्रतो”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ १३

५ २ ४ ५२

१२२

॥ औपगवाद्यम् ॥ तुवन्नाश्इन्द्रआभरा । ओजोनृ

२

२२

१

म्णश्शतक्रतोविचर्षणायि । आवौ२ । हौ२ । ऊवा

२

५

२२ १ २

५

२

४

२३यि । रा३४पा । जनासाक्षाम् ॥ (१) तुवश्चा३यिन्नः

५२

१ २ २

२ २

२

पितावसाउ । त्वम्माताशतक्रतोवभूविषा । अथौ२ ।

१

२

५

२ २ १ २

हौ२ । ऊवा२३यि । ता३४यिसू । मन्मीमाक्षायि ॥ (२)

५२

२

४

५२

१२

२

५

तुवाश्शूश्चित्पुरुहता । वाजयन्तमुपब्रुवेसहस्कृता । स

१

२

५

२ २ १ २

नौ२ । हौ२ । ऊवा२३यि । रा३४खा । सुवीरायाम् ।

२

१

२

५२ २

२

२२

१

ऐ । ह्य२२०३ । हिया३४औहोवा । ए३ । उपा३१२

१११

३४५ (३) ॥ १८ * ॥ [१] १३

अथ तृतीय-तृचे—

प्रथमा ॥

१ २

४ २ ३ ३ १ २

यदिन्द्रचिचमइहनास्तित्वादातमद्रिवः ।

२ ३ १ २

३ १ २

राधस्तन्नोविद्वसउभयाहस्याभर ॥ १ * ॥

हे “अद्रिवः” वज्रवन् ! “चित्र” चायनीयेन्द्र ! “त्वादातं” त्वया दातव्यं यद्वनं “मे” मम “इह” अस्मिन्लोके “नास्ति”, हे “विद्वसो” लब्धनेन्द्र ! “नः” अस्मभ्यम् “उभया हस्ती” उभाभ्यां हस्ताभ्यां तद् “राधः” “आभर” आहर ॥

“मइह”—“मेहना”—इति छन्दोगानां बह्वचानां पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२

यन्मन्यसेवरेण्यमिन्द्रद्युत्तदाभर ।

३ १ ३ १ २ ३ १२ २२

३ १ २

विद्यामतस्यतेवयमकूपारस्यदावनः ॥ २ † ॥

हे इन्द्र ! “यत्” “द्युत्तम” अत्र “वरेण्यं” वरणीयं “मन्यसे” “तत्” द्युत्तम् “आभर” अस्मभ्यम् । “ते” तव सम्बन्धिनी “वयं”

* ङ० षा० ४, २, १, ४ (१भा० ७०४४०) = ङ० वे० ४, १, १०, १ ।

† ङ० वे० ४, २, १०, १ ।

“तस्य” तादृशस्योक्तलक्षणस्य “अकूपारस्य” [अकुत्सितः पारो
अन्तो यस्य तादृशस्यान्नस्य “दावनः” दानस्य “विद्याम” स्याम ॥
“दावनः”-“दावने”—इति पाठौ ॥

अथ तृतीया ।

१२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२

यत्तेदिक्षुप्रराध्यमनोअस्तिश्रुतम्बृहत् ।

१२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२

तेनदृढाचिदद्रिवआवाजन्दर्पिसातये ॥ ३* ॥ १४

॥ इति चतुर्थः प्रपाठकः ॥

हे इन्द्र ! “ते” तव “दिक्षु” “प्रराध्य” प्रकर्षणं स्तुत्यं
“श्रुतं” “बृहत्” महत् यत् “मनः” “अस्ति”, “तेन” मनसा
हे “अद्रिवः” वज्रवन्निन्द्र ! “दृढाचित्” दृढमपि “वाजम्”
अन्नम् “आ दर्पि” आदारयसि, “सातये” अस्मात्सम्भजनाय
लाभाय वा ॥

“दिक्षु”-“दिक्षु”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ १४

॥ वीङ्गम् ॥ यदिद्रचित्तमइ । हनाइ । आस्ती ।

१२ २ २ २ १ १ १ १
त्वादातमद्रिवः । राधस्तारश्नाः । वीवी२ । ददसा

२ १ १ २
उ । उभयारश्ना । स्तायारश्ना । भारश्ना३३ ॥ (१)

^३ यन्म^४ न्य^५ सेवरे । ^{३२} णियाश्म । ^४ आयिन्द्रा । ^५ द्यु^१ क्षन्तदाभ^२
^२ र । विद्यामा^१ रश्ता । ^१ स्यास्या^{१२} र । तेवषाम् । ^२ अकूपा^३
^२ रश्ता । ^१ स्यादा^१ रश् । ^१ वारश्ना^२ रश् ॥ (२) यत्तेदिक्षुप्र^{३४२५}
^२ रा । धियाश्म । ^{३२} मानाः । ^{४५} अस्तिश्रुतम्बृहत् । ^१ तेनदा^२
^२ रश्ता । ^१ चायिवा^१ रयित् । ^१ अद्रिवाः । ^{२२} आवाजा^२ रश्ता ।
^२ णयिसा^१ रश् । ^१ ता^२ रश् या^२ रश् ३४ रश् यि । ^१ ओरश् ३४ ५ ई ।
 डा(३) ॥ १८* ॥ [१]

^{२१} ॥ वसिष्ठप्रियम् ॥ यदिन्द्रा^{४५} रश् । चित्रम^४ इह । ना^४
^५ स्ती । ^{२२५२} त्वादाश्तामद्रायिवो^{१०} र । ^{२१} राधास्तन्नो^२ र । ^१ विदा^१
^३ रद्वा^५ रश् ३४ साउ । ^{१२३} जभाओ^५ रश् ३४ वा । ^{१२३} आहाओ^५ रश् ३४ वा ।
^५ स्तिया^{२१} पूभरा ॥ (१) यन्म^{४२५२} न्या^४ रश् । सेवरेणिम् । ^५ आयिन्द्रा ।
^२ द्यु^{१२} क्षाश्न्तादा^१ शभारा^२ र । ^१ विद्याम^२ ता^१ र । ^३ स्यता^३ रयिवा^३ रश्

५ १ २ ३ ५ १ २ ३ ५ ४
४याम् । आकाओर३४वा । पाराओर३४वा । स्यदा

२ १ २ ४ ५ ४ ५
५जाः ॥ (२) यत्तेदीर३ । क्षुप्रराधियम् । मानाः ।

२ १ ० २ १ २ १ ३
अस्तीश्श्रुतम्बुद्धा रत् । तेनाडडा३ । चिदा^१रद्वा^३३४यि

५ १ २ ३ ५ १ २ ३ ५ ४
वाः । आवाओर३४वा । जान्दाओर३४वा । प्रिसा^५त

यावि । हो५ई । डा(३) ॥ १८ * ॥ [२] १४

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य अष्टमस्याध्यायस्य

षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।

पुमर्थाश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ८ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीर-

बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण

विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे

उत्तराग्रन्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

* ज० गा० २३ प्र० २ अ० १८ अ० ।

† 'समाप्तश्चैतत्प्रसमहः'—इति वि० ।

‡ चतुर्थः प्रपाठकः परिचमाप्तः—इति वि० मूलपुस्तकादिसकलचेतिशम् ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्गमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ ८ ॥

॥ अथ नवमोऽध्याय आरभ्यते * ॥

तत्र,

शिशुञ्जज्ञानमिति प्रथम-खण्डे† तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुञ्जज्ञानं चर्यतमृजन्ति

४ २ ५ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शृग्नन्तिविप्रमृरुतोगणेन ।

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
कविर्गोभिर्व्याधेन‡ कविः संसत्

२ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमः पवित्रमत्येतिरेभन् ॥ १ णा ॥

“शिशुम्” इदानीमुत्पन्नत्वाच्छिशुवत्तिष्ठन्तम्§ [यद्वा, पापा-
न्वितं मकुर्वन्तं विनाशयन्तम्] “जज्ञानम्” प्रादुर्भूतम्॥ अतएव

* ‘इदानीमष्टमसहस्रत्वारिंशमुच्यते’—इति वि० ।

† “गायत्र-प्रभृति-साम्नां ब्राह्मणेनार्पयमुक्तम्”—इति वि० ।

‡ “गोभिः कायेन”—इति विसर्गसंध्यपाठः ख० सु० पु० ।

§ ऋ० वे० ७, ४, ९, २ ।

§ ‘शिशु’—शंसनीयम्—इति वि० ।

॥ ‘जज्ञानं’—जायमानम्—इति वि० ।

“हृथ्यतं” [हृथ्य गतिकान्त्योः (भ्वा० प०)] । भृमृदृशी-
त्यादिना अतच् । सर्वैः काम्यमानं सोमं “मृजन्ति” मरुतः*
शोधयन्ति किञ्च “विप्र” मेधाविनं सोमं “गणे न” आत्मीयेन†
सप्तसङ्ख्याकेन “शुभन्ति” अलङ्कुर्वन्ति‡ । ततः “कविः” क्रान्त-
प्रज्ञः सोमः “काव्येन” कवि-कर्मणैव “कविः” शब्दयितव्यः सन्
शब्दायमानः “गोभिः” स्तुतिभिः सह “पवित्रम्” “अत्येति”
अतीत्य गच्छति ॥

“विप्रम्”—इति छन्दोगाः, “वक्त्रिम्”—इति बह्वृचाः पठन्ति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ २ २ २
ऋषिमनाय ऋषिक्वत्स्वर्षाः

३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रनीथः पदवीष्कवीनाम् ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
तृतीयन्धाममहिषस्त्रिषास

१ २ ३ २ २ १ २ ३ २
न्तोमोविराजमनुराजतिष्टुप् ॥ २ § ॥

“ऋषिमनाः” सर्वदर्शनशीलमनस्काः, अतएव “ऋषिक्वत्”
सर्वस्य दर्शनकर्त्ता प्रकाशनस्य कर्त्ता “स्वर्षाः” सर्वस्य सूर्यस्य वा

* ‘मरुतः—आदित्यरश्मयः’—इति वि० ।

† ‘गणन—सम्पातेन’—इति वि० ।

‡ ‘शुभन्ति—प्रावयन्ति’—इति वि० ।

॥ “पदवीः कवीनाम्”—इति विसर्गमध्यपाठः ख० सु० पाठः ।

§ ऋ० वे० ७, ४, ८, १ ।

सम्भक्ताः “सहस्रनीयः” [नीथा स्तुतिः] बहुविध-स्तुतिकः
 “कवीनां” क्रान्त-प्रज्ञानां मध्ये “पदवीः” स्वलितानां पदानां
 साधुत्वेन संयोजयिता यः सोमो विद्यते स “महिषः” महान्
 पूज्यो वा सोमः “तृतीयं धाम” द्युलोकं “सिषासन्” सम्भक्तुमि-
 च्छन् “स्तुप्” स्तूयमानः सन् “विराज” विशेषेण राजन्तं दीप्य-
 मान मिन्द्रम् “अनुराजति” प्रकाशयति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
 चमूषच्छेजःशकुनोविभृत्वा

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
 गोविन्दुर्द्रुश्चायुधानिबिभ्रत् ।

३ २ ३ १ २ २ ३ २
 अपामूर्मिंसचमानःसमुद्र

३ २ ३ १ २ ३ १ २
 न्तुरीयन्धाममहिषोविवक्ति ॥ ३ * ॥ १

“चमूषत्” चमन्ति भक्षयन्त्येति चम्वश्चमसास्तेषु सीदन्-
 यद्वा, चम्वी अधिषवणफलके तयोवर्त्तमानः “श्येनः” शंसनीयः
 “शकुनः” शक्तेः सामर्थ्यकारी “विभृत्वा” [हरतेरातोमनिन्नि-
 त्वादिना (३, २, ७४) कनिप्] पात्रेषु विहरणशीलः

* ऋ० वे० ७, ४, ८, ४ ।

† ‘चमूषत्’—* * * । अथवा चमू, सेनासु सीदति—इति वि० ।

“गीविन्दुः” यजमानानां गवां लम्बकः* [विन्दुरिच्छुरिति
स-प्रत्ययान्तत्वेन निपातितः] “द्रप्सः” धारयन् † “अपाम्”
उदकानाम् “जर्मि” ‡ प्रेरकं “समुद्रम्” [अन्तरिक्षनामैतत्
(निघ० १, २)] अन्तरिक्षं “सचमानः” सेवमानः “महिषः”
महान् य एवं विधः सोमः स “तुरीय” चतुर्थं धाम चान्द्रमसं
स्थानं§ “विवक्ति” सेवते सूर्यलोकस्योपरि चन्द्रमलोको विषत
इति यमः पृथिव्या अधिपतिः समावत्वित्यादिभिश्चन्द्रमानवत्रा-
णामधिपतिः सद्यमत्ववैचित्यन्तेर्मन्त्रैर्ज्ञायते ॥ ३ ॥ १

॥ पार्थम् ॥ ओ३हो३होयि । शिशुञ्जज्ञा । ना३५
ह्य्यि । तम्भृजन्तायि । शुभन्तिवायि । प्रा३मरु । तो
गणेना । कविगीर्भायिः । का३विये । नाकविस्सान् ।
सोमःपवायि । चा३मति । आ३४३यि । ती३रापुयि
भा३५३न् ॥ (१) ऋषिमनाः । या३ऋषि । छत्सुवर्षाः ।
सहस्रनायि । था३पद । वीःकवीनाम् । तृतीयन्धा ।

* ‘गीविन्दुः’—गावः उदकं वाक् अथिवी आदित्यरश्मयो वा । एतानि यो
विन्दन्ति स गीवित् । विदज्ञाने विदलाभे विदसप्तायाम्—इति वि० ।

† ‘द्रप्सः’—उदकसन्निधः—इति वि० ।

‡ ‘तुरीय’ धाम— * * * द्रोणकलशम्—इति वि० ।

२ १ २ ४ ५ २ १ २ १
मा३महि । षःसिषासान् । सोमोविरा । जा३मनु ।

२ २ ४ २ २ २ २
रा३४३ । जा३तापुयिष्ट३५३ ॥ २ ॥ चिमूष३चायि । ना

१ २ ३ ४ ५ २ २ १ २ १
३ःशकु । नोविभृत्वा । गोविन्दुद्रा । प३सा३आयु ।

२ २ ४ ५ २ २ २ २ २ ३ ४ ५
धानिविभ्रात् । अपामूर्मायिम् । सचमा । नःसमुद्रा

२ २ २ २ २ २ २ २ २
म् । औ३हो३होयि । तुरीयन्वा । मा३महि । षो३

२ ४
४३ । वा३यिवा३क्ता३५३यि(३) ॥ १२ * ॥ [१]

३ ४ २
॥ महावामदेव्यम् ॥ शा३५यि३शुम् । य३ज्ञा३ना३५

४ ५ १ २ २
हृ३र्यताम् । मा । ज३न्ति३शुम्भ३न्ति३विप्र३म३रु३तो३ग३णे३न३क३वि

२ २ २ २ २ २ १ २ २ २ २
गी३र्भिः३का३व्ये३ना३क३विः३स३न्सो३मः । पा । औ३हो३हायि ।

२ ३ २ २ २ १ १
वि३त्रा३३म३ता३यि । ए३त्ये । हो३३ । ऊ३म्मा३२ । रा३३२यि

५ ४ ४ २ ४ ५
भो ३ ५ हायि ॥ (१) आ३५३षिं । म३ना३या३३च३षि३कृ३त् ।

१ २ २ २ २ २ २
सू । वर्षाः३स३ह३स३नी३थः३प३द३वीः३क३वी३नां३हृ३तीय३न्वा३म३म३हि३षः

सिषासन्सोमः । वा । औश्होहायि । राजारश्मन् ।

राजौहोश् । ऊम्माश् । ताऽरयिष्टोऽपहायि ॥ (२) चा

ऽपूम । षच्छगायिनाऽशकुनाः । वायि । भृत्वागोवि

न्दुर्द्रप्सआयुधानिविभ्रदपामूर्मिः सचमानः समुद्रन्तुरी ।

या । औश्होहायि । धामारश्महायि । षोवौहोश् ।

ऊम्माश् । वाऽरक्तोऽपहायि (३) ॥ ७ * ॥ [२]

॥ हाउउऊवायिवासिष्ठम् ॥ हायि । उऊवायि ।

शिशाश् औहोवा । जज्ञा । नाश्हय्य । तम्मृजन्ता

यि । शुम्भाश् औहोवा । तिवायि । प्राश्मरु । तौ

गणेना । कवाश् औहोवा । गीर्भायिः । काश्विये ।

नाकविः सान् । सोमाश् औहोवा । पवायि । त्राश्

मति । आश्हयि । तौश्रापयिभाद्दपद्दन् ॥ (१) कृषा

३४ ४२ ५ १ २ १ २ ३ ४ ५ १
३४ औहोवा । मनाः । याश्चक्षि । कृतसुवर्षाः । स

३ ३४ ४२ ५ १ २ १ २ ३ ४ ५
हा ३४ औहोवा । सनायि । याश्चपद । वीः कवीनाम् ।

३ २ ३४ ४२ ५ १ २ १ २ ३ ४ ५
तृता ३४ औहोवा । यन्था । माश्महि । षः सिषासान् ।

३२ २ ३४ ४२ ५ १ २ १ २ ३ ४ ५
सोमा ३४ औहोवा । विरा । जाश्मनु । रा ३४ ३ । जा

४ ३२ ३४ ४२ ५ १
इतापुयिष्टू ३५ ३५ ॥ (२) चमू ३४ औहोवा । षच्छ्रायि ।

२ १ २ ३ ४ ५ ३२ २ ३४ ४२ ५ १
नाश्शकु । नोविभूत्वा । गोवा ३४ औहोवा । दुर्द्रा ।

२ १२ ३२ १ ५ ३२ ३४ ४२ ५ १
पसाश्चायु । धानिविभ्रात् । अपा ३४ औहोवा । ऊ

३ २ २ २ ३ ४ ५ २
म्नायिम् । सचमा । नः समुद्राम् । ह्रायि । उज्जवा

३ २ ३४ ४२ ५ १ २ १ २
यि । तुरा ३४ औहोवा । यन्था । माश्महि । षो ३४

२ ४
३ । वाश्रियिवापुक्ता ३५ ३५ (३) ॥ ७ * ॥ [३]

२ २ ३ २ ३२
॥ उज्जवायिवासिष्ठम् ॥ उज्जवायि । शिशा ३४ औ

४२ ५ १ २ १ २ ३ ४ ५ ३२
होवा । जज्ञा । नाश्च्यर्थ । तंमृजन्तायि । शुभा

^{३२ ४२ ५} ३४औहोवा । ^१ तिवायि । ^{२ १} प्राश्मरु । ^{२ ३ ४ ५} तोगणेना । ^३ क

^२ वा३४औहोवा । ^{३२ ४२ ५} गौर्भायिः । ^{१२} काश्विये । ^{२ १ २} नाकविःसा

^{३२ २} न । ^{३२ ४२ ५} सोमा३४औहोवा । ^१ पवायि । ^{२ १} त्राश्मति । ^३ आ

^{२ ४} ३४यि । ^{३ २} ती३रा५यिभा६५इन् ॥ (१) ^{३२ ४२ ५} ऋषा३४औहोवा ।

^१ मनाः । ^{२ १} याश्चपि । ^{२ ३ ४ ५} छत्सुवर्षाः । ^{३ २} सहा३४औहोवा । ^{३२ ४२ ५}

^१ खनायि । ^{२ १} थाश्पद । ^{२ ३ ४ ५} वीःकवीनाम् । ^{३ २} तृता३४औहो

^५ वा । ^१ यन्वा । ^१ माश्महि । ^{२ ३ ४ ५} षःसिषासान् । ^{३२ १} सोमा ३४

^{३२ ४२ ५} औहोवा । ^१ विरा । ^{२ १} जाश्मनु । ^{२ ३ ४ ५} रा३४३ । ^{३२ १} जाश्ता५

^{३ २} यिष्टू६५इप् ॥ (२) ^{३२ ४२ ५} चमू३४औहोवा । ^१ षच्छयायि । ^२ ना

^१ ३ःशकु । ^{२ ३ ४ ५} नोविभृत्वाम् । ^{३२ २} गावा३४औहोवा । ^{३२ ४२ ५} दुर्द्रा । ^१

^{२ १ २} प्साश्चायु । ^{२ ३ ४ ५} धानिविभ्रात् । ^{३ २} अपा३४औहोवा । ^{३२ ४२ ५} ज

^{२ १ २} र्मायिम् । ^{२ ३ ४ ५} सचमा । ^{३ २} नःसमुद्राम् । ^३ उज्जवायि । ^३ तु

रा३४ औहोवा । यन्वा । मा३महि । षो३४३ । वा

इयिवा५ क्ताई५ इयि(३) ॥ १८ * ॥ [४]

॥ उदभदार्गवम् ॥ शि१गु१ञ्जा१ज्ञा१र३ । न१ह१र्या१ना
 र३म् । मृ२ज२न्ता२यि । प्र३भ३न्ता२यिवा२र३यि । प्र२म२रु२तो
 र३ । ग२णे२ना । क२वि२र्गा२यिर्भा२र३यिः । का२वि२ये२ना२र३ः ।
 क२विः२सान् । सो२मः२पा२वा२र३यि । च२म२ता२यि२ये२र३ । ति
 रे२भा२इ२ना२उ ॥ (१) ऋ२षि२मा२ना२र३ । ओ२य२ऋ२षी२कृ२र३त् ।
 सु२व२र्षाः । स२ह२स्र२ाना२र३यि । यः२प२दा२वा२र३यिः । क२वी
 ना२म् । तृ२ती॒या॒न्वा॒र३ । म२म॒हा॒यि॒षा॒र३ः । सि॒षा॒सा
 न् । सो॒मो॒वा॒यि॒रा॒र३ । ज॒म॒नू॒रा॒र३ । ज॒ति॒ष्ठा॒र३१३ ॥ (२)
 च॒म॒षा॒ष्ट॒पा॒र३यि । नः॒श॒कू॒नो॒र३ । वि॒भृ॒त्वा । गो॒वि
 न्दू॒र्द्रा॒र३ । प्स॒आ॒यू॒धा॒र३ । नि॒वि॒भ्रा॒त् । अ॒पा॒म॒म्मा

२३यिम् । सचमाना२३ः । समुद्राम् । तुरीयान्वा२३ ।
ममहायिषो२३ । विवक्ता३१उवा२३४५(३) ॥ ४ * ॥ [५]

॥ वैश्वज्योतिराद्यम् ॥ २२ २ २
चाउहोवा३हायि । शिषुञ्च

२ १ ७ ११११ २
ज्ञानां३३ह्या३तांमृजन्तार३४५यि । शुभन्तिविप्रमरु

१७२ ११११ २ २ २ १ ७ ११११
इतोमणेना२३४५ । कविगीर्भिःकाश्ये३नाकविःसार३४५

२२ १ ७२ ११११ २
न् । सोमःपवित्रमतीश्यायितिरेभार३४५न् ॥(१) ऋषि

२ १ ७ २ २ १
मनाय३३षी३कृत्सुवर्षा२३४५ः । सहस्रनीथःपदा३वायिः

७२ ११११ २ २ १ ७२ ११११
कवीनार२३४५म् । तृतीयन्धाममही३षाःसिषासार२३४५

२२२ २ १ ७ ११११ २२ २
न् । सोमोविराजमनू३राजतिष्टूर३४५प् ॥(२) चमूषच्छेय

१ ७ ११११ २२ २ १ ७
नःशकूनोविभृत्वार३४५ । गोविन्दू३र्द्रप्सआयू ३ धानिवि

११११ २२२ ५२१ ७ ११११
भार२३४५त् । अपामूर्मि३सचमा३नाःसमुद्राम३४५म् ।

२२ २ ३२ १ ७ १११२ २२ २ २
तुरीयन्धाममहोष्णोविवक्ता २३४पुयि । हाउहोवाश्हायि ।

१११
वा३४५(३) ॥ ७ ॥ * [६] १

एते सोमा इति नवचं द्वितीयं सूक्तं,

तत्र प्रथमा ।

३१२ २२ ३ २ ३१२ २२ ३ १ २
एते सोमा अभिप्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।

१ २ ३ ३ २ २
वर्द्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ † ॥

“एते” अभिषुता इमे सोमाः “अस्य” इन्द्रस्य “वीर्यं” शक्तिं
“वर्द्धन्तः” वर्द्धयन्तः “इन्द्रस्य” “कामं” काम्यं “प्रियं” प्रीतिकरं
“समभ्यक्षरन्” अभ्यवर्षन् अभिपवन्ते ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पुनानासश्चमूषदोगच्छन्तो वायुमश्विना ।

१ २ ३ १ २
तेनोधत्तसु वीर्यम् ॥ २ ‡ ॥

हे सोमाः ! “पुनानासः” पुनाना अभिषूयमाणाः “चमूषदः” ॥
चमसेषु सौदन्तः गच्छन्तः “वायुम्” “अश्विना” अश्विनौ च

* ऊ० गा० २३ प्र० २ सू० ७ सा० ।

† ऊ० वे० ६, ७, ३०, १ ।

‡ ऊ० वे० ६, ७, ३०, २ ।

॥ ‘चमूषदः’—भक्षणीयेषु सौदन्ति अथवा अधिषवणफलकवर्षण उपरि सौदन्ति
चमूषदः—इति वि० ।

“गच्छन्तः” प्राप्नुवन्तः ते यूयं “नः” अस्मभ्यं “सुवीर्य्य” शोभन-
वीर्य्यं “धत्तु” प्रयच्छत ॥

“धत्त”-“धान्तु”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ ११ २ ११ २२
इन्द्रस्यसोमराधसेपुनानोहार्दि चोदय ।

३२ ३१ २३ १२
देवानां योनिमासदम् ॥ ३* ॥

हे सोम ! “पुनानः” पूयमानस्त्वं “राधसे इन्द्रस्य” इन्द्रस्य
संराधनाय “हार्दि”—इति हृदय-सम्बन्धि स्थानं† “चोदय”
प्रेरय । अहमपि “देवानाम्” इन्द्रादीनां “योनि” स्वर्गाख्यं
स्थानम् “आसदं” प्राप्तवान् [यद्वा, देवानां यवन-साधनं यज्ञाख्यं
स्थानं प्राप्तवानस्मि ॥

“देवानाम्”—“ऋतस्य”—इति पाठौ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३१ २ ३ २३ १२ ३१ २ ३२ ३ १२
मृजन्ति त्वादशक्षिपोहिन्वन्तिसप्तधीतयः ।

२३ १२
अनुविप्राश्चमादिषुः ॥ ४ ‡ ॥

* ऋ० वे० ६, ७, ३०, ३ ।

† ‘हार्दि’—‘हृदये’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३०, ४ ।

हे सीम ! “त्वा” त्वां “दश” दशसङ्ख्याकाः [“क्षिपः
अङ्गुलिनामैतत् (२, ५, ३,)] अङ्गुलयः “मृजन्ति” शोध-
यन्ति । ततः “सप्त” सप्तसङ्ख्याकाः* “धीतयः” होत्रकाश्च
त्वां “ह्रिन्वन्ति” स्व-स्व-व्यापारैः प्रीणयन्ति । तथा “विप्राः”
मेधाविनः स्तोतारश्च त्वाम् “अनु अमादिषुः” अनुमादयन्ति ॥४॥

अथ पञ्चमी ।

३ १ ९ ३ १ ९ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ २

देवेभ्यस्त्वामदायकं सृजानमतिमेध्यः ।

१ २ २ २

सङ्गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥

हे सीम ! “क” सुखभूतं “त्वा” त्वां “देवेभ्यः” देवानां
“मदाय” मदार्थं “गोभिः” गोर्विकारैः पयोभिः “संवासयामः”
संस्थापयामः । कौटुशम् ? “मेध्यः” अवेर्लोमानि दशा-
पवित्र रूपेण “अति सृजानम्” अत्यन्तं सृजन्तं दशापवित्ररूपेषु
अवेर्लोमसु वर्त्तमानमित्यर्थः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

३ १ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २

पुनानःकलशेष्ठावस्त्राण्यरूपो हरिः ।

२ ३ १ २

परिगव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

* ‘सप्तधीतयः—बुद्धियुक्ताः सप्तविजः, धीतयः स्थापनकराः’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, ३०, ५ ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३०, ६ ।

“पुनानः” पूयमानः “कलशेषु” द्रोणकलशेषु* आसिच-
मानः “अरुषः” आरोचमानः “हरिः” हरितवर्णः सोमः
“गव्यानि” गो-सम्बन्धीनि पयःप्रभृतीनि “वस्त्राणि” वासांसि
“परि अव्यत” पर्याच्छादयति† ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी ।

२ २ ३ १ २ २ २ ७ ३ २ ३ १ २
मघोन आपवस्वनोजहिविश्वा अपदिषः ।

२ २ १ २ २ १ २
इन्दो सखायमाविश ॥ ७ ॥

हे “इन्दो” सोम ! “मघोनः” धनवतः “नः” अस्मान्
“आ” आभिमुख्येन “पवस्व” क्षर “विश्वा” विश्वान् “दिषः”
द्वेष्ट्रीन् “अप जहि” मारय च “सखायं” मित्रभूतमिन्द्रम्
“आविश” प्राप्तुं हि ॥ ७ ॥

अथाष्टमी ।

३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
नृचक्षसन्त्वावयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।

३ १ २ ३ १ २ २
भक्षीमहिप्रजामिषम् ॥ ८ ॥

* ‘कलशेषु कलशसम्बन्धिषु ग्रहचमसादिषु’—इति वि० ।

† ‘अव्यत—गमय’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३१, २ ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, ३१, २ ।

हे सोम ! “वृचक्षसं” नृणां द्रष्टारं “स्वर्विदं” सर्वज्ञम्*
 “इन्द्रपीतं” त्वां सेवमाना वयं “प्रजां” पुत्रादिकाम् “इषम्”
 अन्नञ्च “भक्षीमहि” भजेम ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २
 वृष्टिर्दिवःपरिस्ववद्युन्मन्पृथिव्याअधि ।

१ २ ३ १ २
 सद्योनःसोमपृत्सुधाः ॥ ९ १ ॥ २

हे “सोम !” त्वं “दिवः” द्युलोकाद् “वृष्टिं” वर्षं “परि-
 स्स्वव” परितो वर्षं, “पृथिव्या अधि” [अधीति सप्तम्यर्थानुवादी]
 “द्युन्मन्” अन्नञ्च उत्पादयेति शेषः । “नः” अस्माकं‡ “सहः”
 बलं “पृत्सु” सङ्ग्रामेषु “धाः” धेहि ॥ ९ ॥ २

इति सामवेदार्थं प्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य नवमस्याध्यायस्य

प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

* ‘स्वर्विदं—सर्वज्ञं वेत्तारम्’—इति वि० ।

† ॥ वे० ६, ७, ३१, ३ ।

‡ ‘नः—अस्माभ्यम्’—इति वि० ।

अथ द्वितीये खण्डे—

सोमःपुनानइति नवर्चं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२

सोमःपुनानोअर्षतिसहस्रधारोअत्यविः ।

३१२ २२ ३२

वायोरिन्द्रस्यनिष्कृतम् ॥ १ * ॥

अयं “पुनानः” पावकः “सोमः” अर्षति” गच्छति ।
 कौटुशोऽयम् ? “सहस्रधारः” अपरिमितधारः “अत्यविः”
 अवि-शब्देन तल्लोमान्युच्यन्ते ; अवेर्लोमभिर्निष्पादितं दशापवित्त
 मित्यर्थः, तदतिक्रम्य गच्छतीत्यत्यविः । किमर्थम् ? “वायोः”
 “इन्द्रस्य” च पानायेति शेषः । किम्रति ? “निष्कृतम्”
 [निरित्येषः समित्येतस्मिन्नर्थे] संस्कृतं पात्रं प्रति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ ३१२३१२ २२

पवमानमवस्यवोविप्रमभिप्रगायत ।

३ २ ३१२

सुध्वाणन्देववीतये ॥ २ † ॥

हे “अवस्यवः” रक्षण-क्रामाः ! उद्गात्रादयो यूयं “पवमानं”
 शोधकं “विप्र” विशेषेण देवानां प्रीणयितारं विप्रवद्बुद्धं वा

[अथवा विप्रइति मेधावि नामसु (निघ० ३, १५, १) मेधाविनम्]
 “देववीतये” देवपानाय* “सुष्वाणम्” अभिषूयमाणं सोमम्
 “अभि” आभिमुख्येन “प्रगायत” प्रकर्षेण स्तुत ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
 पवन्तेवाजसातयेसोमाःसहस्रपाजसः ।

३ २ ३ १ २
 गृणानादेववीतये ॥ ३ ॥

“पवन्ते” चरन्ति “सोमाः” । किमर्थम् ? “वाजसातये”
 अन्नस्य लाभाय । कीदृशाः ? “सहस्रपाजसः” बहुबलाः नृणां
 बलप्रदा इत्यर्थः ‡ “गृणानाः” [कर्मणि कर्त्तृप्रत्ययः (३, १, ८५)]
 स्तूयमानाः । पुनः किमर्थम् ? “देववीतये” [देवानां वीतिर्गतिः
 प्राप्तिलक्षणं वा यस्मिन् स देववीतिः] यज्ञः, तदर्थम् [यज्ञसिद्धिः
 साक्षात् प्रयोजनं तद्द्वारा वाज-लाभइति ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
 उतनोवाजसातयेपवस्ववृद्धतीरिषः ।

३ १ २ ३ १ २
 द्युमदिन्दोसुवीर्यम् ॥ ४ ॥

* ‘देववीतये—देवानां भक्षणाय’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ८, १, २ ।

‡ ‘सहस्रपाजसः—सहस्र-पान-समर्थाः’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ८, १, १ ।

हे “इन्दो” “द्युमत्” दौमिमत् “सुवीर्य” शोभन-वीर्य^१
सामर्थ्यञ्च “पवस्व” चर, शोभन-सामर्थ्योपेता धाराः पवस्वे-
त्यर्थः । “उत्” अथवा “नः” अस्माकं^२* “वाजसातये” सङ्ग्रामाय^३
“बृहतीः” “इषः” द्युमत् सुवीर्यं सम्पादयितुं पवस्वेति
योज्यम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१ २ ३ १८ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अत्याहियानानहेतुभिरसृग्रं वाजसातये ।

२८ ३ १ २ ३ १ २

विवारमव्यमाश्रवः ॥ ५ ॥

“वाजसातये” सङ्ग्रामाय “हियानाः” प्रेर्यमाणाः आश्रवः
श्रीघ्नं धावन्ति तद्वत् “हेतुभिः” प्रेरकैः प्रेर्यमाणाः “आश्रवः”
श्रीघ्नगामिनः सोमाः “वाजाय” अन्नलाभाय “अव्यं” “वारं”
वालं दशापवित्रं “व्यत्यसृग्रम्” व्यतिसृजन्ते ॥ ५ ॥

* ‘नः—अस्माकम्’—इति वि० ।

† ‘वाजसातये अन्नदानार्थम्’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, २, २ ।

¶ “व्यत्यसृग्रम्”—इत्यत्र ऋगादिपादाद् “अति”—इत्युपसर्गः, ऋक्त्वतौ च पादाद्
“वि”—इत्युपसर्गश्च सङ्गृहीतः, “व्यत्या”—इति यृतावापदस्थानर्थक्यमपि स्वीकृत-
माचार्येण । विवरणकृता त्वहिनाम दानवइत्यादिना व्याख्यातम् । परन्तु मय-
विधत्तेव व्याख्यानं पदग्रन्थविषद्वत्त्वादुपेक्षणीयम्, तत्र हि—“अत्याः, हियानाः”—
इति पाठ-दर्शनात् ।

अथ षष्ठी ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तेनःसहस्रिण् रयिम्पवन्तामासुवीर्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ ०
स्वानादेवासइन्दवः ॥ ६ * ॥

“ते” “इन्दवः” सोमाः “नः” अस्माकं “सहस्रिणं” सहस्र-
सङ्ख्या-युक्तं “रयिं” धनं “सुवीर्यं” च “आ पवन्ताम्”† ।
कौटुशास्त्रे? “स्वानाः” सुवानाः स्तूयमाना “देवासः” द्योत-
नादि-गुणकाः ॥

“स्वानाः”-“सुवानाः”—इति पाठौ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी ।

२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ७ ३ १ २
वाश्नाअर्षन्तीन्दवोभिवत्सन्नमातरः ।

३ १ २ १ २
दधन्विरेगभस्त्योः ॥ ७ ‡ ॥

“वाश्नाः” शब्दयन्तः॥ “इन्दवः” सोमाः “अभ्यर्षन्ति”
पात्रं प्रति वाश्नाः शब्दकारिण्यो “मातरः” मातृभूता गावः

* ऋ० वे० ६, ८, ९, १ ।

† ‘आ—आतुपूर्व्येण’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, ९, ४ ।

॥ ‘वाश्नाः—वासनशीलाः’—इति वि० ।

“वत्सं न” वत्सं यथा प्रत्यागच्छन्ति तद्वत् तएव “गभस्त्योः”
बाह्वोः “दधन्विरे” ध्रियन्ते च ॥

“मातरः”-“धेनवः”—इति पाठौ ॥ ७ ॥

अथाष्टमी ।

२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

जुष्टइन्द्रायमत्सरःपवमानःकनिक्रदत् ।

२ २ २ ३ १ २

विश्वाअपदिषोजहि ॥ ८ * ॥

“इन्द्राय” “जुष्टः” पर्याप्तः सोमो भवतीति शेषः “मत्सरः
सोमः [“मन्दतेस्तृप्ति-कर्मणः”—इति निरुक्तम्] “पवमानः”
पूयमानः तादृशः सोमः “कनिक्रदत्” “विश्वाः दिषः” सर्वान-
स्माकं द्रष्टुन् “अप जहि” ॥

“पवमानः”-“पवमाना”—इति पाठौ ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

१ १ २

अपघ्नन्तोअरावणःपवमानाःसर्वदृशः ।

१ २ ३ १ २

योनावृतस्यसीदत् ॥ ९ † ॥ ३

ह “पवमानाः ।” “अरावणः” अदानान् यजमानान् “अप
घ्नन्तः” हिंसन्तः “खट्वंशः” सर्वस्य द्रष्टारश्च* यूयम् “ऋतस्य
योनौ” यज्ञस्य† स्थाने “सौदत” । अथ सोम-पानार्थमुक्तलक्षणा
देवा ऋतस्य योनौ सौदतेति योज्यम् ॥ ८ ॥ ३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायण्यस्य नवमस्याध्यायस्य
द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीय-खण्डे—

सोमाअसृग्रमिति नवर्चं विद्यमानमेकं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाअसृग्रमिन्दवःसुताऋतस्यधारया ।

१ २ ३ १ २

इन्द्रायमधुमत्तमाः ॥ १ ॥ ३ ॥

“ऋतस्य” यज्ञार्थं “सुताः” अभिषुताः “मधुमत्तमाः”
अतिशयेन माधुर्योपेताः “इन्दवः” सोमाः “इन्द्राय” इन्द्रार्थं
“धारया” “असृग्रम्” सृज्यन्ते ॥

“धारया”-“सादने”—इति पाठौ ॥ १ ॥

* ‘खट्वंशः’—खर्गस्य लोकस्य दर्शितारः—इति वि० ।

† ‘ऋतस्य’—सत्यस्य यज्ञस्यान्नस्य वा—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, २८, १ ।

अथ द्वितीया ।

३ १ ८ २ ८ ३ १ २ २ २ ८ २ १ २
अभिविप्राञ्जनूषतगावोवत्सन्धेनवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रसोमस्यपीतये ॥ २ * ॥

“विप्राः” मेधाविनः† “सोमस्य” “पीतये” पानाय
“इन्द्रम्” “अभि अनूषत” अभिषुवन्ति । तत्र दृष्टान्तः—
“धेनवः” प्रीणयित्वा गावः “वत्सन्” वत्सं यथा पयः—पानाय
अभिषद्ध्यन्ति तद्वत् ॥

“धेनवः”—“मातरः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मदच्युत्क्षितिसादनेसिन्धोरुर्माविपश्चित् ।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ २
सोमोगौरीअधिश्रितः ॥ ३ ‡ ॥

“मदच्युत्” मदकरस्य रसस्य चावयिता सोमः “सदने”
यज्ञस्य स्थाने “क्षेति” निवसति । एतदेव विवृणोति—“सिन्धोः”
नद्याः “जर्मा” जर्मौ तरङ्गे “विपश्चित्” विहान् सोमः “गौरी

* ‘विप्राः—ऋत्विजः’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, २८, २ ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, २८, ४ ।

अधि”* गौर्यामधि [अधीति सप्तम्यर्थानुवादः, माध्यमिकायां
वाचि गौरी गाम्बर्वीति वाङ्नामैतत् (निघ० १, ११, ५-६)]
“अतः” निवसति ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ १ २ २ २ २ २ १ ३
दिवोनाभाविचक्षणोव्यावारे†महोयते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २
सोमोयःसुक्रतुःकविः ॥ ४ ॥

“यः” “सुक्रतुः” सुप्रज्ञः “कविः” क्रान्त-कर्मा “विचक्षणः”
विद्वष्टा स “सोमः” “दिवः” अन्तरिक्षस्य “नाभा” नाभौ
नाभिभूते “अव्याः” अवेः “वारे” वाले “महोयते” पूज्यते ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ १ २
यःसोमःकलशेषा‡अन्तःपवित्रआहितः ।

२ ३ ३ १ २
तमिन्दुःपरिषस्वजे ॥ ५ ॥

* “इदूतौ च सप्तम्यर्थे (१, १, १६)”—इति प्रसिद्धभावः ।

† “ओवारे”—इति ऋ०-पाठः ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३८, ३ ।

॥ ‘दिवः—सु लोकास्व’—इति वि० ।

§ “कलशेषां”—इति ऋ०-पाठः ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, ३८, ५ ।

“यः” सोमः “कलशेषु” कुम्भेषु आस्ते, यश्च “पवित्रे”
पवित्रस्य “अन्तः” मध्ये “आ हितः” निहितः, “तं” त्वामंशभूतं
सोमम् “इन्दुः” तदभिमानौ सो देवः “परिषस्वजे”
प्रविशति ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

१७ ३ १ १

३१२ २२३१२

प्रवाचमिन्दुरिध्यतिसमुद्रस्याधिविष्टपि ।

२ ३ १ १ २ २१२

जिन्वन्कोशमधुश्रुतम् ॥ ६ * ॥

“इन्दुः” सामः । उन्दो क्लेदणे (र० प०)—इत्यस्य रूपम्
क्लेदनवांस्व “मधुश्रुतं” मधुनश्चावकं द्रोण-कलशं “जिन्वन्”
प्राणयन् पूरयन्नित्यर्थः । समुद्रस्यान्तरिक्षस्य “अधिविष्टपि”
विष्टब्धे स्थाने “वाच” “प्रेषति” प्रेरयति ; पवित्रे पूयमानः
शब्दं करोतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी ।

१२

३ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २

नित्यस्तोत्रोवनस्पातिङ्गेनामन्तःसवर्दुघाम् ।

३ १२

२२

३ २

हिन्वानोमानुषायुजा ॥ ७ † ॥

“नित्यस्तोत्रः” सन्ततस्तोत्रः “वनस्पातिः” वनानां स्वामी,
सोमः “मानुषा” मानुषाणि “युजा” युग्मानिः अहोनैकाहा-

* ऋ० वे० ६, ७, १८, ६ ।

† ऋ० वे० ६, ७, २८, १ ।

‡ “युजा—योगिन”—इति वि० ।

ज्जकानि* “हिन्वानः” प्रीणयन् “सबर्दुधाम्” अमृतसदृशाति-
प्रियवचनानि दीग्धीम्† “अन्तः” स्तोत्रृणां मध्ये स्थितां
“धेनां” स्तुतिरूपां वाचं‡ गृणात्विति शेषः ॥

“धेनामन्तसबर्दुधाम्”-“धीनामन्तस्सबर्दुधस्सः”—इति
पाठौ ॥ ७ ॥

अथाष्टमी ।

१ २ ३ २ ३ १ २
आपवमानधारयरयि॑ सहस्रवर्चसम् ।

१ १ १ ३ १ २
अस्मे॑ इन्द्रो॒ स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

हे “पवमान” पूयमान ! पुनान ! वा “इन्द्रो” सोम ! त्वं
“सहस्रवर्चसं” बहुहीति “स्वाभुवम्” शोभन-भवनं “रयिं”
धनम् “अस्मे” अस्मासु “धारय” प्रक्षिपेत्यर्थः ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

३ १ ३ २ ३ २ ३ २ ७ ३ १ २ २ २ ३ २
अभिप्रियादिवः॑ कर्वा॒र्विप्रः॑ स॒धारया॑ सुतः ।

१ २ ३ १ २
सोमो॑ हिन्वेपरावति ॥ ९ § ॥ ४

* दिनैकसम्याद्यमेकाहम्, द्वादशदिनातिरिक्तसम्याद्यं सत्रम्, अर्धौनमन्यत् यागकर्म ।

† ‘सबर्दुधां—सुखदोक्षां’—इति वि० ।

‡ ‘धेनां—धेनूनाम्’—इति वि० । ‘धेना’—इति निघण्टौ वाङ्नामसु जन-
चत्वारिंशत्तमं पदम् (१, ११) ।

¶ ऋ० व० ६, ७, ३९, १ ।

§ ऋ० व० ६, ७, ३९, २ ।

“कविः” क्रान्तकर्मा, “सुतः” अभिषुतः, सोमः “परावति”
विप्रकृष्टे देशे स्थितः सन् “विप्रः” मेधावो “सधारया” स्वस्य
धारया “दिवः” द्युलोकस्य “प्रिया” प्रियाणि स्थानानि “अभि”
लक्ष्य “हिन्वे” प्रेरयति ॥

“दिवःकविः”—“दिवस्थितिः”—इति पाठौ, “हिन्वेपरा-
वति”—“हिन्वेपरानोअर्षति”—इति च, “सुतः”—“कविः”—इति च
॥ ८ ॥ ४

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य नवमस्याध्यायस्य
तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ उत्तेशुष्मास इति चतुर्थे खण्डे—

विद्यमानं पञ्चर्चं सूक्तं,

तत्र प्रथमा ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उत्तेशुष्मास ईरते सिन्धो रुर्मतिवस्वनः ।

३ १ २ ३ २
वाणस्य चोदयापविम् ॥ १ * ॥

हे सोम ! “ते” तव “शुष्मासः” शुष्मा वेगाः “उत् ईरते”
उद्गच्छन्ति । तत्र दृष्टान्तः—“सिन्धोः” समुद्रस्य “जर्मैरिव”

यथा तरङ्गात् “स्वनः” ध्वनिः उद्गच्छति तद्वत्* । स त्वं
 “वाणस्य” विसृष्टस्य नालस्य शततन्त्रीकस्य वीणा-विशेषस्य†
 “पवि” [शब्द-नामैतत् (निघ० १, ११)] शब्दं “चोदय”
 प्रेरय, वेगेन स्यन्दमानस्त्वं विसृष्ट-वाण-शब्द-सदृशं शब्दं
 कुर्वित्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ ३ १ २ २ १ २ २ २ १ १ २
 प्रसवेतउदीरतेतिस्रोवाचोमस्यस्युवः ।

२ ७ ३ २ ३ १ ०
 यदव्यएषिसानवि ॥ २ ॥

हे सोम ! “ते” तव “प्रसवे” सति “मस्यस्युवः” यज्ञ-मिच्छतो
 यजमानस्य “तिस्रोवाचः” ऋग्यजुःसामात्मकानि त्रीणि
 वाक्यानि “उदीरते” उद्गच्छन्ति । कदेत्यत आह—“यद्” यदा
 “सानवि” उच्छ्रिते “अव्ये” अविमये पवित्रे पवित्रम् “एषि”
 गच्छसि ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
 अव्यावारैःपरिप्रियंहरिं०द्विग्वन्त्यद्रिभिः ।

१ २ २ १ २
 पवमानमधुश्रुतम् ॥ ३ ॥

* ‘सिन्धोरुर्मेरिब—अपामिव सङ्गतः, घाटक् तेषां स्वनः’—इति वि० ।

† ‘वाणस्य—वीणाविशेषस्य’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, १, ७, २ ।

॥ ऋ० वे० ७, १, ७, ३ ।

“प्रियं” देवानां प्रीतिकारं “हरिं” हरितवर्णं “अद्रिभिः”
 आवभिः अभिषुतं “मधुसुतं” मधुनी रसस्य आवयितारं “पञ्च-
 मानं” सोमम् “अव्याः” अवेः “वारैः” वालैः “परि हिवन्ति”
 ऋत्विजः परिप्रेरयन्ति ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

१ २

३ ४ २ १ ३

आपवस्वमदिन्तमपवित्रन्धारयाकवे ।

३ २ ३ १ २ २ १ २

अर्कस्योनिमासदम् ॥ ४ * ॥

हे “मदिन्तम” मादयित्वतम ! “कवे” क्रान्तकर्षन् ! सोम !
 “अर्कस्य” अर्चनीयस्य इन्द्रस्य† “योनिम्” उदरभूतं स्थानम्
 “आसदं” प्राप्तुं‡ “पवित्रम्” अतीत्य “धारया” सम्पातेन “आ-
 पवस्व” अभिसुख्येन चर ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१ २

२ १ २

३

१

३

१ २

सपवस्वमदिन्तमगोभिरञ्जानोअक्तुभिः ।

१ २ ३ १ २

इन्द्रस्यजठरंविश ॥ ५ ¶ ॥ ५

* ऋ० वे० ६, ८, १५, ६ ।

† ‘अर्कोद्गोणकलशः अथवा अर्कश्चादित्यः अथवा आदित्यरश्मयोऽर्कः अथवा
 अर्का मन्त्रास्तेषां योनिं स्थानम्’—इति वि० ।

‡ ‘आसदम्—आसीदस्’—इति वि० ।

¶ ऋ० वे० ७, १, ७, ५ ।

हे “मदिन्तम” मादयित्वतम ! सोम ! “अक्तुभिः” अञ्जन-
साधन-भूतैः “गोभिः” गोर्विकारैः पयोभिः “अञ्जानः” अज्य-
मानः संस्तूयमानः स त्वं “पवस्व” चरत । “अनन्तरम्
“इन्द्रस्य” “जठरम्” उदरम् “आविश” प्रविश ॥ “एन्द्रस्यजठरं-
विश”—“इन्द्रइन्द्रायपीतये”—इति पाठौ ॥ ५ ॥ ५

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य नवमस्याध्यायस्य
चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे-खण्डे—

अयावीतीति तृचात्मकम् प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ १ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अयावीतीपरिस्रवयस्तइन्दोमदेषा ।

३ १ २ ३ १ २ २
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ * ॥

हे “इन्दो” सोम ! “अया” अनेन रसेन “वीती” वीत्यै
इन्द्रस्य भक्षणाय “परिस्रव” परिचरन् । कीदृशेन रसेनेत्यत
आह—“ते” तव “यः” रसः “मदेषु” सङ्ग्रामेषु “नवतीर्नव”
नवनवति-सङ्ख्याकाः शत्रुपुरीः “अवाहन्” जघान । इमं
सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निद्रउक्तसङ्ख्याकाः शत्रुपुरीः जघानेति
कृत्वा रसो जघानेत्युपचारः ॥ १ ॥

* ३० आ० ६, १, १, ६ (२ भा० ५२४०) = ३० वे० ७, १, १८, १ ।

† ‘अया’—अनया, वीत्या मार्गेण परिस्रव’—इति वि० ।

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ ४ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरःसद्य इत्याधियेद्विोदासायशम्बरम् ।

१ २ ३ ४ २ ३ १ २
अथ त्वन्तुर्वशं यदुम् ॥ २ * ॥

“सद्यः” एकस्मिन्नेवाहनि† “पुरः” शत्रूणां पुराणि सोम-
रसः अवाहन् । “इत्याधिये” सत्य-कर्मणोः‡ “द्विोदासाय”
राज्ञे “शम्बर” शत्रु-पुराणां स्वामिनम् “अथ” अथ अनन्तरं
“त्व” तं “तुर्वश” तुर्वश-नामानं राजानं द्विोदास-शत्रुं
“यदुम्” यदु-नामकञ्च राजानमवाहन् । [अत्रापि सोमरसं
पीत्वा मत्तः सन्निद्रः सर्वमेतदकार्षीदिति सोमरसे कर्तृत्वमुप-
चर्यते ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
परिनोअश्वमश्वविज्ञोमदिन्दोहिरण्यवत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २
क्षरासहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ ६

हे सोम ! “अश्ववित्” अश्वस्य लभकः त्वं “नो” अस्माकम्
“अश्व” “गोमत्” गोयुक्तं “हिरण्यवत्” हिरण्योपेतं पश्वादि-

* अ० वे० ७, १, १८, २ ।

† ‘सद्यः’—क्षणदेव—इति वि० ।

‡ ‘इत्या’—इदाजीम्—इति वि० ।

॥ अ० वे० ७, १, १८, ३ ।

धनञ्च “परि चर” । अपिच “सहस्रिणीः” बह्वनि* “इषः”
अन्नानि चर ॥

“परिनः”-“परिणः”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ६

अथ तृचाळको द्वितीय-सूक्ते—

तत्र प्रथमा ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

अपघ्नन्पवतेमृधोपसोमोअरावणः ।

२ ३ १ २ ३ २

गच्छन्निद्रस्यनिःकृतम् † ॥ १ ‡ ॥

“सोमः” “मृधः” हिंसकान् शत्रून् “अपघ्नन्” मारयन्
“अरावणः” सक्तौ सत्यां धनानामदातृंश्च “अप” अन्ना
“इन्द्रस्य” “निष्कृतम्” स्थानं “गच्छन्” प्राप्नुवन् “पवते” धारया
चरति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २

महोनोरायआभरपवमानजक्षीमृधः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

रास्तेन्दोवीरवद्यशः ॥ २ § ॥

* ‘सहस्रिणीः’—सहस्रसंख्याता इषः अन्नानि—इति वि० ।

† “निष्कृतम्”—इति ख० पु० मु० पाठः ।

‡ ख० आ० ६, १, २, १४ (२भा० १८४०)=ह० वे० ७, १, २२५ ।

§ अपेत्यपसर्गद्वयदर्शनात् प्रग्नित्यस्याऽऽतिः ।

५ ह० वे० ७, १, २३, १ ।

हे “पवमान !” “इन्दो” सोम ! “नः” अस्माकं “महः”
महान्ति “रायः” धनानि “आ भर” आहर “सृधः” हिंसकान्
शत्रूँश्च “जहि” * मारय “वीरवत्” पुत्राद्युपेतं “यशः” कीर्तिञ्च
“राख” अस्मभ्यं देहि ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
नत्वाशतञ्चनद्भुतोराधोदित्सन्तमामिनन् ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
यत्पुनानोमखस्यसे ॥ ३ ॥ ७

हे सोम ! “राधः” धनं † “दित्सन्तम्” आदातुमिच्छन्तं
“त्वा” त्वां “शतञ्चन” बहवोऽपि “द्भुतः” हिंसकाः शत्रवः ‡ “न
आमिनन्” न हिंसन्ति । कदा ? इत्यत्राह—“यद्” यदा
“पुनानः” पूयमानः त्वं “मखस्यसे” धनं धातुमिच्छसि § ॥ ३ ॥ ७

अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते—

प्रथमा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
अयापवस्वधारयाययासूर्यमरोचयः ।

३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
हिन्वानोमानुषीरपः ॥ १ ॥ ॥

* संहितायां “जही”—इति दीर्घान् अयुते, द्वात्र इति (६, ९, १२५) तत्र दीर्घः ।

† ऋ० वे० ७, १, २३, २ ।

‡ ‘राधः—धनस्य’—इति वि० ।

§ ‘द्भुतः—हरणशीलाः’—इति वि० ।

§ ‘मखस्यसे—यज्ञसमये यज्ञं त्वं यदा करोषि’—इति वि० ।

॥ ऋ० ऋ० ६, १, १, ७ (१भा० ५०४०)=ऋ० वे० ७, १, २१, २ ।

हे सोम ! “मानुषीः” मनुष्याणां हितानि “अपः” उद्भवानि
 “हित्वानः” प्रेरयन् त्वं “यया” “धारया” “सूर्यम्” “अरीचयः”
 प्रकाशयसि तथा “अया” अनया धारया “पवस्व” क्षर ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
 अयुक्तसूरएतशम्यवमानोमनावधि ।

३ १ २ ३ १ १
 अन्तरिक्षेणयातवे ॥ २ * ॥

“पवमानः” पूयमानः सोमः “मनावधि” मनुष्येभ्यस्तस्मिन्
 मनुष्यइत्यर्थः । “अन्तरिक्षेण” “यातवे” गन्तुं “सूरः” प्रेरक-
 स्यादित्यस्य “एतशम्” [अश्वनामैतत् (निघ० १, १४, १०)]
 अश्वं “अयुक्तं” युङ्क्ते ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 उतत्याहरितोरथेसूरोअयुक्तयातवे ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २
 इन्दुरिन्द्रइतिब्रुवन् ॥ ३ † ॥ ‡

“उत” अपिच “इन्दुः” सोमः “इन्द्र इति ब्रुवन्” “त्याः”

* ऋ० वे० ७, १, २९, २ ।

† “ब्रूवन्”—इति ख० पु० पाठः ।

‡ ऋ० वे० ७, १, ३, १, ४ ।

तान् “हरितः” हरितवर्णान् अश्वान् “सूरः” सूर्यस्य “रथे”
“यातवे” गन्तुम् “अयुक्त” युनक्ति* ॥

“रथे”—“दश”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ८

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायण्यस्य नवमस्याध्यायस्य

पञ्चमः खण्डः† ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे ‡—

अग्निंवदति हवात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

अग्निंवोदे वमग्निभिः सजोषा

१ २ ३ १ २ ३ १ २

यजिष्ठन्दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

योमर्त्येषु निध्विर्विर्हतावा

१ २ ३ १ २ ३ २

तपूर्मूर्द्धावृत्तान्नः पावकः ॥ १ णा ॥

* ‘एतदुक्तमवति—यदा सोमस्य इन्द्रस्य चाकानं क्रियते तदा सूर्यो रथे नियुक्तः
स्वात् यातवे गमनाय’—इति वि० ।

† ‘उक्तं वक्षिष्यवतानम्’—इति वि० ।

‡ ‘इदानीमाज्यानि’—इति वि० ।

¶ य० वे० १५, ६९=स० वे० ५, २, ३, १ ।

हे देवाः ! “वः” यूयं “देवं” द्योतमानम् “अग्निम्”
 “अध्वरे” कौटिल्य-रहिते यज्ञे “दूतं” “क्षणध्वं” कुरुत । कौ-
 टशम् ? “अग्निभिः” अन्यैः “सजोषा” सजोषसम् [द्वितीयार्थे
 प्रथमा (३, १, ८५)] “यजिष्ठं” यष्टृतमं* “यः” अग्निः देवो-
 ऽपि सन् “मर्त्तयुषु” “निध्रुविः” नितरां ध्रुवस्तिष्ठति । कौटशः ?
 “ऋतावा” यज्ञवान् सत्यवान् वा “तपुर्मूर्द्धा” तापकं तेजः†
 “ष्टतान्नः पावकः” शोधकं तमग्निं दूतं क्षणध्वमिति योजना॥१

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ३ १ २ २ ३ २

प्रोथदश्वेनयवसेविष्यन्

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यदामहःसंवरणाद्वपस्थात् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आदस्यवातोअनुवातिशोचि

१ २ २ ३ १ २ ३ १ २

रधस्ततेव्रजनङ्कुषणमस्ति ॥ २ ॥

“यवसे” घासे “अविष्यन्” भक्षयन्‍वा “प्रोथत्” शब्द-
 कुर्वन् सञ्चरन् वा “अश्वो न” अश्व इव “महः” महतः “संवर-

* ‘यजिष्ठ’—यजनौयम्—इति वि० ।

† ‘तपुः’—तापवशीलः, मूर्द्धा—प्रधानमूतः—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ५, २, ३, २ ।

¶ ‘यवसे’—सन्निधानभूते । अथवा द्वितीयार्थे सप्तमी । यवसभक्षविष्यन् भक्ष-
 यन्—इति वि० ।

णात्” निरोधात् दावरूपोऽग्निः “यदा” “व्यस्थात्” संवृतेषु वृक्षेषु वितिष्ठते, “आत्” तदा “अस्य” अग्नेः “गोचिः” अग्निः “अनु वातः वाति” । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः—“अध” अयानन्तरं हे अग्ने ! “ते” तव “व्रजनं” वर्त्म “क्षणमस्ति” । “स्म”—इति पूरणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३
उद्यस्यतेनवजातस्यवृष्णो-

४ १ २ ३ १ २ ३ २
ग्रेचरन्त्यजराइधानाः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
अच्छाद्यामरूपोधूममपि

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
मन्दूतोअग्नईयसेहिदेवान् ॥ ३ * ॥ ६

हे “अग्ने ! ” “नवजातस्य” नूतन-प्रादुर्भूतस्य “वृष्णः” वर्षितुः “यस्य” “ते” तव “अजरा” जरा-रहिता ज्वाला “इधानाः” इध्यमाना या “उच्चरन्ति” उद्गच्छन्ति । हे “अग्ने ! ” “अरुषः” आरोचमानः “धूमः” धूमयुक्तः “दूतः” त्वं “द्यामच्छ”† द्युलोकं प्रति “समेषि” सम्यग् गच्छसि, पश्चात् तव त्वान् “देवान्” इन्द्रादीन् “ईयसे हि” प्राप्नोषि खलु, [यद्वा, हे

* ऋ० वे० ५, २, ३, ३ ।

† ‘अच्छ—आप्तम्’—इति वि० । संक्षिप्तायाम् “अच्छा”—इति दीर्घान् अयते, तव निपातस्य चेति दीर्घः ।

अग्ने ! त्वदीयो यो धूमः द्युलोकं प्रति एषि गच्छति, पुनश्च-
व्यत्ययः ; त्वमपि देवान् प्राप्नोषि ॥

“एषि”-“एति”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ८

अथ तमिन्द्रमिति तृचात्यक्तं द्वितीयं सूक्तम्*

तत्र प्रथमा ।

१२ १२

३२२२ ३११

तमिन्द्रं वाजयामसि महेवृत्राय हन्तवे ।

१ २२ ३ १ २

सवृषावृषभो भुवत् ॥ १ ॥ १ ॥

यजमाना आहुः—“तं” पूर्वोक्तम् “इन्द्र” “वाजयामसि”
वाजयामः सोमेन स्तुतिभिः “वाजवन्तं” बलवन्तं कुर्मः । कि-
मर्थम् ? “महे” महान्तं “वृत्राय” अपामावरकं वृत्रासुरं
“हन्तवे” हन्तुं सोम-पानेन मत्तः स्तुतिभिर्वा स्तुतः सन्
वृत्रहन्तवे [वाजयामसि—वाजवन्तं करोतीत्यर्थे “तत्करोतीति
(३, १, २५ वा०) णिच्, “णाविष्ठवत् (३, १, २५ वा०)”—
इति णेरिष्ठवद्भावात् “टेः (६, ४, १५५)”—इति टि-लोपः,
“विश्वतोर्लक् (५, ३, ६५)”—इति सतुपो लुक्] । “वृषा”
धनानां सेक्ता दाता “सः” इन्द्रः “वृषभः” अस्माकं स्तोत्रुणां
सोमस्य दातृणां धनादि-लेचको दाता “भुवत्” भवतु ॥ १ ॥

* ‘मैत्रावरुणमाज्यम्’—इति वि० ।

† ङ० आ० १, १, २, ५ (१भा० २९६४०) = ङ० वे० ६, ६, १९, १ ।

अथ द्वितीया ।

२ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ २

इन्द्रःसदामनेकृतओजिष्ठःसबलेहितः ।

३ २ ३ २३ ३ २

द्युन्नीश्लोकीससोम्यः ॥ २ * ॥

“सः” इन्द्रः “दामने” स्तोत्रभ्यः धनादि-दानायैव “कृतः” प्रजापतिना सृष्टः । किञ्च “ओजिष्ठः” ओजस्वितमः “सः” एवेन्द्रः “बले” बलवति सोमे प्रजापतिना सृष्टिकाले निहितः सोम-पानार्थञ्च निहित इत्यर्थः । “द्युन्नी” [“द्युम्नं द्योततेयं शी वान्नं वेति (निरु० ने० ५, ५) यास्केनोक्तत्वात्] यमस्य अन्नवान् वा अतएव “श्लोकी” श्लोकः स्तुतिः तद्वान्† “सः” इन्द्रः “सोम्यः” सोमार्हो भवति‡ ॥

“बले”-“मदे”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २३ ३ १२ २२ ३ १२ ३ १ २

गिरावज्जोनसम्भूतःसबलोअनपच्यतः ।

३ २ ३ १२ २२

ववत्तुग्रोअस्तुतः ॥ ३ ॥ १०

* ऋ० वे० ६, ६, २२, ३ ।

† ‘श्लोकी’—श्लोकैर्मन्त्रैर्योऽतिशयो गीयते सः श्लोकी—इति वि० ।

‡ ‘सोमैर्यः’ स सस्यते स सोम्यः—इति वि० । “सोमसर्हन्ति यः”—इति

पा० ४, ४, १६० ।

॥ ऋ० वे० ६, ६, २२, ४ ।

“गिरा” स्तुति-लक्षणया वाचा स्तोत्रभिः “सम्भृतः” उत्पा-
दितः तीक्ष्णीकृतः । तत्र दृष्टान्तः—“वज्रोन्” वज्र आयुधं
तत्कर्तृभिः शितधारो यथा भवति तीक्ष्णीक्रियते तद्वत्
स्तोत्रभिः स्तुत्या सम्भृतः, अतएव “सबलः” बल-सहितः तस्माद्
“अनपच्युतः” परैरपच्युतः अनभिगतइत्यर्थः, तादृशः “उग्रः”
महान् “अस्तुतः” युद्धे शत्रुभिरहिंसितइन्द्रः “ववचे” स्तोत्रभ्यो
धनादिकं वोढुमिच्छति ॥

“उग्रः”—“ऋष्वः”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ १०

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायण्यस्य नवमस्याध्यायस्य

षष्ठः खण्डः* ॥ ६ ॥

अथ सप्तम-खण्डे †—

अध्वर्यो अद्रिभिरिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,‡

तत्र प्रथमा ॥ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२३ २३१ १

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतः सोमस्य वित्र आनय ।

३ १ २ ३ १ २

पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥ ॥

* ‘इन्द्रोऽग्नानमोदहदित्यङ्गानम्’—इति वि० । अतोऽग्नानं विनिधायक-

क्रीतिं तदभिप्रायः । अतश्च तदिहैव द्वितीये (१, १, २, १ = ३ भा० १११४०) प्रपाठके ।

† ‘उक्तान्याज्यानि, इदानीं माध्यन्दिनः पवमानः’—इति वि० ।

‡ ‘शायवप्रभृतीनि सामानि ब्राह्मणेनोक्तान्यार्षाणि’—इति वि० ।

॥ इ० आ० ६, १, २, ३ (२ भा० ५०४०) = ऋ० वे० ७, १, ८, १ ।

हे “अध्वर्यो !” “अद्रिभिः” ग्रावभिः “सुतम्” अभिषुतं
 “सोमं” “पवित्रे” “आनय” प्रापय । एवदेव दर्शयति—
 “इन्द्राय” इन्द्रस्य “पातवे” पानाय “पुनाहि” पुनीहि पावय ॥
 “आनय”-“आसृज”—इति पाठौ, “पुनाहि”-“पुनीहि”—
 इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२१२ ३ १२ ३२३ कर २२
 तवत्यइन्दोअन्धसोदेवामधोव्याशत ।

१२ ३१२
 पवमानस्यमरुतः ॥ २ * ॥

हे “इन्दो” सोम ! “तव” सम्बन्धिनं “मधोः” मदकरस्य
 “पवमानस्य” पूयमानम् “अन्धसः” अन्नं [तत्र कर्मणि षष्ठी
 (३, १, २५)] “त्वे” ते इमे “देवाः” इन्द्रादयो “मरुतश्च”[†]
 एवभूतमन्नं “व्याशत” व्याप्नुवन्तीत्यर्थः ॥
 “व्याशत”-“व्यश्रुत”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३१३१२ ३२३ ३१२ ३१२
 दिवःपीयूषमुत्तमं सोममिन्द्रायवज्रिणे ।

३२ ३१२
 सुनोतामधुमत्तमम् ॥ ३ ‡ ॥ ११

* ऋ० वे० ७, १, ८, २ ।

† ‘मरुतः’—मरुतो देवाः अथवा मरुतः रश्मयः—इति कि० ।

‡ ऋ० वे० ७, १, ८, ३ ।

हे अध्वर्यवः ! यूयं “मधुमत्तमम्” अतिशयेन माधुर्योपेतं
 “दिवः” द्युलोकस्य “पौयूषम्” अमृतभूतम् “उत्तमं” श्रेष्ठं
 “सोमं” “वज्रिणे” वज्रवते “इन्द्राय” “सुनोत”* अभि-
 षुण्णत ॥ ३ ॥ ११

॥ वैरूपम्† ॥ अध्वर्योर्‍२३४ आ । त्रिभायिःसू३ता३म् ।

सोमांपा२३४वी । त्राआ१नाया२ । पुना२३ । ह्रीन्द्रा३४

औहोवा । यपात्तवे२३४५ ॥ (१) तवत्या२३४ई । दो

आन्धा३सा३ः । देवा२मा२३४धोः । वाया१शाता२ ।

पवा२३ । माना३४औहोवा । स्पमरुता२ ३४५ ॥ (२)

दिवःपौ२३४यू । प्रमुत्ता३मा३म् । सोमा२मा२३४ईन्द्रा ।

यावज्रायिणा२यि । सुनो२३ । तामा३४औहोवा ।

धुमत्तमा२३४५म् (३) ॥ २० ॥ [१]

* संहितायां “सुनोता” — इत्याकारान्तं अश्रुते, तत्र द्व्यचोतइत्येतन्मात्तिङइति

(६, ३, १३५) योगविभागादौर्ध्वः ।

† “गायत्री वैरूपम्” — इति ख० पु० पाठः ।

‡ ऊ० गा० ४ प्र० १ अ० २० सा० ।

१ २ १ २ २
॥ आशुभागवम् ॥ अध्वर्यो^१अद्रि^२ । भिःसू^२ताम् ।

१ २ १ ३ ५ १ २
सोमम्यवा^१शयि । चा^१आर^३नार^५३४या । पुना^१हाशयिन्द्रा

३२ १ ५ ५ १२१ २ २
२ । यपा^३ । तार^३३४वो^६ह्ययि ॥ (१) तवत्यइन्द्रो । अ

२ १ २ २ १ ३ ५ १
न्वा^३साः । दायि^१वामधो^३ः । वाया^१रशा^३३४ता । पवा

२ ३ २ १ ५ ५ ३ १ २
मा^३शनार^३ । स्यमा^३ । रु^३र^३३४तो^६ह्ययि ॥ (२) दिवःपी

१८ २ २ १ २ १ ३
यूषम् । उता^३माम् । सोममिन्द्रा^३ । यावा^१रज्जार^३

५ १ २ ३२ १ ५
४यिणायि । सुनोता^१मा^३ । धुमा^३ । तार^३३४ मो^६ इ

५
ह्ययि(३) ॥ १ * ॥ [२]

२ २ १ २ १ २ २
॥ मागी^१यवम् ॥ अध्वी^१होवा । र्यो^१आ^३ । द्रिभा

३ ५ १८ २ १ २ १ २
यिःसू^३र^५३४ताम् । सोमम्यवि । च^१आना^२श्या^३ । पुना ।

२ २ ३ ५ १ ३ ५ २ २
हा । औ^३र^५ह्योयि । ह्यी^३र^५३४न्द्रा । या^१रपा^३र^५३४औ^३ह्योवा ।

२ १ १ १ १ २ १ १ १ ३
ए३ । तवे^३र^५३४ ॥ (१) तवौ^३ह्योवा । त्या^१आ^३रयि । दो

^{२ ३} ^५ ^{१ २ २ २} ^{१ २} ^{१ २}
अन्धार३४साः । देवामधोः । वियाशाशतार । पवा ।

^२ ^२ ^३ ^५ ^{१ ५ ३} ^{५ २ २}
हा । औश्होयि । मार३४ना । स्यारमार३४औहो

^२ ^१ ^{१ १ १ १} ^{२ २} ^{१ २} ^{१ ५ १}
वा । ए३ । रुता२३४५ ॥ (२) दिवौहोवा । पीयूर ।

^{२ २ ३} ^५ ^{१ २ २ २} ^{१ २}
प्रमुत्तार३४माम् । सोममिन्द्रा । यवाज्रायिणारयि ।

^{१ २} ^२ ^२ ^३ ^५ ^{१ ५ ३}
सुनो । हा । औश्होयि । तार३४मा । धूरमार३४

^{५ २ २} ^{२ १} ^{१ १ १ १}
औहोवा । ए३तमार३४५म् (३) ॥ २ * ॥ [३]

^२ ^२ ^२ ^{१ २}
॥ सौमित्रम् ॥ अध्वर्योअद्रिभिः सुताश्मे । सोम

^{२ २} ^२ ^{१ २} ^२
मवित्रे । आ२१२३ । नया३४३ । पू२३ना । हीन्द्रा

^१ ^४ ^५ ^४ ^५ ^२ ^२
रेओर३ । यपोवा । ता५ोह्वायि ॥ (१) तवत्यइन्दो

^२ ^{१ २ २ २} ^२
अन्धसाश् । देवामधोर्वि । आ२१२३ । शता ३४३ ।

^१ ^२ ^२ ^१ ^४ ^५ ^४ ^५
पार३वा । माना२ओर३ । स्यसेवा । रु५ तोह्वा

^२ ^{२ २} ^२ ^{१ २} ^{२ २}
यि ॥ (२) दिवः पीयूषमुत्तमाश्मे । सोममिन्द्राय । वा

^२ २१२३ । जिणा३४३यि । ^{१ २} सूर३नो । ^२ तामा२ओ२३ ।

^{४ ५ ४ ५} धुमोवा । ता५मोईहायि(३) ॥ ३ * ॥ [४]

॥ ऐटतम् ॥ ^{१ २} अध्व । ^{१ २} एआध्वा । ^२ र्यीअद्रि । भा३

^{१ १ ३ ५ २ ५ २ १} यिः । द्रा२यिभा२३४ओहोवा । ^{२ ५} सूर३४ताम् । ^{२ १} सोमा

^{३ ५ ३ २ १ १ ३ ५ २ ३} म्पा२३४वी । चआ३ । चारआ२३४ओहोवा । ना२३

^{५ २ १ ३ ५ ३ २ १ १ ३ ५ २} ४या । पुनाहार३४यिन्द्रा । यपा३ । या२पा२३४ओ

^{२ ३ ५ १ २ १ २ २} होवा । ता२३४वे ॥ (१) तव । एतावा । त्यइन्दो । आ३ ।

^{१ ३ ५ २ ३ ५ २ १ ३ ५} दो२आ२३४ओहोवा । धा२३४साः । देवा॒मा२३४धोः ।

^{३ २ १ ३ ५ २ ३ ५ २ ३} विया३ । वा२या२३४ओहोवा । शा२३४ता । पवामा

^{५ ३ २ १ ३ ५ २ ३} २३४ना । स्यमा३ । स्या२मा२३४ओहोवा । ^३ हृ२३४

^{५ १ २ १ २ २ २ १} ताः ॥ (२) दिवः । एदायिवाः । पीयूषम् । ऊ३ । षा

^{१ ३ ५ २ ३ ५ २ १ ३ ५} रमूर३४ओहोवा । ता२३४माम् । सोमा॒मा२३४यिन्द्रा ।

^{३ २} यवा३ । ^{१ ३} या१रवा२३४ औहोवा । ^{५ २ ४} जी२३४णे । ^{३ ५} सु१ना३ता
^५ र३४मा । ^{३ ५} धुमा३ । ^{१ ३ ५ २ ४} धूरमा२३४ औहोवा । ^३ ता २ ३ ४
^५ माम्(३) ॥ ४ * ॥ [५]

^{१ २ १} ॥ धुरासाकमश्वम् ॥ ^१ अध्वर्या३आ३ । ^१ हौ३हो३१ । ^१ द्वि
^२ भिःसुता३म् । ^{५ २} हौ३हो३१यि । ^{२ २} सोमम्पवा३यि । ^५ हौ३
^२ हो३१ । ^{१ २ २} त्रआनया३ । ^{५ १} हौ३हो३१यि । ^{२ २ २} पुनाहीन्द्रा३ ।
^{५ २} हौ३हो३१ । ^{२ २} यपातवा३यि । ^{५ २} हौ३हो३१२३४५ई । ^३ डा ॥ (१)
^{१ २} तवत्यआ३ । ^{५ २} हौ३हो३१ । ^{२ २} दोअन्धसा३ः । ^{५ २} हौ३हो३१
^{२ २ २} यि । ^{० २} देवामधो३ः । ^{२ २} हौ३हो३१यि । ^{२ २} वियाशता३ । ^५ हौ
^२ ३हो३१यि । ^२ पवमाना३ । ^{५ २} हौ३हो३१ । ^२ स्यमरुताः३ ।
^{५ २} हौ३हो३१२३४५ई । ^{१ २ २} डा ॥ (२) ^५ दिवःपीयू३ । ^५ हौ३हो३
^२ १ । ^{५ २} षमुत्तमा३म् । ^{२ २} हौ३हो३१यि । ^२ सोममिन्द्रा३ ।

^५ ^२ ^२ ^५ ^२ ^{२ २ २}
 चौ३हो३१ । यवज्जिणा३यि । चौ३हो३१यि । सुनोतामा

^५ ^२ ^२ ^५ ^२
 ३ । हो३हो३१ । धुमत्तमा३म् । चौ३हो३१२३४५ई ।

डा(३) ॥ ५ * ॥ [६]

^१ ^{२ २ १ २} ^१ ^२
 ॥ विलम्बसौपर्णम् ॥ अध्वर्यो॑ अद्रिभिः सुतम् । ईय

^१ ^२ ^{३ ४} ^{३ ४ ५ ६} ^२ ^२ ^१
 इयाहायि । सोमस्यवित्रा । हा३हा३यि । ना२३४

^५ ^{१ २} ^२ ^१ ^३ ^{५ ६ ७} ^{२ २}
 या । पूना३उवा३ । हा३यिन्द्रा२३४ औहोवा । यपा

^{३ १ १ १ १} ^{१ २ १ २ २ १} ^२ ^{१ २ १} ^२
 तवे२३४५ ॥ (१) तवत्यइन्दोअन्धसः । ईयईयाहायि ।

^{४ ५ ६ ७ ८} ^२ ^२ ^१ ^५ ^{१ २}
 देवामधोर्विया । हा३हा३यि । शा२३४ता । पावा३

^२ ^१ ^१ ^{५ ६ ७} ^२ ^{३ १ १ १ १}
 उवा३ । मारना२३४ औहोवा । स्यमरुता२३४५ ॥ (२)

^{२ १ २ १ २ २} ^२ ^१ ^{२ १} ^२ ^{३ ४ ५ ६ ७ ८} ^{५ ६}
 दिवः पौयूषमुत्तमम् । ईयइयाहायि । सोममिन्द्रायवा ।

^२ ^२ ^१ ^५ ^{१ २} ^२ ^१ ^१ ^३
 हा३हा३ । आ२३४यिणायि । सूना३उवा३ । ता२मा

^{५ ६ ७} ^२ ^{३ १ १ १ १}
 २३४ औहोवा । धुमत्तमा२३४५म् (३) ॥ ६ * ॥ [७]

* ऊ० गा० ४ प्र० २ अ० ५ सू० ।

† ऊ० गा० ४ प्र० २ अ० ६ सू० ।

॥ सौपर्णम्* ॥ अध्वर्य्योवा । द्रायिभायिःसूर३४
 ताम् । सोमाम्यवायि । चआरना२३४या । पूरना ।
 चार३यिन्द्रा । यापातवा । औ३होवा ॥(१) तवत्य
 ओवा । दोअन्धार३४साः । देवामधाः । वियार३शा
 २३४ता । पारवा । मार३ना । स्थामरुता । औ३
 होवा ॥(२) दिवःपीयोवा । घामुत्तार३४माम् । सो
 मामिन्द्रा । यवार३आर३४यिणायि । सूरनो । तार३
 मा । धूमत्तमाम् । औ३र३होवा । हो ५ ई । डा(३)
 ॥ १३ ॥ [८]

॥ रोहितकुलीयोत्तरम् ॥ अध्वर्य्याअद्रिभायिः । सु
 तारम् । सोमाम्यविवआनार३या । पूनार३हायिन्द्रा२१ ।
 यपो२३४वा । ता५वोईहायि ॥(१) तवत्यइन्दोआ ।

* “एडसौपर्णम्”—इति ख० पु० पाठः ।

† ऊ० गा० १६ प्र० २ अ० १३ सा० ।

१ १ २ २ २ २ १ १ १
धसा२ः । देवामधोर्वियाशा२३ता । पावा२माना२३ ।

२ १ ५ ४ ५ २ १ २ १ २ १ २
स्यमो२३४वा । हृ५तो६हायि ॥ (२) दिवःपीयूषमू । त

१ २ २ २ १ २ १ १ १
मा२म् । सोममिन्द्रायवज्रा२३यिणायि । सूनो२तामा

२ १ ५ ४ ५
२३ । धुमो२३४वा । ता५मो६हायि (३) ॥ १४ * ॥ [८] ११

धर्त्तादिव इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् ।†

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
धर्त्तादिवः पवते ह्यव्यो रसो

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

१ १ २ २ ३ ३ १ २ २ ३
हरिः ह्यजानो अत्यो न सत्वभि

२ ३ १ २ ३ २
वृथा पाजांसि ह्यणुषे न दीष्ठा ॥ १ ‡ ॥

* ज० गा० १६ प्र० ७ ख० १४ सा० ।

† 'अभि सोमास आद्य इति बृहत्त्यः, धर्त्तादिवो जगत्स्यः विष्टुभो रूपेण'—इति वि० । यथा पूर्वसभि सोमास इति (२, २, ८, १ = ३ भा० ४०१ प्र०) तथैवात्र धर्त्ता दिव इति भावः ।

‡ ज० आ० ६, २, २, ५ (२ भा० १८२ प्र०) = ऋ० वे० ७, ३, १, १ ।

“धर्त्ता” सर्वस्य धारकः सोमः “दिवः” अन्तरिक्षात् अन्तरिक्षस्थितात् दशापवित्रात् “पवते” पूयते । कीदृशः सोमः ? “कृतव्यः” कर्त्तव्यः शोधयित्वर्थः । “रसः” रसात्मकः । “देवानां” “दक्षः” बलप्रदः [यद्वा, दक्षः प्रवर्द्धनीयो देवानामर्थाय] । तथा “वृभिः” नेहभिः ऋत्विभिः “अनुमाद्यः” अनुमादनीयः स्तुत्यो वा । शेषः प्रत्यक्षकृतः । “हरिः” हरितवर्णः । “सत्वभिः” प्राणिभिः अस्त्रदादिभिः “सृजानः” सृज्यमानः “अत्यो न” अश्वइव [स यथा शिक्षितोऽनायासेन गच्छति तद्वत्] “वृथा” अप्रयत्नेन “पार्जांसि” बलानि स्वीयान् “क्षणेषु” कुरुते “नदीषु” वसतीवरीषु ताभिरित्यर्थः ॥

“क्षणेषु”-“क्षणुते”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः

२ १ २ ३ १ २ २ २
स्वाऽऽसिषासन्नथिरो गविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
इन्द्रस्य शूष्ममीरयन्नपस्युभि

१ २ ३ १ २ ३ १ २
रिन्दुर्हि न्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ * ॥

अयं सोमः “गभस्त्योः” हस्तयोः “आयुधा” आयुधानि

“शूरो न” शूर इव “धत्ते” धारयति,* “स्वः” स्वर्गं सुख-साधनं
यज्ञं वा “सिंघासन” सम्भक्तुमिच्छन् “रथिनः” रथवान् [रथा-
दिन-प्रत्ययः] “गविष्टिषु” यजमानस्य गवामेषणेषु सत्सु यजमा-
नो ह्यहं गो-सम्भजनाय रथवानित्यर्थः ! “इन्द्रस्य” “शुष्म”
बलम् “इरयन्” प्रेरयन् “इन्दुः” सोमः देवः “अपस्युभिः”
कर्मेच्छुभिः† “मनोषिभिः” मेधाविभिः ऋत्विग्भिः “हिव्त्वानः”
प्रेर्यमाणः “अज्यते”‡ गोभिः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ४ १ २
इन्द्रस्यसोमपवमानजर्मिणा

३ १ २ ४ २ ३ १ २
तविष्यमाणोजठरेष्वविश ।

१ २ ३ २ ४ २ ३ १ २
प्रनःपिन्वविद्युदभ्रेवरोदसी

४ २ ३ २ ४ १ २ ३ १ २
धियानोवाजाऽपमाहिशश्वतः ॥ ३ ॥ १२

हे “सोम !” “पवमान” पूजमान ! त्वं “तविष्यमाणो” वर्जि-
ष्यमाणः§ सन् “इन्द्रस्य” “जठरेषु” “जर्मिणा” प्रभूतया

* ‘असि-परशु-पाश-प्रभृतीनि यथा शूरः धारयति तद्वत् सोमः धारयतीति
शुक्-सुव-प्रह-वससान्यायुधानि गमस्योः’—इति वि० ।

† ‘अपस्युभिः—अपदच्छद्भिः ऋत्विग्भिः’—इति वि० ।

‡ ‘अज्यते—अज स्तेपणे, क्षिप्यते’—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ७, ३, १, ३ ।

§ ‘तविष्यमाणः—सूयमानः’—इति वि० ।

धारया “आ विश” जठर-प्रदेशस्य बाहुल्यात् बहुवचनम्* “नः”
 अस्मदर्थं “विद्युत्” “अभ्रेव” अभ्राणीव सा यथा अभ्राणि
 दोग्धि तद्वत् “प्र पिन्व” धुञ्च “रोदसी” व्यावाष्टयिष्वी† किञ्च
 “धिया” कर्मणा‡ “नः” अस्मभ्यं “शश्वतः” [बहुनामैतत्
 (निघ० ३, १, ५)] बह्वन् “वाजान्” अन्नान् “उप” समोपे
 “माहि” निर्माहि ॥

“माहि”-“मासि”—इति पाठौ, “नः”-“न”—इति च ॥३॥१२

२२ १ २ १
 ॥ उदङ्गार्गवम् ॥ धत्तादायिवार३ः । पवतायिका

२२ १ २ १
 २३ । त्वीयोरसाः । दक्षोदायिवार३ । नामनूमार३ ।

२२ १ २ १ २ १
 दीयोनुभायिः । हरिःसार्ज्ज्जार३ । नोअतायियो२३ ।

२२ १ २ १ २ १ २ १
 नासत्वभायिः । वृथापाजा२३ । सिक्कणूषार३यि । ना

२ २ २ २ १ २ १ २ १
 दीषुवा३१७ ॥ (१) शूरोनाधार३ । तआयूधार३ । गा

१ २ १ २ १ २ १ २ १
 भस्तियोः । सुवःसायिषार३ । सन्नथायिरो२३ । गाविष्टि

* ‘जठरेषु आविश’—सप्तम्या बहुवचनमिदमेकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् ।

† ‘प्र पिन्व’—पुनःपुनः पूरय दीपयात्मानं विद्युद्धे यथा अभ्राणीव रोदसी
 व्यावाष्टयिष्वी व्यापय’—इति वि० ।

‡ धिया—बुद्ध्या—इति वि० । “धौ”—इति निघण्टौ कर्मनामस्येकविंशति-
 तमस्यम् (२, १) ।

२ १ २ १ ३ १
षू । इन्द्रस्याशू२३ । अमीराया२३न् । आपस्युभायिः ।

२ १ २ १ २ १ २ १
इन्दुर्हायिन्वा२३ । नोअज्याता२३यि । मानीषिभा३१

२ १ २ १ २ १ २ १
उ ॥ (२) इन्द्रस्यासो२३ । मपवामा२३ । नाजर्मिणा ।

२ १ २ १ २ १ २ १
तविष्यामा२३ । णोजठारा२३यि । पूआविशा । प्रनः

१ २ १ २ १ २ १ २ १
पायिन्वा२३ । विद्यदाभ्रे२३ । वारोदसायि । धियानो

२ १ २ १ २ १ २ १ २ १
वार३ । जाउपामा२३ । हीशश्वता३१उवार३५ (३)

॥ १४ * ॥ [१]

२ १ २ १ २ १ २ १
॥ कावम् ॥ धर्त्तावा । दिवःपवतेका । त्वियोरा

१ २ २ २ २ २ १ २ १
सारः । दक्षोदेवानामनुमा । दियोन्हभा२यिः । हरिः

२ २ २ १ १ २ ४ ५
सृजानोअतियो । नसत्वाभा२३यिः । वार्थी ३ पाजा ।

२ १ १ २ ४ २ १
सिक्कणूप२३यि । नादा३यिषूपूवा३पू३ ॥ (१) शूरोवा ।

२ २ १ २ १ २
नधत्तआयुधा । गभस्तायो२ः । स्वःसिषासन्नथिरो ।

गविष्टायिषू२ । इन्द्रस्यशुक्लमीरयान् । अपस्यूभारश्चयिः ।

आयिन्दू३र्हयिन्वा । नोअज्यातारश्चयि । मानाश्चिषा

पुयिभा६प्र६यिः ॥ (२) इन्द्रोवा । स्यसोमपवमा । नऊ

र्मायिणा२ । तविष्यमाणोजठरायि । पुत्रावायिशा२ ।

प्रनःपिन्वविद्युदभ्रे । वरोदासारश्चयि । धायाश्नोवा ।

जा३उपामार३ । ह्रीशाश्वापूता६प्र६ः (३) ॥ १६ * ॥ [२]

॥ यज्ञायज्ञीयम् ॥ धत्ताऽपूदि । वाशःपाश्वतेका ।

त्वियोरसोदक्षोदेवानामनुमा । दी३योनृ३भायिः । चरा

रयिःसृजानोअत्यो३सत्त्व । भिर्वा३र्था । ऊम्मायि । पा

३जा । सायिकृण्षेनदारयिषवाउ ॥ (१) आशू । रो

नधत्तत्रायुधागभस्योःस्वःसिषासन्नयिरो । गा३वायिष्टा

श्चिषू । इन्द्रा२स्यशुक्लमीरयन्नपस्यू । भिरारश्चिन्दः ।

^१ ऊम्नायि । ^२ हाश्चिन्वा । ^१ नोअज्यतेमना^३यिषिभाउ ॥ (२)

^१ भायिरायि । ^२ द्रस्यसोमपवमानऊर्म्मिणातविष्यमाणोजठरा

^१ यि । ^२ पूश्चावाश्चिशा । ^१ प्रना^२पिन्विद्युदभेवरोद ।

^२ सीधारश्या । ^१ ऊम्नायि । ^२ नोश्वा । ^१ जा^२उपमाहिशार

^३ श्वताउ । ^१ वाश्छपू(३) ॥ १५ * ॥ [३]

॥ शाकरम्^१ ॥ ^२ हाउधात्ता । ^२ दारश्छयि । ^२ वःपवते

^२ कृत्वियोरसा । ^१ एहिया । ^१ एहियाश्छ । ^२ हाउदाक्षाः ।

^१ दारश्छयि । ^२ वानामनुमादियोनृभिः । ^१ एहिया । ^१ एहि

^२ याश्छ । ^१ हाउहारीः । ^१ सा^२श्छ । ^२ जानोअत्योनसत्व

^१ भिः । ^१ एहिया । ^१ एहियाश्छ । ^१ हाउवार्था । ^१ पारश्छ ।

^२ जा^२सिकृणुषेनदीषुवा । ^१ एहिया । ^१ एहियाश्छ । ^५ हाउ ॥ (१)

^१ हाउशूराः । ^२ नारश्छ । ^२ धत्तआयुधागभस्योः । ^१ एहि

या । एहिया३४ । हाउह्वाः । सा२३४यि । पास
 नृथिरोगविष्टिषु । एहिया । एहिया३४ । हावायिन्द्रा ।
 स्या२३४ । शुअमीरयन्नपस्यभिः । एहिया । एहिया
 ३४ । हावायिन्द्रूः । हा२३४यि । न्वानोअज्यतेमनी
 षिभिः । एहिया । एहिया३४ । हाउ ॥ (२) हावायि
 न्द्रा । स्या२३४ । सोमपवमानजर्मिणा । एहिया ।
 एहिया३४ । हाउतावायि । ध्या२३४ । माणोजठरेष्वा
 विश । एहिया । एहिया३४ । हाउप्रानाः । पा२३४
 यि । न्वविद्युदभ्रमेवरोदसौ । एहिया । एहिया३४ ।
 हाउधाया । नो२३४ । वाजाउपमाहिशश्चतः । एहि
 या । एहिया३४ । हाउ । हो५ई । डा(३) ॥ २० * ॥ [४]
 ॥ वासिष्ठम् ॥ उज्जवायि । धर्ता३४अहीवा । दि

* ऊ० गा० १० प्र० १ अ० २० सू० १ ।

† “उज्जवायि वासिष्ठम्”—इति ख० पु० पाठः ।

२ १ २ २ ४ ५ ३ २ ३ ४ ५ १ २
वाः । पवते । कृत्वियोरसाः । दक्षा३४औहोवा । दे

२ १ २ २ ४ ५ ३ २ ३ ४ ५
वा । नाश्मनु । मादियोनुभायिः । हरा३४औहोवा ।

१ २ १ २ २ ४ ५ ३ २ ३ ४ ५
हृजा । नो३अति । योनसत्वभायिः । वृथा३४औहोवा ।

१ २ १ २ २ ४ ५ ३ २ ३ ४ ५
पाजा । सिक्कणु । पे । नदा३यिषू५वा६५६ ॥ (१) शु

२ २ ४ ५ १ २ १ २ २ ४ ५
रा३४औहोवा । नधा । ता३आयु । धागभस्तियोः ।

२ २ ४ ५ १ २ १ २ २ ४ ५
सुवा३४औहोवा । सिषा । सा३नुयि । रोगविष्टिषू ।

२ २ ४ ५ १ २ १ २ २ ४ ५
इन्द्रा३४औहोवा । स्यशू । ष्मा३मीर । यन्नपस्युभा

२ २ ४ ५ १ २ १ २ २ ४ ५
यिः । इन्द्र३४औहोवा । हिन्वा । नोअज्य । ते । म

२ ४ २ २ ४ ५ १
ना३यिषा५यिभा६५६यिः ॥ (२) इन्द्रा३४औहोवा । स्य

२ १ २ २ ४ ५ २ २ २ ४ ५
सो । मा३पव । मानजर्मिणा । तवा ३ ४ औहोवा ।

१ २ १ २ २ ४ ५ २ २ २ ४ ५
व्यमा । णो३जठ । रेषुआविशा । प्रना३४औहोवा ।

१ २ १ २ २ ४ ५ २ २ २ ४ ५
पिन्वा । विद्युद । भे३वरोदसायि । उज्जवायि । धिया

३४ औहोवा । नोवा । जा॒उप । मा । हि॒शा॒श्वा
 पू॒ता॒ई॒पू॒हः (३) ॥ १६ * ॥ [५]

॥ वा॒यो॒रभि॒क्र॒दन् । ध॒र्ता॒दि॒वः॒प॒व॒ते॒कृ॒त्व॒यौ । हो
 यि॒रा॒साः । द॒क्षो॒दे॒वा॒ना॒म॒नु॒मा॒दि॒यो॒ऽनु॒भ॒यिः । हरिः
 सृ॒जानो॒अ॒ति॒यो॒न॒सा॒ऽत्वा॒भ॒यिः । वा॒र॒३४॒र्या । पा॒र॒३४
 जा । सा॒यि॒कृ॒णु॒षा॒श्रि । ह॒ार॒३४॒यि । न॒दा॒श्रि॒षू॒प॒वा॒ह
 पू॒ह ॥ (१) शु॒रो॒न॒ध॒त्त॒आ॒य॒धा॒ग॒भौ । हो॒स्ता॒योः । स्वः॒सि
 षा॒स॒न्न॒थि॒रो॒ग॒वा॒श्रि॒ष्टा॒श्रि॒षू । इ॒न्द्र॒स्य॒शु॒ष्म॒मी॒र॒य॒न्न॒पा॒श्रि
 स्यू॒भ॒यिः । आ॒र॒३४॒यि॒न्द्रूः । ह॒ार॒३४॒यि॒न्वा । नो॒अ
 ज्य॒ता॒श्रि । ह॒ार॒३४॒यि । म॒ना॒श्रि॒षा॒प॒यि॒भा॒ई॒पू॒ह॒यिः ॥ (२)
 इ॒न्द्र॒स्य॒सो॒म॒प॒व॒मा॒न॒औ । हो॒म॒र्मा॒यि॒णा । त॒वि॒ध्य॒मा॒णो
 ज॒ठ॒रे॒षु॒आ॒श॒वा॒श्रि॒शा । प्र॒नः॒पि॒ग्व॒वि॒द्यु॒द॒मे॒व॒रो॒ऽदा॒श॒सा

यि । धा^२२४या । नो^३२४वा । जा^५उपमा^१३ । हार^१

३ । हिशा^२श्वा^४पूता^४६५ईः(३) ॥ १८ * ॥ [६] १२

अथ प्रगाथरूपे तृतीयसूक्ते—

प्रथमा ।

१२ ३२३ ३ १३क २२ ४२३ १ ९
यदिन्द्रप्रागपागुदगन्यग्वाह्यसेनृभिः ।

१२ ६ १२ २२ ३ २ ३ १ ३ १ २
सिमापुरुनृषूतोअस्यानवेसिप्रशर्द्धतुर्वशे ॥ १ ॥

हे “इन्द्र ।” “यदु” यदि “प्राक्” प्राच्यां दिशि वर्त्तमानैः
[सप्तम्यां प्राक्-शब्दात् विहितस्यास्तातेः ॥ “अञ्चेलुगिति (५, ३, ३०)
लुक्], यदि वा “अप्राक्” प्रतीच्यां दिशि वर्त्तमानैः, यदि वा
“उदक्” उदीच्यां दिशि वर्त्तमानैः यद्वा “न्यक्” नीच्यां दिशि अ-
धस्ताद्वर्त्तमानैः [“न्यधीच (६, २, ५३)”—इति प्रकृतिस्वरत्वम्,
“उदात्तस्वरितयोर्यणः (८, २, ४)”—इति परस्यानुदात्तस्य स्वरि-
तत्वम्] ; एवञ्भूतैः “नृभिः” स्त्रीलृभिः त्वं “ह्यसे” स्व-स्व-का-
र्याय आह्वयसे [“हिसिप्रशर्द्धेन्द्रसिमइतिवैश्वेष्टमाचक्षतइति
वाजसनेयकम्] । यद्यप्येवं बहुभिराह्वयसे तथापि “अनवे”

* ज० मा० १३प्र० २ अ० १८सा० ।

† उक्ती माध्यन्दिनः पवमानः, इदानीं शृष्टानुच्यते—इति वि० ।

‡ क० आ० ३, २, ४, ७ (१ मा० ५७३४०) = ऋ० वे० ५, ७, ३०, १ ।

॥ “दिक्कब्धेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यां दिग्देशकालेष्वस्तातिः”—इति पा०

४, ३, २७ ।

अनुनाम राजा तस्य पुत्रे राजर्षौ “पुरु” बहुलं “नृषूतः” नृभि-
स्तदीयैः स्तोत्रभिः प्रेरितः “असि” भवसि राज्ञो हितकारणे त्वां
स्तोतारः प्रीणयन्तीत्यर्थः [षु प्रेरणे, अस्मात् कर्मणि निष्ठा
“तृतीया कर्मणि (६, २, ४८)”—इति पूर्वपद-प्रकृति-स्वरत्वम्]
अपिच हे “प्रशङ्गे” प्रकर्षेण शङ्कयितरभिभवितरिन्द्र ! “तुर्वशे”
—एतत्सज्जके राजनि नृषूतोऽसि नृभिः प्रेरितोऽसि भवसि ॥१॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ४ १ २ ४ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

कण्वा सस्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रायच्छन्त्यागहि ॥२*॥१३

“यद्वा” यद्यपि “रुमे” रुमादिषु चतुर्षु राजसु हे “इन्द्रः !
त्वं “सचा” सह “मादयसे” मादयसि तथापि “ब्रह्मवाहसः”
ब्रह्मणां स्तोत्राणां वोढारः अथवा अन्नानां वोढारः “कण्वासः”
कण्वगोत्रा ऋषयः “स्तोमेभिः” स्तोत्रैः स्तोत्रसमूहैः सह “इन्द्र !”
त्वाम् “आयच्छन्ति” आयमयन्ति अतस्त्वम् “आगहि” शीघ्र-
मागच्छ [गमेल्लोटि छान्दसः (२, ४, ७३) शपो लुक्] ॥

“स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहसः”—“ब्रह्मभिः स्तोमवाहसः”—इति
पाठौ ॥ २ ॥ १३

२ २ २ २ १ २ २
॥ नैपातिथम् ॥ यदिन्द्रप्रागपागुदाशगे । नायग्वा

^२ ^१ ^२ ^२ ^३ ^५ ^१
 ह । यसायिनृभीः । हा । औहो२३४हा । सिमार
^१ ^२ ^२ ^३ ^५ ^१
 पुहनुषूतोअ । सियानवे२३ । हा । औहो२३४हा ।
^१ ^२ ^२ ^३ ^५ ^१ ^३ ^५
 असायिप्रागाः । हा । औहो२३४हा । धास्तर३४औ
^२ ^५ ^२ ^१
 होवा । वा२३४शे ॥ (१) अमिप्रशर्दतुर्वशाः । आसि
^२ ^१ ^२ ^२ ^३ ^५ ^१ ^{१२}
 प्रश । धतूर्वशेः । हा । औहो२३४हा । यदा२रुमे
^१ ^२ ^२ ^३ ^५ ^१
 रुशमेश्या । वकायिक्कपारः । हा । औहो२३४हा । इ
^२ ^२ ^३ ^५ ^१ ^३ ^५
 न्द्रामादाः । हा । औहो२३४हा । यारसार३४औ
^३ ^५ ^२ ^२ ^२ ^२ ^१
 होवा । सा२२४चा ॥ (२) इन्द्रमादयसेसचाः । आ
^२ ^१ ^२ ^२ ^३ ^५
 यिन्द्रमाद । यसायिसचाः । हा । औहो२३४हा ।
^१ ^२ ^२ ^३ ^५ ^१ ^३
 कणा२सस्वास्तोमेभिर् । ह्वाहसारः । हा । औ
^१ ^२ ^२ ^३ ^५
 हो२३४हा । इन्द्रायाक्काः । हा । औहो२३४हा ।
^१ ^३ ^५ ^३ ^५
 तारआ२३४औहोवा । गार३४ही (३) ॥ १५ * ॥ [१] १३

अथ प्रगाथे चतुर्थसूक्ते—

प्रथमा ।

३१२ ३१२ ३१२ ३२ ३११२२
 उभयं ष्टण्वचनइन्द्रोअर्वागिदंवचः ।

३१ २ ३२३ १ २ ३१२ २२३१ २
 सत्राच्यामघवांत्सोमपीतये धियाश्विष्ठआगमत् ॥ ११ ॥

“उभयं” स्तोत्रात्मकं शस्तात्मकञ्चोभयविधम् “इदं” “वचः”
 “अर्वाग्” अस्मदभिमुखम् इन्द्रः “ष्टण्वत्” शृणोतु त्वञ्च “मघ-
 वान्” धनवान् इन्द्रः “सत्राच्या” अस्माकं सह अचक्ष्वा “धिया”
 युक्तः सन् “श्विष्ठः” अतिशयेन बलवान् “सोमपीतये” सोमस्य
 पानाय “आगमत्” अगच्छतु ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१७ ३१२ ३१२ ३२ ३१२ ३१२
 तं हिस्वराजंवृषभन्तमोजसाधिषण्णिष्टतक्षतुः ।
 ३२ ३१२ ३१२ ३२ ३१२ ३ २३१२
 उतोपमानाम्प्रथमोनिषीदसिसोमकामं हिते मनः ॥ २ ॥ १४

“तं हि” तं खल्विन्द्रं “स्वराजं” स्वयमेव राजमानो “धिषणे”
 द्यावापृथिव्यौ “वृषभं” जगदुपकारकं वृष्टेर्वर्षकम् “ओजसा”
 बलेन “निष्टतक्षुः” सञ्चरतुः “उत” अपिच यस्मादेवं तस्मात् हे

* ‘अस्मावाकं साम’—इति पि० ।

† ख० आ० ३, २, ४, ८ (१भा० ५२१४०) = छ० वे० ६, ४, २५, २ ।

‡ छ० वे० ६, ४, २५, २ ।

इन्द्र ! उपमानभूतानामन्येषां देवानां मध्ये “प्रथमः” मुख्यः
सन् “निषीदसि” वेद्यां सोमकामं “हि” खलु ते मनः ॥

“ओजसाः”-“ओजसः”—इति पाठौ ॥ २ ॥ १४

॥ वैयश्वम् ॥ उभय^२ष्टणवच्चना^२श्च । आयिन्द्रो^१र

^{१२}अर्वागिदं^१वचार^२श्च । होवा^१श्चायि । सन्नाचि^२यामघवा^१

इन् । सो । मापा^२श्चायि । ता^२श्च^४यायि । धिया^{२ १२}श

विष्ट^१आ^{२ १}श्चोयि । गमात् । औ^{४ ५}श्चोवा ॥ (१) धिया^{२ २}

शविष्ट^२आगमा^१श्चदे । धाया^१श्च^{१ २ १२}विष्ट^१आगमा^१श्चत् । हो

वा^२श्चायि । त^१श्चि^{२ १२}खराजा^१श्च^२प्रभाम् । तामो^{२ २}श्चायि ।

जा^{४ ५}श्च^{१ २}यासा । धिप्रणे^१निष्ट^१तार^{२ १}श्चोयि । क्षतः । औ^{२ १}श्च

होवा ॥ (२) धिप्रणे^{२ २}निष्ट^२तक्ष^१तू^{२ १}श्चरे । धायिषा^१श्च^{२ १}रणे^१निष्ट

क्षत^{१ २ २}श्च । होवा^{१ २ १ १}श्चायि । उतो^१पामा^१श्च^१प्रथमो । नायि

^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९
 षा३द्वा१यि । दार३४सायि । सोमकाम०दितार३यिद्वा१

^{२१} ^{४५} ^४
 यि । मना । औ३द्वा१वा । द्वा३५इ । डा(३) ॥ १६* ॥ [१]

^१ ^२ ^३ ^४ ^५
 ॥ वाग्रम् ॥ उभय०शा । णवा३चा१ना३ः । इन्द्रो

^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९
 अर्वागिदांवा१चा३ः । सत्रा३च्यामघवां३सोमपायिता१या

^{१२} ^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९
 ३यि । धिया३शा २ ३ वा ३यि । छार३आ२३४औद्वा१वा ।

^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९ ^{१०} ^{११} ^{१२}
 गा २ ३ ४मात् ॥ (१) धिया३शवायि । छआगा१मा३त् ।

^{१२} ^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९
 धिया३शविष्टआगा१मा३त् । त०हि३स्वराजं३वृषभन्ता१मो३

^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९ ^{१०} ^{११} ^{१२}
 जासा३ः । धिष३णेर३ना३यिः । ता३रता २ ३ ४औद्वा१वा ।

^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९ ^{१०} ^{११} ^{१२}
 चार३४तूः ॥ (२) धिष३णनायिः । तता३चा१तू३ः । धि

^१ ^२ ^३ ^४ ^५ ^६ ^७ ^८ ^९ ^{१०} ^{११} ^{१२}
 षण३ निष्टता३क्षा१तू३ः । उतो३पमाना३मप्र३धमो३निषा३यिदा१

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 पवमाननितोशसेरयि सोमश्वायम् ।

१ २ ३ १ २ २ २
 इन्दोसमुद्रमाविश ॥ २ * ॥

हे “पवमान !” “इन्दो !” “सोम !” त्वं “श्वायम्”
 अवणीयं “रयि” शत्रूणां धनं “नि तोशसे” अतितरां पीडयसि
 स त्वं “समुद्र” द्रोणकलशम् “आ विश” प्रविश ॥

“इन्दो”-“प्रियः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अपघ्नन्पवसेनृध इति तृतीयाः ।

३ १ २ ३ १ २
 अपघ्नन्पवसेनृधः ॥ ३ ॥ १५

ऋचः प्रतीकमिदम् ॥ सा च छन्दस्याज्जाता (६, १, १, ६ =
 २भा० ४८ पृ०) व्याख्याता च ॥ ३ ॥ १५

२ १ १ १ १ २
 ॥ सुहपायम् ॥ पवस्वदा रयि । इया रइया । व
 २ १ १ १ १ २ २ १
 आयूषा रक् । इन्द्रज्जच्छार । इया रद्रया । तुतेमा

* ऋ० वे० ७, ४, २२, ५ ।

† ‘नितोशसे—तंश दानि ददासि’—इति वि० ।

‡ छ० आ० ६, १, १, ६ (२भा० ४८ पृ०) = ऋ० वे० ७, १, ३४, ४ ।

दा२ः । वायुमारो२ । इया२इया । ह्यधर्मा२रणा३

४३ ॥ (१) पवमाना२ । इया२इया । नितोशासा२यि ।

रयि० सोमा२इया । अवाच्याया२ । इन्दोसमू२ । इया

२इया । इमावा२रयिशा३४३ ॥ (२) अपघ्नपा२ । इया

२इया । वसेमार्द्धा२ः । क्रतुवित्तो२ । इया२इया ।

ममत्सारा२ः । नुदसादा२यि । इया२इया । वयु

ज्जा२रना३४३म् । ओर३४५ई । डा(३) ॥ १७ * ॥ [१]

॥ भासम्† ॥ पव । स्वा३दायि । वाः । ईया । आ

यू०षा२क् । आयिन्द्र३ङ्गच् । तु । तौ३हो । वाहा

यि । मदा२ः । वायू०३म् । आ२रो२३४ओ३होवा ।

ह्यधर्मा२णा३ ॥ (१) पव । मा३ना । नायि । ईया । तो

शा३सा२यि । रायि० सोम । आवौ३हो । वाहायि ।

* ज० गा० ४प्र० २अ० १७सा० ।

† “गायत्रीभासम्”—इति ख० पु० ।

^१ ईयाश्म । ^१ इन्दोश् । ^{१ २} सारमूरश्चौद्योवा । ^{२ ४} द्रमा
^{३ २} विष्वा ॥ (२) ^५ अप । ^{२ ४} घ्राश्वा । ^५ वा । ^{४ ५} ईया । ^१ सायि
^२ मार्धाश् । ^{१ २} क्रातुविस्वो । ^२ म । ^५ मौश्चो । ^{२ ४} वाचा । ^{२ ४ २} त्वराश् ।
^१ नुदाश् । ^{१ ३} स्वारदारश्चौद्योवा । ^{२ ४} वयुञ्जनाश्म ॥ (३)

॥ १८ * ॥ [२]

^{५ २ ४ २ ४ २} ॥ काक्षीवन्तम् ॥ ^{२ १} पवस्वाश्देव आयुषाक् । ^{२ १} इन्द्रा
^२ ङ्क्छ । ^{२ ४ १ ५} तुतेमदाश् । ^२ ओश्च । ^{२ ४ १} हाहोयि । ^{२ ४} वायूमाश्
^२ श्रो । ^{२ ४ २} हधौहोयि । ^{२ ४} औद्योश्चौद्योवा । ^५ मापूणोश्चौद्योवा ॥ (१)
^{५ २ ४} पवमाननितोशसायि । ^{२ १} रयायिस्सोम । ^{२ ४ १} अवायियाश्म ।
^२ औश्च । ^{२ ४ २} हाहोयि । ^२ इन्दोसारश्म । ^{२ ४ २} द्रमौहोयि । ^{२ ४} औ
^१ चोश्चौद्योवा । ^५ वापूयिषोश्चौद्योवा ॥ (२) ^{५ २ ४ २} अपघ्राश्नपवसेमृ
^{२ १ २ २ ४} धाः । ^{२ १ ५} क्रातुविस्वो । ^२ समत्सराश् । ^{२ ४ १} ओश्च । ^{२ ४} हाहोयि ।

१ सुदा॒स्वा॒र॒हो॒यि॒ । वा॒यौ॒हो॒यि॒ । औ॒हो॒२३४वा॒ । जा
५ पू॒नो॒ई॒हा॒यि॒(३) ॥ १९ * ॥ [३]

३४५ २४५२ १ २
॥ गाय॒त्रा॒सि॒तम्* ॥ प॒व॒स्व॒दे॒व॒आ । इ॒या॒३४३ई॒३४

१ या॒ । यु॒षा॒ग्नि॒न्द्र॒ङ्ग॒क्ष॒तु॒तौ॒२ । हौ॒२ । ऊ॒वा॒२यि॒ । मा

१२२ १ २ २ १ २ १ १
दा॒२ः । वा॒यू॒३५हो॒यि॒ । आ॒रो॒३हो॒ । ह॒ध॒र्मा॒२३णा

३४३ ॥ (१) ३४५२ ४५२ १ २ ५ १
३४३ ॥ (१) प॒व॒मा॒न॒नि॒तौ । इ॒या॒३४३ई॒३४या॒ । श॒सा॒यि

२ १ १ १
र॒यि॒५सो॒म॒श्वौ॒२ । हौ॒२ । ऊ॒वा॒२यि॒ । आ॒या॒२म् ।

१ १ २ १ १ १ २
इ॒न्दो॒३हो॒यि॒ । स॒मू॒३हो॒ । द्र॒मा॒वा॒२३यि॒शा ३४ ३ ॥ (२)

४ २ ४५२ १ २ ५ १ २
अ॒प॒घ्न॒न्प॒व॒से । इ॒या ३४ ३ई॒३४या॒ । वृ॒धाः॒क्र॒तु॒वि॒सो॒म

१ १ १ १ १ १ १
मौ॒२ । हौ॒२ । ऊ॒वा॒२यि॒ । त्सा॒रा॒२ः । कु॒दा॒३हो

२ १ १ १ १ १ १
यि॒ । स्वा॒दा॒३हो॒ । व॒यु॒ज्जा॒२३ना॒३४३म् । ओ॒२३४५ई॒ ।

डा(३) ॥ २० ऋ ॥ [४]

* ऊ० गा० ४ प्र० २ सू० १८ सू० ।

† “वासिष्ठनाचिसम्”—इति ऊ० पु० ।

‡ ऊ० गा० ४ प्र० २ सू० २० सू० ।

१ २ १ २ १ २
 ॥ ऐडसैन्धुक्षितम् ॥ पवस्वदो । ह्यायि । वआयूर
 १ १ २ २ २ २ २ २ २
 श्पाक् । इन्द्रङ्गच्छतुताश्रिमाश्दाः । वायुमारो२३४
 ५ १ २ २ १ २ ४ ५ १
 ह्यायि । हाधाश्हा । मणा । औश्होवा ॥ (१) पव
 २ २ १ २ २ २ १ २ २
 मानो । ह्यायि । निनोशाश्सायि । रयिः सोमश्वाश्र
 २ २ २ ३ ५ १ २ २
 आश्रयाम् । इन्द्रोसमो२३४ह्यायि । द्रामाश्ह्यायि । वि
 १ २ ४ ५ १ २ १ २ २
 शा । औश्होवा ॥ (२) अपघ्न्या । ह्यायि । वसेमा
 २ १ २ २ २ २ २ ३ ५
 २३र्द्धाः । क्रतुवित्सेममाश्रसाश्रः । नुदस्वादो२३४हा
 १ २ २ १ ४ ५ ४
 यि । वायूश्ह्यायि । जनाम् । औश्होवा । होपु
 ई । डा(३) ॥ १* ॥ [५] १५

अथ तृतीयसूक्ते तृचान्नको—

अभीनोवाजसातममिति प्रतीकम्,

३ १ २ ३ १ २
 अभीनोवाजसातमं ॥ १† ॥

सा चान्नाता (६, २, १, ५ = २भा० १६१ष्ट०) व्याख्या-
 ताच ॥ १ ॥

* ऊ० गा० १७ प्र० १ अ० १ सा० ।

† ऊ० आ० ६, २, १, ५ (२भा० १६१ष्ट०) = ऋ० वे० ७, ४, २३, १ ।

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ २ १ २
वयन्ते अस्म्यराधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।

१ २ २ ३ १ २ २ २ १ २
निनेदिष्ठतमा इषः स्याम सुज्जेते अग्निगो ॥ २ * ॥

हे “वसो” वासयितः ! सोम ! “अस्म्य” एतादृशस्य “ते”
तत्र “राधसः” धनस्य “पुरुस्पृहः” बहुभिः स्पृहणीयस्य “वसोः”
वासकस्य त्वदीय-दीयमानस्य वयं नितरां “नेदिष्ठतमाः” अत्यन्त-
मन्तिकतमाः “स्याम” भवेम ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
परिस्थस्वानो अक्षरदिन्दुरव्येमदच्युतः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २
धारायजङ्घी अध्वरे भ्राजानयाति गव्ययुः ॥ ३† ॥ १६

“गव्ययुः” गोकामः यदा क्षीरादि कामयमानः “जङ्घीः”
समुच्छ्रितः सर्वेषां सुख्यो “यः” सोमः “भ्राजा न” यथा भ्राजमा-
नया दीप्त्या अन्तरिक्षे गच्छति तद्वत् दीप्त्या सह “अध्वरे”
यज्ञे “धारा” स्वकौयया धारया “याति” गच्छति । “स्वानः”
सुवानः अभिषूयमाणः सः “इन्द्रः” सोमः “मदच्युतः” मदार्थं

* ऋ० वे० ७, ४, २३, ५ ।

† ऋ० वे० ७, ४, २३, २ ।

वेदैः प्रेरितः सन् “अव्ये” अवि भवे पवित्रे “पर्यञ्चरत्” परितः
 चरति ।

“अञ्चरत्”-“अक्षाः”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ १६

॥ गौरीवितम्* ॥ ^५अभी । ^{३२ १}नोवा३ । ^{४ २ ५}जसातमाम् ।
^१रयिमर्षणतस्पृहार३म् । ^१आयिन्दोसद्वा३१२३ । ^४सुभा
^१पूर्णसाम् । ^१तूविद्युन्ना३१२३म् । ^{४ ५}विभोवा । ^४सापूहो६
^५हायि ॥ (१) ^५वयम् । ^{३२ २}तेआ३ । ^{४ ५}स्यराधसाः । ^{१२ २}वसोर्वसो
^१पुरुस्पृहार३ः । ^१नायिनेदिष्ठा३१२३ । ^४तमा५इषाः । ^१स्यार्म
^२सुन्ना३१२३यि । ^{४ ५}तओवा । ^४ध्रा५यिगो६हायि ॥ (२) ^५परि ।
^{३ २}स्यस्वा३ । ^{४ २ ५}नोअञ्चरात् । ^{१ २}इन्दुरव्येमदच्युता३ः । ^१धा
^{२ २}रायज३१२३ । ^{४ २}ध्वोआ५ध्वरायि । ^{१ २ २}भाजानया३१२३ । ^४ति
^५गोवा । ^४व्यापूयो६हायि(३) ॥ ३ ँ ॥ [१]

॥ ऐडकौत्सम् ॥ ^{३ २ २ १}अभीहीनो२३ । ^{४ २ २}वाजसातममीया । ^५

* “सहागौरीवितम्”—इति ख० प० पाठः ।

† क० गा० ५ प्र० १ अ० १६ सू० ।

१ १ १ २ १ २ १ २
रयिमर्षशतस्पृहम् । आयिन्दोसह । स्वभर्णा२३साम् ।

१ २ २ १ २ २ १ २
तूवा३हायि । द्यून्ना३हायि । विभासा२३हा३३म् ॥ (१)

३ १ २ १ ४ ५ १ २ २ १ २
वय३हीते२३ । अस्यराधसईया । वसोर्वसोपुरुस्पृहः ।

१ २ २ १ २ १ २ २ १ २
नायिनेदिष्ठ । तमाआ२३यिषाः । स्यामा३हायि । मून्ना

१ २ १ २ १ २ १ २
इयिहायि । तेअध्रा२इयिगा३३उ ॥ (२) परीहिस्या२३ः ।

४ २ २ १ १ २ २ १ २ २ २
खानोअक्षरदीया । इन्दुरव्येमदच्युतः । धारायज ।

२ १ २ १ २ १ २ १ २ १
ध्वोअध्वार३रायि । भ्राजा३हा । नाया३हा । तिगव्या

१ १ १ १ १ १ १ १
२३यू३३ः । ओ२३४५ई । डा(३) ॥ ४ * ॥ [२]

२ १ २ १ २ १ २ १
॥ शुद्धाशुद्धीयाद्यम् ॥ अभीनोवाजसातमाम् । रयि

१ १ २ १ २ १ २ १
मर्षशतस्पृ२३हाम् । इन्दोसहस्वभर्णा२३साम् । तुवा

१ २ १ २ १ २ १ २
यिद्यू२३म्ना३म् । वारयि । भामा३४औहोवा । द्वा२

१ १ १ १ १ २ १ २ १ २ १
३४५म् ॥ (१) वयन्तेअस्यराधसाः । वसोर्वसोपुरुस्पृहः ।

^{१ २} निनेदिष्ठतमा^{१ १ २} आ^२ ३ शिषाः । ^{२ १} स्यामसूर^२ ३ न्ना^१ शिषि । ^१ ते^१ २ ।

^{३ २} अध्रा^{५ २ २} ३ औ^{३ १ १ १ १} होवा । ^{१ २ १ २ २ १ २} गा^२ २ ३ ४ ५ उ ॥ (२) परिख्य^२ खानो^२ अ^२ च

^१ रात् । ^{२ २ १} इन्दुर^२ व्येमद^{१ २ २ १} च्य^२ २ शताः । ^{१ २ २ २ २ १} धाराय^२ ज^२ ह्वी^२ अध्वा^२ २ ३

^१ रायि । ^{२ १ २} म्ना^२ जाना^१ २ ३ या^१ ३ । ^{१ २} ता^२ २ शिषि । ^{५ २} गव्या^{५ २} ३ ४ औ^{५ २} हो

^{३ १ १ १ १} वा । ^{३ १ १ १ १} यू^{३ १ १ १ १} २ ३ ४ ५ : (३) ॥ ५ * ॥ [३]

^{२ २ १ २ २} ॥ क्री^{२ २ १ २ २} च्चाद्य^{२ २ १ २} म् ॥ ^{२ २ १ २} अमी^{२ २ १ २} नो^{२ २ १ २} वौ^{२ २ १ २} हो । ^{२ २ १ २} जासा^{२ २ १ २} तमा^{२ २ १ २} म् । ^{२ २ १ २} २

^{१ २} यिम^{१ २} र्षा^{१ २} ३ । ^४ शाता^४ ३ ^{२ २ १ २} स्पृ^{२ २ १ २} ५ ह्वा^{२ २ १ २} ६ ५ ^{२ २ १ २} ई^{२ २ १ २} म् । ^{२ २ १ २} इन्दो^{२ २ १ २} स^{२ २ १ २} च्चौ^{२ २ १ २} हो ।

^{२ २ १} स्ना^{२ २ १} भर्ण^{२ २ १} साम् । ^२ तुयि^२ द्य^२ न्ना^२ ३ म् । ^{१ २} वायि^{१ २} भा^{१ २} ३ सा^{१ २} ५ ह्वा^{१ २} ६ ५ ^४ ई^४ म् ॥ (१)

^{२ १ २} वयन्त^{२ १ २} औ^{२ १ २} हो । ^{२ २ १ २} स्यारा^{२ २ १ २} धसाः । ^{२ २} वसो^{२ २} र्वसा^{२ २} ३ उ । ^{१ २ ४} पू^{१ २ ४} ह्वा^{१ २ ४} ३ म्

^{२ २ १ २} पू^{२ २ १ २} ह्वा^{२ २ १ २} ६ ५ ^{२ २ १ २} ई^{२ २ १ २} म् । ^{२ २ १ २} निनेदि^{२ २ १ २} ष्ठी^{२ २ १ २} हो । ^{२ २ १ २} तामा^{२ २ १ २} इषाः । ^{२ २} स्याम^{२ २} स

^{१ २ ४} न्ना^{१ २ ४} शिषि । ^{२ १ २} ते^{२ १ २} आ^{२ १ २} ३ ध्रा^{२ १ २} ५ यिगा^{२ १ २} ६ ५ ^{२ १ २} उ ॥ (२) परिख्य^{२ १ २} स्तौ^{२ १ २} हो ।

^{२ २ १} नो^{२ २ १} अ^{२ २ १} च्चरात् । ^{२ २ १} इन्दुर^{२ २ १} व्या^{२ २ १} शिषि । ^{१ २} मादा^{१ २} ३ च्य^{१ २} पुता^{१ २} ६ ५ ^{१ २} ई^{१ २} म् ।

२२ २ १ २ २ २ १
धाराय औहो । ध्वो अ ध्वरायि । भ्राजानया ३ । तायि

२ ४
गाइया प्रयूह प्रहः (३) ॥ ६ * ॥ [४]

२ २ २ १ २ २
॥ रयिष्ठम् ॥ अभीनोवा । जसाताशमाम् । औ ३
२ २ १ २ १ ३ १ १ १ १ २ १
हो ३ वा । रयिमर्षशतस्य हार ३ ४ ५म् । रयिमर्षा । शता
२ २ ५ २ २ १ २ २ १ २ ३ १ १ १ १ २
स्य हृहाम् । औ ३ हो ३ वा । इन्दो स ह स भर्णसा २ ३ ४ ५म् ।
२ १ २ २ ५ २ २ १
इन्दो स हा । स भर्णा ३ साम् । औ ३ हो ३ वा । तुविद्यु ।
२ २ १ ३ १ १ १ १ २ १ २ २
मं विभा स हार ३ ४ ५म् । तुविद्यु म्नाम् । विभासा ३ हाम् ।
५ २ २ २ २ १ २ २ ५
औ ३ हो ३ वा ॥ (१) वयन्ते आ । स्यराधा ३ साः । औ ३
२ २ १ २ २ २ १ ३ १ १ १ १ २ २
हो ३ वा । वसोर्वसो पुरुस्य हार ३ ४ ५ः । वसोर्वसा उ
१ २ २ ५ २ २ १ २ २ २ ३ २
पुरुस्य हृहाः । औ ३ हो ३ वा । निनेदिष्ठतमा इषा १ः ।
२ २ १ २ २ ५ २ २ १ २
निनेदिष्ठा । तसा आ ३ यिषाः । औ ३ हो ३ वा । स्याम
२ २ २ २ ३ १ १ १ १ २ २ २ १ २
सुम्ने ते अ ध्रिगार ३ ४ ५ उ । स्याम सुम्नायि । ते आ ध्रा ३ यि

गा । औश्होश्वा ॥ (२) परिस्सखा । नोआक्षाः । रात् ।

औश्होश्वा । इन्दुरव्येमदच्युता २३४५ः । इन्दुरव्यायि ।

मदाच्युताः । औश्होश्वा । धारायजुर्ह्वानध्वरायि ।

धारायजु । ध्वाआध्वारायि । औश्होश्वा । भ्राजा

नयातिगव्ययूः । भ्राजानया । तिगाव्यायूः । औश्

होश्वा । औश्होश्वा । ईश्या । ईश्या ३४ । हा ।

हाउवा ३ । ऊश्होश्वा ३ ॥ ७ * ॥ [५]

॥ औदलम् ॥ अभीनोवा । जासाः रतमाम् । रयि

मर्षा ३ । शातस्य २३४हाम् । इदोसहा । स्वाभार्षण

साम् । तुवायिदू २३४हाम् । वारयिभा ३ । सा ३४५

हो ३५६हायि ॥ (१) वयन्ते आ । स्याराधसाः । वसो

वसा ३ । पूरुस्य २३४हाः । निनेदिष्ठा । तामाः ३५हाः ।

२२ १ २ १ ४ २ ५
स्यामसू०३ज्ञायि । ते०३आ३ । धा३४५यिगो३हायि ॥ (२)

१२ १ १ २१ २ १ २
परिस्वखा । नोआ२श्चरात् । इन्दुरव्या ३यि । माद

३ ५ १२२२ १ १ २२ १२
च्य०३४ताः । धारायऊ । ध्वोआ२ध्वरायि । भ्राजाना

२ १ ४ २ ५
र३या३ । ता२३यिगा३ । व्या३४५यो३हायि (३) ॥ ८॥ [६]

३ २ २ ४२ ५२ २
॥ श्यावाश्वम् ॥ अभा३१यि । नो३वा । जसा । ता

४ ५ १ २ १
३मम् । एहिया । रा । यिमर्षणा । त । स्पृ३हा२म् ।

१२ २ १ २ ४ ५ १२
एहिया२ । इन्दोसहास्त्रा३भा३ । णा२३४साम् । ऐहा

१२ १ २ ४ २
२यि । एहिया२ । तुविद्युमा३वा३यिभा३ । सा३४५चो

५ ३२ २ ४ ५२ २ ४
३हायि ॥ (१) वया३१म् । ते३अ । स्वर । धा३सः ।

५ १ २ २ २ १ १२
एहिया । वा । सोव३सोपू । रु । स्पृ३हा२ः । एहिया

२ १ २ ४ ५ १२
२ । निनेदिष्ठाता३मा३ः । आ२३४यिषाः । ऐहा२यि ।

१२ २ १ २ ४ २
एहिया२ । स्यामसु०ज्ञायिते३आ३ । धा३४५यिगो३

^५ ^{३ २} ^{२ ४ २} ^{२ ५} ^{२ ४}
 ह्ययि ॥ (१) पराशयि । स्याशसा । नौअ । क्षाशरत् ।

^५ ^१ ^२ ^२ ^१ ^{१ २}
 एहिया । आयि । दुरव्येमा । द । च्युता २ः । एहिया

^{२ २ १} ^{२ ४} ^५ ^{२ २}
 २ । धारायजुर्होत्राश । धारशरायि । ऐह्यारयि ।

^{१ २} ^{२ २ १} ^{२ ४} ^{२ ५} ^५
 एहिया २ । भ्राजानयाताश्रियगाश । व्याश ४ ५ योईहा

यि(३) ॥ १५ * ॥ [७]

^{२ २ २ २} ^२ ^१
 ॥ आन्धीगवम् ॥ अभिनोवाजसाशतामाम । रयिम ।

^२ ^१ ^१ ^{२ २ १} ^{२ २ १}
 पशारशता । ऊम्मा २ १ २ २ । स्पृहमिन्दोमहस्रभर्णसार

^{१ १ १} ^{१ २} ^२ ^१ ^२
 इधुम् । तूवाशउवा । व्युज्जाम् । वारश्रियभा । स

^१ ^{४ ४} ^{२ २} ^२ ^{१ २}
 ह्याम् । औशहोवा ॥ (१) वयन्तेअक्षराशधासाः । वसो

^२ ^२ ^१ ^{१ २ २} ^{२ २}
 व । सोपूरश्रु । ऊम्मा २ १ २ २ । स्पृहोनिनेदिष्ठतमा

^{३ २} ^{२ २} ^१ ^२
 इषाशः । स्थामाशउवा । सूरज्जायि । तेरश्रया । ध्रि

^१ ^{२ ५ ५} ^{२ २ २} ^२ ^१
 गा । औशहोवा ॥ (२) परिस्थस्वानोआशक्षारात् । इन्दु

र। व्येमा^२इदा। ऊम्मा^२२१२। च्युतो^१धारा^१यज^१ङ्घ्रि^१

अध्वरा^२शयि। भ्राजा^२उवा। ना^१रया। ता^२इयिगा।

व्ययूः। औ^१र^४इ^४होवा। हो^४प्रई। डा^४(३)॥ १६*॥ [८]

॥ निषेधम्^२॥ अभी^२नोवाजा^२इसातमा^२म्। रया^१यिम^२

पी। शत^१स्पृ^२दा^१रम्। इहा^१इ। आयि^१न्दो^२इसा^४दा। हा^२

हो^३र^४इहा। सभ^२र्णा^१र^२इसाम्। इहा^१इ। तूवा^१इयि^१द्यू^४

न्नाम्। हा^४हो^२२३४हा। विभा^३इसा^४प्र^४हा^४ई^४प्र^४ई^४म्॥ (१)

वयन्ते^२अस्या^२इरा^२इधसाः। वसो^१र्वसा^१उ। पुरु^२स्यु^१हा^२रः।

इहा^१इ। नायि^१ने^१इदा^४यि^४ष्ठा। हा^२हो^२र^४इहा। तमा^२आ

इयि^२षाः। इहा^१इ। स्यामा^१इसू^१न्नायि। हा^२हो^२र^४इहा।

तेआ^३इध्रा^२प्रयिगा^२ई^२प्र^२ई^२उ॥ (१) परि^२स्य^२खानो^२इअ^२चरात्।

इन्दुर^१व्यायि। मद^२च्युता^१रः। इहा^१इ। धारा^१इया^१ज।

२ ३ ३ २ १ २ १ २ १ २
 हाहो२३४हा । ध्वोअध्वार३रायि । इहा३ । भ्राजा

४ ५ २ ३ ५ ३ २ ४ ३ १ १
 रनाया । हाहो२३४हा । तिगा३व्याप्रयू३पू६ः । चेर३

११

४५(३) ॥ १२ * ॥ [८]

५ २ २ ४ ५ ४ ५ २ १ २ १
 ॥ साध्रम् ॥ अभीनो३वाजसातमाम् । रयायिमर्षा

३ २ ३ ५ १ २ २ १ २ ३ १ १
 २ । शता३४५ । स्पृ२३४हाम् । इन्दोसहस्रभर्णसा२३

१ १ १ २ ३ ५ १ २ ३ ५ ४
 ४५म् । त्वाओ२३४वा । द्यून्नाओ२३४वा । विभापु

५ २ ४ ५ ४ ५ २ १ २ १
 सहाम् ॥ (१) वयन्ते३अस्यराधसाः । वसोर्वसा २ उ ।

३ २ ३ ५ १ २ २ २ २ २
 मुह३४५ । स्पृ२३४हाः । निनेदिष्ठतमाइषाः । स्यामा

३ ५ १ २ ३ ५ ४ २
 ओ२३४वा । सून्नाओ२३४वा । तेआप्रधिगाउ ॥ (२)

५ २ ४ ५ ४ ५ २ १ २ १ ३ २
 परिस्था३स्वानोअक्षरात् । इन्दूरव्यारयि । मदा३४५ ।

३ ५ १ २ २ १ २ २ १ २ ३ २ ३
 च२३४ताः । धारायजर्द्धीअध्वरा३यि । भ्राजाओ२३४

^५ वा । ^{१ २ ३} नायाओर ^५ ३४ वा । ^४ तिगा ^४ ५ व्ययूः । ^४ होपूई ।

डा(३) ॥ १३ * ॥ [१०]

॥ यज्ञायज्ञीयम् ॥ ^{४ ३} अभाऽपूयिनः । ^{४ २ ४२} वाइजाइसाता

^५ माम् । ^१ रायिमर्षा । ^{२ १ २ २} शाइतास्पृहाम् । ^{१ १} इन्दो२स ।

^२ हस्राइभा । ^१ ऊम्मायि । ^{२ २} णाइसाम् । ^१ त्वविद्युन्निविभा

^{१ ३२} २ सहाउ ॥ (१) ^{१ २} हावा । ^{१ २ २ २} यन्तेअस्यराधसोवसोर्वसाउ ।

^{२ १ ३ २} पूरूस्पृइहाः । ^{१ १} निने२दि । ^२ छतारइमाः । ^१ ऊम्मायि ।

^२ आ ३ यिषाः । ^२ स्यामसुम्नेतेआ ^{१ ३ २} २ ध्रिगाउ ॥ (२) ^{१ २} गोपा ।

^{१ २ २} रिस्सखानोअत्तरदिन्दुरव्यायि । ^{२ १ २ २} माइदाच्यूइताः । ^{१ २} धा

^१ राइयः । ^२ ऊर्द्धी२इआ । ^{२ १} ऊम्मायि । ^{२ २} ध्वाइरायि । ^{१ २} भाजा

^२ नयातिगारव्ययाउ । ^{१ ३ २} वाइ४५(३) ॥ १४ † ॥ [११]

॥ स्वारकौत्सम् ॥ ^{२ २ २ २}अभीनोवाजाश्सातमाम् । ^{२ २}रयि
^{२ २ २}मर्षशताश्व्युहाम् । ^२इन्दोसचाश् । ^{२ १ २ २}स्वाशभाण्यशसाम् ।
^१आऽरयि । ^३तुविद्युम्नोश्चायि । ^{५ ३ २ ३}विभाशसापुह्यैषुह्यम् ॥ (१)
^{२ २}वयन्तेअस्याशराधसाः । ^{२ २}वसोर्वसोपुह्यैषुह्यः । ^२निने
^{२ १ २}दिष्टाश् । ^२ताश्माआशयिषाः । ^१आऽरयि । ^{२ ३}स्यामसुम्नो
^५श्चायि । ^{३ २ ४}तेआशध्यापुयिगाह्युह्य ॥ (१) ^{२ २}परिस्थस्वा
^२नोश्चक्षरात् । ^{१ २ २ २ २}इन्दुरव्येमदाश्च्यूताः । ^{२ २}धारायजश् ।
^{२ १ २ २}धोश्चाध्वाशरायि । ^१आऽरयि । ^{२ २ ३ ५}भाजानयोश्चायि ।
^{३ २ ४}तिगाश्व्यापुयूह्यैः (३) ॥ १८ * ॥ [१२]

॥ कार्तयशसम् ॥ ^{२ २ २}अभीहाहाउ । ^{३ ५ २}नोश्चावा । ^{१ २ २ ४ ५}ज
^{२ १}साओश्चोश्तामाम् । ^{२ २}रयायिमौश्चोशयि । ^{४ ५}आर्षाह्य ।
^५हाउवा । ^{२ १}शतस्युह्यैम् । ^{१ २ १ २}उपा । ^{२ २}इन्दोसहस्रभाशर्णा

^२ ३साम् । ^{१ २ २} तुवञ्चौश्चोश्चि । ^{४ ५} स्यून्नाईम् । ^५ हाउवा । ^२ वि

^{२ १} भासहम् । ^{३ १ १ १ १} उपार३४५ ॥ (१) ^{२ ४ १} वयञ्हाहाउ । ^३ ते २ ३ ४

^५ आ । ^{२ १ २ २} स्यराञ्चौश्चोश्चि । ^{४ ५} धासाः । ^{२ १ २ २} वसाञ्चौश्चोश्चि । ^२ यि ।

^{४ ५} वासाहउ । ^५ हाउवा । ^{२ १} मुरुस्पृहारः । ^{१ २} उपा । ^{१ २} निनेदि

^{२ २ २} छतमाश्चोश्चिपाः । ^{२ १ २ २} स्यामाञ्चौश्चोश्चि । ^{४ ५} स्यून्नाह्वायि ।

^५ हाउवा । ^{२ २ १ २} तेअधिगो । ^{३ १ १ १ १} उपार३४५ ॥ (२) ^{२ २ २ १} परीहाहाउ ।

^३ स्यार३४स्वा । ^५ नोआञ्चौश्चोश्चि । ^{२ २ १ २ २} चारात् । ^{४ ५} इन्दूरौश्चोश्चि

^{२ ५} यि । ^५ आव्याहयि । ^{२ १} हाउवा । ^{१ २} मदच्युतारः । ^{१ २} उपा ।

^{१ २ २ २ २ २} धारायजर्द्धीआश्चोश्चि । ^{२ १ २ २} भ्राजाञ्चौश्चोश्चि । ^{४ ५} नाया

^५ ह् । ^{२ १} हाउवा । ^{३ १ १ १} तिगव्ययूः । ^३ उपार३४५ (३) ॥ १० * ॥ [३]

^{२ २ २} ॥ चोतन्वाद्घीसाम† ॥ ^२ अभीनोवा । ^२ जसाश्तमाम् ।

^{१ २ २} रयायिमर्षाश्चोश्चि । ^२ एउ । ^{२ ३ २} स्पृहमा । ^{१ २ २} इन्दोसहाश्चोश्चि

३। ए३। णसमा । तुवायिद्य म्नाश्विभा३। ए३।

२३२
सहमा(१) ॥ ८ * ॥ [१४] १६

अथ तृतीयसूक्ते—

प्रथमा ।

१२ ३१ २३२ ३२३२ ६ २ ४ १२ ६२
पवस्वसोममहांसमुद्रः पितादेवानां विश्वाभिधाम ॥११॥

हे “सोम ! ” “महान्” “देवेभ्यो” दीप्यमानत्वेन महत्व-
युक्तः, “समुद्रः” समुन्दनः यस्मात् समुद्रवन्ति तादृशः, “पिता”
सर्वेषां पालयिता त्वं “देवानां” “विश्वा” विश्वानि सर्वाणि
“धाम” धामानि शरीराणि “अभि” लक्ष्य “पवस्व” क्षर ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३१२ ३१२ ३१२ ३१२ २२३१ २
 शुक्रः पवस्वदेवेभ्यः सोमदिवे पृथिव्यैश्च प्रजाभ्यः ॥ २ ॐ ॥

हे “सोम !” “शुक्लो” दीप्तः त्वं “देवेभ्यः” देवाभ्यं
“पवस्व” क्षर । किञ्च “दिवे पृथिव्यै” च द्यावापृथिवीभ्याञ्च
ततः “प्रजाभ्यः च” “शं” सुखं कुरु ॥

“प्रजाभ्यः”-“प्रजायै”—इति पाठौ ॥ २ ॥

* क० गा० १६प्र० २अ० ६सा० ।

† ह० आ० ५, १, ५, ३ (१भा० ८३४०) = ह० वे० ७, ५, २०, ४ ।

‡ ऋ० वे० ७, १५, २०, ५ ।

अथ तृतीया ।

^{३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २}
दिवोधर्त्तासिगुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ३* ॥ १७

हे सोम ! “शुक्लः” दीप्तः “पीयूषः” पातव्यः त्वं “दिवः”
द्युलोकस्य “धर्त्ता” धारकः “असि”, “वाजी” बलवान् स त्वं
“सत्ये” सत्यभूते “विधर्मन्” विधर्मणि [विविधानि कर्माणि
ऋत्विजो कुर्वन्ति यस्मिन् ; यद्वा, विविधं सोमादि-हविषां धार-
केऽस्मिन्] यज्ञे “पवस्व” क्षर ॥ ३ ॥ १७

^{२ २ २ २ २ १ १ ३}
॥ धर्मम् ॥ औहोश्वा । औहोश्वा । औहोश्वा

^{५ ५ १ २ २ १ २ २ २ १ २}
२३४ औहोश्वा । पवस्व सोममहान्समुद्राशः । पिता दे

^{१ २ १ २ १ २ १ १ १ २ १ २ १ २}
वाना रविश्च । उतिवामा २३४५ ॥ (१) शुक्रः पवस्वदेवेभ्य

^{२ ३ १ १ १ २ १ २ १ २ १ १ १ २ १ २}
सोमा २३४५ । दिवे प्रथिव्यैश्च प्रजाभ्या २३४५ । दिवो

^{२ १ २ १ २ १ २ १ १ १ २ २ १ २ २ ३}
धर्त्तासिगुक्रः पीयूषा २३४५ । सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्वा

^{१ १ १ १ १ २ २ ३ १ १ १ २ १ २ १ २}
२३४५ ॥ (१) पवस्व सोमा २३४५ । महान्समुद्राशः । पिता

^{१ २ १ १ १ १ २ २ १ २ १ १ १ २ २ १}
देवाना २३४५म् । विश्वाभिधामा २३४५ ॥ (२) शुक्र

२ ३ ११११ २२१२ २२३ ११११ २१२ ३ २
पवस्वार३४४ । देवेभ्यः सोमार३४५ । दिवे पृथिव्या१यि ।

२१२ ११११ २१२२१२ ३ ११११ २१ २२१२
शञ्च प्रचाभ्या२३४५ः । दिवो धर्ता सीर३४५ । शुक्रः पीयू

११११ २१२ ३ २ २२१२ २३ ११११
षार३४५ः । सत्ये विधर्मा१न् । वाजीपवस्वार ३४५ ।

२२ २ २ १ २ ५२ ५ २ १
औहोश्वार । औहोश्वार३४ औहोद्वा । ए३ । धर्मा

१११
२३४५(३) ॥ ८ * ॥ [१]

२ २ १ २ १
॥ आन्धीगवम् ॥ पाशवास्ता । सोर३मा । ऊम्मार

१२ २१ २१२२२१२ ३ ११११ १ २
१५२ । महान्त्समुद्रः पिता देवाना२३४५म् । वायिश्वा३

२ १ २ १ २ ४ ५ ४
उवा । भार३यिधा । मा । औहोद्वा । हो५ई ।

डा(३) ॥ ८ † ॥ [२] १७

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य नवमस्याध्यायस्य

अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

* ऊ० गा० ५ प्र० १ अ० ८ सा० ।

† ऊ० गा० २१ प्र० ३ अ० ८ सा० ।

‡ 'यज्ञायज्ञीयमग्निष्टोमसाम,'—इति वि० ।

अथ नवम-खण्डः—

प्रेष्ठं वदति त्वत्तामकं स्तुतम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषेमिन्नमिव प्रियम् ।

१६ १७ १८ १९ २०

अग्नेरथन्नवेद्यम् ॥ १ ॥

हे “अग्ने!” “वः” त्वां [पूजार्थं बहुवचनम्] “स्तुषे”
स्तौमि अहमुजनेति शेषः । कीदृशम् ? प्रेष्ठम्” अस्माकं
स्तोतॄणां धन-दानेन प्रियतमम् । “अतिथिं” सर्वैरतिथिवत्
पूज्यं [यद्वा, अतः सान्त्वयमाने (म्वा० प०) ऋतव्यञ्जि (उ०
४, २)]—इत्यादिना अतिरिचिन् । सततं देवानां हविः प्रदातुं
गच्छन्तम्] “मित्रमिव” सखायमिव “प्रियं” स्तोतुः प्रीणनकरं
“रथं न” रथमिव “वेद्यं” वेदो धनं धन-हितं लाभ-हेतुं [यथा
स्वाभिमत-लाभाय आश्रयन्ते धन-लाभ-हेतुं रथम् ; यद्वा, यथा
रथेन धनं लभते तद्वत् स्तोतारोऽग्नेन धनं लभन्ते, तादृश-
धन-लाभ-कारणम्] । हे अग्ने ! तस्मै हितं वेद्यं त्वां कर्म-
सिद्ध्यर्थम् अहं स्तोता स्तौमीति सम्बन्धः ॥

“अग्ने”—“अग्निम्”—इति पाठौ ॥ १ ॥

* इदानीमुक्त्यसामानि भवन्ति औशनं प्रथममुक्त्यम्—इति वि० ।

+ इ० आ० १, १, १, ५ (१भा० १००पृ०) = ऋ० वे० ६, ६, ५, १ =
य० वे० १३, ५१ ।

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
 कविमिवप्रशंस्यं यन्देवास इति द्विता ।

१२ २२ ३ ९
 निमर्त्तेषादधुः ॥ २ * ॥

हे “देवासः” देवाः इन्द्रादयः ! “यम्” अग्निं “मर्त्तेषु” मनुष्येषु “इति” वक्ष्यमाण-प्रकारेण “द्विता” द्विधा† “न्यादधुः” गार्हपत्याहवनीयात्मकत्वेन द्विधा निहितवन्तः । तत्र दृष्टान्तः—“कविमिव” “प्रशंस्यं” प्रशंसनाहं क्रान्त-कर्माणं पुरुषं यथा द्विधा कार्यद्वये अन्यो नियोजयति तद्वत् [यद्वा दिवि पृथिव्यां च निहितवन्तः, भूमौ तु हविराहरणार्थं दिवि तु हविः प्रदानार्थमिति द्वैधं निधानं कृतवन्त इत्यर्थः] । तमग्निं स्तुषे इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥

“प्रशंस्यं”-“प्रचेतस”-इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २
 त्वयविष्ठदाशुषोनुः पाक्षिष्टणुहीगिरः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ २
 रक्षातोकमुतन्मना ॥ ३ ‡ ॥ १८

* ऋ० वे० ६, ६, ५, २ ।

† ‘द्विता मास ऋषिः’-इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, १, ५, २ ।

मात्ती३यै३ । पूवा२३च्चा३४३यि । दा२३४धोईच्चा ॥ (२)

तुव्यवायि । छटा३४३षाः । नृडपाहिष्ट । णुद्दीगा

२३यिराः । रक्षातो३का३म् । जता२३च्चा ३४ ३यि ।

त्मा२३४नोईच्चायि(३) ॥ ११ * ॥ [१] १८

अथ छत्रात्मके द्वितीय-सूक्ते —

प्रथमा ।

एन्द्रनोगधिप्रियसत्राजिदगोच्च ।

गिरिर्नविश्वतःपृथुःपतिर्दिवः ॥ १ ॥

हे 'प्रिय' स्त्रीलृणां प्रीणनकर ! "सत्राजित्" ऋ मन्त्रतां
शत्रूणां जितः ! हे "अगोच्च" केनापि गुहितमश्वत्थ ! "वृद्ध !"
"गिरिर्न" पर्वत इव वा "विश्वतः" सर्वतः "पृथुः" पृथुतमः
"दिवः" स्वर्गस्थ "पतिः" ईश्वरस्त्व "नः" अस्मान् "आगधि"
आगच्छ ॥

* ज० गा० ५ प्र० १ अ० ११ सू० ।

† छ० आ० ५, १, १, ३ (१ मा० ८०७ पु०) = ऋ० वे० ६, ७, १, ४ ।

‡ 'सत्राजित्'—सदाजिता—इति वि० ।

§ 'गिरिर्भेद्यः अग्निरिज्ज्यापी अथवा गिरयः पर्वताः—इति वि० ।

“प्रियसत्राजिदगोह्य”-“प्रियःसत्राजिदगोह्यः”—इति पाठो,
“विश्वतःसृष्टुः”*-“विश्वतःसृष्टुः”—इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभिहिसत्यसोमपाउभेबभूथरोदसी ।

१२ २२ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
इन्द्रासिसुन्वतोवृधोपतिर्दिवः ॥ २ ॥

हे सत्य ! “सोमपाः” सोमस्य पातः ! “इन्द्र !” यस्त्वम्
“उभे” “रोदसी” व्यावापृथिव्यौ “अभि बभूथ” सामर्थ्येनाभि
भवसि स त्वं “सुन्वतः” सोमाभिषवं कुर्वतः यजमानस्य “वृधः”
वर्धकः “असि” । “दिवः” स्वर्गस्यापि “पतिः” ईश्वरोऽसि ॥२॥

अथ तृतीया ।

१२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२
त्वष्टिश्चश्वतीनामिन्द्रदत्ताः पुरामसि ।

३ २७ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २
हन्तादस्योमनोवृधःपतिर्दिवः ॥ ३ ॥ १६

● नैपपाठः क्वचिद्व्युपलभ्यते ।

† ऋ० वे० ६, ७, १, ५ ।

‡ “वृधः”—इति सु०-पाठः सायणसम्मतश्च परं वज्रशुक्लविरोधात् प्रदादि-
ग्रन्थेऽपि एवमदर्शनाच्चोपेक्षणीय एव ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, १, ६ ।

हे “इन्द्र !” “त्वं” “शश्वतीनां” बह्वीनां “पुरां” शत्रुनग-
रीणां “धर्त्ता असि हि” दारयिता भवसि खलु । किञ्च,
“दस्योः” वृथाकालस्योपक्षेपयितुरसुरस्य “हन्ता” असि घातको
भवसि “मनोः” मनुष्यस्य यागादि कुर्वतो “वृधः” वर्द्धकश्चासि ।
“दिवः” स्वर्गस्यापि “पतिः” ईश्वरोऽसि ॥ ३ ॥ १८

॥ साम्बर्त्तम् ॥ एन्द्रनो^{१२}ऽगधिप्राया । सात्राजित् ।
अगोहायौ^१ । हो^{२२}श्वा । गिरायिर्नवौ^१ । हो^{२२}श्वा । श्व
ताः । पार्थू^१र^३३४औहोवा ॥ (१) अभिहिसा^१रत्यसोमा^२
याः । ऊ^२भेवभू^२ । थरोदासौ^१ । हो^२श्वा । इन्द्रासि^१
सौ । हो^{२२}श्वा । न्वतः^१ । वार^३द्वा^२र^२ ३ ४औहोवा ॥ (२)
तुव^१हिशा^१रश्वतायिनाम् । आयिन्द्र^२दर्त्ता^१ । पुरामासौ^{२२} ।
हो^१श्वा । हन्ता^{२२}दस्यौ । हो^२श्वा । मनोः^{२२} । वार^३द्वा^२
३४औहोवा । पति^२र्दिवा^{२२} १ : (३) ॥ १२ * ॥ [१] १८

अथ लक्षात्मके तृतीय-सूक्ते*—

प्रथमा ।

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २ १
पुराभिन्दुर्युवाकविरमितौजाअजायत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रोविश्वस्यकर्माणोधर्त्तावाजीपुरुष्टुतः ॥ १ † ॥

अयम् “इन्द्रः” उच्यमान-गुणयुक्तो “अजायत” सम्पन्नः ।
कीदृग्गुणकः ? इति तदुच्यते—“पुराम्” असुर-पुराणां “भिन्दुः”
भेत्ता “युवा” कदाचिदपि बली-पलितादि-वार्द्धक्य-रहितः
“कविः” मेधावी “अमितौजाः” प्रभूत-बलः विश्वस्य कर्मणः
कृत्स्नस्य ज्योतिष्टोमादेः “धर्त्ता” पोषकः “वज्री” यजमान-
रक्षणार्थं सर्वदा वज्रयुक्तः “पुरुष्टुतः” बहुविधे तत्तत्कर्मणि
स्तुतः ॥ भिन्दुः—भिदिर् विदारणे (६० प०), कुरित्यनुवृत्तौ
“पृ-भिदि-व्यधि-गृधि-घृषिभ्यः (७० १, २३)”—इति कु-प्रत्ययः,
तस्य “इन्द्रस्युभ यथा (३, ४, ११७)”—इति सार्वधातुक-सञ्ज्ञायां
“रुधादिभ्यः अम् (३, १, ७८)” मिच्चादन्यादचः परो भवति,
“असौरहोपः (६, ४, १११)” अनुस्वार-परसवर्णौ “अचः परस्मिन्
पूर्वविधौ (१, १, ५७)”—इति प्राप्तस्य स्थानिवद्भावस्य
“न पदान्तेत्यादिना (१, १, ५८) निषेधः । युवा—यु मियणा-
मियणयोः (अदा० प०) “कनिन्युवषितक्षिराजिधन्विद्यप्रति-

* ‘साकृतं साम’—इति वि० ।

† ६० आ० ४, २, २, ८, (१भा० ७३३प०)=६० वे० १, २१, ४ ।

दिवः (उ० १, १५४)”—इति कनिन् निच्चादाद्युदात्तः (६, १, १८७) । कविः—कु शब्दे (अदा० प०) “अचइरिति (उ० ४, १३८) इः प्रत्ययस्वरः (३, १, ३) । अमितः—अमित-शब्दस्याव्ययपूर्व-पदप्रकृतिस्वरम् (८, २, १) “बहुव्रीहो पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन” तदेव शिष्यते । विश्वस्य—“अशूप्रुषीत्यादिना (उ० १, १४६) कान्, निच्चा-दाद्युदात्तः (६, १, १८७) । कर्मणा—अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३, २, ७५)”—इति मनिन् नित्स्वरः (६, १, १८७) । धर्त्ता—टच्, किच्चादन्तोदात्तः (६, १, १६५) । वज्री—मत्वर्धीय इनी (५, २, १२२), प्रत्ययस्वरः । पुरुष्टुतः—“स्तुतस्तोमयोऽह्नुदसि (८, ३, १०५)”—इति षत्वम् बहुषु प्रदेशेषु स्तुतः “थायवच्क्ताज-विचकाणाम् (६, २, १४४)”—इत्यन्तोदात्तत्वम्, तृतीया-समासे हि थायादिस्वरापवादः, “तृतीया कर्मणि (६, २, ४८)”—इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः स्यात् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वंलस्यगोमतोवावरद्विवो बिलम् ।

२ ३ १ २ २ २ ३ १ २
त्वान्देवा अभिभ्युपस्तुज्यमानास आ विषुः ॥ २ * ॥

[बलनामकाः* कश्चिदसुरो देवसम्बन्धिनीर्गा अपहृत्य कस्मिंश्चिद् बिले गोपितवान् तदानीमिन्द्रस्तद्विलं समावृत्य

* ऋ० वे० १, २१, ५ ।

+ ‘बलानाम दानवः, तसमापिधान आसीत्’—इत्यादि वि० ।

तस्माद् बिलाद् गाः निःचारयामास, तदिदमुपाख्यान मिन्द्रो
 बलस्य बलमौर्णोदित्यादि ब्राह्मणेषु मन्त्रान्तरेषु च प्रसिद्धम्,
 तदेतद्वृद्धि निधाययं मन्त्रः प्रवर्त्तते—]हे “अद्रिवः” वज्रयुक्तेन्द्र !
 त्वं “गोमतः बलस्य” गोभिर्युक्तस्य बलनामकस्यासुरस्य सम्बन्धि
 “बिलम्” “अपावः” स्व-सैन्य-मुखेनापाहृतवानसि । तदानीं
 “तुज्यमानासः” बलेन हिंस्यमानाः “देवाः” “अविभ्युषः” त्वद्-
 वया रक्षया बलादभीताः सन्तः “त्वामाविषुः” प्राप्तवन्तः ।
 अपेत्यस्य निपातत्वादाद्युदात्तत्वम्(फि०४,१२)। अवः—हज् वरणे
 (स्वा० उ०), लङ् सिप्, “इतश्च लोपः (३,४,६७)”, “स्वादिभ्यः
 श्रुः (३,१,७३)”, तस्य बहुलच्छन्दसि (२,४,७६)”—
 इति लुक्, गुणो रपरत्वम्, हल्ङ्यादि-लोपः, विसर्जनीयः, अडा-
 गमः । अद्रिवः—अद्रिरस्यास्तीति मतुप्, “छन्दसीरः (८,२,
 १८)”—इति बत्वम्, सम्बोधने “उगिदचामिति लुम् (७,१,७०),
 हल्ङ्याप्-संयोगान्त-लोपौ, “मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि (८,३,१)”
 —इति रुत्वम् । बिलं—“नन्विषयस्यानिसन्तस्येत्वाद्युदात्तत्वम्
 (फि०२,३) । अविभ्युषः—जि भी भये(जुहो०प०)लिङ्, द्विर्भावः,
 अभ्यासस्य कृत्स्न-जगत्वे,* “कसुय (३,२,१०७)”—इति लिटः
 कसुरादेशः, क्रयादिनियमात्, प्राप्त इट् “वस्त्रेकाजाह्वसाम्
 (७,२,६७)”—इति नियमान्निवर्त्तते, जसि सर्वनामस्थाने-

* “अविभ्युषः”—इति पाठस्तु न सार्वविकः, अर्चन्नुद्रितपुस्तके क-पुस्तके च
 “अभिभ्युषः”—इति दर्शनात् ।

ऽपि व्यत्ययैर्न भत्वाद् वसोः सम्प्रसारणम्, पर-पूर्वत्वम्, “शासि-
वसिघसीनाञ्च (८, ३, ६०)”—इति षत्वम्, “अचि श्रु धात्वि-
त्यादिना (६, ४, ७७) प्राप्तमियङादेशं बाधित्वा “एरनेकाच
(६, ४, ८२)”—इति यणादेशः, नञ्-समासः, अव्यय-पूर्वपद-
प्रकृतिस्वरत्वम् । तुज्यमानासः—तुजेहिंसार्थात् परस्य कर्मणि
लटः स्थाने शानच्, “सार्वधातुके यक् (३, १, ६७)”—
इति यक् तस्माददुपदेशादुत्तरस्य लसार्वधातुकस्यानुदात्तत्वम्
(६, १, १८६), यकएव प्रत्ययस्वरः शिष्यते । आविषुः—
अव रक्षणादिषु, अस्माद् गत्यर्थानुङो भिस्तस्य “सिजभ्यस्तुविदि-
भ्यश्च (३, ४, १०६)”—इति जुस्, सिच इडागमः, “आङ्जा-
दीनाम् (६, ४, ७२)”—इत्याङागमः, आदेश-प्रत्यययोः (८, ३,
५६)”—इति षत्वम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

इन्द्रमीशानमोजसाभिस्तोमैरनूषत ।

सहस्रं यस्य रातय उत वासन्ति भूयसीः ॥ ३ * ॥ २०

“स्तोतारः” “ओजसा” बलेन “ईशानं” जगती नियामकम्
“इन्द्रम्” स्तोमैः” तृहदादिभिः “अभ्यनूषत” सर्वत्र स्तुवन्ति ।
“यस्य” इन्द्रस्य “रातयः” धन-दानानि “सहस्र” सहस्र-सङ्ख्यो-

पेतानि सन्ति “उत वा” अथवा “भूयसीः”* सहस्र-सङ्ख्याकाः
अप्यधिकाः “सन्ति” । तमिन्द्रमिति पूर्वत्रान्वयः ॥

“स्तोमैः”-“स्तोमाः”—इति पाठौ ॥

इन्द्रम्—“ऋज्वेन्द्रेत्यादिना रन् (उ० २, २८), निष्वादाद्युदात्तः
(६, १, १८७) । ईशानम्—लटः शानच् (३, २, १२४), “अदिप्रभृ-
तिभ्यः शपः (२, ४, ७२)” —इति धातोरनुदात्तेत्वात् तास्यनुदात्ते-
दित्यादिना (६, १, १८६) शानचोऽनुदात्तत्वम् । ओजसा—
नव्विषयत्वादाद्युदात्तः (फि० २, ३) । स्तोमैः—अर्त्ति-स्तु-
स्वित्यादिना (उ० १, १३७) मन् प्रत्ययः, निष्वादाद्युदात्तः
(६, १, १८७) । अनूपत—णु स्तुतौ ; “णो नः (६, १, ६५),
लङ् व्यत्ययेन, भः, तस्य अदादेयः, “क्लृः सिच् (३, १, ४४),
अस्य धातोः कुटादित्वेन सिचो ङित्वाद् (१, २, १) गुणा-
भावः, इङ्भावश्छान्दसः, अङागमः । सहस्रं—“कर्दमादी-
नाञ्च (फि० ३, ११)” —इति द्वितीयाच्चरमुदात्तम् । रातयः
—“मन्त्रे वृषेतेत्यादिना (३, ३, ८६) क्तिनउदात्तः । उत—प्रातिप-
दिक-स्वरः (फि० १, १) । वा—चादिरनुदात्तः (फि० ४, १६) । सति
—प्रत्ययाद्युदात्तत्वम्, (३, १, ३), “तिङ्तिङ् (८, १, २८)”
—इति निघातो न भवति “यहृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६)” —

इति प्रतिषेधात्, सहि व्यवहितेऽपि भवतीत्युक्तम् । भूयसीः—
 सहस्रादतिशयेन बह्वः भूयस्यः, अत्र विभक्तस्य सहस्रस्य सन्निधि-
 बलात् उपपदत्व-प्रतीतिर्द्विवचनं विभज्योपपदे तरबीयसुना-
 विति बहुशब्दादीयसुन्, “बहोर्लोपो भू च बहोः (६, ४, १५८)” —
 इति इकार-लोपः, बहोर्भूइत्यादेशश्च, ईयसुनो निच्चादाद्युदा-
 त्तश्च, “उगितश्च (४, १, ६)” — इति ङीप् ॥ ३ ॥ २०

५२ ३ २३ ५२ ५ १ २ २ १
 ॥ मारुतम् ॥ पुराभिदुयुवाकवीः । अमितौजाश्च

१२ २ १ २ २ १ २ ३ ५
 जायार३ता । आयिन्द्रोविश्वा३ । स्याकर्मा२३४णाः ।

१ २ ३ ५ ४ ५
 धर्ता । वाज्रौवाओ२३४वा । पुरुषृष्टुताः ॥ (१) तुव

३ १ ३ ४२ ५ १ २ २ १२ २ १ २
 म्बलस्यगोमताः । अपावरद्विवोवा२३यिलाम् । त्वा

२ २ १ २ ५ १ २ ३ ३
 न्देवाः । आभिभू२३४षाः । तुज्या । मानौवाओ२३

५ ४ ५ ३२ १२ ३ ४२ ५ १ २
 ४वा । सआ५विषूः ॥ (२) इन्द्रमीशानमोजसा । अभिस्तो

२ १ १२ २ १ २ १ २ ३ ५ १
 मैनूषा२३ता । साहस्रन्वा३ । स्याराता२३४याः । उता ।

२ १ ३ ५ ४ ४
 वासौवाओ२३४वा । तिभू५यसीः । हो५ई । डा(३) ॥ १३* ॥

॥ महावैश्वामित्रम् ॥ ^२ हयायि । ^{४ ५} हया३ । ओहा

^{४ ५} ओहा । ^२ हयायि । ^{४ ५ ४ ५} हया३ । ओहाओहा । ^२ हयायि ।

^{४ ५ ४ ५} हया३ । ओहाओहा । ^{२ २} पुरान्निन्दूः । ^{३ २ २ १} युवाकावीरः ।

^२ अमितीजाः । ^{३ २ २ १} अजायातार । ^२ इन्द्रोविश्वा । ^{३ २ १} स्यकर्मा

^२ णारः । ^{३ २ १} धर्त्तावज्जी । ^२ पुरुष्टतारः ॥ (१) ^३ तुवम्बला । स्य

^{२ २ १} गोमातारः । ^२ अपावरा । ^{३ २ २ १} द्विवोवायिलारम् । ^२ तुवा

^२ न्देवाः । ^{३ २ १} अविभ्यूषारः । ^२ तुज्यमाना । ^{३ २ २ १} सञ्जावायिषू ॥ (२)

^२ इन्द्रमीशा । ^{३ २ २ १} नमोजासार । ^२ अभिस्तोमैः । ^{३ २ २ १} अनूषाता

^{३ २ २ १} र । सहस्रया । ^२ स्यरातायारः । ^{३ २ २ १} उतवासा । तिभूया

^{४ ५ ४ ५} सौरः । ^२ हयायि । ^{४ ५ ४ ५} हया३ । ओहाओहा । ^२ हयायि ।

^{४ ५ ४ ५} हया३ । ओहाओहा । ^{४ ५ ४} हयायि । ^{४ ५ ४} हया३ । ओहाओ

५ ३ ५ ३ ५ ३
 छा । हो ४ ईडा । हो ४ इडा । हो २ ३ ४ ५ ई ।

डा(३) ॥ २० * ॥ [२] २०

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायण्यस्य नवमस्याध्यायस्य

नवमः खण्डः† ॥ ८ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।

पुमर्थाश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ८ ॥

॥ इति पञ्चमस्यार्द्धः प्रपाठकः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-

श्रीवीर-बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणा-

चार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे

उत्तरायण्ये नवमोऽध्यायः‡ ॥ ८ ॥

* ऊ० गा० २२ प्र० २ अ० २० सा० ।

† 'अष्टमसहः समाप्तम्'—इति वि० ।

‡ 'पञ्चमस्य प्रपाठकस्य प्रथमोऽध्यायः समाप्तः'—इति वि० ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्गमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ १० ॥

॥ अथ दशमोऽध्याय आरभ्यते* ॥

तत्र,

अक्रान्त्समुद्र इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१२ ३१ २३ १२ १२
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मा
३ १२ ३ १२ २२ ३ २
जनयन् प्रजाभुवनस्थगोपाः ।
१२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वृषापवित्रे अधिसानो अय्ये
३ १२ २२ ३ १२ २२
बृहत्सोमो वावृधेऽस्वानो अद्रिः ॥ १ † ॥

“समुद्रः” [यस्मादापः सन्द्रवन्ति स समुद्रः] अपां वर्षकः,
“गोपाः” स्वामित्वेन सर्वस्य रक्षकः सोमः “प्रथमे” विस्तृते “भुव-

* ‘इदानीं नवममहः अष्टाचत्वारिंशमुच्यते । तत्र च ब्राह्मणेन गायत्र-प्रश्नतीर्थां
साञ्जानाविंशसूक्तम्’—इति वि० ।

† क० आ० ६, १, ४, ७ (२भा० १९१४०) = ऋ० वे० १७, ४, १८, ५ ।

नस्य” उदकस्य “वि धर्षन्” विधारकोऽन्तरिक्षे प्रजाः “जनयन्”
उत्पादयन् “अक्रान्” सर्वमभिक्रामति [क्रमतेर्लुङि तिपोङ्भावे
वृद्धौ च कृतायां सिज्लोपे मकारस्य “मीनोधातोः (८, २, ६४)”
—इति नकारे रूपम्] ; “वृषा” कामानां वर्षिता, “स्नानः”
अभिषूयमाणः, “अद्रिः” आदरणशीलः, “सः” सोमः अधिकं
“सानो” समुच्छिते अविभवे पवित्रे “बृहत्” प्रभूतं “ववृधे”
वर्धते ॥

“गोपाः”—“राजा”—इति पाठौ, “अद्रिः”—“इन्दुः”—
इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ २ ४ १ २ ३
मत्सिवायुमिष्टयेराधसेनो

१ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
मत्सिमित्रावरुणापूयमानः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३
मत्सिशङ्घीमारुतम्मत्सिदेवान्

३ १ २ ३ १ २
मत्सिद्यावापृथिवीदेवसोम ॥ २ * ॥

हे सोम ! त्वं वायुं “मत्सि” मादय । किमर्थम् ? “नः”
अस्माकम्† “इष्टये” ईषणीयाय अन्नाय “राधसे” धनाय च ।
तथा पवित्रेण पूयमानस्त्वं “मित्रावरुणा” मित्रावरुणौ च

“मत्सि” तर्पयति । किञ्च “मास्त” मत्तां स्मृतं शब्दो
बलञ्च मत्सि । तथा “देवान्” इन्द्रादीन् “मत्सि” हर्षय ।
हे “देव” स्तोतव्य ! हे सोम ! “द्यावापृथिवी” च “मत्सि”
मादय । एतान् हर्षयन्तान् कृत्वा अस्मभ्यं धनं प्रयच्छेत्पर्यः ॥

“राधसेनः”-“राधसेच”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ ४ ५ ६
महत्तसोमोमहिषश्चकारा

१ २ ३ ४ ५ ६
पायङ्गुर्भविषीतदेवान् ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
अदधादिन्द्रे पवमानओजो

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
जनयन्त्यर्यो ज्योतिरिन्दुः ॥ १ * ॥ १

“महिषः” महान् पूज्यो वा सोमः “महत्” प्रभुत्वं तत् कर्म
“चकार” अकरोत् । किन्तु कर्म ? “अयां गर्भः” उद्भक्तार्त्ता
गर्भभूतः [जनयितृत्वान्न्यत्वाच्च] “सः” सोमः “देवान्” “आ-
हणीत” समभजत—इति यत् तत् कृतवानिति । किञ्च, “पव-
मानः” पूजमानः सोमः “ओजः” तत्त्वानेन जन्मं ब्रह्म “इन्द्रे”
“अदधात्” । तथा “इन्दुः” “सूर्यः” “ज्योतिः” तेजः “अज-
नयत् ॥ २ ॥ १

॥ द्वाउज्जवायिवासिष्ठम् ॥ द्वायि । उज्जवायि । अ

क्रा३४औहोवा । समू । द्वा३ःप्रथ । मेविधर्मान् । ज

ना३४औहोवा । यन्प्रा । जा३भुव । नस्यगोपाः । वृ

षा३४औहोवा । पवायि । त्रे३अधि । सानोअव्यायि ।

वृद्धा३४औहोवा । सोमो । वावृधे । स्वा३४३ । नो३

आपू३४३५इयिः ॥ (१) मत्सा३४औहोवा । वायूम् । इष्ट

येराधसेनाः । मत्सा ३ औहोवा । मित्रा । वरुणा ।

पूयमानाः । मत्सा३४औहोवा । शर्द्धी । मारुतम् । म

त्सिदेवान् । मत्सा३४औहोवा । द्यावा । पृथिवी । दा

३४इयि । वा३सो५मा३५इ ॥ (२) महा३४औहोवा । त

त्सो । मो३महि । पञ्चकारा । अपा३४औहोवा । य

द्वा । भो३अवृ । णीतदेवान् । अदा३४औहोवा । धा

दायि । ^{२ १}द्रेषव । ^{२ ३४ ५}मानओजाः । ^२हायि । उज्जवायि ।

^{२ १}अजा^{३४ ४८ ५}ओहोवा । ^१नयात् । ^{२ १ २}हरिये । ^२ज्यो^{३४ ३} । ^१तो

^४इराप्रयिन्दू^{६ ५ ६} (३) ॥ १ * ॥ [१]

^{२ २}॥ महासामराजम् ॥ ^२हाउहोवा^३हायि । ^२आक्रान्

^१समुद्रा^२प्रा । ^{२ ४}यमे^{३ १ १ १ १}वौ^२ । ^२धर्मा^{३ ४ ५}न् । ^२जनयन्प्रजा

^१श्भू । ^२वना^४ह्या^{२ ३ १ १ १ १} । ^{२ २}गोपा^{३ ४ ५} ॥ (१) ^२वृषापवित्रे^{३ ४}श्वा ।

^२धिसा^४श्नो^{२ ३ १ १ १ १} । ^{२ २}अव्या^{३ ४ ५}यि । ^{२ २}बृहत्सोमो^{३ ४}श्वा । ^२वृधे

^४सू^{२ २}वा^३ । ^{२ २}नो^{३ ४ ५}द्रा^{३ ४ ५}श्च ॥ (१) ^{२ २}मत्सिवायू^{३ ४}मायि । ^{२ २}वृये

^४रा^{२ २}धा^{३ ४ ५} । ^{२ २}सेना^{३ ४ ५} । ^{२ २}मत्सिमित्रा^{३ ४}श्वा । ^{२ २}रुणा^{३ ४}पू^{३ ४}श्या

^{२ २}३ । ^{२ २}माना^{३ ४ ५} । ^{२ २}मत्सिगर्ही^{३ ४}श्मा । ^{२ २}रुतम्ना^{३ ४}श्मो^{३ ४} ।

^{२ २}देवान्^{३ ४ ५} । ^{२ २}मत्सिद्यावा^{३ ४}श्पा । ^{२ २}थिवीदे^{३ ४}श्वा^{३ ४} । ^{२ २}सो

^{२ २}मा^{३ ४ ५}श्च ॥ (१) ^{२ २}महत्तसोमो^{३ ४}श्मा । ^{२ २}हिषा^{३ ४}श्वा । ^{२ २}कारा

^{१ २ २ २ २ २ २ २ २} अद्धादिन्द्र पवमा ३४३ नञ्जोः । हाउहोवाइहायि ।

^{२ २ २ २ २ २ २ २ २} अजनयत्स्वर्ग्यो ज्यो ३४३ तिरिन्दुः । तिरा ५ यिन्दाउ ।

वा(इ) ॥ ८ * ॥ [३]

^{१ १ २ २ २ २ २ २ २} ॥ वात्सप्रम् ॥ होईर । ३ । अक्रान्त्यमुद्रः प्रथ । मे

^{१ १ १ १ २ २ २ २ २} विधाम्मरिन् । धाम्मरिन् । धाम्मरिन् । जनयन्प्रजा

^{२ १ १ २ २ २ २ २ २} भुव । नस्यगोपारः । गोपारः । वृषापवित्र अधिसा ।

^{२ २ १ १ १ २ २ २ २} नोआव्यारयि । आव्यारयि । आव्यारयि । बृहत्सो

^{२ २ २ २ २ २ २ २ २} मोवाबृधेसुवा । नोआद्रारयि । आद्रारयि । आद्रा

^{१ २ २ २ २ २ २ २ २} रयि ॥ (१) मत्सिवायुमिष्टये । राधसेनारः । सेनार ।

^{१ २ २ २ २ २ २ २ २} सेनारः । मत्सिमित्रावरुणा । पूयमानारः । माना

^{१ २ २ २ २ २ २ २ २} रः । मानारः । मत्सिगर्वामारुतम् । मत्सिदेवार

^{१ २ २ २ २ २ २ २ २} न् । देवारिन् । देवारिन् । मत्सिद्यावापृथिवी । देव

^{२ २ २} अदधादिन्द्र पवसा ^{२ २ २ ४} ३ ४ ३ नओजाः । ^{२ २ २} हाउहोवाइहायि ।

^{२ २} अजनयत्हय्यो ^{२ ३ ५} ज्यो ३ ४ ३ ^४ तिरिन्दुः । ^४ तिरा ५ यिन्दाउ ।

वा(३) ॥ ८ * ॥ [३]

^१ ॥ वात्सप्रम् ॥ ^{१ २ २ १ २ २} होईर । ३ । अक्रान्तमुद्रः प्रथ । मे

^१ विधाम्मारिन् । ^१ धाम्मारिन् । ^१ धाम्मारिन् । ^{१ २ १ २} जनयन्प्रजा

^{२ १} भुव । ^१ नखगोपाः । ^१ गोपाः । ^{१ २ २ २ १ २ २ २} वृषापवित्र अधिसा ।

^{२ २ १} नोआव्याः रयि । ^१ आव्याः रयि । ^१ आव्याः रयि । ^{२ १ २} वृहत्सो

^{२ २ २ २ २} मोवावृधेसुवा । ^{२ १} नोआद्राः रयि । ^१ आद्राः रयि । ^१ आद्राः

^१ रयि ॥ (१) ^{२ २ १ २ २ २} मत्सिवायुमिष्टये । ^{२ १} राधसेनाः । ^१ सेनाः ।

^१ सेनाः । ^{१ २ २ २ २ २} मत्सिमित्रावरुणा । ^{२ १} पूयमानाः । ^१ माना

^१ रः । ^{१ २ १ २ २ २} मानाः । ^१ मत्सिप्रार्द्धिमाहृतम् । ^१ मत्सिदेवाः

^१ न् । ^{१ २ १ २ २ २} देवाः न् । ^{२ २} देवाः न् । ^{२ २} मत्सिद्यावापुषिवी । ^{२ २} देव

^१सोमा^२२ । ^१सोमा^२२ । ^१सोमा^२२ ॥ (२) ^{२१}महत्तत्सोमो^{२२}
^१हि । ^१षश्चकारा^२२ । ^१कारा^२२ । ^१कारा^२२ । ^{२२}अपायद्ग
^२भी^२अवृ । ^२णीतदायिवा^१रन् । ^१दायिवा^१रन् । ^१दायिवा
^१रन् । ^१अदधादिन्द्रे^{२२}पव । ^{२२}मानओजा^१रः । ^१ओजा^१रः ।
^१ओजा^१रः । ^१अजनयत्स्वर्य्योज्यो । ^{२१}तिरायिन्दू^१रः । ^१आ
^१यिन्दू^१रः । ^१आयिन्दू^१रः । ^१होई^१र । ^१२ । ^१होया^१र । ^२वा
^{५२}२३४ओहोवा । ^{३११११}ई२३४पु(३) ॥ ८ * ॥ [४] १

अथैषदेवइति दशर्च द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

^{३२३५२}एषदेवो^{२२}अमर्त्यः^{३११}पर्णवीरिबदीयते ।

^{३१२}अभिद्रोणान्यासदम् ॥ १ † ॥

“देवः” द्योतमानः “अमर्त्यः” मरण-रहितः “एषः” सोमः
 “द्रोणानि” द्रोणकलशान् “अभि” लक्ष्य “आसदम्” आसक्तुम्

आसदनार्थम् “पर्णवीरिव” * यथा पक्षी तथा वेगेन “दीयते”
गच्छति ॥

“दीयते”—“दीयति”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ २ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
एषविप्रैरभिष्टुतोपादेवोविगाहते ।

२ २ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
दधद्रत्नानिदाशुषे ॥ २ ॥

“विप्रैः” मेधाविभिः स्तोत्रभिः “अभिष्टुतः” आभिसुख्येन
स्तुतः “देवः” द्योतमानः “एषः” सोमः “दाशुषे” हविषां
प्रदात्रे यजमानाय “रत्नानि” रमणीयानि धनानि “दधत्”
धारयत् प्रयच्छत् । “अपः” वसतीवरीः “वि गाहते” प्र-
विशति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
एषविश्वानिवाय्याभूरोयन्निवसत्वभिः ।

१ २
पवमानःसिपासनि ॥ ३ ॥

* ‘पर्णवीरिव’—पर्णवानिव, प्रतिका अर्पणवान् भवति, तथाप्येके अभिषव
निष्कन्ति तस्यभिषूयमाणं पर्णवन् सोमं—इत्यादि वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, १०, २ ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, २० ३ ।

“पवमानः” पूयमानः “शूरः” वीरः “एषः” सोमः
 “विश्वानि” सर्वाणि “वार्या” वरणौयानि धनानि* “सत्वभिः”
 बलैः “यन्ति च” गच्छन्ति च “सिषासति” अस्मदर्थं सन्तु-
 मिच्छति ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ २ ३ २ २ १ १ २

एषदेवोरथर्यतिपवमानोदिशस्यति ।

३ १ २ २ २

आविध्युणोतिवग्वनुम् ॥ ४ ण ॥

“पवमानः” क्षरन्नेव सोमो “देवः” “रथर्यति” अस्मादीयं
 यागं प्रत्यागमनाय रथं कामयते† ॥

“दिशस्यति”-“विशस्यति”—इति पाठौ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २

एषदेवोविपन्युभिःपवमानञ्छतायुभिः ।

२ ३ १ २

हरिर्वाजायमृज्यते ॥ ५ ण ॥

* ‘वार्या—उदकानि’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, २०, ४ ।

‡ ‘रथर्यति—रथैर्याति’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, २०, ५ ।

“पवमानः” चरन् “एषः” “सोमः” “देवः” “विपन्युभिः”
स्तोत्रभिः “ऋतायुभिः” यज्ञ-कामैः सत्य-कामैर्वा* “हरिः”
अश्वद्वय “वाजाय” सङ्ग्रामार्थं “मृज्यते” स्तुतिभिरलङ्घियते ॥५॥

अथ पृष्टी ।

३२ ३ २ ३ २ ४ २ ३ १ २

एषदेवोविपाकृतोतिक्कराऽसिधावति ।

१ २ ३ १ २

पवमानोअदाभ्यः ॥ ६ १ ॥

“विपा” [—अङ्गुलिनामैतत् (निघ० २, ५, ६)] अङ्गुल्या “कृतः”
अभिषुतः “एषः” सोमः “देवः” “पवमानः” चरन् “अदाभ्यः”
केनाप्यहिंसितश्च सन् “ह्वरांसि” शत्रून् “विधावति” हन्तुमभि-
गच्छति ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी ।

३ २ ४ ३ १ ३

३ १ २ २ २

३ १ २

एषदिवंविधावतितिरोरजाऽसिधारया ।

१ २ ३ १ २

पवमानःकनिक्रदत् ॥ ७ १ ॥

“धारया” “पवमानः” चरन् “एषः” सोमः “कनिक्रदन्”
अभिषूयमाणः शब्दं कुर्वन् “रजांसि” लोकान् “तिरः” तिर-
स्कुर्वन् यज्ञात् “दिवं” स्वर्गं प्रति “विधावति” ॥ ७ ॥

* ‘ऋतायुभिः—ऋतो यज्ञः, तं युञ्जन्ति ऋतायवः ऋत्विजः तैः—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ७, २१, १ ।

‡ ऋ० वे० १०, २०, ३० ।

अथाष्टमी ।

३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २

एष दिवं व्यासरत्तिरोरजाः स्यसृतः ।

१ २

३ २

पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ * ॥

“पवमानः” धरन् “एषः” सोमः “स्वध्वरः” सुयज्ञः
 “असृतः” केनाप्यहिंसितश्च सन् “रजांसि” लोकान् “तिरः”
 तिरस्कुर्वन् यज्ञात् “दिवं” प्रति “व्यासरत्” विसरति गच्छति
 ॥ ८ ॥

अथ नवमी ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २

एष प्रत्ने न जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।

१ २ ३ १ २

हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ † ॥

“हरिः” हरितवर्णः “देवः” द्योतमानः “एषः” सोमः
 “प्रत्नेन” पुराणेन “जन्मना” जननेन “देवेभ्यः” देवार्थं “सुतः”
 अभिषुतः सन् “पवित्रे” स्थातुम् “अर्षति” गच्छति ॥ ९ ॥

* ऋ० वे० ६, ७, ११, ३ ।

† ‘रजांसि’—अथी लोकालेषाम् अधस्तात् धावति—इति वि० ।

‡ इह च १, १, १७, १ (१भा० १६१४०) = ऋ० वे० ६, ७, ११, ४ ।

अथ दशमी ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानि जनयन्निषः ।

१ २

३ २

धारयापवते सुतः ॥ १० * ॥ २

“एष उ स्यः” एष च स सोमः “पुरुव्रतः” बहुकर्मा “जज्ञानः” जायमान एव “इषः” अन्नानि “जनयन्” उत्पादयन् “सुतः” अभिषुतः “धारया” “पवते” क्षरति ॥ १० ॥ २

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य दशमस्याध्यायस्य

प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे—एषधियेत्यष्टर्चः † सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एषधियायात्यएव्याशूरोरथेभिराशुभिः ।

२ ३ १ २

३ २

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ॥

* ऋ० वे० ६, ७, २१, ५ ।

† ‘उक्तो दशर्चः’—इति वि० ।

‡ ‘इदानीमष्टर्चः’, इदानीं षडृचा भवन्ति, सप्तानुत्तमः षडृचः, सृष उत्तमः—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ८, ५. १ ।

“एषः” सोमः “शूरः” विक्रान्तः “अगव्या” अहुल्या* अभि-
 पुतः “धिया” कर्मणा अतिगच्छति । कीदृशम् ? इति उच्यते
 —“इन्द्रस्य” “निष्कृतं” स्थानं स्वर्गाख्यं प्रति “आशुभिः” शीघ्र-
 गामिभिः “रथेभिः” रथैः “गच्छन्” इन्द्रेण रथेऽवस्थाप्य
 स्व-स्थान-नयनाहुल्या अभिषूयमाणः सन् होम-द्वारा अग्निं
 गच्छतीत्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ २ २ २ ३ २ ३ १ २
 एषपुरुधियायतेबृहतेदेवतातये ।

२ ३ १ २ ३ १ २
 यत्रामृतासः आशत ॥ २ ॥

“एषः” सोमः “पुरु” बहुलं, “धियायते” धियं कर्म इच्छति
 [धी-शब्दात् याकारोपजनः (७, १, ३६) । यद्वा द्वितीयार्थे द्वितीया,
 (३, १, ८५) छान्दसशालुक्] । कस्मै ? “बृहते” महते “देवतातये”
 यज्ञाय “यत्र” यस्मिन् यज्ञे “अमृतासः” अमृताः देवाः “आशत”
 व्याप्नुवन्ति तदर्थम् ॥

“आशत”-“आसत”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एतन्मृजन्तिमर्ज्यमुपद्रोणेष्टायवः ।

३ २ ३ १ २ २
प्रचक्राणमृहीरिषः ॥ ३ * ॥

“आयवः” मनुष्याः ऋत्विजः “एतं” सोमं “मर्ज्यम्” “उप
मृजन्ति” निष्पीडयन्तीत्यर्थः । कुत्र ? “द्रोणेष्टु” द्रोणकलशेषु ।
कीदृशम् ? “महीः इषः” महान्द्यन्नानि^१ “प्रचक्राणं” कुर्वाणं
प्रभूत-रस-स्त्राविणमित्यर्थः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एषहितो विनीयतेन्तः शुन्ध्यावत्पथा ।

१ २ ३ २ ३ १ २
यदीतुञ्जन्तिभूर्णयः ॥ ४ † ॥

“एषः” सोमः “हितः” निहितः हविर्दाने “वि नीयते”
तस्मात् स्थानात् आहवनीयं प्रति “अन्तः” तयोर्मध्यदेशे “शुन्ध्या-
वता” शुद्धिमता “पथा” मार्गेण “यदि” यदा “तुञ्जन्ति” प्रय-
च्छन्ति देवेभ्यः “भूर्णयः” भरणशीलाः^१ अध्वर्यादयः ; तदा
विनीयत इति समन्वयः ॥

“शुन्ध्यावता”-“शुम्भावता”—इति पाठौ ॥ ४ ॥

* ऋ० वे० ६, ८, ५, ७ ।

† ‘इषः—धानाः, करभः, पुराडाशः’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, ५, ३ ।

अथ पञ्चमी ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष रुक्मिभिरीयते वाजीशुभ्रेभिरशुभिः ।

२ ३ १ २ ४ १ २
पतिः सिन्धूनाम्भवन् ॥ ५ * ॥

“एषः” सोमः “रुक्मिभिः” अश्वर्यादिभिः† सह “ईयते” गच्छति । कौट्टश एषः ? “वाजी” वेगवान् “शुभ्रेभिः दौसैः अशुभिर्विशिष्टः [अथवा रुक्मिभिरित्येतदप्यंश-विशेषणम्] “सिन्धूनां” स्यन्दमानानां रसानां “पतिः” “भवत्” नीयत इति ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
एष शृङ्गाणि दोधुवक्त्रिशीतयूथ्योऽवृषा ।

३ १ २ २ २ ३ १ २
नृम्णादधानञ्जसा ॥ ६ ‡ ॥

“एषः” सोमः “शृङ्गाणि”॥ शृङ्गवदुन्नतानंशून् अभिषवकाले “दोधुवत्” धुनोति “यूथ्यः” यूथार्हो यूथपतिः “वृषा” वृषभः यथा “त्रिशीते” तीक्ष्णे शृङ्गे धुनोति तद्वत् । कौट्टशः ? “अजसा” बलेन “नृम्णा” नृम्णानि धनानि “दधानः” अस्त्रद्वयं धारयन् ॥ ६ ॥

* ऋ० वे० ६, ८, ५, ५ ।

† ‘रुक्मिभिः—सुवर्णहस्तैर्हलिभिः’—इति वि० । वस्तुनो रुक्मो यजमानः, तदाह कात्यायनः—“रुक्म मघः पदं कुरुते ऋत्योरिति (१५, ५, २६)”—इत्याद्यनुसन्धेयम् ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, ५, ४ ।

॥ ‘शृङ्गवत्तमं द्विवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् शृङ्गे’—इति वि० ।

अथ सप्तमी ।

३ १ २ २ ३ १ २ २ २
एषवसूनिपिब्दनः परुषाययिवाञ् अति ।

१ ३ १ २
अवशादेषु गच्छति ॥ ७ * ॥

“वसूनि” आच्छादकानि रक्षांसि “पिब्दनः” पीडयन्
“एषः” सोमः “परुषा” पर्वणा “अति” अतिक्रम्य “ययिवान्”
गच्छन् “शादेषु” शातनीयेषु रक्षःसु “अव गच्छति” ‡ ॥
“पिब्दनः”—“पिब्दना”—इति पाठौ ॥ ७ ॥

अष्टमी ।

३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
एषमुत्पन्दश्चिपो हरिर्हिन्वन्ति पातवे ।

३ ३ ३ १ २
स्वायुधमग्निमम् ॥ ८ ॥ ३

“हरिः” हरितवर्णं “त्वं” तम् “एतम्” एतमेव † सोमं
“दश चिपः” दश-सङ्ख्याका अङ्गुलयः ‡ “यातवे” गमनाय**

* ऋ० वे० ६, ८, ४, ६ ।

† ‘पिब्दनः—पिबमानः, सोमस्रवणानि’—इति वि० ।

‡ ‘बलात्कारेण’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ८, ५, ८ ।

§ ‘उ—इति पदपूर्णे’—इति वि० ।

|| ‘दशचिपः—सर्वसमर्था अङ्गुल्याः’—इति वि० ।

** ‘यातवे—प्रापणार्थम्’—इति वि० ।

“ह्रिन्वन्ति” प्रेरयन्ति । कौटुशमेनम् ? “स्त्रायुधं” शोभनायुधं*
 “मद्विन्तमं” मादयित्वतमं रक्षोहनन-प्रदर्शनाय स्त्रायुध-शब्द-
 अवयवम् ॥

“हरिंह्रिन्वन्ति यातवे”-“मृजन्ति सप्तघीतयः”—इति पाठौ

॥ ८ ॥ ३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य दशमस्याध्यायस्य
 द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीय-खण्डे—

एष उस्वेति पठुचं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ १ १ ३ ३ २ ३ ३ १ १

एष उस्वृपारथोव्यावारेभिरव्यत ।

२ ३ १ २ ३ १ ५

गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

“स्यः” सः प्रसिद्धः “एषः” अभिषुतः सोमः “वृषा” वर्षिता
 “रथः” रंहण-स्रभावः “अव्यावारेभिः” अवेर्वालैः दशापवित्रेण
 “अव्यत” द्रोणकलशं प्रति गच्छति “वाजम्” अन्नम् “सहस्रिणं”

* ‘स्त्रायुधं—शोभनेयं ज्ञायुधैर्युक्तम् अथवा परशु-पाश-प्रवृत्तिभिः’—इति वि० ।

† सू० वे० १, ५, २५, १ ।

सहस्र-सहस्राकं यजमानाय प्रदातुं “गच्छन्” द्रोणकलशं प्रवि-
शन्नव्यतेत्यर्थः* ॥

“अव्यावारेभिरव्यत”-“अव्यावारेभिरर्षति”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एतन्वितस्य योषणो हरिर्द्विन्वत्यद्रिभिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

“एतम्” “इन्दु” “हरि” हरितवर्णं सोमं “त्रितस्य”
एतन्नामकस्य ऋषेः “योषणः” अङ्गुलयः† “अद्रिभिः” अभि-
षव-पाणाणैः “द्विन्वत्य” प्रेरयन्ति । किमर्थम्? “इन्द्राय”
इन्द्रस्य “पीतये” पानाय ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ २ २ २ ३ २ ३ ३ १ २
एषस्य मानुषीष्वाश्वेनो न विक्षुसीदति ।

१ २ ३ २ ३ ३ १ २
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

“स्यः” सः “एषः” सोमः “मानुषीषु” “विक्षु” प्रजासु
“श्वेनो न” श्वेन इव शीघ्रमागम्य यजमानरूपासु अनुग्रहेण “आ”

* अथ ऋषि ‘उ—इति पदपूरणः’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ८, २२, ३—६, ८, २८, २ ।

‡ ‘योषणः—ऋषिजः’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ८, २८, ४ ।

आगत्य “सीदति” । पुनः कइव ? “योषितं” “गच्छन्” अभि-
गच्छन् “जारो न” जार इव [स यथा सङ्केततः तस्याः काम-पूर-
णीय-गूढ-गतिः तद्वदित्यर्थः] ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३२७ ३ १ २२ ३१२ २२
एषस्यमद्योरसोवचष्टे दिवःशिष्टः ।

२७ ३ २ ३ १ २
यइन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ * ॥

“स्यः” सः “एषः” “मद्यः” मद-निमित्तः “रसः” “अवचष्टे”
सर्वमेव पश्यति “दिवः शिष्टः” द्युलोकस्य पुत्रः [तत्प्रोत्पन्नत्वात्
पुत्रत्वमस्या] । “यः” “इन्दुः” दीप्तः सोमः “वारं” दशापवित्रम्
“आविशत्” आविशति स एष इति ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

३२७ ३ १ २ ३१२ २२ ३ २
एषस्यपीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २
क्रन्दन्योनिमभिप्रियम् ॥ ५ † ॥

“एषः” “स्यः” सः सोमः “पीतये” पानाय “सुतः” अभिषुतः
“हरिः” हरितवर्णः “प्रिय” ‡ स्व-प्रियभूतं “योनिं” स्थानं
द्रोणकलशं “क्रन्दन्” शब्दयन् “अभ्यर्षति” अभिगच्छति ॥ ५ ॥

* ‘अवचष्टे’—अवचरति, दिवः—द्युलोकात्, शिष्टः—शंसनीयः—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ८, २८, ५ ।

‡ ‘अभिप्रियम्’—अभिरुपम्—इति वि० ।

अथ षष्ठी ।

४२७ ३२३ १२ ३१२ ३१२
एतन्त्यश्चरितोद्गममृज्यन्ते अपस्युवः ।

२ ३१२ ३१२
याभिर्मदायशुभते ॥ ६ * ॥ ४

“एतं” “त्यं” तं सोमम् अध्वर्योः “दश” “हरितः” हरण-
स्वभावाः अङ्गुलयः “अपस्युवः” कर्मच्छवः सत्यः “मृज्यन्ते”
शोधयन्ति । “याभिः” अङ्गुलिभिरिन्द्रस्य “मदाय” “शुभते”
दीप्यते शोधयतइत्यर्थः ; तमेतमिति सम्बन्धः ॥ ७ ॥ ४

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य दशमस्याध्यायस्य
तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ-खण्डे —

एषवाजीइति षडृचं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३२३ १ ३ १२ २२ ३१२ २२३१ २
एषवाजीहितोनुभिःविंश्वविन्मनसस्पतिः ।

२ ३ ३ ३ १ २
अव्यंवारंविधावति ॥ १ * ॥

“एषः” सोमः, “वाजी” वेजन-शीलः, “हितः” अध्वर्युणा
 पात्रे निहितः धृतः, “विश्ववित्” सर्वज्ञः, “मनसः” स्तोत्रस्य
 “पतिः” स्वामी [अथवा सोमस्य मनोऽभिमानित्वात् मनसः
 स्वामित्वम्, “चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं वा विशत्”—इति श्रुतेः ;
 तादृशोऽसौ] “अव्यं वारं” अवि-सम्बन्धिनं वालं दशापवित्
 “वि धावति” विविधं गच्छति ॥

“अव्यम्”—“अव्ये”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
 एषपवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः ।

२ ३ १ २ ३ २
 विश्वाधामान्या विशन् ॥ २ * ॥

“एषः” सोमः “देवेभ्यः” देवार्थं “सुतः” अभिषुतः सन्
 पवित्रे “अक्षरन्” स्रवन् “विश्वा” सर्वाणि “धामानि” देव-
 शरीराणि “आ विशन्” प्रविशन् प्रवेष्टुमित्यर्थः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
 षपदेवः शुभायते धियो नावमर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २
 वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ † ॥

“एषः” सोमः “देवः” “शुभायते”* । कुत्र ? “अधियोनौ” स्वीये स्थाने† । कौटुशएषः ? “अमर्त्यः” अमरणाधर्मा “वृत्रहा” शत्रु-हन्ता “देववीतमः” अतिशयेन देवानां कामयिता‡ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ २ उ ४ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
एषवृषाकनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।

३ १ २ २
अभिद्रोणानिधावति ॥ ४ ॥

“वृषा” कामानां वर्षिता “एषः” सोमः “कनिक्रदत्” शब्दं कुर्वन् “दशभिः” “जामिभिः” अङ्गुलिभिः “यतः” धृतः§ “द्रोणाणि” द्रुममयानि पात्राणि “अभिधावति” अभिगच्छति ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

३ १ २ २ ३ १ २ ४ २ ४ १ २
एषहृद्यमरोचयत्यवमानोअधियवि ।

४ १ २ ३ १ २ २ २
पवित्रेमत्सरोमदः ॥ ५ ॥

* ‘शुभायते—शुभं करोति’—इति वि० ।

† ‘अधियोनौ—योनिद्रोणकलशः’—इति वि० ।

‡ ‘देववीतमः—देवानां भक्ष्यतमः, अथवा’—इत्यादि वि० ।

§ क० वे० ६, ८, १८, ४ ।

§ ‘जामिभिः—जामयो भगिन्यः अङ्गुल्यः तामिर्धतः संयतः बद्ध इत्यर्थः—इति वि० ।

॥ क० वे० ६, ८, १८, ५ ।

“पवमानः” पूयमानः “एषः” सोमः “अधि द्यवि” द्युलोके
स्थितं “सूर्य” “रोचयत्” रोचयति । कीदृशः ? “पवित्रे”
स्वयं दशपवित्रे स्थितः, “मत्सरः” मद-हेतुं प्राप्तः, “मदः”
हृष्टः ॥

“अधियवि । पवित्रेमत्सरोमदः”—“विचर्षणि । विश्वा
धामानिविष्ववित्”—इति पाठौ ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

१ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
एषसूर्य्येणहासतेसंवसानोविवस्वता ।

१ २ ३ १ २ २ २
पतिर्वाचोअदाभ्यः ॥ ६ * ॥ ५

“एषः” सोमः “संवसानः” सर्वमप्याच्छादयन् “विवस्वता”
दीप्तिमतां “सूर्येण” “हासते” परित्यज्यते पवित्र इति शेषः ।
कीदृशः ? “वाचः” स्तुति-लक्षणायाः “पतिः” पालकः स्वामी
वाङ् “अदाभ्यः” केनाप्यहिंस्यः ॥ ६ ॥ ५

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य दशमस्याध्यायस्य
चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

* सू० वे० ६, ८, १७, ५ ।

† ‘विवस्वता—स्वकीयेभ मेजसा’—इति वि० ।

‡ ‘पतिर्वाचः—लौकिकाः वैदिकाश्च, तासां स्वामी’—इति वि० ।

अथ पञ्चम-खण्डे —

एषकविरिति षडृचं सूक्तम्,—

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एषकविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।

३ २ ३ ३ १ २

पुनानो घ्नन्नपदिषः ॥ १ * ॥

“एषः” सोमः “कविः” मेधावी “अभिष्टुतः” अभितः स्तुतः†
 “पवित्रे अधि” दशापवित्रे अधि दशापवित्रमतीत्य “तोशते”
 [यद्यपि तोशतिर्बध्कर्मा तथाहि हनने गति-सद्भावात् अत्र
 गतिमात्रे वर्तते] गच्छतीत्यर्थः‡ [अथवा “पवित्रे अधि”
 क्षणाजिने “तोशते” हन्यते पीड्यत इत्यर्थः] किङ्कुर्वन् ?
 “पुनानः” पूयमानः “दिषः” शत्रून् “अपघ्नन्” अपगमयन् ॥

“दिषः”-“स्विधः”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्यरिषिच्यते ।

३ १ २ ३ १ २

पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ६, ८, १७, १ ।

† ‘स्तोत्रशस्त्रैः’—इति वि० ।

‡ ‘तोशते—तुशी दीप्तौ दीप्यते’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ८, १७, १ ।

“एषः” सोमः “स्वर्जित्” स्वर्गस्य सर्वस्य वा जेता “इन्द्राय”
 “वायवे” च “पवित्रे” “परिषिच्यते” परिस्त्रायते । कीदृशएषः ?
 “दक्षसाधनः” बलकारी ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३२८ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
 एषनृभिर्विनीयतेदिवोमूर्ध्नावुषासुतः ।

२ ३ १ २ ३ २
 सोमोवनेषुविश्ववित् ॥ ३ * ॥

“एषः” सोमः “नृभिः” कर्म-नेत्रभिः ऋत्विग्भिः “विनी-
 यते” विविधं नीयते । कीदृशः ? “दिवः” द्युलोकस्य “मूर्ध्ना”
 शिरोवत् प्रधानभूतः “वृषा” अभिमत-वर्षकः “सुतः” अभिषुतः ।
 कुत्र नीयते ? “वनेषु” वननीयेषु पात्रेषु वन-सम्भूत-द्रुम-विका-
 रेषु वा पात्रेषु† “विश्ववित्” सर्वज्ञ एष इति समन्वयः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३२३ १ २ ३ १ २ ३ २
 एषगव्युरचिक्रदत्यवमानोद्धिरण्ययुः ।

१ २ ३ १२ २२
 इन्दुःसत्राजिदास्तृतः ॥ ४ ‡ ॥

“एषः” सोमः “पवमानः” पूयमानः “अचिक्रदत्” शब्दं
 करोति । कयम्भूतः सन् ? “गव्युः” अस्माकं गा इच्छन्

* ऋ० वे० ६, ८, १७, ३ ।

† ‘वनेषु—उदकेषु’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, १७, ४ ।

“हिरण्ययुः” हिरण्यानीच्छन् “इन्दुः” दीप्तः सन्, “सत्वाजित्”
महत्तः शत्रोरसुरादेर्जेता, * “अस्तृतः” स्वयमन्यैरहिंस्यश्च
सन् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

३ २ ३ क २ २

३ १ २ ३ २ १ २

एषशुक्लप्रसिष्यददन्तरिक्षेवृषाहरिः ।

३ १ ३ २ ३ २

पुनानइन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

“शुक्ली” बलवान् सोमः “अन्तरिक्षे” दशापवित्रे “असिष्य-
दत्” स्यन्दतेः † । कीदृशएषः ? “वृषा” वर्षकः, “हरिः”
हरितवर्णः, “पुनानः” पूयमानः, “इन्दुः” दीप्तः, सएव “इन्द्रम्”
इन्द्रञ्चापि ; गच्छतीति शेषः । “आ”—इति चार्थे ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

३ १ २ ३ १ २

एषशुक्लप्रदाभ्यःसोमःपुनानोअर्षति ।

३ १ २ ३ २

देवावीरघशंसहा ॥ ६ § ॥ ६

“एषः” सोमः “शुक्ली” बलवान् “अदाभ्यः” अदभनीयः
अहिंसनीयः “पुनानः” पूयमानः “अर्षति” गच्छति “देवावीः”

* ‘सत्वाजित्’—सहसा जेता अथवा सत्वाजित्—सदाजित्—इति वि० ।

† क० वे० ६, ८, १७, ६ ।

‡ ‘असिष्यदत्’—सौदति—इति वि० ।

§ ‘आ—आनुपूर्व्येण’—इति वि० ।

§ क० वे० ६, ८, १८, ६ ।

देवानामविता* “अघशंसहा” अघान् शंसन्तीत्यघशंसाः तेषां
वा हन्ता† ॥ ६ ॥ ई

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायण्यस्य दशमस्याध्यायस्य

पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—

समुतःपीतयइति षडृचं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २

समुतःपीतयेवृषासोमःपवित्रेअर्षति ।

३ १ २ २ २ ३ १

विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

“सः” सोमः “पीतये” इन्द्रादिपानाय “सुतः” अभिषुतः
“वृषा” वर्षणः सन् “पवित्रे” “अर्षति” गच्छति । किङ्कुर्वन् ?
“रक्षांसि” “निघ्नन्” । “देवयुः” देवकामः । स इत्य-
न्वयः ॥ १ ॥

* ‘देवावीः—देवानां भक्षभूतः’—इति वि० ।

† ‘अघं पापं यः शंसति सः अघशंसः, तस्य हन्ता’—इति वि० ।

‡ सू० वे० ६, ८, २७, १ ।

अथ द्वितीया ।

१३ ११ ३ १२ २२ १ १
 सपवित्रेविचक्षणोहरिरर्षतिधर्णसिः ।

१ २३ १ १ १
 अभियोनिङ्कनिक्रदत् ॥ २ * ॥

“सः” सोमः “विचक्षणः” [पश्यति-कर्मैतत् (निघ० ३, ११, ३)] सर्वस्य द्रष्टा “हरिः” हरितेवर्णः सोमः “धर्णसिः” सर्वस्य धारकः “पवित्रे” “अर्षति” गच्छति, यथात् “कनिक्रदन्” शब्दं कुर्वन् “योनिं” स्थानं द्रोणकलशम् “अभि” गच्छति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ १ २ ३ १२ १२ ३ १ २
 सवाजीरोचनन्दिवःपवमानोविधावति ।

३ १२ २२ ३ १ २
 रक्षोहावारमव्ययम् ॥ ३ † ॥

“सः” “वाजी” वेजनवान् ॥ अश्व-स्थानीयः “दिवः” “रोचनं” रोचकः “पवमानः” पूयमानः “विधावति” । कौटुशः? “रक्षोहाः” रक्षसां हन्ता, “अव्ययं वारं” दशापवित्तम् अतीत्य विधावति विविधं गच्छति ॥

“रोचनं”-“रोचना”—इति पाठौ ॥ ३ ॥

* ऋ० वे० ६, ८, २७, २ ।

† अभीत्युपसर्गद्रष्टा क्रियापदावतिः ।

‡ ऋ० वे० ६, ८, २७, २ ।

॥ ‘वाजी—अश्ववान्’—इति वि० ।

अथ चतुर्थी ।

२ ३ २३ ४ १ २ ३ १ २

सन्नितस्याधिसानविपवमानो अरोचयत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २

जामिभिःसूर्यसह ॥ ४ * ॥

“सः” सोमः “न्नितस्य” महर्षेः “अधिसानवि” ससुच्छिते यज्ञे [अधीति सप्तम्यर्थानुवादी] “पवमानः” पूयमानः “जामिभिः” प्रवृद्धैः बन्धुभूतैर्वा सुतेजोभिः ‡ “सह” सहितः सन् “सूर्यम्” “अरोचयत्” प्रकाशितवान् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१ २ १ १ २ २ २ १ १ २ ३ १ १ २

सवृत्रह्वावृषासुतोवरिवोविददाभ्यः ।

२ ३ १ २

सोमोवाजमिवासरत् ॥ ५ † ॥

“सः” सोमः “वृत्रह्वा” शत्रूणां हन्ता “वृषा” वर्षकः “सुतः” अभिषुतः “वरिवोवित्” § यष्टुर्द्वेनस्य लक्षकः “अदाभ्यः”

* ऋ० वे० ६, ८, २७, ४ ।

† ‘द्वितस्याधिसानवि—न्नितस्यार्थे, अधिसानवि श्रुते स्थाने’—इति वि० ।

‡ ‘जामिभिः—भगिनीभिः’—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ६, ८, २७, ५ ।

§ ‘वरिवोवित्’—इति वि० ।

अन्यैरहिंसनीयः ; एवङ्गुणः सन् “वाजमिव” सङ्ग्रामाश्वइव *
“असरद्” गच्छति कलशम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

२ ४ २ ३ १ २ ३ २ १ २ २ ४
सदेवः कविर्नोषितोऽभिद्रोणानिधावति ।

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रिन्द्रायमंहयन् ॥ ६ ॥ ७

“सः” सोमः “देवः” “इन्दुः” क्लिद्यमानः “कविना” आक्रान्त-
प्रज्ञेनाध्वर्युणा ‡ “उषितः” प्रेरितः ॥ सन् “द्रोणानि” द्रोण-
कलशान् § “अभिधावति” अभिगच्छति । किङ्कुर्वन्? “इन्द्राय”
इन्द्रं “मंहयन्” स्वकीय-रसेन पूजयन् ॥

“मंहयन्”-“मंहना”—इति पाठौ ॥ ६ ॥ ७

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायनस्य दशमस्याध्यायस्य

षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

* ‘वाजम्—अश्वम्, इव असरत्’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ८, २०, ६ ।

‡ ‘कविना—ब्रह्मणा’—इति वि० ।

§ ‘उषितः—क्षिप्तः’—इति वि० ।

§ ‘द्रोणानि—द्रोण-कलश-सम्बन्धानि पात्राणि’—इति वि० ।

अथ सप्तम-खण्डे—

यः पावमानो रिति षडृचं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

यः पावमानो रध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितस्मातरिश्वना ॥ १ * ॥

“यः” जनः “पावमानोः” पवमान-देवताकाः † “सर्वाः ऋचः” तद्रूपं “ऋषिभिः” सूक्तद्रष्टृभिः मधुच्छन्दः प्रभृतिभिः “सम्भृतं” सम्पादितं “रसं” वेदसारभूतं ‡ पावमानं सूक्तसङ्घं यः “अध्येति,” § “सः” जनः “सर्वं” भोज्यजातं “पूतं” परिशुद्धमेव “अश्नाति” भक्षयति § कथमस्य पूतत्वं ? तत्राह—स्वस्याशनात् प्रागेव “मातरिश्वना” [मातरि अन्तरिक्षे श्वसितीति मातरिश्वा वायुः, स च पवित्रमेव] पवित्रेण वायुना “स्वदितं” स्वादृकृतं परिपूतमेवान्नं पश्चात् स नरोऽश्नाति ॥ १ ॥

* ऋ० वे० ७, ९, १८, ६ ।

† ‘पावमान्यश्वा यो सोमदेवत्यः ऋचः त्रिष्वपि पवमानेषु, तासां मिष्टिः साम्नातं व्याख्यायते—यः पावमानो रध्येतीति’—इति वि० ।

‡ ‘रसं—वैर्यम्’—इति वि० ।

§ ‘यः अध्येति तस्य किं फलं भवति ? सर्वं स पूतम् अश्नाति, यत् किञ्चित् खादति तत् पूतं भवति’—इति वि० ।

§ ‘अध्ययनञ्चाव आर्षच्छन्दो देवतजाः संहितं परिज्ञानं प्रशस्यते’—इति वि० ।

अथ द्वितीया ।

३ २३ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
पावमानीर्याअध्येत्यृषिभिःसम्भृतंरसम् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ २ २ २
तस्मैसरस्वतीदुहेक्षीरसर्पिर्मधूदकम् ॥ २ * ॥

“यः” ब्राह्मणः “पावमानीः” पवमान-देवताका ऋचः
“ऋषिभिः” मधुच्छन्दःप्रभृतिभिर्मन्त्रद्रष्टृभिः “सम्भृतं रसं” वेद-
सारं सूक्तसङ्गम् “अध्येति” अधीते, “तस्मै” पवमानाध्ययनं
कुर्वते जनाय “सरस्वती” सर्वत्र सरणवती वाग्देवता † “क्षीरं”
यज्ञ-साधनं पयः, “सर्पिः” तादृशं दृतं “मधु” मदकरम् “उदकं”
सोमं “दुहे” स्वयमेव दुग्धे यागादि-पर-वेदशास्त्रं विदं करो-
तीत्यर्थः ‡ [दुह प्रपूरणे (अ० १० प०) कर्मकर्त्तरि “न दुह-
स्व-नमाम् (३, १, ८८)”—इत्यादिना यकः प्रतिषेधः, “लोपस्त
आत्मनेपदेषु (७, १, ४१)”—इति त-लोपः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पावमानीःस्वस्त्ययनीःसुदुग्धाहिघृतश्रुतः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभिस्सम्भूतोरसोब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ ३ ॥

* ऋ० वे० ७, २, १८, ७ ।

† ‘सरस्वती—वायूपा’—इति वि० ।

‡ ‘क्षीरं, सर्पिः, मधु, उदकम्—एतानि रसवन्नि द्रव्याणि तस्य सम्यग्ज्ञाने’—
इति वि० ।

याः पावमान्य ऋचः ताः “स्वस्त्ययनीः” क्षेम-प्रापिकाः “सु-
दुवाः” सुष्ठु फलं दुहानाः “घृतश्रुतः” * [घृतं श्रोतन्ति चार-
यन्तीति घृतश्रुतः ईदृग्भूताः] अस्माननुगृह्णात्विति शेषः ।
“ऋषिभिः” मन्त्र-दर्शिभिर्मुनिभिः “रसः” फलसारः “सम्भृतः”
अस्मासु सम्पादितः “ब्राह्मणेषु” ब्रह्माणो मन्त्राः तत्पाठकाः
ब्राह्मणाः, तेष्वस्मासु † “अमृतम्” अविनाश-बलं “हितं”
सम्पादितम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २
पावमानीर्द्धन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कामान्समर्जयन्तु ते देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥

“देवैः” इन्द्रादिभिः “समाहृताः” सम्पादिताः “पावमानीः
देवोः” पवमान-मन्त्राभिमानिनी देव्यः “नः” अस्माकम् “इमम्”
ईदृग्भृतं “लोकं” भूलोकम् “अथो” अपि च “अमु” स्वर्ग-
लोकं “दधन्तु” प्रयच्छन्तु । तत्रत्यान् “कामान्” च “नः”
अस्मदर्थं “समर्जयन्तु” समृद्धान् कुर्वन्तु ॥ ४ ॥

* ‘घृतश्रुतः’—घृतयाविणः, अथवा घृतमुदकं तत् अवन्ति, कामवर्षी पर्वण्यो
भवति—इति वि० ।

† ‘ब्राह्मणेषु’—अधिकारणभूतेषु—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, २, ५, २ ।

अथ पञ्चमौ ।

^{१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २}
येन देवाः पवित्रेणात्मानम्युनते सदा ।

^{१ २ ३ १ २ ३ १ २}
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ * ॥

“देवाः” इन्द्राद्याः “येन” पवित्रेण शुद्धि-साधनेन “सदा”
“आत्मानं” स्व-देहं पुनते शोधयन्ति, “सहस्रधारेण” सहस्रावा-
न्तर-भेद-युक्तेन “तेन” साधनेन “पावमानीः” पावमान्य ऋचः
“नः” अस्मान् “पुनन्तु” ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी ।

^{३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २}
पावमानीः स्वस्य यनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।

^{१ २ ३ १ २ ३ १ २}
पुण्यांश्च भक्ष्यांश्च यत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६† ॥ ८

“पावमानीः” पवमानः पावकः पूयमानो वा सीमः, तत्सम्ब-
न्धिन्यस्तद्देवताका ऋचः पावमान्यस्ताः “स्वस्य यनीः” स्वस्तीत्य-
विनाश-नाम, तथाविध-फलस्य प्रापयित्राः, “ताभिः” उक्त-लक्ष-
णाभिः पावमानीभिः, तत्पाठेन स्तोता “नान्दनं” ‡ नन्द-

* ऋ० वे० ७, २, ५, ३ ।

† ऋ० वे० ७, २, ५, १६ ।

‡ ‘नान्दनं—पुत्र-वस्तु-धन-धान्यादिभिः’—इति वि० ।

यति सुकृतिन इति नन्दनः स्वर्गः स एव नान्दनः [स्वार्थिकस्त-
द्धित-प्रत्ययः] तम् “गच्छति” प्राप्नोति । किञ्चेह लोके
“पुण्यान्”* सुकृत-सम्पादितान् “भक्षान्” भक्षणीयान् भोगान्
अन्न-पानादि-लक्षणां “च” भक्षयति । किञ्च “अमृतत्वं च
गच्छति” अमृतत्वं नाम सोमस्तु च प्राप्नोति ॥ ६ ॥ ८

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य दशमस्याध्यायस्य

सप्तमः खण्डः† ॥ ७ ॥

अथाष्टमे खण्डे ‡—

अगन्धेति-लक्षात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१२ ३१२ १२३१२३

अगन्धमक्षानमसायविष्ट

२३२३१२३ १२३२

योदीदायसमिद्धःस्वेदुरोणे ।

* ‘पुण्यान्—मन्त्रपूतान् अथवा धानाः करन्धः पुरोडाशः प्रतीवापः प्रथस्येति
अथवा * * *)—इति वि० ।

† ‘उक्ताः पावसान्यः, उक्तश्च षड्विष्यमानं, नवमस्याहः’—इति वि० ।

‡ ‘इदानीमाव्यानि भवन्ति’—इति वि० ।

१ १ २ २ १ २ २ १ २ १
चित्रभानुरोदसीअन्तरुवी

२ ३ १ २ २ १ २
स्वाहुतंविश्वतःप्रत्यच्चम् ॥ १ * ॥

“यः” अग्निः “स्वे दुरोणे” आहवनीयाख्ये स्वे स्थाने
“समिद्धः” काष्ठैः सम्यग्दीप्तः सन् “दीदाय” दीप्यते, तमिमं
“यविष्ठ” युवतमम् “जवी” विस्तीर्णयोः “रोदसी” रोदस्योः
द्यावा-पृथिव्योः “अन्तः” मध्ये अन्तरिक्षे “चित्रभानु” चित्रकालं
“स्वाहुतं” सुष्ठु आहुतिभिर्हुतं सन्तं “विश्वतः” सर्वतः “प्रत्यच्चं”
प्रतिगच्छन्तमग्निं “महा” महता “नमसा” नमस्कारेण
“अगन्म” वयमुपगच्छामः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ २
समङ्गाविश्वादुरितानिसाङ्गा

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नग्निष्टवेदमआजातवेदाः ।

१ २ ३ १ २ ३ २
सनोरक्षिषद्वरितादवद्या

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दस्मान्गृणतउतनोमघोनः ॥ २ † ॥

यः “अग्निः” “मज्जा” महत्वेन “विश्वा” विश्वानि “दुरिता”
 दुरितानि “साह्वान्” अभिभवन् “जातवेदाः” जात-धनः जात-
 प्रज्ञो वा “दमे” यज्ञगृहे “स्त्वै” अस्माभिः स्तूयते, “सः” अग्निः
 “गृणतः” स्तुवतः “नः” अस्मान् “दुरितात्” पापात् “अवद्यात्”
 निन्दिताच्च कर्मणः “रक्षिषत्” रक्षतु । “उत” अपिच “मघोनः”
 हविष्मतः “नः” अस्मान् रक्षतु ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १
 त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां

१ ३ २ ३ १ २
 वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

१२ २२ ३ १ २ ३ १
 त्वेव ह*सुषणनानि सन्तु यूय

१ ३ २ ३ १ २
 म्पातस्वस्तिभिः सदानः ॥ ३ † ॥ ८

हे “अग्ने !” “त्वं” “वरुणः” असि पापानां निवारको
 भवसि “उत” अपिच “मित्रः” असि, पुण्य-प्रापणे सखा भवसि ।
 “वसिष्ठाः” एतन्नामका ऋषयः हे अग्ने ! “त्वां” “मतिभिः”
 स्तुतिभिः “वर्धन्ति” वर्धयन्ति “त्वे” त्वयि विद्यमानानि “वसु”
 वस्तूनि “सुषणनानि” सुसम्भजनानि “सन्तु” । हे अग्ने ! “यूयं”

● “वसु” — इति क० - सु० - पुस्तकधोः पाठः ।

† ऋ० वे० ५, २, १५, ३ ।

त्वदाद्याः सर्वे देवाः “स्वस्तिभिः” क्षेमैः “नः” अस्मान् “सदा”
सर्वदा “पात” रक्षत ॥ ३ ॥ ८

अथ तृचात्मके द्वितीय-सूक्ते—

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
महाइन्द्रो यजसा पर्जन्यो वृष्टिमा इव ।

१ २ ३ १ २
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ * ॥

“यः” “इन्द्रः” “यजसा” बलेन “महान्” सर्वभ्योऽधिकः ।
कश्च ? “वृष्टिमानिव” यथा वृष्ट्या युक्तः “पर्जन्यः” रसानां प्राज-
यिता देवः महान्, स इन्द्रः “वत्सस्य” पुत्र-स्थानीयस्य स्तोतुः
वत्स-नाम्न एव वा ऋषेः “स्तोमैः” स्तोत्रैः “वावृधे” प्रवर्द्धते ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा इन्द्रं यदक्रतस्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।

३ १ २ ३ १ २
जामिब्रुवत आयुधा ॥ २ † ॥

“कण्वाः” [स्तोत्र-नामैतत् (निघ० ३, १५, ७)] स्तोतारः कण्व-
गोत्रा वा “इन्द्रं” “स्तोमैः” स्तोत्रैः “यज्ञस्य” यागस्य “साधनं”

* ऋ० वे० ५, ८, ९, १ = य० वे० ७, ४० ।

† ऋ० वे० ५, ८, ९, १ ।

साधयितारं निष्पादकं “यद्” यदा “अकृत” अकृषत [करोते-
 लुङि “मन्त्रे घसेति (२, ४, ८०) चेलुक्, तदानीं “आयुधा”
 शत्रूणां हिंसकानि वाणादीनि “जामि” * [अतिरेकनामैतत्]
 अतिरिक्तम् अधिकं प्रयोजन-रहितं “ब्रुवते” कथयन्ति । “आयुधा”
 आयुधस्य सर्वस्य कार्यस्येन्द्रेण कृतत्वात् आयुधानि निःप्रयोजना-
 नीत्यर्थः [यद्वा, ‘आयुधा’ आयुधमायोधनशीलमिन्द्रं ‘जामि’
 जामिं भ्रातरं ‘ब्रुवते’ वदन्ति ॥

“आयुधा”—“आयुधम्”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्रजामृतस्यपिप्रतःप्रयङ्गरन्तवक्त्रयः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

विप्राऋतस्यवाहसा ॥ ३ १ ॥ १०

“ऋतस्य” यज्ञस्य सत्यस्य वा “प्रजा” प्रकर्षेण जातमिन्द्रं
 “पिप्रतः” नभसः प्रदेशान् पूरयन्तः “वक्त्रयः” वाहका अश्वा “यद्”
 यदा “प्र भरन्त” प्रकर्षेण भरन्ति वहन्ति तदा “विप्राः” मेधाविनः

* ‘जामि—जानामि’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ५, ८, ९, २ ।

स्तोतारः “ऋतस्य” यज्ञस्य “वाहसा” प्रापकेण स्तोत्रेण तम् इन्द्रं
स्तुवन्तीति शेषः ॥ ३ ॥ १०

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरार्चन्यस्य दशमस्याध्यायस्य

अष्टमः खण्डः * ॥ ८ ॥

अथ नवमे खण्डे †—

पवसानस्येति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, ‡

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवमानस्यजिघ्रतोहरेश्चन्द्राअद्वत्त ।

३ १ २ ३ १ २

जीराअजिर॥शोचिषः ॥ १ § ॥

“जिघ्रतः” पुनः पुनः तमांसि विनाशयतः ॥ “हरेः” हरित-
वर्णस्य “अजिरशोचिषः” सर्वत्र-गमन-शील-तेजसः “पव-

* ‘उक्तान्याज्यानि’—इति वि० ।

† ‘इदानीं साध्यन्दिनः पवमानः’—इति वि० ।

‡ ‘उत्तरादाराद्धतपथतोनि सामानि ब्राह्मणोक्तांषाणि’—इति वि० ।

॥ “अजिर” —इति ख० पु० पाठः ।

§ ख० वे ७, २, ११, ५ ।

॥ ‘जिघ्रतः’—इत्यसामस्य—इति वि० ।

मानस्य” “चन्द्राः” [चदि आह्लादे (भा० प०)] देवानामाह्ला-
दयित्राः “जीराः” क्षिप्रं चरण-शीलाः * धाराः “असृक्षत”
सृजन्ति पवित्राद्भिर्गच्छन्तीत्यर्थः ॥

“जिघ्रतः”-“जङ्घतः”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

११ ३१२ ३१२ ३१२
पवमानोरथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।

१२ ३१२
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥

“पवमानः” देवः “रथीतमः” अतिशयेन रथवान् [“इन्द्र-
धिनः (८, २, १७ वा०)” —इतीकारः । तथा “शुभ्रेभिः” शोभा-
युक्तेभ्यस्तेजोभ्योऽपि “शुभ्रशस्तमः” अत्यन्तं दीप्यमानश्च [यद्वा,
निर्मलतम-यशोयुक्तः] “हरिश्चन्द्रः” [“ऋक्षाच्चन्द्रोत्तरपदे
मन्त्रे (६, १, १५१)” —इति सांहितिकः सुट्] हरित-वर्ण-दौमिः
हरित-धारा-युक्ती वा “मरुद्गणः” मरुतो यस्य गणाः सहाय-भूताः
स तथोक्तः तादृशः सीमः सर्वान् स्व-रश्मिभिः व्याप्नोत्वित्युत्तरेण
सम्बन्धः ॥ २ ॥

* ‘जीराः—जीरणाद्वकाः’—इति वि० ।

† ऋ० वि० ७, १, १२, १ ।

अथ तृतीया ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 पवमानव्यश्रुद्धिरग्निभिर्वाजसातमः ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 दधन्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ * ॥ ११

हे “पवमान” सोम ! त्वं “रग्निभिः” स-दीप्तिभिः “व्यश्रुद्धि”
 सर्वं जगद् व्याप्नुहि । कीदृशस्त्वम् ? “वाजसातमः” अतिशये-
 नान्नस्य दाता बलस्य सञ्चाला वा तथा “स्तोत्रे” पवमानं स्तोत्रं
 कुर्वते जनाय “सुवीर्य” शोभन-वीर्योपेतं पुत्रं धनं वा “दधत्”
 विदधत् पयच्छत् व्याप्नुहि ॥

“पवमानव्यश्रुद्धि”-“पवमानोव्यश्रवत्”—इति पाठी ॥ ३ ॥ ११

अथ तृचात्मके द्वितीय-सूक्ते—

प्रथमा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 परीतोपिञ्चतासुनसोमोयउत्तमह्विः ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 दधन्वाध्योनर्यीअप्स्वाऽऽन्तरासुषावसोममद्रिभिः ॥ ११† ॥

हे ऋत्विजः ! “सुतम्” अभिषुतं सोमम् “इतः” अस्मात्
 कर्मण ऊर्द्धम् अथवा अस्मात् प्रदेशात् ऊर्द्धं “परिपिञ्चत” वसती-
 वरीभिः [इतोपिञ्चतेत्यत्र संहितायां छान्दसं री कृत्वम्, आदेश-

* ऋ० वे० ७, २, १२, २ ।

† ऋ० आ० ६, १, १, २ (२भा० ७७ घ०) = ऋ० वे० ७, ५, १२, १ ।

प्रत्यययोरिति षत्वम्] “यः” “सोमः” देवानाम् “उत्तमं”
 प्रशंस्यं “हविः” भवति “आ” अपिच “नर्यः” मनुष्य-हितः यश्च
 सोमः “अप्सु” वसतीवरीषु अन्तरिक्षे वा “अन्तर्” “दधन्वान्”
 गच्छन् भवन् भवति तं “सोमम्” “अद्रिभिः” आवभिः अध्वर्युः
 “सुपाव” अभिषुतं चकार ; तं परिषिञ्चतेति समन्वयः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 नूनम्युनानोविभिःपरिस्त्रवादब्धःसुरभिन्तरः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
 सुतेचित्ताप्सुमदामोअन्धसाश्रीणन्तोगोभिर्हृत्तरम् ॥२॥

हे सोम ! “अदब्धः” कैश्चिदप्यहिंसितः “सुरभितरः” अत्यन्तं
 सुगन्धि त्वं “नूनम्” इदानीं “पुनानः” पूयमानः “अविभिः”
 अवि-वाल-कृतैः पवित्रैः “परिस्त्रव” परिस्त्रर “सुते चित्”[†]
 अभिषुते सति “अन्धसा” भृत्क-लक्षणेनानेन “गोभिः” गोर्वि-
 कारैः क्षीरादिभिः “श्रीणन्तः” मिश्रयन्तः वयम् “उत्तरम्”
 उद्भूततरम् ‡ “अप्सु” वसतीवरीषु स्थितं “त्वा” त्वां “मदामः”
 मदामहे ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, ४, १९, २ ।

† ‘चित्—इति पदपूरणः’—इति वि० ।

‡ ‘उत्तरम्—उत्तरेषु सवनेषु’—इति वि० ।

अथ अध्याख्यरूपा तृतीया ।

१२ ३ १२ २२

६ १ २ ३ २ ६ १ २

६ २

परिखान*अक्षसेदेवमादनःक्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३१॥ १२

“खानः” सुतः अभिषूयमाणः सोमः “चक्षसे” ‡ सर्वेषां दर्शनाय “परि” स्वपति । कीदृशः ? “देवमादनः” देवानां तर्पयिता, “क्रतुः” कर्त्ता, ¶ “इन्दुः” पात्रेषु चरण-शीलः दीप्तो वा, “विचक्षणः” “सर्वस्य” विद्वष्टा ॥ ३ ॥ १२

५ ४

२२ ३ ४ २ ५

२ ५ २

॥ पृष्ठम् ॥ पराश्रितोषिञ्चतासुताम् । सोमोयउत्त

१

२ १२

२ २

म० च्छवार३यिर्हीइया । दधन्वा० योनर्यो० अप्सुवन्तरा२३

१

२ १२

२

१

२

होइया । सुषावा२३सो । ममद्रा२३यिभा३४३यिः ॥ (१)

५ ४

२ ३२ ४

५

१ २

२

सुषावसोममद्रिभायिः । सुषावसोममद्रिभा२३यिर्ही

२२ १ २ २

१

२ १

इया । नूम्पुनानोअविभिःपरिखवा२३होइया । अदब्धा

५

१

२

५ ४ २ ३ ४

५

२३ःसु । रभिन्ता२३रा३४३ः ॥ (२) अदा३ब्धःसुरभिन्तराः ।

* “खान” — इति ऋ० पाठः ।

† ऋ० वे० ७, ५, १२, ३ ।

‡ ‘चक्षसे—चक्षाय’ — इति वि० ।

¶ ‘क्रतुः—यज्ञः’ — इति वि० ।

^१ अदब्धः ^१ सुरभित्तरा ^{२ १ २} रश्चोइया । ^{२ २} सुतेचित्त्वाप्सुमदामोअ

^१ न्वसा ^{१ २ १} रश्चोइया । ^२ श्रीणन्तो ^१ रश्गो । ^२ भिरुता ^२ रश्रा ^{३ ४} इ ४

^१ इम् । ^१ ओ ^{२ ३ ४ ५ ६} रश्चोइया । ^१ उा ॥ १ * ॥ [१]

^{५ ४} ॥ कौत्सलवर्द्धिषम् ॥ ^{२ ४ ५ ६ ७ ८ ९} पराश्रयितोश्चिञ्चतासुताम् । सो

^२ मोयउत्तमा ^{२ २ २ १ २} रश्चोवा ^{३ ४} रश्चोइया । ^{२ ३ ४} दधन्वा ^{१ २} योनर्योआ ।

^{२ १} एहोयि । ^१ एह ^{२ २ २ १ ५} रश्चोवा । ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} सुषावसोममोवा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोइया ।

^४ द्रा ^५ यिभोइहयि ॥ (१) ^{५ ४ २ ४ २ ५} सुषा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोवा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोइया ।

^{२ २} प्रावसोममा ^१ रश्चोवा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोइया । ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} नूनमुनानोअवायिभा

^{२ १} यिः । ^१ ऐहोयि । ^{२ १} पा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोवा । ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} अदब्धः ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} सुरभोवा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोइया ।

^{५ ४} रश्चोइया । ^{५ ४} तापूरोइहयि ॥ (२) ^{५ ४ २ ४ ५} अदाश्वा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोवा ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} रश्चोइया ।

^१ अदब्धः ^१ सुरभारयित्तरा ^{२ २ २ १ २} रश्चोइया । ^{३ ४ ५ ६ ७ ८ ९} सुतेचित्त्वाप्सुमादा ।

^{१ २} ऐहोयि । ^१ सोऽअन्धसा । ^{२ २ २ १ २ १} श्रीणन्तो गोभिरोवाश्चो२३४

^{५ ४ ५} वा । तापूरोद्वायि(३) ॥ २ * ॥ [२]

^{१ २ २ १ २ २ १} ॥ अर्कपुष्पाद्यम् ॥ ^१ परोतोषिच्चतासुतम् । ऊवे२३ ।

^{१ २ २ १ २ १ २ १} सोमोयउत्तमं हविः । ^{२ १ २ २ १} ऊवे२३ । ^{२ १ २ १} दधन्वायोन्योअप्स-

^{२ १ २} वन्तरा । ^{२ १ २ १ २ १ २} ऊवे२३ । ^२ सुषावसोममद्रिभिः । ^१ ऊवे२३ ॥ (१)

^{२ १ २ १ २ १ २} सुषावसोममद्रिभिः । ^१ ऊवे२३ । ^{२ १ २ १ २ १ २} सुषावसोममद्रिभिः ।

^{१ २ १ २ १ २ १ २} ऊवे२३ । ^{२ १ २ १ २ १ २} नूनस्य नानोविभिःपरिस्रव । ^{१ २} ऊवे२३ । ^{१ २} अदब्धः

^{१ २ १ २} सुरभिन्तरः । ^{२ १ २ १ २} ऊवे२३ ॥ (२) ^{२ १ २} अदब्धःसुरभिन्तरः । ^{१ २} सुर

^{१ २ १ २ १ २} भिन्तरः । ^{१ २ १ २ १} ऊवे२३ । ^{१ २ १ २ १} अदब्धःसुरभिन्तरः । ^१ ऊवे२३ ।

^{२ १ २ २ १ २ २ १} सुतेचित्वाप्सुमदामोअन्धसा । ^{२ १ २ १ २ १ २} ऊवे२३ । ^{२ १ २ १ २ १ २} श्रीणन्तो गो

^{२ १ २ १ २ १ २} भिरुत्तरम् । ^{१ २ १ २ १ २} ऊवे२३ । ^{१ २ १ २ १ २} ऊवे२३ । ^{१ २ १ २ १ २} होवाश्चाश् । ^{१ २ १ २ १ २} हा

३४ । औहोवा । अकीर्दिवाना रम्यरमेवियो रमा र ३ ४

१
५ न्(३) ॥ ३ * ॥ [३]

॥ दैर्घ्यश्रवसम् ॥ परीतोषिञ्चता सुतमोहाओहाश्ण ।

सीमोयउत्तमह्विः । ओश्हा । ओश्हाश्णश्हा । दधा

श्हा न्वाः । नारियः । अम्सूअन्तरा । ओश्हा ।

ओश्हाश्णश्हा । सुषाश्हावसोश्हा । ममोश्हावा । द्राप्

यिभोश्हायि ॥ (१) सुषावसोममद्रिभिरोहाओहाश्ण ।

सुषावसोममद्रिभिः । ओश्हा । ओश्हाश्णश्हा । नूना

श्हाम्मुना । नोअवि । भिःपारिस्त्रवा । ओश्हा । ओश्

हाश्णश्हा । अदाश्हाअःसूश्हा । रभोश्हावा । ताप्सोश्हा

यि ॥ (२) अदब्धःसुरभिन्तरओहाओहाश्ण । अदब्धः

सुरभिन्तरः । ओश्हा । ओश्हाश्णश्हा । सुताश्हायि

चि॒त्वा । आ॒प्सु॒म । दा॒मी॒अ॒न्ध॒सा । ओ॒३॒हा । ओ॒३
 हा॒३॒ए॒३४ । श्री॒णा॒३४॒न्तो॒गो॒३ । भि॒रो॒२३४॒वा । ता॒पू॒रो
 द॒हा॒यि॒(३) ॥ ४ * ॥ [४]

॥ द॒य॒क्ष॒रो॒वै॒य॒श्च॒म॒ ॥ प॒री॒तो॒षि॒च्च॒ता॒सू॒ता॒म । सो
 मो । य॒उ॒त्त॒म॒ह॒विः । द॒धान्वा॒१॒या॒२ः । न॒य्यो॒अ॒प्सु
 व॒न्त॒रा । सु॒षा॒वा॒१॒सो॒२ः । म॒म॒द्रा॒२३॒यि॒भा॒३४३॒यिः ॥ (१)
 सु॒षा॒व॒सो॒म॒म॒द्रा॒यि॒भा॒यिः । सु॒षा । व॒सो॒म॒म॒द्रि॒भिः ।
 नू॒ना॒म्पू॒श्ना॒२ः । नो॒अ॒वि॒भिः॒परि॒स्त॒व । अ॒दा॒व्या॒१ः॒सू॒२ः ।
 र॒भि॒न्ता॒२३॒रा॒३४३ः ॥ (२) अ॒द॒व्यः॒सुर॒भि॒न्ता॒राः । अ॒दा ।
 व्यः॒सुर॒भि॒न्त॒रः । सु॒ता॒यि॒चा॒१॒यि॒त्वा॒२ः । अ॒प्सु॒म॒दा॒मी
 अ॒न्ध॒सा । श्री॒णा॒न्तो॒१॒गो॒२ः । भि॒रु॒त्ता॒२३॒रा ३ ४ ३म् ।
 ओ॒२३४५॒ई । डा॒(३) ॥ ५ † ॥ [५]

॥ अभीशवाद्यम् ॥ ^{२ २ २ २} परीतोषिञ्चतासुतम् । ए । सो
^{२ ५ १ ७ २ ३ ५ २ १२} मोयज३ताम७हाविः । दार३४धा । ह्ययि । न्वा७
^{२ २ ७ २ ३ ५ २ १२ २} योनय्यो॑अप्सूअन्तारा । सू२३४षा । ह्ययि । वासोम
^{१ ५ ४ ५ २ २ २} मोर३४वा । द्रा५यिभो६ह्ययि ॥ (१) सुषावसोममद्रिभि
^{२ २ ५ १ ७ २ ३ ५ २} रे । सुषावसो३मामद्रिभायिः । नू२३४नाम् । ह्ययि ।
^{१ २ २ ७ २ ३ ५ २ १} पुनानोअविभिःपारिस्त्वावा । आ२३४दा । ह्ययि । व्याः
^{२ १ ५ ४ ५ २} सूरभोर३४वा । ता५पूरो६ह्ययि ॥ (२) अद॒ब्धःसुरभिन्त
^{५ १ ७ २ ३ ५ २ १} रण । अद॒ब्धःसू३राभिन्तारः । ह्य२३४ते । ह्ययि । चि
^{२ २ ५ ४ ५ २ १ २} त्वाप्सुमदामोअन्धासा । आ२३४यिणा । हा । तोगो
^{२ १ ५ ४ ५} भिरोर३४वा । ता५पूरो६ह्ययि (३) ॥ ६ * ॥ [६]

^{३ ४ २ ५ २ २ ३ ४ २ ५} ॥ माधुच्छन्दसम् ॥ परीतोषा । होयिः । चतासुता
^{५ ३ २ १ २ १ २ ३ ५ २ १ २ २} ईमे । सोमोयज । ताम७हार३४वीः । दधन्वा७थोन

१० अ० ६ ख० २ सू० १, २, ३] उत्तराचिकः ।

३१३

^{१ २} व्या० ^१ अ० ^२ सु० ^{३४ २} वान्तरा० ^{३४ २} औ० ^१ हो० ^२ ३४ वा० ^१ द्वा० ^२ यि० । ^१ सु० ^२ षा० ^२ वा० ^२ सो० ।

^{३४ २} औ० ^{३४ २} हो० ^१ ३४ वा० ^२ द्वा० । ^१ म० ^२ म० ^१ द्रा० ^२ ३४ यि० ^१ भा० ^२ ३४ यि० । ^१ औ० ^२ ३४ पु०

ई । डा(३) ॥ ३ * ॥ [७]

^१ ॥ ऐ० ^{२ १} ड० ^{२ १ २} मा० ^{२ १ २} या० ^{२ १ २} स्य० ॥ ^{२ १ २} आ० ^{२ १ २} यि० ^{२ १ २} प० ^{२ १ २} रा० ^{२ १ २} यि० । ^{२ १ २} तो० ^{२ १ २} षा० ^{२ १ २} यि० । ^{२ १ २} च० ^{२ १ २} ता०

^{२ १ २} मु० ^{२ १ २} ता० ॥ ^{२ १ २} सो० ^{२ १ २} मो० ^{२ १ २} य० ^{२ १ २} ऊ० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} त० ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} ह्वा० ^{२ १ २} यि० । ^{२ १ २} दा० ^{२ १ २} ध० ^{२ १ २} न्वा० ^{२ १ २} ७

^{२ १ २} या० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} न० ^{२ १ २} र्था० ^{२ १ २} आ० । ^{२ १ २} सु० ^{२ १ २} व० ^{२ १ २} न्तरा० । ^{२ १ २} सू० ^{२ १ २} षा० ^{२ १ २} व० ^{२ १ २} सो० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} द्रा० ^{२ १ २} ३३

^{२ १ २} यि० ^{२ १ २} भा० ^{२ १ २} ३४ यि० ॥ (१) ^{२ १ २} आ० ^{२ १ २} यि० ^{२ १ २} सु० ^{२ १ २} षा० । ^{२ १ २} वा० ^{२ १ २} सो० । ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} द्रा० ^{२ १ २} भा०

^{२ १ २} यि० । ^{२ १ २} सू० ^{२ १ २} षा० ^{२ १ २} व० ^{२ १ २} सो० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} द्रा० ^{२ १ २} भा० ^{२ १ २} यि० । ^{२ १ २} नू० ^{२ १ २} न्म० ^{२ १ २} पु० ^{२ १ २} ना० ^{२ १ २} ३१ ।

^{२ १ २} नो० ^{२ १ २} अ० ^{२ १ २} वि० ^{२ १ २} भा० ^{२ १ २} यि० । ^{२ १ २} प० ^{२ १ २} रि० ^{२ १ २} स्र० ^{२ १ २} वा० । ^{२ १ २} आ० ^{२ १ २} द० ^{२ १ २} द्वा० ^{२ १ २} सू० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} र० ^{२ १ २} भि० ^{२ १ २} न्ता०

^{२ १ २} २३ रा० ^{२ १ २} ३४ ३३ ॥ (२) ^{२ १ २} आ० ^{२ १ २} अ० ^{२ १ २} दा० । ^{२ १ २} व्या० ^{२ १ २} सू० । ^{२ १ २} र० ^{२ १ २} भि० ^{२ १ २} न्तरा० । ^{२ १ २} आ०

^{२ १ २} द० ^{२ १ २} द्वा० ^{२ १ २} सू० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} र० ^{२ १ २} भि० ^{२ १ २} न्तरा० । ^{२ १ २} सू० ^{२ १ २} ते० ^{२ १ २} चि० ^{२ १ २} ता० ^{२ १ २} ३१ । ^{२ १ २} पु० ^{२ १ २} म० ^{२ १ २} दा० ।

^{२२१} मोअन्धसा । ^{२ २} आधिणन्तीगो३१ । ^{२ १} भिरुत्तार३रा३४३म् । ^२

^१ ओर३४५ई । डा(३) ॥ ४ * ॥ [८]

॥ पु॒न्नि ॥ ^{२ १} परायितो२३षिच्चतासुत^{४ २}त्हाउ । ^५ सोमो ^{१२ २२}

^{१ २ १ २ १} यउत्तम^२त्हाविः । ^२ दधन्वा^{१ २}त्था २ ३ः । ^{१ २ २} होवा३हायि । ^२

^{२ २२} मारियोअ । ^{१ २} सुवान्ता^{१ २ २}रा२३ । ^{१ २ २} होवा३हायि । ^१ सुषा

^२ वा१सो२३ । ^{१ २ २} होवा३हा । ^{१ २} मामद्रिभिः । ^{१ २} इडा२३भा३४

^१ ३ । ओर३४५ई । डा(१) ॥ ३ † ॥ [९]

॥ अभीशवोत्तरम् ॥ ^{२ २ २} परीतोषिच्चतासुतम् । ^२ ए ।

^{२ २} सोमोयजुः३त्ताम^{१ ७}त्हाविः । ^{२ ३} दार३४धा । ^५ हा३हायि । ^{२ २}

^{१२ २ २} न्वा^७थ्योनर्थाअसूअन्तारा । ^{२ ३} सू२३४षा । ^५ हा३हायि । ^{२ २} वा ^{१२}

^{२ १२} सोममो२३४वा । ^५ द्रा५यिभोईहायि ॥ (१) ^५ सुषावसोम ^{१ २ २}

मद्रिभिरे । ए । सुषावसोऽमामद्रि । भायिः । नू२३४
 नाम् । चा३हायि । पुनानोअविभिः पारिखावा । आ
 २३४दा । चा३हायि । आःहरभोर ३४वा । तापूरो
 हायि ॥ (२) अदब्बः सुरभिन्तरण । ए । अदब्बः सू३राभि
 न्तारः । सू२३४ते । चा३हायि । चित्त्वाप्सुमदामोअ
 न्धासा । आ२३४यिणा । चा३हा । तोगोभिरो२ ३४
 वा । तापूरो३हायि (३) ॥ ४ * ॥ [१०]

॥ सन्मतम् ॥ परीतोषिञ्चतासुताम् । सोमोयउत्त

मह्वायिः । दधन्वा३र३याः । नारियोअ । सुवा
 न्तारा । औहो३४वाहायि । सु । पावार३सो३ । हो
 वा३हा । ममद्रा २ ३ यिभा३४३यिः ॥ (१) सुषावसोमम
 द्रिभायिः । सुषावसोऽममद्रिभायिः । नूनम्पू २ ३ना ।

^१ नो^२अविभिः । ^१परायि^२स्त्रावा । ^{३२ २}औ^{३२ २}हो३४वा^१हायि । अ ।

^२दा^{१ २}ब्धा^२२३ः^१सू३ । ^२हो^१वा३^२हा । ^२रभिन्ता^२२३रा३४३ः ॥ (२)

^{१ २}अ^{१ २ १}दब्धः^{२ १}सूरभिन्तराः । ^२अ^२दब्धः^२सूरभिन्तराः । ^२सु^२तेचा^२२३

^२यि^१त्वा । ^{१ २ २}आ^{२ १}प्सु^२मदा । ^{३२ २}मो^{३२ २}अन्धा^{३२ २}सा । ^{३२ २}औ^{३२ २}हो३४वा^{३२ २}हा

^{१२}यि । ^२श्री । ^{१ २ २}णान्तो२३गो३ । ^१हो^१वा३^२हायि । ^१भि^१रुत्ता

^२२३रा३४३म् । ^१ओ२३४५ई । ^१डा(३) ॥ ३ * ॥ [११]

^{५ २ २}॥ काले^{४ ५ ४ २}यम्^५† ॥ ^{२ २ १ २}परीतो३षि^{२ २ १}च्चता^{२ २ १}सुताम् । ^{२ २ १ २}सो^{२ २ १ २}मीय

^१ज । ^{२ ३ २ १}तम^{२ ३ २}ह्वा^२२३यिः । ^{२ ३ २}द^२धन्वा^२३या^१३ः । ^१ना^१२ ३ ४ ।

^{३ ४ २}रियो^५अ^{२ २}प्सु^{१ ३ २}व । ^२ता^५३रा । ^२सु^५षाव^२सौ । ^२वा^५३४३ओ३४वा ।

^४ममा^४पु^४द्रिभायिः । ^४हो^४पूई । ^४डा(३) ॥ ४ ‡ ॥ [१२]

^{२ २ २}॥ रौरवम् ॥ ^१परीतो^५षि^१च्चता^१सूर^१३४ताम् । ^१सो^१ऽ

* ज० गा० ८ प्र० १ अ० ३ सा० ।

† “महाकालेयम्”—इति ख०-पाठः ।

‡ ज० गा० ८ प्र० १ अ० ४ सा० ।

^२मोयउत्तमं ^२हविर्दधन्वा ^२योनय्यी ^{३ २}असुवा ^१न्तरा । ओ

^२हाउवा । ^{१ २}सुषावसोममा ^२३ ^{१ २}हायि । ओहाउवा ।

^१द्रिभायिः । ^{४ ५}औरहोवा ॥ (१) ^{२ २ २}सुषावसोमा ^१श्मद्रार ^{३ ४}

^५यिभायिः । ^{१ २ २}सूषावसोममद्रिभिर्नूनमुनानो ^{२ २ २}अविभिः ^१परार

^{३ २}यिस्रवा । ^{१ २}ओहाउवा । ^२अदव्यः ^१सुरभारयि ^२हायि । ओ

^२हाउवा । ^२तरा । ^१औरहोवा ॥ (२) ^{२ ३ ५}अदव्यः ^२सुराभि

^५न्तारश्शराः । ^१आ । ^{२ २ २}दव्यः ^२सुरभित्तरः ^२सुतेचित्त्वा ^२सुमदा

^२मोआरन्धसा । ^{१ २}ओहाउवा । ^{१ २}श्रीणन्तो ^{१ २ २}गोभिस्सु ^२रश्हा

^{१ २}यि । ^२ओहाउवा । ^१तराम् । ^{४ ५}औरहोवा । ^४होपुई ।

डा(३) ॥ ११ * ॥ [१३]

॥ आष्टादध्नोत्तरम् ॥ ^{१ २ १ २}परीतो ^{२ २}पिच्चता ^{१ २ १ २}सुतमैयादौ ।

^२होश्वा । ^२सोमोयउत्तमम् । ^{१ २ २ १}होवारयिः । ^१ऐयारश्त् ।

^१ और^२ होवा । ^{१२} दधन्वा^२ योनर्यो^२ अप्सुव । ^१ तारा २३ ।

^{१२} ऐया^१ रश्त् । और^२ होवा । ^{१२२ १२ २} सुषावसोमम । ^१ द्रायिभा

रश्यिः । ^{१२} ऐया^१ रश्त् । और^२ होवा^२ ३४३ ॥ (१) ^{२ १२ २ १२} सुषावसो

^{२ १ २ १२ २ १२} ममद्रिभिरैयादौ । ^{२ २} होश्वा । ^{१२ २ १२ २} सुषावसोमम । ^१ द्रायिभा

रश्यिः । ^{१२} ऐया^१ रश्त् । और^२ होवा । ^{१ २ २ १२ २} नूनम्पुनानेविभिः

^१ परि । ^{१२} स्वावार^१ २३ । ऐया^१ रश्त् । और^२ होवा । ^{१ २} अदब्धः

^१ सुरभि । ^{१२} तार^१ रश्त् । ऐया^१ रश्त् । और^२ होवा^२ ३४३ ॥ (२)

^{१ २} अदब्धः ^{१ २ १२ २ १२} सुरभिन्तरैयादौ । ^{२ २} होश्वा । ^{१ २} अदब्धः ^{१ २} सुरभि ।

^१ तारा^{१२} २३ । ऐया^{१२} रश्त् । और^{१ २ २} होवा । ^{१२ २ २ १} सुतेचित्त्वाप्सु

^{२ २ २} मदामोअ । ^१ धासार^{१२} २३ । ऐया^{१२} रश्त् होवा । ^{२ १ २ २ १२} श्रीणन्तोगो

^२ भिरु । ^१ तारा^{१२} २३म् । ऐया^{१२} रश्त् । और^{१ २ २} होवा^२ ३४३ ।

^१ और^१ ३४५ । ई । डा(३) ॥ १८ * ॥ [१४]

॥ उत्प्रेधम् ॥ परीतोपिच्छतासुतम् । सोमः । य

ज३४ औहोवा । तम० ह्वाऽरयिः । हा३१ उवा २ ३ ।

ज३४ पा । दधा३न्वा० या । औहोवाहायि । नारि

योआ । सुवन्तारा । हा३१ उवा २३ । अ३४ पा ।

सुषाश्वसो । अहोवाहायि । ममा३द्रा५यिभा ६ ५ ६

यिः ॥ (१) सुषावसोममद्रिभिः । सुषा । वसो३४ औहो

वा । ममद्रिभाऽरयिः । हा३१ उवा २३ । ज३४ पा ।

नूना३पुना । औहोवाहायि । नोअविभायिः । परि

साव । हा३१ उवा २३ । ज३४ पा । अदा३ध्वः सु । औ

होवाहायि । रभा३यिन्ता५रा ६ ५ ६ ॥ (२) अदध्वः सुर

भित्तरः । अद । अः सू३४ औहोवा । रभित्तराऽरः ।

हा३१ उवा २३ । ज३४ पा । सुता३यिचित्वा । औहो

वाहायि । आप्सुमदा । मोअन्धासा । हा३१ उवा २

३। ऊ३४पा । श्रीणा३न्तो गो । औहोवा३हायि । मि

२ ४
हृ३त्तापूरा३पु३म् (३) ॥ २० * ॥ [१५]

२ १ ४ २ ५ १२ २२
॥ पृ३न्नि ॥ परायितो३षि३च्चतासुत३हाउ । सोमी
१ २ १ २ १ २ १ २ २
यउत्तम३हविः । दधान्वा३श्या३र३ः । होवा३हायि ।
१ २ २ १ २ १ २ २ १
नारियो३ । प३स्वान्ताश्रा३र३ । होवा३हायि । सुषा
२ १ २ २ १ २ १
वा३शो३र३ । होवा३हा । मामद्रिभिः । इडा३र३ ॥ (१)
२ १ ४ ५ २ १ २ १ २ १ २ १
सुषावा३र३सोममद्रिभिर्हाउ । सुषावसोममद्रिभिः । नू
२ १ २ १ २ १ २ १
नाम्पू३शना३र३ । होवा३हायि । नोअविभिः । परायि
२ १ २ १ २ १ २ १ २
स्वा३शवा३र३ । होवा३हायि । अदा३ब्वा३शःसू३र३ । होवा३
२ १ २ १ २ १ २ १ ४
हा । राभिन्तरः । इडा३र३ ॥ (२) अदा३ब्वा३र३सुरभि
२ ५ १ २ १ २ १ २
न्तरो३हाउ ॥ (२) अद३ब्वाःसुरभिन्तरः । सुतायिचा३यि
१ २ २ १ २ २ २ १ २
त्वा३र३ । होवा३हायि । अ३प्सुमदा । मोआन्वा३सा

२३ । होवा३हायि । श्रीणान्तो१गो२३ । होवा३हायि ।

भायिरुत्तरम् । इडा२३(३) ॥ ६ * ॥ [१५]

॥ वामम् ॥ परीतोषिञ्चना । हा३हा३यि । सू२३

४ । त३सुतोवा । सोमोहो३यि । यज३हो३र । ता

म३हावा३यिः । दाधन्वा३य । नरायियो३आ । प३सु

वाउवा३ । ज३३४पा । तरा३र । सूपा३रवासो३र । मम ।

द्रा३रयिभा३३४औहोवा ॥ (१) सुपावसोममा । हा३हा

यि । द्रा३३४यि । भिर्द्रि३भोवाःसुषाहो३रई । वसाहो

३ । मामद्रा३यिभा३यिः । ननम्पुना । नोआवायिभा

यिः । पराउवा३ । ज३३४पा । स्रवा३र । आदा३रव्याः

सू३र । र३भि । ताररा३३४औहोवा ॥ (२) अद३व्यःसुर

भि । हा३हा३यि । तार३३४ । रस्त३रोवा । अदाहो

^१रयि । ^{१ ७}अःख्दो^{१ २ २}र । राभिन्तारा^१रः । ख्दोचित्वा । शु
^{१ २}मादा । ^{३ २}मआउवा^१३ । ^{२ ५}ऊ३४पा । ^१धसा^१र । आयिणा
^१रन्तोगो^१र । ^१मिह । ^{१ ३}तार^{५ २ २}रार^२३४औहोवा । ^२ऊ३२३
^५४पा(३) ॥ १२ * ॥ [१६]

^५॥ मानवोत्तरम् ॥ ^{२ २ १ २}होवायि । ^{२ २}परीतोषिच्चतासुतम् ।
^२होवायि । ^{० २ २}सोमोयउत्तम^१ह्विः । ^१दाधन्वा^१यः । ना
^{७ २ २}रियोआ^७३१ । ^{१ ३}प्सूवारन्ता^५२३४रा । ^{२ १}सुषावार^२३ सो ३ ।
^{१ ३}मारमा^{५ २ २}२३४औहोवा । ^३द्रार^५३४यिभीः ॥ (१) ^१होवायि ।
^{२ १ २ १ २ १}सुषावसोममद्रिभिः । ^२होवायि । ^१हृषावसोममद्रिभिः ।
^{७ २ २}नूनम्पुना । ^{१ ७}नोअविभा^२३१यिः । ^०परार^{१ ३}यिस्त्वार^५२३४वा ।
^{२ १}अदाध्वा^२२३ःख्दो^{१ ३}र । ^{५ २ २}रार^३३४औहोवा । ^५तार^३३४राः ॥ (२)
^१होवायि । ^२अद^{१ २}अःसुरभिन्तरः । ^१होवायि । ^१आद^१अः

सुरभिन्तरः । ^१होवायि । आदब्धः सुरभिन्तरः । ^{७२}सुते
^{२ २}चित्ता । ^{१ ७}आप्सुमदा३१ । ^{७२}मोआरन्धार३४सा । ^{२ ५}श्रीणा
^२न्तो २ ३ गो ३ । ^{१ ३}भारयिहृ२३४श्रीहोवा । ^{५ २ २}ता २ ३ ४
^५राम(३) ॥ १३ * ॥ [१७]

॥ ^{१ २}आनूपं ^{१ २}वाध्वाश्चम् ॥ ^२परायिपरायि । ^२तोषिच्चा ३
^{१ २}ताहृ१ता२म् । ^{१ २ २}सोमोयउ । ^{१ २}तमाहृ१वा२रयिः । ^१दा
^१धा२न्वा२र्यः । ^{१ २ २ २}नर्थीअप्सुवन्ता२३रा । ^{१ २ २}सुषावा३सो
^{१ ४}३ । ^२मा२३मा३ । ^५द्रा३४५यिभो६ह्वयि ॥ (१) ^{१ २ १ २}सूषासूषा ।
^२वसोमा३मा३द्रा२यिभा२रयिः । ^{१ २ २ २}सूषावसो । ^{१ २}ममाद्रा२यि
^१भा२रयिः । ^१नूना२म्पूना२ । ^{१ २}नोअविभिःपरिस्वा२३वा ।
^{१ २ २}अदाब्धा३ःहृ३ । ^{१ ४}रा२३भा३यि । ^२ता३४५रो६ह्वयि ॥ (२)
^{१ २ २ २}अदाअदा । ^{१ २}ब्धःसुरा३भायिन्ता१रा२ः । ^{१ २}आदब्धःसु ।

१ २ १ १ १ २ २ २
 रभायिन्ताशराः । स्तुते रचायित्वा र । अप्सुमदीमो
 १ २ १ २ २ १ ४ २
 अन्धारश्सा । श्रीणान्तोऽगोऽ । भारश्चिह्नः । ता
 ५
 ३४५रोऽह्वायि(३) ॥ १४ * ॥ [१८]

३ २ २ ४ ५ २, ३
 ॥ यौधाजयम् ॥ पराश्चि । तोऽषि । च । ताह
 ५ १ २ १ ५ २ २
 २३४ताम् । सोमोऽ । यज२ । तमाश्च५म् । हार
 ५ २ १ २ २ १ २ ३ २
 ३४वीः । दधान्वाऽयाः । न । र्यीआ२ । प्सुवाश्च५ ।
 ३ ५ २ १ ३ २ ३
 तारश्चरा । सुषा२ । वासो२ । ममाश्च५ । द्रा२श्च
 ५ ३ २ २ ४ ५ ५ २, ३ ५
 यिभोः ॥ (१) सुषाश्च । वासो । मम् । आद्राश्च४यिभायिः ।
 १ २ १ ३ २ ३ ५ २ १ २
 छषाश्च । वसो२ । ममाश्च५ । द्रा२श्च४यिभोः । नूनापु
 १ २ १ ३ २ ३ ५
 ना । नः । अविभारयिः । पराश्च५यि । स्तारश्च४वा ।
 २ १ ३ २ ३ ५
 अदा२ । व्याः स्तार । रभाश्च५यि । तारश्च४राः ॥ (२)
 ३ २ २ ५ ५ २ ३ ५ १ २
 अदाश्च । व्याः सू । र । भिन्ताश्च४राः । आदाश्च ।

^१ व्यः^{३२}सू^३२ । रभा^५३४पुयि । ता^{२१}३४राः । सुतायिचित्ता ।

^२ अ । सुमदा^१२ । मोआ^{३२}३४पु । धा^३३४सा । श्रीणा^५२ ।

^१ तेगो^३२ । भिह^२३४पु । ता^३३४राम्(३) ॥ ५ * ॥ [१६]

॥ द्वैगतम् ॥ परीतोऽपिञ्चतासुताम् । सोमोयउ ।

^१ तमा^२७हाश्वारयिः । दधा^{३२}३ । हौ^१३होश्वा । न्वा^२७

^२ योनय्यी^२अप्ह^०अन्तारा^१२ । सुपा^१२३ । वा^१२सो^३२३४औहो

^२ वा । ए^१३ । ममा^३२द्रिभा^{३११११}३४पुयिः ॥ (१) सुपावा^५२सोम

^४ मद्रिभायिः । हृषावसो । ममा^१द्राशयिभा^१२यिः । नूना^{३२२}

^५ रम् । हौ^२३होश्वा । पुनानो^१अविभिः^१पारिखावा^०२ । अ

^१ दार^३३ । व्या^५२ःसू^५२३४औहोवा । ए^१३ । रभा^१२यिन्तरा

^{११११} २३४पुः ॥ (२) अदव्या^५२ःसुरभिन्तराः । आदव्यःसू । र

^१ भायिन्ता^२१राः । सुता^{३२}३यि । हौ^५३होश्वा । चित्ता^१२

अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते—

प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ ३ २ ३
असाविसोमो अरूपो वृषा हरि

१ २ ३ २ ३ १ २ २ २
राजेव दस्मो अभिगा अचिक्रदत् ।

२ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारमत्ये ध्यव्ययं श्येनो

२ २ ३ १ २ ३ १ २
नयोनि द्युतवन्तमासदत् ॥ १ * ॥

“सोमः” “असावि” अभिषुतोऽभूत् । कीदृशः सोमः ?
“अरूपः” आरोचमानः, “वृषा” वर्षकः, “हरिः” हरितवर्णः ;
स च राजेव “दस्मः” दर्शनीयः सन् “गाः” उदकानि “अभि”
लक्ष्य “अचिक्रदत्” शब्दं करोति स्वरस-निर्मीक-समये, पश्चात्
पुनानः “अध्ययम्” अविमयं “वारं” वालं दशापवित्तम्
“अत्येषि” हे सोम ! अतिक्रम्य गच्छसि । ततः “श्येनो न”
श्येन इव “योनि” स्त्रीयं स्थानं “द्युतवन्तम्” उदकवन्तम् “आ-
सदत्” प्रविशति ॥

“अत्येषि”-“पर्येति”—इति पाठौ, “आसदन्”-“आसदम्”
—इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 पर्जन्यः पितामहिषस्यं पर्णिनी

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
 नाभापृथिव्यागिरिषुक्षयन्दधे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
 स्वसारआपोअभिगाउदासर

२२ २२ ३ १ २ ३ २
 न्सङ्गावभिर्वसतेवीतेअध्वरे ॥ २ * ॥

यस्य “महिषस्य” महतः “पर्णिनः” पर्णवतः पर्णनवतो वा
 सोमस्य “पर्जन्यः” “पिता” जनकः “सः” सोमः “पृथिव्याः” †
 “नाभा” नाभौ नाभिस्थानीये ‡ हविर्दाने “गिरिषु” गिरि-
 सन्ध्विषु ग्रावसु “क्षयं” निवासं “दधे” धारयति अभिषव-समये ।
 तथा “स्वसारः” अङ्गुलयः “आपः” वसतीवर्यः ¶ “गाः”
 आशिरार्थाः स्तुतयो वा § “अभि” आभिमुख्येन “उदासरन्”
 उद्गच्छन्ति गच्छन्तु, “वसते”, “सम्” गच्छते च, “ग्रावभिः” सा-
 कम् । कुत्र ? “वीते” कान्ते “अध्वरे” यज्ञे ॥

“उदासरन्”-“उतासरन्”—इति पाठौ, “वीते”-“वीथे”—
 इति च ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, ३, ७, २ ।

† ‘पृथिव्याः समुत्पन्नः’—इति वि० ।

‡ ‘नाभा—नाभि-स्थानीयः’—इति वि० ।

¶ ‘अप्सु आत्वरूपः’—इति वि० ।

§ ‘गाः—सोमस्य रसयः’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ ११ २२ ३ १ २ ३

कविर्वेधस्यापर्येषिमाहिन

२ २ २ ३ २ ३ १ २२

मत्थोनमृष्टोअभिवाजमर्षसि ।

३ १ २ ३ १ २

अपसेधन्दुरितासोमनोमृड

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २

घृतावसानःपरियासिनिर्णिजम् ॥ ३ * ॥ १३

हे 'सोम !' 'कविः' क्रान्तदर्शी सन् 'वेधस्या' याग-
विधानेच्छया 'माहिनं' मंहनीयं पवित्रं 'पर्येषि' परि-
गच्छसि, पश्चात् 'मृष्टः' प्रक्षालितः 'अत्थोन'† 'अश्वद्व
'वाजं' सङ्ग्रामम्‡ 'अभ्यर्षसि'। सोम ! 'दुरिता' अस्त्र-
दीयानि दुरितानि 'अपसेधन्' परिहरन्॥ 'नः' अस्मान्
'मृड' सुख्य 'घृतावसानः' घृतानि उदकानि वसानः आच्छा-
दयन् 'परि यासि' अभिगच्छसि । किन्तु ? 'निर्णिजम्'
पवित्रम् ॥

“सोमनोमृडघृता”-“सोममृडयघृतम्”—इति पाठौ ॥३॥ १३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य दशमस्याध्यायस्य

नवमः खण्डः ॥ ८ ॥

* ऋ० वे० ७, ३, ७, २ ।

† 'अत्थः—अतीत्य गच्छति'—इति वि० ।

‡ 'वाजम्—अश्वं चक्र-पुरोडाशादिजलणम्'—इति वि० ।

॥ 'अपसेधन्—एष दृष्टौ (भा० आ०) अपसृभिः कृतः संवर्द्धति'—इति वि० ।

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
पर्जन्यः पितामहिषस्य पर्णिनो

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नाभापृथिव्यागिरिषु क्षयन्दधे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३
स्वसार आपो अभिगा उदासर

२ २ २ २ ३ १ २ ३ २
न सङ्गावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥ २ * ॥

यस्य “महिषस्य” महतः “पर्णिनः” पर्णवतः पननवतो वा सोमस्य “पर्जन्यः” “पिता” जनकः “सः” सोमः “पृथिव्याः” † “नाभा” नाभौ नाभिस्थानीये ‡ हविर्दाने “गिरिषु” गिरि-सम्बन्धिषु यावसु “क्षयं” निवासं “दधे” धारयति अभिषव-समये । तथा “स्वसारः” अङ्गुलयः “आपः” वसतीवर्यः ¶ “गाः” आशिरार्थाः स्तुतयो वा § “अभि” आभिमुख्येन “उदासरन्” उद्गच्छन्ति गच्छन्तु, “वसते”, “सम्” गच्छते च, “यावभिः” सा-कम् । कुत्र ? “वीते” कान्ते “अध्वरे” यज्ञे ॥

“उदासरन्”—“उतासरन्”—इति पाठौ, “वीते”—“वीथे”—इति च ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, ३, ७, २ ।

† ‘पृथिव्याः समुत्पन्नः’—इति वि० ।

‡ ‘नाभा—नाभि-स्थानीयः’—इति वि० ।

¶ ‘अपसु आढरूपः’—इति वि० ।

§ ‘गाः—सोमस्य रश्मयः’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३
 कविर्वेधस्यापर्येषिमाहिन

२ १ २ ३ २ ३ १ २
 मत्थोनमृष्टोअभिवाजमर्षसि ।

३ १ २ ३ १ २
 अपसेधन्दुरितासोमनोमृड

३ १ २ २ २ १ २ ३ १ २
 घृतावसानःपरियासिनिर्णिजम् ॥ ३ * ॥ १३

हे “सोम !” “कविः” क्रान्तदर्शी सन् “वेधस्या” याग-
 विधानेच्छया “माहिन” मंहनीयं पवित्रं “पर्येषि” परि-
 गच्छसि, पश्चात् “मृष्टः” प्रक्षालितः “अत्थोन” † अश्वइव
 “वाज” सङ्ग्रामसङ्घः “अभ्यर्षसि” । सोम ! “दुरिता” अस्म-
 दीयानि दुरितानि “अपसेधन्” परिहरन् वा “नः” अस्मान्
 “मृड” सुख्य “घृतावसानः” घृतानि उदकानि वसानः आच्छा-
 दयन् “परियासि” अभिगच्छसि । किन्तु ? “निर्णिजम्”
 पवित्रम् ॥

“सोमनोमृडघृता”-“सोममृडयघृतम्”—इति पाठौ ॥३॥ १३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य दशमस्याध्यायस्य

नवमः खण्डः ॥ ८ ॥

* कृ०वे० ७, २, ७, २ ।

† ‘अत्थोन’—‘अतीत्य गच्छति’—इति वि० ।

‡ ‘वाजम्’—‘अश्व’ चरुपुरोडाशादिजघणम्—इति वि० ।

¶ ‘अपसेधन्’—‘एष दृष्टौ (भा० आ०) अप्सुभिः दत्तः संवर्द्धति’—इति वि० ।

२१ २ २ २ २
॥ महासामराजम् ॥ हाउहोवाह्वायि । असावि

५१ २ ४ २२ ३११११ २२ २
सोमोश्वा । रुषोश्वा । षाह्वराश्वायिः । राजेव

२५१ २ ४ २ ३११११ २२
दसोश्वा । भिगाश्वा । आश्वा । चिक्रदारश्वायिः । पुना

२२ ५१ २ ४ २ ३११११ २२
नोवाराश्मा । जियाश्वायिषीश्वा । अव्ययारश्वायिः । श्ये

२ २ १ २ ४ २२ २
नोनयोनीश्वा । तवाश्वायिः । आसदारश्वायिः ॥ (१)

२ २५१ २ ४ २ ३११११
पर्जन्यः पिताश्मा । हिषाश्वायिः । पर्णिना २ ३ ४ ५ः ।

२२२ २५१ २ ४ २ ३११११
नाभापृथिव्याश्वायि । रिषूश्वायिः । यन्दधारश्वायिः ।

२२ २ २ १ २ ४ २२ ३११११
स्वसारआयोश्वा । भिगाश्वायिः । आसदारश्वायिः ।

२२ १ २२ ४ २
सङ्गावभिर्वाश्मा । तेवाश्वायिः । अध्वराश्वायिः ॥ (२)

२ २ ५१ २ ४ २२ ३११११ २ २
कविर्वधस्याश्वा । रियाश्वायिषीश्माहिनाश्वायिः । अत्यो

२५१ २ ४ २ ३११११ २२
नमृष्टोश्वा । भिवाश्वायिः । अर्षसारश्वायिः । अप

१ २२ ४ २२ ३११११ २२
सधन्दूश्वायि । तासोश्वायिः । नोमृडाश्वायिः । हाउ

२ २ २ २ १ २ ४ २
होवाश्चायि । घृतावसानाशपा । रियाश्सीश । नि

२ ११११
णिजाश्माउवाश्३४५(३) ॥ ८ * ॥ [१]

३ ४ २ ३ ४ २ ३ ४ १ ४ ४
॥ हिरभ्यासालौशम् ॥ असाविसोमोअरूपोवृषोवृ

४ २ ३ २ ३ १ १ १ ३ २ २ २
षा । हरायिः । हराश्३४यिः । राजे३१२३४ । वदसो

२ १ १ १ १ २ ३ २ २ २ २
अभिगाअचि । क्रदात्क्रदात् । पुनाश्१२३४ । नोवार

२ १ १ १ २ ३ २ २ २ २
मत्येध । व्ययांव्ययाम् । श्येनो३१२३४ । नयोनिकृत्

३ २ ४ ४ ३ ४ ३ ४ ३ ४
व । तमाश्साप्रदाईप्रईत् ॥ (१) पर्जन्यः पितामहिषस्य

४ २ २ १ १ १ १ ३ २ २ २ २
प । णिनार्३४५ः । नाभाश्१२३४ । पृथिव्यागिरिषुक्षयम् ।

१ २ १ २ ३ २ २ २ २ २ २ १
दधायिदधायि । स्वसाश्१२३४ । रआपोअगाउदा । स

२ १ २ ३ २ २ २ २ २ ३ २ ४
रान्सरान् । सङ्गाश्१२३४ । वभिर्वसतेवी । तेआश्ध्वा

४ ३ ४ ४ २ ४ ४ ३ २ २ ३ २
प्राईप्रईयि ॥ (२) कविर्वेधस्यापरियेपिमा । हिनाम् ।

३ १ १ १ १ ३ २ २ २ २ २
हिनाश्३४५म् । अयोश्१२३४ । नष्टोअभिवाजम् ।

^{१ २} १ ५ ^{३ २} २ २ ^{२ २} २ २
 षसायिषसायि । अपा३१२३४ । सेधन्दुरितासोमनः ।

^{१ २ १ २} ३ २ ^{२ २} २ २ ^{२ २} ३ २
 मृडामृडा । घृता३१२३४ । वसानःपरिया । मिना३

^४
 यिर्णाप्रियिजाद्वृद्धम्(३) ॥ २ * ॥ [२]

^{२ २ १} २ २ ^{२ २ १} २ २
 ॥ ऐडमायाह्यम् ॥ असावायिसो२३ । सोअरुषार

^२ २ २ ^{२ २ १} २ २ ^{२ २} २
 ३ । ए३ । वृषाहरिरे३ । राजेवादा२३ । सोअभा

^२ २ ^{२ २ १} २ २ ^{२ १} २
 यिगा२३ । ए३ । अचिक्रददे३ । पुनानोवा२३ । रमता

^२ २ ^{२ २ १} २ २ ^२ २
 यिये२३ । ए३ । पिअव्ययमे३ । श्येनोनायो२३ । नि

^१ २ ^{२ २} २ २ ^{२ १} २
 ङ्गृतावा२३ । ए३ । तमासददे३३ ॥ (१) पर्जन्याःपार

^{२ २ १} २ २ ^{२ २} २ २ ^{२ २ २} २ २
 इयि । तामहायिषार३ । ए३ । स्यपर्णिनए३ । नाभा

^१ २ २ ^{२ २ १} २ २ ^२ २
 पार्था२३यि । व्यागिरायिषू२३ । ए३ । ज्यन्दधए३ ।

^{२ २ १} २ २ ^{२ २ १} २ २ ^{२ २ २} २ २
 स्वसाराआ२३ । पोअभायिगा२ ३ । ए३ । उदासरन्ने

^{२ २ ३} २ २ ^{२ १} २ २ ^२ २
 ३ । सङ्गावाभा२३यिः । वसतायिवा२३यि । ए३ । पो

अभायिगार३ः । ए३ । उदासरन्ने३ । सङ्गवाभा२३

यिः । वसतायिवार३यि । ए३ । ते^{२२}अध्वर^१ण३४३ ॥ (२)

^२ कवि^१र्वायिधा२३ । ^{२२} स्यापरायि^१ये२३ । ए३ । ^२ पिमा^२हिनि

मे३ । ^२ अत्योना^१मा २ ३ । ^{२२} ष्टो^१अभायिवा२३ । ए३ । ज

मर्षसि^२ण३ । ^१ अपसायि^२धा२३न् । ^२ दुरितासा२३ । ए३ ।

^२ मनो^२मृडण३ । ^२ घृतावासा२३ । ^२ नःपरायिया२३ । ए३ ।

^२ सिनिर्णिजमे^१३४३ । ^१ ओ२३४५ई । डा(३) ॥ ४ * ॥ [३]

॥ वासिष्ठम् ॥ ^२ हायि । ^३ उड्वायि । ^३ असा^२३४^३अौहो

^५ वा । ^१ विमो । ^२ मो३अरु । ^{२, ३४२} षोड्वा^४हरायिः । ^{३२} राजे ३ ४

^{३२} अौहोवा । ^१ वदा । ^२ स्तो३अभि । ^{२, ३४} गाअचि^५क्रदात् । ^{३२} पुना

^{३२} अौहोवा । ^{२२} नावा । ^२ रा३मति । ^{२, ३४} एषिअ^५व्यथाम् । ^{३२} श्ये

^२ ना३४^{३२}अौहोवा । ^१ नयो । ^२ निघृत । ^{२, ३२} व । ^४ तमा३सा^५प्रदाई ५

३ २ ३ ४ ४ ५ १ २ १
इत् ॥ (१) पर्ज्या ३४ औहोवा । न्यःपायि । ता ३ महि ।

२ ३ ४ ५ ३ २ ३ ४ ४ ५ १ १ १
षस्यपर्णिनाः । नाभा ३४ औहोवा । पृथायि । व्याग्नि

२ ३ ४ ५ ३ २ ३ ४ ४ ५ १ २
रि । षुक्ष्यन्दधायि । स्वसा ३४ औहोवा । रत्रा । पो

१ २ ३ ४ ४ ५ ३ २ ३ ४ ४ ५ १
३ अभि । गाउदासरान् । सङ्गा ३४ औहोवा । वभायिः ।

२ १ २ २ ३ २ ४ ३ २ ३ ४ ४
वसते । वी । ते आ ३ ध्वा पूरा ६ ५ ६ यि ॥ (२) क्वा ३४ औहो

५ १ २ २ १ २ ३ ४ ४ ५ ३ २
वा । वेधा । स्या ३ परि । पृषिमाहिनाम् । अत्यो ३ ४

३ ४ ४ ५ १ २ १ २ ३ ४ ५ ३ २
औहोवा । नमा । द्यो ३ अभि । वाजमर्षसायि । अषा

३ ४ ४ ५ १ २ २ १ २ २ ३ ४ ४ ५ २
३४ औहोवा । सेधान् । दुरिता । सोमनोमृडा । हा

३ २ ३ २ ३ २ ३ ४ ४ ५ १ २ १
यि । उज्जवायि । घृता ३४ औहोवा । वसा । नःपरि ।

२ ३ २ ४
या । सिना ३ यिर्णा ५ यिजा ६ ५ ६ म् (३) ॥ १७ * ॥ [४]

२ १ २ १
॥ सीमानानिषेधम् ॥ असो । वाचायि । वायि

२ २ २ २ १ १ २ २
सोमो अरुषो । वृषाहारा २ यिः । राजेवदस्मो अभिगाः ।

^{२ १} अचिक्रादार३त् । ^{१ २} पूर३ना । ^{१ २} नोर३वा३४ । ^{१ ४ २} रमतिये

^{५ २ २} षिअ । ^{१ २} व्याश्याम् । ^{१ २} श्यार३यिनो । ^{१ २} नार३यो३४ । ^३ नि

^{४ ५} ङुतव । ^{३ २ ४} तमा३सा५दा६५६त् ॥ (१) ^{२ १} पज्जो । ^२ वाहायि ।

^{१ २} न्याःपितामहिषा । ^{२ १} स्यपर्णायिना २ः । ^{१ २} नाभापृथिव्यागि

^{२ १} रिषू । ^{१ २} क्षयन्दाधार३यि । ^{१ २} स्वार३सा । ^{१ २} रार३आ३४

^{३ ४ ३ ४ २ ५ २ २} पोअभिगाउदा । ^{१ २} सा३रान् । ^{१ २} सा३श्या । ^{१ २} वा३शभा३४

^{३ ४ २ ५ २} यिः । ^{३ ४ २ ५} वसतेवो । ^{३ ४ २ ५} तेआ३ध्वा५रा६५६यि ॥ (२) ^{२ १} कवो ।

^{२ १} वाहायि । ^{१ २} वायिधस्यापरियायि । ^{२ २ १} षिमाहायिना २म् ।

^{१ २} आत्योनमृष्टोअभिवा । ^{२ १} जमर्षासार३यि । ^{१ २} आर३पा ।

^{१ २} सा३शयिधा३४न् । ^{३ ४ २ ५ २ ५} दुरितासोमनः । ^{२ २ १} मा३र्डा । ^१ घार३

^{२ १} र्सा । ^{२ १} वा३शसा३४ । ^{३ ४ २ ५ २ ५} नःपरिया । ^{३ २ ४} सिना३यिर्णा५यिजा

६५६ (३) ॥ २० * ॥ [५] १३

अथ दशमे खण्डे—

प्रगाथात्मके प्रथम-सूक्ते,

प्रथमा ।

१ २ ३ २ ३ १ २ २ २
 आयन्त इव सूर्यं विश्वे दिन्द्रस्य भक्षत ।

१ २ २ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
 वसुनि जातो जनिमान्योजसा प्रतिभागन्न दीधिमः ॥ १ * ॥

हे अस्मदीया जनाः ! “आयन्त इव” सूर्यं यथा समाश्रिता
 रश्मयः सूर्यं भजन्ते, तथा “इन्द्रस्य” “विश्वेत्” विश्वान्येव धनानि
 “भवत” भजत । “वसुजातः” प्रादुर्भूत इन्द्रः यानि “वसूनि”
 धनानि “ओजसा” बलेन “जनिमा” जनिष्यमाणानि करोति
 अतो “भागं न” पितॄन् भागमिव तानि धनानि “प्रति दीधिमः”
 प्रतिधारयेम ॥

“जातो जनिमानि”—“जाते जनिमानि”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
 अलर्षिं रातिं वसुदामुपस्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 यो अस्य कामं विधेतानरो धनिमनो दानाय चोदयन् ॥ २ † ॥ १४

हे स्तोतः ! “अलर्षिरातिम्” अपापक-दानम् अपापिष्ठस्य
 दातार इत्यर्थं [अलर्षि-पद-समानार्थमनर्ष-पदं यास्केन व्याख्या-

* ऋ० आ० ३, २, ३, ५ (२भा० ५११ ङ०) = ऋ० वे० ७, ३, ३, ४ ।

† “अलर्षि” — इति क० पु० पाठः ।

‡ ऋ० वे० ७, ७, ३, ४ ।

तम्—“अनर्शरातिमनश्चील-दानमश्चीलं पापकम्”—इति (निब०
 ने० ६, २३)] “वसुदा” धनस्य दातारमिन्द्रम् “उप स्तुहि”^{*}
 यतः “इन्द्रस्य” “रातयः” दानानि “भद्रा” कल्याणानि सहदै-
 श्वर्यकारिणीत्यर्थः । “यः” इन्द्रः स्वकीयं “मनः” “दानाय”
 अभीष्टप्रदानाय “चोदयन्” प्रेरयन् “विधतः” परिचरतः
 “अस्य” स्तोतुः “कामम्” इच्छां “न रोपति” न हिनस्ति ।
 तमिन्द्रमुपस्तुहीति सम्बन्धः ॥

“अक्षरिपिरातिम्”—इति छन्दोगाः पठन्ति, “अनर्शरातिम्”—
 इति बह्वृचाः ; “योअस्य”-“सोअस्य”—इति च ॥ २ ॥ १४

॥ आयन्तीयम् ॥ आयन्तइवसू१रायाम् । विश्वा२
 यिदिद्रा२ । स्यभा३क्षाता । वामूनिजातोजनिमा । नि
 योजा१सा२ । प्रतिभागन्नदी२रघिमः । प्रा२रती । भा
 गान्ना३दा । ऊम् । धिमा३ः । ओ२३३वा ॥ (१) प्रति
 भागन्नदा१यिधायिमाः । प्रता२रयि । भागा२म् । न
 दा२रयिधायिमाः । आकृषि२रातिम्बसदाम् । उपास्त१

* ‘उपस्तुहि—समोदं स्थित्वा स्तुहि’—इति वि० ।

^१ ^{१२} ^{२ २ १ २} ^१ ^२ ^१ ^२
 द्यायि । भद्रा इन्द्रस्य रातयः । भारद्वाः । इन्द्रास्याः
^२ ^१ ^{३ २} ^१ ^५ ^{२ २}
 रा । ऊम् । तथाः । ओर३४वा ॥ (२) भद्रा इन्द्रस्य
^२ ^१ ^१ ^१ ^१
 रा१तायाः । भद्रा इन्द्रा २ । स्यरा २तायाः । या अ
^{२ २ १} ^२ ^{१ २} ^{१ १ २ १ २ २ २ १}
 स्यकामन्विधतः । नरोषा१ता २यि । मनोदानाय चोद
^२ ^१ ^२ ^{१ २} ^२ ^२ ^१ ^{३ २}
 यन् । मा २३नाः । दानाया ३ चो । ऊम् । दया ३ ।
^१ ^५ ^{३ १ १ १ १}
 ओर३४वा । हे २३४५ (३) ॥ ८ * ॥ [१]

^{२ २} ^{२ २} ^{१ २ १}
 ॥ निषेधम ॥ आयन्त इवा ३सूरियाम् । विश्वायिन्द्रा ।
^२ ^१ ^{१ २} ^{१ १ ४} ^५ ^{२ ३}
 स्यभक्षता २ । इच्छा ३ । वासू ३नायिजा । हा ३होर ३ ४
^५ ^१ ^{२ १} ^{२ २ १} ^२ ^{१ २} ^{१ २}
 हा । तोजनिमा । नियोजा २३सा । इच्छा ३ । प्राता
^{४ ५} ^{२ ३} ^५ ^{३ २} ^४
 ३यिभागाम् । हा ३होर ३४हा । नदा ३यिधा ५यिमा ६५
^{३ १ १ १ १}
 ६ः । हे २३४५ (३) ॥ २ † ॥ [२] १४

अथ प्रगाथात्मके द्वितीय-सूक्ते--

प्रथमा ।

१२ ३१५ ३१५ ३१५

यतइन्द्रभयामहेततो नो अभयङ्कुधि ।

१९ ३ १७ ३१ २९ २३ २७ ३१८ २८

मघवञ्छग्धितवतन्नजतये विदिषो विमृधोजहि ॥१॥

हे “इन्द्र !” “यतः” हिंसकान् “भयामहे” वयं, ततः “नः”
अस्मभ्यम् “अभयं” “कुधि” कुरु । हे “मघवन्” धनवन्निन्द्र !
“नः” अस्मानुद्दिश्य “तत्” तस्यै “तव जतये” त्वत्कर्तृकायै
रक्षायै “ग्धि” शक्तो भव । किञ्च “वि दिषः” अस्महेष्टृन्
विजहि ; “वि मृधः” अस्मद्विंसकान् विजहि ॥

“जतये”-“जतिभिः”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१८ १८ ३१ २ ३२७ ३१ २ ३२

त्वंहिराधसस्यतेराधसेमहः क्षयस्यासि विवर्त्ता ।

१२ ३१२ ३१२

तन्वावयममघवन्निन्द्रगिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥२॥ १५

हे “राधसस्यते” धनस्य स्वामिन् ! “त्वं हि” त्वं खलु
“महः” महतः “राधसः” धनस्य “क्षयस्य” गृहस्य च ॥

* ऋ० अ० ३, २, ४, २ (१ भा० ५६४ अ०) = ऋ० वे० ६, ४, ३७, ३ ।

† ऋ० वे० ६, ४, ३७, ४ ।

‡ ‘क्षयो निवासः, तस्य’—इति वि० ।

“विधत्तां असि हि” अस्मभ्यं दातुं धारको भवसि खलु ।
हे “गिर्वणः” गौर्भिर्वननीय ! “मघवन्” धजबन्निन्द्र ! “तं”
तादृशं “त्वा” त्वाम् “वयं” “सुतावन्तः” अभिषुत-सीमाः “हवा-
महे” आह्वयामः ।

“राधस्यते”—“राधस्यते”—इति पाठौ, “विधत्तां”—“वि-
धत्ते”—इति च ॥ २ ॥ १५

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रयणस्य दशमस्याध्यायस्य

दशमः खण्डः * ॥ १० ॥

॥ समन्तम् ॥ यतइन्द्रभयामहायि । ततो नो आभ
यङ्गुधायि । मघवारइक्का । ग्वायितवतत् । नऊताया ।
औहोइ४वाहायि । वि । द्वायिषोइ३वी३ । होवाइहा
उहायि । मृधोजा१इहाइ४इयि ॥ (१) विद्विषोविमृधोज
हायि । विद्विषोवायिमृधोजहायि । तुव्हाइ३यिरा ।
धमोमाहा । औहोइ४वाहायिच । यास्याइ३सी३ ।

* ‘उक्तौ साध्यन्दिनः पवमानः नवममहः । वासदेव्यं सैवावरुणं साम, आयन्तीद्यं
ब्रह्मसाम, गायत्र्यं सच्छावाकं साम च’—इति वि० ।

होवाश्चायि । विधाश्चायि ३४३ ॥ (१) द्यस्यासीविधर्त्ता ।
 तन्वावाश्चायाम् । माघवन्नि । द्रगायिर्वाणा । औहो
 श्वाश्चायि । सु । तावाश्चायि ३ । होवाश्चायि । ह
 वामाश्चायि ३४३यि । ओरश्चायि ३४३यि । डा(३) ॥ १० ॥ [१] १५

अथैकादश-खण्डे ॥—

त्वंसोमेति-तृचात्मकं प्रथमं सूक्तमर्थः,

तत्र प्रथमा ।

त्वंसोमासिधारयुर्मन्द्रओजिष्ठोअध्वरे ।

पवस्वमह्यद्रयिः ॥ ११ ॥

हे “सोम !” अभिपूयमाण-पवमान ! “मन्द्रः” मादयि-
 त्वतमः “ओजिष्ठः” ओजस्वितमः त्वम् “अध्वरे” हिंसा-रहिते
 ऽस्मदीये यज्ञे “धारयुः” अभिपव-धारा-कामः “असि” भवसि ।

* ऊ० गा० ४ प्र० २ अ० १० सा० ।

† ‘इदानीमाभवेः पवमानः’—इति वि० ।

‡ ‘त्वं सोमसि धारयुरिति अप्रवृत्त प्रवृत्तीनि सामानि ब्राह्मणोक्ताप्राणि’—
 इति वि० ।

॥ ऊ० वे० ७, २, १३, १ ।

ततः “त्वं” “मंहयद्रयिः” स्तोत्रभ्यः प्रदीयमान-धनः सन्*
 “पवस्व” द्रोणकलशे ग्रहादिषु दशापवित्त्रेण पूतो भव [यद्वा,
 “धारयुः” तद्वदर्थे भाष्यत इति मत्वर्थीयो युस्] । हे सोम !
 त्वं धारावानसि ततः पवस्वेति सम्बन्धः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ ४ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 त्वं सुतोमदिन्तमोदधन्वान्मत्सरिन्तमः ।

१ २ २ १ २ २ २
 इन्दुःसत्राजिदस्तुतः ॥ २† ॥

हे सोम ! “सुतः” अभिषुतः “त्वं” “मदिन्तमः” अतिशयेन
 मदयुक्तोऽसि । कीदृशस्त्वम् ? “दधन्वान्” यज्ञस्य धारकः,
 “मत्सरिन्तमः” अतिशयेन मदकारी,‡ “इन्दुः” दीप्तः, “सत्रा-
 जित्” बहूनां जेता,¶ “अस्तुतः” केनाप्यहिंसितः ॥

“मदिन्तमः”-“वृमादनः”—इति पाठौ, “इन्दुःसत्राजिद-
 स्तुतः”—“इन्द्रायसुरिरन्धसा”—इति च ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
 त्वं सुधाणोअद्रिभिरभ्यर्षकनिक्रदत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २
 द्युमन्तं शुक्लमाभर ॥ ३ § ॥ १६

* ‘यद्यपि मंहतिः पूजार्थः तथाप्यत्र लाभार्थो द्रष्टव्यः’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ७, २, १३, २ ।

‡ ‘मत्सरिन्तमः’—भक्षणीयतमः—इति वि० ।

¶ ‘सत्राजित्’—सदा जेता अथवा सहजेता—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ७, २, १३, ३ ।

हे “पवमान” सोम ! “अद्रिभिः” ग्रावभिः “सुष्वाणः”
सुन्वानः अभिषूयमाणस्त्वं “कनिक्रदन्” भृशं शब्दं कुर्वन्
“अभ्यर्ष” कलशं पात्राणि चाभिगच्छ । किञ्च “दुमन्तं”
दीप्तियुक्तं “शुष्म” शत्रूणां शोधकं बलं वा “आभर”* ॥

“आभर”-“उत्तमम्”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ १६

१ ३ ४ ५ ६
॥ आश्वत्थम् ॥ आश्रौहोवाहायि । तुव॑सोमा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
सिधा । रयुः । ऐहीयैही१ । मान्द्र॒ओजिष्ठो॒आध्वरे ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
ऐहीयैही१ । आ॒रयि । पावा॒स्वामा॒र । ह्यत् ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
रा॒रयार॒श्च॒ओहोवा ॥ (१) आश्रौहोवाहायि । तुव॑सु

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
ताः । मदायि । तमः । ऐहीयैही१ । दाधन्वान्मत्स

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
रायिन्तमः । ऐहीयैही१ । आ॒रयि । आयि॒न्दू॒रःसा

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
त्रा॒र । जिद । स्तार॒त्तार॒श्च॒ओहोवा ॥ (२) आश्रौ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
होवाहायि । तुव॑सुष्वा । णोआ । द्रिभिः । ऐहीयै

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
ही१ । आभियर्षकनायिक्रदत् । ऐहीयैही१ । आ॒र

* खर्विदमिति प्रतीक-प्रहणं खर्गस्य वेत्तारमिति तद्व्याख्यानञ्चात्र विवरणे
ग्रामादिक इव उपलब्धते ।

३६

तत

“प

“ध

त्वं

यि । द्यूमा^१रन्ना^१गृ^{१२}र । अमा^{१२} भा^{१३}रार^{५२}३४ औ^२होवा ।

२१ २ २ ३ १ १ १ १
गुक्र^२आ^३ऊ^४ता^५२३४५ः (३) ॥ ११* ॥ [१]

३४ ५२ २ २ २ १ ३ ५
॥ शाम्मदम् ॥ तुव^{३४}सु^{५२}तोम^२सि^२ए । हो^२ऐ^१हो^३र^५३४या ।

१२ १ ५ १ २ २ १
धारयुरै^{१२}र^१हो^५३या । मन्द्र^१ओ^२जि^२ष्ठो^२अ^१ध्वर^२ऐ^१र^१हो^१ऐ^१र^१हो^१३

२ १ २ २ १ ५ ४
या । प्रावा^२स्वामा^१३१२३ । ह्यो^२र^१३४वा । रा^२५यो^१इ^५हा

३४ ५२ २ २ २ १ ३ ५ १
यि ॥ (१) तुव^{३४}सु^{५२}तोम^२सि^२ए । हो^२ऐ^१हो^३र^५३४या । दिन्त^१म^१ए

१ ५ २ २ २ १ ५ २
र^१हो^५ऐ^२र^१हो^२३या । दधन्वा^१न्म^५सुरिन्त^२म^२ए^१र^५हो^१ऐ^२र^५हो^२३या ।

१ २ २ १ ५ ४ ५
आयि^१न्दूःसा^२त्रा^२३१२३ । जि^२दो^१र^२३४वा । स्वा^५५र्चो^४ई^५हा

३४ ५२ २ २ २ १ ३ ५ १
यि ॥ (२) तुव^{३४}सु^{५२}घ्रा^२ण^२ए । हो^२ऐ^१हो^३र^५३४या । अद्रि^१भि

१ २ १ १ ५ ४ ५
रै^१र^२हो^१ऐ^२र^१हो^२३या । अभि^१यर्ष^२कनि^१क्रद^२दै^१र^५हो^१ऐ^२र^५हो^२३या ।

१ २ २ १ ५ ४ ५
द्यूमा^१न्ना^२गृ^२३ १ २ ३ । अ^२सो^१ २ ३ ४ वा । भा^५५रो^४इ^५हा

वि^१ (३) ॥ १२† ॥ [२]

॥ दावसुनिधनम् ॥ तुव^{२१}सोर^{४२}मासि^२धारयु^५र्हाउ ।

मान्द्र^१ओजि^{२२} । षो^२आध्वा^१रार^१३यि^२ । होवा^१इहायि^२ । प

वास्वा^२मार^{१२}३ । होवा^१इहा^२ । ह्यत्^१ । रार^१यार^३३४औ^{५२}

होवा^२ ॥ (१) तुव^{२१}मूर^{४२}इतोमदिन्तमो^२हाउ । दधन्वान्मस

रायिन्ता^१मार^२३ । होवा^१इहायि^२ । इन्दू^१सा^२त्रार^२३ ।

होवा^१इहा^२ । जिद^१ । स्तार^१त्ता^३२३४औ^{५२}औ^२होवा^२ ॥ (२) तु

व^१मूर^{४२}इषाणो^५अद्रिभि^१र्हाउ । अभियर्प^१ । कनायिका^१

दार^१३तु^२ । होवा^१इहायि^२ । द्यु^१मान्ता^२१२मूर^१३ । होवा

इहा^२ । षमसा^१ । भार^१रार^३३४औ^{५२}होवा^२ । ए३ । दाव

२११११
मूर^२३४५(३) ॥ १३* ॥ [३]

॥ प्रतीचिनेडकाशीतम् ॥ त्व^१सो^२मासि^{२२} । धा^१रयू^१ ।

मान्द्र^{२२}ओजि^२ । षो^२आध्वा^१रार^३३४यि^{३२} । हा^१होयि^१ । पवस्व

तत्
“प
“
त्व

मा^{१ २}हा^१श्यात् । रया^{४ ५}यिः । औ^{१ २}र^१होवा ॥ (१) त्व^{१ २}सु

तोम । दा^{१ २}र^१यिन्तमाः । दा^{१ २}धन्वा^{१ २}न्म । त्सा^{१ २}र^{१ २}यिन्तमा^{१ २}र

३४ः । हा^{१ २}होयि । इ^{१ २}न्दुः^{१ २}सवा^{१ २}जी^{१ २}शदा । स्तु^{१ २}ता । औ^{१ २}र

होवा ॥ (२) त्व^{४ ५}सु^{१ २}ष्वा^{१ २}णः । आ^{१ २}र^{१ २}द्रि^{१ २}भा^{१ २}यिः । आ^{१ २}भि^{१ २}य^{१ २}षी

कना^{१ २}यि^{१ २}क्रदा^{१ २}र^{१ २}३४त् । हा^{१ २}होयि । द्यु^{१ २}मन्त^{१ २}ष्म^{१ २}मा^{१ २}शमा ।

भरा । औ^{१ २}र^{१ २}होवा । ई^{४ ५}डा^{४ ५}(३) ॥ १४* ॥ [४]

॥ हा^{१ २}वि^{१ २}ष्कृत^{१ २}म् ॥ त्व^{१ २}सो^{१ २}मा^{१ २}सि^{१ २}धा^{१ २}हा^{१ २}उरा^{१ २}यूः । मन्द्र

ओ^{१ २}जा^{१ २}यि । षो^{१ २}आ^{१ २}ध्वा^{१ २}र^{१ २}श्रा^{१ २}यि । पवा^{१ २}र^{१ २}हो^{१ २} । स्वा^{१ २}र^{१ २}र

मा । ह्य^{१ २}त् । रा^{१ २}र^{१ २}या^{१ २}र^{१ २}३४ औ^{१ २}होवा ॥ (१) त्व^{१ २}सु^{१ २}तोम

दा^{१ २}हा^{१ २}उता^{१ २}माः । द^{१ २}ध^{१ २}न्वा^{१ २}न्मा । त्सा^{१ २}र^{१ २}िन्ता^{१ २}र^{१ २}माः । इ^{१ २}न्दू

र^{१ २}र्ही^{१ २}श^{१ २}यि । सा^{१ २}र^{१ २}श्वा^{१ २} । जि^{१ २}द । स्ता^{१ २}र^{१ २}र्त्ता^{१ २}र^{१ २}३४ औ^{१ २}हो

वा ॥ (२) त्व^{१ २}सु^{१ २}ष्वा^{१ २}ण^{१ २}आ^{१ २}हा^{१ २}उद्रा^{१ २}यि^{१ २}भा^{१ २}यिः । अ^{१ २}भि^{१ २}य^{१ २}र्षा^{१ २} ।

कनिका^२३दात् । द्युमा^२२हो१ । तार^२३गू । यमा ।

भार^१रा^३३४ओ^५होवा । हविष्कृते^२२३४पु^२(३) ॥१५*॥[५]१६

अथ तृचात्मके द्वितीय-सूक्ते—

प्रथमा ।

पवस्व^१देव^२वीत^३य^४इ^५न्दो^६धारा^७भिरो^८जसा ।

आ^१कल^२शं^३मधु^४मान्^५सोम^६नः^७सदः ॥ १* ॥

हे “इन्दो” सोम ! “देववीतये” देवानां भक्षणाय
“ओजसा” बलेन “धाराभिः” आत्मीयाभिः “पवस्व” क्षर ।
हे “सोम !” “मधुमान्” मदकर-रसवान् त्वं “नः” अस्मादीयं
“कलशं” द्रोणाभिधानम् “आसद” आसीद [सदेर्लुङि
रूपम्] ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

तव^१द्रु^२सा^३उद^४प्रुत^५इ^६न्द्र^७मदा^८यवा^९वृधुः ।

त्वान्देवा^१सो^२अमृता^३यक^४म्पयुः ॥ २* ॥

* ऊ० गा० ५ प्र० २ अ० १५ सा० ।

† ऊ० आ० ६, ९, ३, ६ (२भा० २१३ ४०) = ऋ० वे० ७, ५, १०, २ ।

‡ ऋ० वे० ७, ५, १०, २ ।

“उद्भुतः” वसतीवर्याः सुदकं प्रति गच्छन्तः* [यद्वा, उदकस्य निर्गमयितारः] “तव” स्वभूताः “द्रप्साः” द्रुतगामिनो रसाः† “मदाय” मदार्थम् इन्द्रम् “वावृधुः” वर्द्धयन्ति । ततः “देवासः” देवा इन्द्रादयः “कं” सुखकरं‡ “त्वाम्” “अमृताय” अमरणार्थं “पपुः” पिबन्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २

३ २ २

३ २

आनःसुतासइन्द्रवःपुनानाधावतारयिम् ।

३ १ २

३ १ २

वृष्टिद्यावोरौत्यापःस्वर्विदः ॥ ३॥ १७

हे “सुतासः” अभिषूयमाणाः ! हे “इन्द्रवः” दीप्ताः पात्रेषु चरन्तो वा “रौत्यापः” यैः पृथिवीं प्रति स्त्रवणशीला आपः, तादृशा हे सोमाः ! “पुनानाः” पूयमानाः यूयं “नः” असभ्यं “रयिम्”§ “आ धावत” आगमयत । कौटुशाः ? “वृष्टि-
द्यावः” ॥ वृष्टिमभि द्यौर्यैः क्रियते, वृष्ट्यभिमुख-द्युलोकवन्तः
“स्वर्विदः” सर्वस्य लम्भकाः** ॥ ३ ॥ १७

* ‘उद्भुतः—उदकेन स्नाविताः’—इति वि० ।

† ‘द्रप्साः—द्रव्यभूताः सोमाः’—इति वि० ।

‡ ‘कं—जातिभूतम् अथवा कम् उदकभूतम्—इति वि० ।

¶ ऋ० वे० ७, ५, १०, ४ ।

§ ‘रयिं—सोमाख्यं धनम्’—इति वि० ।

॥ ‘वृष्टिद्यावोरौत्यापः—यथा द्युलोके भवान् वृष्टिः रौतिभिः सङ्घातः’—
इत्यादि वि० ।

** ‘स्वर्विदः—स्वर्गस्य वेत्तारः’—इति वि० ।

॥ वैश्वमनसम् ॥ पवस्वदेववीतायैयि । आयिन्दो
 धाराः । भिरोऽ४५ । जमआकलशम्माधमान्तोऽ४५ ।
 मनाः । सादाऽचारऽ४ औहोवा ॥ (१) तवद्रप्सोउदप्र
 रताः । आयिन्द्रम्मादाः । यवाऽ४५ । वृधुरात्वान्देवा
 सोअमृताऽ४५ । यकाऽम् । पापूरारऽ४ औहोवा ॥ (२)
 आनःसुतासइन्दाऽवाः । पूनानाधाः । वताऽ४५ । रयि
 मार्वाष्ट्यावारीत्यापाऽ४५ । सुवाः । वोयिदारऽचार
 आऽ४ औहोवा । ऊरऽ४५ (३) ॥ १७* ॥ [१]

॥ सुज्ञानम् ॥ पवस्वदा । ववीतयायि । इन्दोधा
 राः । भिरोजमा । आकलाशारम् । मधु । मार
 न्तोऽ४ औहोवा । मनःसदणः ॥ (१) तवद्रप्साः । उद
 प्रुताः । इन्द्रम्मादाऽयिवावृधः । तुवान्दायिवाऽर । सा

अ । मा॒र॒त्ता॒र॒३४औ॒होवा । त॒क॒म्प॒पु॒रे॒३ ॥ (२) आ॒नः

सु॒ता । स॒इ॒न्द॒वाः । पु॒ना॒ना॒धा॒र । व॒ता॒र॒या॒यि॒यि॒म् ।

वृ॒ष्टि॒द्या॒वा॒रः । री॒ति । आ॒र॒पा॒र॒३४औ॒होवा । सु॒व॒र्वि

द॒ण॒उ॒पा॒र॒३४५ (३) ॥ १८* ॥ [२] १७

अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते —

प्रथमा ।

परि॒त्य॒ह॒र्य॒त॒ह॒रि॒म्ब॒भ्र॒म्पु॒न॒न्ति॒वा॒रे॒ण ।

यो॒दे॒वा॒न्वि॒श्व॒ा॒इ॒त्परि॒म॒दे॒न॒स॒ह॒ग॒च्छ॒ति ॥ ११ ॥

“हर्यतं” सर्वैः स्मृहणीयं “हरिं” हरितवर्णं “बभ्रुं” बभ्रुवर्णं च “त्यं” तं सोमं “वारेण” वालिन पवित्रेण “परि पुनन्ति” परिशीलयन्ति “यः” सोमः “विश्वान्” एतत्सर्वानिन्द्रादीन् देवान् अनेन “मदेन” मादकेन रसेन “सह” “परि गच्छति” ॥ १ ॥

* ज० गा० ११प्र० २अ० १८सा० ।

† क० आ० ६, २, १, ८ (२भा० १६७ प्र०) = पुनरिहैव ८, २, ८, ३ = ऋ० वे० ७, ४, २४, १ ।

अथ द्वितीया ।

२३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विद्यत्यच्चस्वयशस्मखायोऽद्रिसंहतम् ।

३ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् प्रज्ञापयन्त ऊर्मयः ॥ २० ॥

‘द्विः पञ्च’† दश-सङ्ख्याकाः ‘सखायः’ समान-स्थाना
अङ्गुल्यः ‡ ‘स्वयशस्’ स्वभूत-यशस्कम् § ‘अद्रिसंहतम्’
आवभिरभिपुतम् ‘इन्द्रस्य प्रियं’ ‘काम्यं’ सर्वैः काम्यमानम्
‘ऊर्मयः’ § [द्वितीयैकवचने प्रथमा-बहुवचनम्] ऊर्मिं
प्रभूततरं ‘यं’ सोमं ‘प्र ज्ञापयन्ते’ वसन्तीवरीभिः प्रकर्षणं सेव-
यन्ति [यद्वा, ऊर्मय इत्यङ्गुलि विशेषणं प्रभूता इति] ; तं सोमं
पुनन्तीति पूर्वेण सम्बन्धः ॥

‘सखायः’-‘स्वसारः’—इति पाठो, ‘प्रज्ञापयन्त ऊर्मयः’-
‘प्रज्ञापयन्तूर्मिणम्’—इति च ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २

इन्द्राय सोमपातवेवृत्रघ्नो परिपिच्यसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥ १८

* ऋ० वे० ७, ४, २०, ६ ।

† ‘द्विः—द्विःकृत्य । यं सोमं । पञ्च ऋत्विजः’—इति वि० ।

‡ ‘सखायः—ऋत्विजः’—इति वि० ।

§ ‘स्वयशस्—स्वयशसा सम्पन्नम्’—इति वि० ।

§ ‘ऊर्मयः—उदक-सङ्ख्याताः’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ७, ४, २४, ४ ।

हे “सोम !” “वृत्रघ्ने” वृत्रस्य हन्त्रे “इन्द्राय” [पठार्थं चतुर्थी] इन्द्रस्य “पातवे” पानार्थं “परिषिच्यसे” परितः पात्रेषु सिच्यसे वसतीवरीभिर्वा । किञ्च “दक्षिणावते” ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा-दानेन तद्वते, “वीराय” विक्रान्तायेन्द्राय हवींषि दातुं “सदनासदे” यज्ञ-यज्ञे सीदते,* “नरे”† मनुष्याय यजमानाय तस्मै फल-प्रदानार्थं परिषिच्यसे ॥

“वीराय”-“देवाय”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ १८

॥ गौरोवितम् ॥ परि । त्य॑च्चा३ । र्य॑न्त् ह॒रायिम् ।
 ब॒भ्रु॒म्पुन॑न्तिवारेणार३ । यो॒देवा॑न्वा३१२३यि । श्वा॑
 आ॒पुयि॑त्यरायि । मा॒देन॑सा३१२३ । ह॒गोवा॑ । द्वा॒पुतो॑
 ई॒हायि॑ ॥ (१) द्वि॒र्यम् । प॒च्चा३ । स्र॒यश॑साम् । स॒खा
 यो॒अद्रि॑स॒हता॑र३म् । प्रा॒यमि॑न्द्रा३१२३ । स्र॒क्का॒पुमि॑
 याम् । प्रा॒स्त्राप॑या३१२३ । त॒ओवा॑ । मा॒पुयो॑ई॒हायि॑ ॥ (२)
 इन्द्रा॑ । य॒सो३ । म॒पात॑वायि । वृ॒त्रघ्ने॑ परिषिच्यसा३३

* ‘सदनासदे’—यानि यज्ञे सदनानि द्रोणकलश-प्रभृतौनि, तेषु आसीदति ।
 इति वि० ।

† ‘नरे’—नराकारे’—इति वि० । ‡ ‘महागौरोवितम्’—इति ख०-पु०-पाठः

^१याम् । ^{३ २}मिया । ^{३ ५}ओर३४वा । ^२हायि । ^२प्रज्ञापयन्त ऊ
^{५ १ २}श्मर्त्याः । ^{१ २}मया । ^{३ ५}ओर३४वा । ^२हायि ॥ २) इन्द्रा
^{२ २ १ २}यसोमपाश्तावाशयि । ^{१ २}तावायि । ^{३ २}तवा । ^{३ ५}ओर३४वा ।
^२हायि । ^{२ ५ १ २}वृद्धं परिषीच्यासाशयि । ^{१ २}च्यासायि । ^{३ २}च्यसा ।
^{३ ५}ओर३४वा । ^२हायि । ^{२ ५ १ २}नरेचदक्षिणाश्वाताशयि । ^{१ २}वाता
^{३ २}यि । ^{३ ५}वता । ^{२ २ २ ५}ओर३४वा । ^२हायि । ^{२ ५ १}वीरायसदनाश्सा
^२दाशयि । ^{१ २}सादायि । ^{३ २}सदा । ^{३ ५}ओर३४वा । ^२हायि ।
^{१ १}आयिही३ । ^{१ २}आयिही । ^{३ २ ५}एहिया । ^{३ ५}ओर३४वा । ^२हा
^{५ २ २}३४ । ^{३ १ १ १ १}औहोवा । ^{३ १ १ १ १}ईर३४५(३) ॥ १८* ॥ [३]

^{१ २ १ २}॥ यंदाहिष्ठीयम् ॥ ^{१ २ १}परित्यङ्घर्यतङ्घरिम् । ^१परि
^{१ २}त्यङ्घोवा । ^१यंतङ्घरायिम् । ^२बभ्रुम्पूरशना । ^{१ २ २}तिवारे
^{२ २}णा । ^२यीदेवारश्नायि । ^{२ १}आङ्घ्रित्परायि । ^२मदेनार३

सा । हगच्छा^१र^१इ^२ता^१इ^२इ^१यि ॥ (१) द्वि^१र्य^२म^१च^२ख^१य^२श^१स^२म् ।
 द्वि^१र्य^२म^१च^२ोवा । ख^१य^२श^१स^२म् । स^१खा^२यो^१र^२इ^१चा । द्वि^१
 स^१त्^२द्ध^१ता^२म् । प्रि^१य^२मा^१र^२इ^१यि^२न्द्रा । स^१य^२का^१मि^२या^१म् । प्र^१स्त्रा^२
 पा^१र^२इ^१या । त^१ज^२म्मा^१र^२इ^१या^२इ^१इ^२ ॥ (२) इ^१न्द्रा^२य^१सो^२म^१पा^२त
 वे । इ^१न्द्रा^२य^१सो^२वा । म^१पा^२त^१वा^२यि । वृ^१त्र^२घ्ना^१र^२इ^१थि^२पा ।
 रि^१षि^२च^१सा^२यि । न^१रे^२चा^१र^२इ^१द्वा । क्षि^१णा^२व^१ता^२यि । वी^१रा^२
 या^१र^२इ^१सा । द^१ना^२सा^१र^२इ^१दा^२इ^१इ^२इ^१थि । ओ^१र^२इ^१इ^२इ^१इ^२इ^१इ^२ ।
 डा(३) ॥ २०* ॥ [३]

॥ आ^१सि^२ता^१द्य^२म् ॥ परि^१त्य^२त्^१द्ध^२र्य^१ता^२म् । ह^१रा^२यि^१म् ।
 ब^१भ्रु^२म्पु^१न^२न्ति^१वा^२रे^१इ^२णा । यो^१दे^२र^१वा^२न्वा^१र^२यि । श्वा^१त्^२इ^१
 त्य^१रा^२यि । मा^१दे^२र^१ना^२सा^१र^२ । ह^१गो^२वा^१इ^२ओ^१र^२इ^१इ^२वा । च्छा^१
 पू^१तो^२इ^१द्वा^२यि ॥ (१) द्वि^१र्य^२प^१च^२ख^१या । श^१स^२म् । स^१खा^२यो^१

^२ अद्रि^१स^१त्^१हार^{१२}ताम् । प्राया^१रेमायिन्द्रा^१रे । स्यकामि

^१याम् । प्रास्ता^१रेपाया^१रे । तन्नोवा^१श्चो^१रे^५श्वा^४ । मा^५

^५यो^{१२}द्वायि ॥ (२) इन्द्राय^{१२}सोमपा^१ । तवायि^१ । वृत्रघ्ने^१प

^२रिपि^१च्या^१श्चायि^१ । नारे^१रेचादा^{१२}रे । क्षिणावतायि^{१२} ।

^१वायिरा^१स्यासा^१रे । दनोवा^१श्चो^१रे^५श्वा^४ । सा^५प्रदो^४

^५द्वायि^५ (३) ॥ १* ॥ [४]

^२ ॥ साध्रम् ॥ परि^१त्या^१श्च^४र्च्य^५त^५हारायिम् । बभ्रू^{११}

^{२१} पुना^१रे । निवा^{३२}श्वा^३श्वा^४ । रे^{१२२१२}श्वा^{२२}णा । योदेवान्निश्वा^{२२}

^{१२२१११२} इत्यरा^१श्वा^१श्वा^१श्वा^१श्वा^५ । मादा^१श्चो^१रे^१श्वा^५ । नासा^१श्चो^१रे^५श्वा^५ ।

^४ दगा^५प्र^५क्षतायि ॥ (१) द्विर्य^५म्पा^५श्च^५स्वय^५प्र^५साम् । सखा^{२१}

^{२२} नोवा^१रे । त्रि^{३२}सा^३श्वा^५ । हार^{११}श्वा^२ताम् । प्रियमिन्द्र^{१२}स्यका

^३ मिया^{११११}श्वा^१श्वा^५ । प्रास्ता^{१२}श्चो^५रे^५श्वा^५ । पाया^{१२}श्चो^५रे^५श्वा^५ ।

^४ तज्ज^५र्मयाः ॥ (२) ^५ इन्द्राया^२र^४सोमपातवायि । ^{२१} वृत्राघ्ने^{२२}पा

^{२२} २ । रिषा^३र^५४यि । ^३ च्या^५र^{१२११}३४से । ^३ नरे^{११}चदक्षिणावतार^३

^{११} ४यि । ^१ वायिरा^२ओर^३३४वा । ^१ यासा^२ओर^३३४वा । ^४ दना

^४ प्रसदायि । ^४ हो^३प्रई । डा(३) ॥ २* ॥ [५]

॥ वसिष्ठस्य^{२१}आकूपारम् ॥ ^{४५} परित्यार^२श्च^२ह्यर्थ । त^२

^४ हार^५३४रायिम् । ^१ बभ्रू^१र^{२२१२}म्मुना । ^{२२२१} तिवारेणा । ^२ योदेवान्वा^१र

^२ यि । ^१ आ^{२२१}श्च^१इत्परायि । ^१ मदेवासा^४र^३३ । ^४ हार^३३गा३ ।

^२ च्छा^५र^{२१}४पुतौ^{४५}ईहायि ॥ (१) ^{२३} दिव्य^{२३}म्यार^३श्च^३स्व । ^{२३} यशार^३३४

^५ साम् । ^५ सखा^{१२}र^१योत्रा । ^१ द्रिस^१श्च^१हनाम् । ^२ प्रियमायि

^२ इन्द्रा^२र । ^२ स्थकामियाम् । ^{२२१} प्रक्ष्मापायार^१३ । ^१ तार^४३ज^३३३

^२ मा^५३४पुयो^{१२}ईहायि ॥ (२) ^{११२} इन्द्राया^{४२५}र^{२२२}सोम । ^{२२२} पाता^३३३४

^५ वायि । ^१ वृत्रा^{१२}र^२घ्ने^१पा । ^२ रिषि^१च^१सायि । ^{२२१} नरेचादा^१र^१क्षि

२ १ २ २ १ १ ४ २
णावतायि । वीरायासा२३ । दा२३ना३ । सा ३ ४ ५

५
दोईहायि(३) ॥ ३* ॥ [६]

३ २ २ ४ ५
॥ श्यावाश्वम् ॥ परा२३यि । त्या३५ह । र्यतम् ।

२ ४ ५ १ २ २
हा ३ रिम् । एहिया । वा । भु,स्युनन्तायि । वा ।

१ २ १ २ २ १ २ ४
रेणा२ । एहिया२ । योदेवान्वायिश्वा३५आ३यित् ।

५ २ २ १ २ १
पा २ ३ ४ रायि । ऐहा२यि । एहिया२ । मदेनस

२ ४ २ ५ ३ २
हा३गा३ । छा ३ ४ ५ तो ६ हायि ॥ (१) द्विर्या ३१ म् ।

१ ४ ५ २ ४ ५ १ २ २
पा३च्च । खय । शा३सम् । एहिया । सा । खायोअद्रा

२ १ १ २ १ २ ४
यि । स । हता२म् । एहिया२ । प्रियमिन्द्रास्या३का

५ २ २ १ २ १
३ । मा२३४याम् । ऐहा२यि । एहिया२ । प्रस्नाप

२ ४ २ ५ ३ २ २
यान्ता३ऊ । मा३४५योईहायि ॥ (२) इन्द्रा ३१ । या३

४ २ ५ २ २ ४ २ ५ १ २ २
सो । मपा । ता३वे । एहिया । वा । चघ्नेपरायि । पि ।

१ १२ २ ४
 चसा^१रयि^२ । एहि^{१२}या^२र । नरे^{२१}चदा^२चा^२रयिणा^४ । वा^४र
 ५ २२ १२ २ ४
 ४४^५तायि^२ । ऐ^{२२}हा^२रयि^२ । एहि^{१२}या^२र । वी^{२२१}राय^२सा^४दा^४रना^४
 २ ५
 ३ । सा^२३४५^५दो^५ई^५चायि^५(३) ॥ १* ॥ [७]

१ २ १
 ॥ आन्वी^१गवम्^२ ॥ परि^१त्य^२ह^२र्य^२ता^२श^२हारायि^१म् । व
 २ १ २ २ २ २ २
 भु^२म्पु । नन्ता^२रयि^१वा । ऊ^{२२}म्मा^२र^२१२^२ । रेण^{२२}यो^२दे^२वा^२न्धि
 २ २ २ २ २ २ २ १
 श्वा^{२२}इ^२त्य^२रा^२र^२३४५^२यि । मा^१दा^२र^२उ^२वा । ना^१र^२सा । हा^१र
 २ १ २ ४ ५ २
 ४गा । च^२ता । औ^१र^२हो^४वा ॥ (१) दि^२र्य^२म्प^२च^२स्व^२या^२श
 २ १ २ २ १ १
 साम् । सखा^२यः । अ^२द्रा^२रयि^१सा । ऊ^२म्मा^२र^२१२^२ । ह
 २ २ २ २ २ २ २ २ २
 त^{२२}प्रिय^२मि^२न्द्र^२स्य^२का^२मि^२या^२र^२३४५^२म् । प्रा^१स्ना^२र^२उ^२वा । पा^२र
 १ २ १ २ ४ ५ २ २ २ २
 या । ता^२र^२उ^२ज । मया । औ^२र^२हो^४वा ॥ (२) इ^२न्द्रा^२य^२सो
 २ १ २ २ १ २ १
 मपा^२श^२ता^२वा^२यि । वृ^१त्र^२घ्ने । परा^२रयि^१षा । ऊ^२म्मा^२र^२१२^२ ।
 १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ १ २
 च^१से^२न^२रे^२च^२द^२क्षि^२णा^२व^२ता^२र^२३४५^२यि । वा^१यि^२रा^२उ^२वा । या^२र

सा । दा२३ना । सदा । औ३होवा । हो५ई ।

डा(३) ॥ २* ॥ [८]

॥ आसिताद्यम् ॥ इन्द्रायसोमपा । तवायि । वृत्र
 घ्रेपरिषिञ्चार३सायि । नारे२चादा२ । क्षिणावता
 यि । वायिरा२यासा२ । दनोवा३ओ२३४वा । सा५
 दो३हायि ॥ (१) त२सखायः२२पु३ह । रुचाम् । वयंयूय
 चसूरा२३याः । आश्या२मावा२ जगन्धियाम् । सा
 ने२मावा२ । जपोवा३ओ२३४वा । स्ता५पूयो३हायि ॥ (२)
 परित्य२ह्यताम् । हरायिम् । बभ्रु२म्पुनन्तिवा२रि२३
 णा । योदे२वान्वा२यि । आ२इत्परायि । मादे२ना
 सा२ । हगोवा३ओ२३४वा । छा५पूतो३हायि(३) ॥ १६* ॥ [९]

* ऊ० गा० १२ प्र० २ अ० २ सा० ।

† ऊ० गा० १४ प्र० २ अ० १६ सा० ।

३ र २ र १ ४ र र ५
॥ ऐडकौत्सम् ॥ इन्द्राद्दीया२३ । सोमपातवईया ।

२ १ र २ र १ र १ १ र २ १
वृत्रघ्ने परिषिच्यते । नारेचद । क्षिणावार३तायि । वा

२ २ १ २ २ १ र २
यिरा३हा । यासा३हा । दनासार३दा३४३यि ॥ (१)

३ २ र १ ४ र ५ २ १ २ र १ २ र १ २
त३सहीखार३ । यः पु३रु३चमीया । वयंयू३य३च३सूरयः ।

१ र २ र १ २ २ १ २ २ १ २
आ३श्यामवा । जग३न्धा३श्याम् । साना३हायि । मावा

२ १ २ ३ र २ १
३हा । जप३स्ता३श्या३४३म् ॥ (२) परी३द्वित्या २ ३म् ।

४ ५ २ १ २ १ र २ र १ र २ र
ह३र्यत३ह३रिमीया । बभ्रु३म्पुनन्ति३वारेण । योदे३वान्नि ।

१ २ १ २ २ १ २ २ १
श्वो३द्वित्या३श्यायि । मादा३हायि । नासा३हा । हग

२ १
च्छा३शता३४३यि । ओ३र३४३पुई । डा(३) ॥ १०* ॥ [१०]

१ र २ र १ र २ र
॥ शु३द्धा३शु३द्धीयाद्यम् ॥ इन्द्राय३सोमपातवायि । वृत्र

२ २ १ २ १ र २ १ र २
घ्ने परिषिच्यार३सायि । नरेचदक्षिणावार३तायि । वी

१ र २ १ २ २ ३ र २ ५ र २ ३ १ १ १
राया३शसा३ । दार । नासा३४३ओ३होवा । दा३४३४५

१ २२ १२११ २ २१२ २
 यि ॥ (१) त्सखायः पूरुचाम् । वयं यूयच्छसूरारश्याः ।

१२ २२१ २ १२ २ १ १
 अश्यामवाजगन्धारश्याम् । सनेमारश्वाश् । जा २ ।

२२ ४२२ २ ११११ १२१ २ १
 पस्ताश्च औहोवा । यारश्च ४५म् ॥ (२) परित्यङ्क्ष्यत

२१ २ १२ २ १२२२ २२
 हरायिम् । बभ्रुः पुनन्तिवारेशणा । यो देवान् निश्वा

१ २ १२ २ १ ३ २ ५२
 इत्पारशरायि । मदेनारश्वाश् । चार । गच्छाश्च औ

२ २ ११११
 होवा । तारश्च ४५यि (३) ॥ १८* ॥ [११]

२ २ १२ २२२२ २
 ॥ क्रौञ्चाद्यम् ॥ इन्द्राय सौहो । मापातवायि । वृ

२ १ २ ४ २२२२
 चघ्नपाश् । रायिषाश्चिच्याप्साईप्इयि । नरेचदौहो ।

१२१२ २२२ १ २ ४
 क्षीणावतायि । वीरायसाश् । दानाश्चाप्साईप्इयि ॥ (१)

२ १२२ २२२२ १ २ १ २
 त्सखायौहो । पूरुचाम् । वयं यूयाश्म् । चामूश्

४ २ २ १२ २२१ २२
 राप्साईप्इः । अश्यामवौहो । जागन्धियाम् । सन

१ २ ४ २ १ २
 मवाश् । जापाश्चाप्साईप्इम् ॥ (२) परित्यङ्क्षौहो ।

^{२२ १} र्यात^२ हरायिम् । ^{१ २ ४} बभ्रु^२गपुना३ । ^{१ २ ४} तारिवा३रेपुणा६पु६ ।

^{२२ १ २ २} योदेवान्वै^{२२ १}हौ । ^{२ २} आ^{१ २}इत्परायि । ^{१ २} मदेनसा३ । ^{१ २} हागा

^४ इच्छा^४पूता६पु६यि(३) ॥ १८* ॥ [१२]

^{२ २} ॥ रयिष्ठम् ॥ ^{१ २ २} इन्द्रायसो । ^{१ २ २} मपाता३वायि । ^{१ २ २} औ३

^{२ २} हो३वा । ^{१ २ ३ १ १ १ १} वृत्रघ्ने^{२ २}परिषिच्यसा२३४पुयि । ^{२ २} वृत्रघ्नेपा । रि

^{१ २ २} पायिच्या३सायि । ^{१ २ २} औ३हो३वा । ^{१ २ २ १ २ २ १ १ १} नरेचदक्षिणावता२३

^{१ १} ४पुयि । ^{२ २} नरेचदा । ^{१ २ २} क्षिणावा३तायि । ^{१ २ २} औ३हो३वा ।

^{२ १ २ २ १ ३ १ १ १ १} वीरायसदनामदा२३४पुयि । ^{२ २ २} वीरायसा । ^{१ २ २} दनासा३दा

^{१ २ २} यि । ^{१ २ २} औ३हो३वा ॥ (१) ^{१ २ २} त^{१ २ २}सखायाः । ^{१ ३ २ २} पुहृहृचाम् ।

^{१ २ २} औ३हो३वा । ^{१ २ २ १ २ २ १ ३ १ १ १ १} वयंयूयच्चसूरया२३४पुः । ^{१ २} वयंयूयाम् ।

^{१ २ २} चसूरा३याः । ^{१ २ २} औ३हो३वा । ^{१ २ २ १ २ २ २ १ १ १} अश्यामवाजगन्धिया२३

^{१ १} ३पुम् । ^{१ २ २} अश्यामवा । ^{१ २ २} जगान्धा३याम् । ^{१ २ २} औ३हो३वा ।

^{१ २ १ २} ^{३ १ १ १ १} ^{२ २} ^{१ २ २}
 सनेमवाजपस्तियार३४५म् । सनेमवा । जपास्ताइयाम् ।

^५ ^२ ^२ ^१ ^१ ^{२ २}
 औश्हो ३ वा ॥ (२) परित्यक्त्वा । र्यताहाइरायिम् ।

^५ ^२ ^२ ^१ ^२ ^{१ २ ३ १ १ १ १} ^२
 औश्होइवा । बभ्रुम्पुनन्तिवारेणार३४५ । बभ्रुम्पुना ।

^{१ २ २} ^५ ^२ ^२ ^{१ २ २ १ २} ^{२ २} ^{१ २ ३ १ १}
 तिवारेइणा । औश्होइवा । योदेवान्विश्वाइत्परा२३

^{१ १} ^{२ २ २ २} ^{२ १} ^{२ २} ^५
 ४५यि । योदेवान्वायि । श्वाअयित्पाइरायि । औश्

^{२ २} ^{१ २ २ १} ^{२ ३ १ १ १ १} ^{२ २}
 होइवा । मदेनसहगच्छतार३४५यि । मदेनसा । ह

^{१ २ २} ^५ ^{२ २} ^५ ^{२ २} ^५ ^२
 गाच्छाइतायि । औश्होइवा । औश्होइवा । ईइया ।

^५ ^२ ^५ ^२ ^५ ^२
 ईइयाइ४ । हा । हाउवाइ । ऊइ२३४पा(३) ॥ २० * ॥ (१३)

^{४ ३} ^४ ^२ ^{४ २}
 ॥ यज्ञायज्ञीयम् ॥ इन्द्राऽपूय । सोइमाइपाता

^५ ^१ ^२ ^२ ^१ ^१
 वायि । वार्त्रघ्नेपा । रीइपायिच्याइसायि । नरे२च ।

^२ ^१ ^२ ^२ ^१ ^२
 दक्षारइयिणा । ऊम्नायि । वाइतायि । वायिरायस

^{१ २} ^१ ^२ ^{१ २} ^२ ^२
 दनारसदाउ ॥ (१) दायिताम् । सखायः पुरुहूचं वयंयू

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
वान् । चाश्चूराश्याः । अश्याश्च । वाजाश्चगा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
ऊन्मायि । धाश्चाम् । सानेमवाजपारस्तिथाउ ॥ (२)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
याम्पा । रित्यश्चर्यतश्चरिन्बभ्रुम्पुना । तीश्चारेश्णा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
योदेश्वान् । विश्वाश्चश्चा । ऊन्मायि । पाश्चायि ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मादेनसहगारश्चताउ (३) ॥ २१ * ॥ [१४]

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
॥ ऊर्द्धत्वाष्ट्रीसाम ॥ परित्यश्चर्यतश्चरायिम् । वा

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
भूश्चम्पुनार । तिवाश्च ४५ । रेश्चश्णा । योदेवान्बिश्वाश्च

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
द्वत्परारश्च ४५यि । मदेनसा । हगच्छारश्ताश्च ४५यि ॥ (१)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
द्विर्यम्पश्चस्वयशसाम् । साखाश्चयोश्चार । द्विसाश्च ४५ ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
हारश्चताम् । प्रियमिन्द्रस्वकामियारश्च ४५म् । प्रस्ताप

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
या । तऊर्म्मारश्चाश्च ४५ ॥ (२) इन्द्रायसोमपातवायि ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
वाचीश्चोपर । रिपाश्च ४५यि । च्याश्च ४५से । नरेचद

२२ १ ११११ ३२ २ १ २ १२ २
क्षिणावतार३४पुयि । वीरायसा । दनासार३दा३४यि ।

१
ओर३४पुई । डा(३) ॥ ८* ॥ [१५]

४ ३ ४ २ ४
॥ यज्ञायज्ञीयम् ॥ पराऽपुयित्यम् । चाइर्यास्त

५ १ २ १ २ २ १२ १२
हारायिम् । बाभ्रुम्पुना । तीइवारेऽणा । योदेइवान् ।

२ १ २ २ १ २
विश्व३३आ । ऊम्मायि । पाइरायि । मादेनसहगा

१ २ २ १ २ १ २
इच्छताउ ॥ (१) नायिद्वायिः । यम्यच्चखयशसं सखा

२ २ १ २ २ १ १
योआ । द्रौइसांहाइताम् । प्रियाइमि । द्रस्या २ ३

२ १ २ २ १ २ १
का । ऊम्मायि । मा इ याम् । प्रास्नापयन्तऊ २ म्

२ १ २ १ २ २ २ २ २ २
याउ ॥ (२) याआयि । द्रायसोमपातवेवृचध्वपा । रौइ

१ २ २ १ १ २ १
पायिच्याइसायि । नरेइच । दक्षाइयिणा । ऊम्मा

२ २ १ २ ३ २ १ १ १
यि । राइतायि । वायिरायसदनारसदाउ । वा ३४पु (३)

॥ ८* ॥ [१६]

॥ असितोत्तरम् ॥ ^{२१}परायित्या^४र^४ह्य^४त^४हरि^४
^५हाउ । ^१बभ्रु^२पुनन्ति^२वारि^२ २३ ^१णा । ^१यो^२दे^२वा^२ग्वा^२ ३यि ।
^१श्वा^२इ^२त्पा^५र^१३४रायि । ^१म^२दे^२ना^२इ^२सा^२ ३ । ^{२१}ह^५गो^५र^५३४वा ।
^४का^५पुतो^५ई^५हायि(३) ॥ २* ॥ [१७]

॥ वाङ्मिधनङ्गौच्चम् ॥ ^{२१}परायित्या^२ह^२इ^२२३४ । ^२यं
^५तम् । ^{३२}ह^{२१}रा^२इ^५यिम् । ^२बभ्रु^५मु^{३२}ना^{३२}इ^{३२}२३४ । ^५ति^{३२}वा । ^{३२}रे
^२णा^{२२}इ । ^२यो^२दे^२वा^२न्वा^२इ^२२३४यि । ^२श्वा^५इ^{३२}त् । ^{३२}परा^{३२}इ^{३२}यि ।
^{२१}म^२दे^४ना^२सा^४इ^२२३ । ^४ह^{२१}गा^२पू^२च्छ^२ताउ ॥ (१) ^{२१}द्वि^२र्य^२म्पा^२च्चा^२इ
^५१२३४ । ^{३२}स्व^{२१}य । ^{२१}श^२सा^२इ^२म् । ^{२१}स^२खा^२यो^२च्चा^२इ^२२३४ । ^५द्वि
^५स । ^{३२}ह^{२१}ता^२इ^२म् । ^{२१}प्रि^२यामा^५यि^३न्द्रा^३इ^३२३४ । ^५स्य^३का । ^३मि
^२या^{२१}इ^२म् । ^२प्र^४क्षा^{३२}पाया^३ इ^४१२३ । ^४त^{२१}ज^२पू^२र्ण^२याउ ॥ (२)
^{२१}इ^२न्द्रा^५या^{३२}सो^{२१}इ^२२३४ । ^५म^{३२}पा । ^{२१}त^{२१}वा^{२२}इ^२यि । ^{२१}वृ^{२२}त्र^{२२}घृ^{२२}पा^{२२}इ^२२

३४। रिषि। चसा३यि। नरेचादा३१२३४। क्षिणा

वता ३यि। वीरायासा ३१२३। दना ५ सदाउ।

वा(३) ॥ ४* ॥ [१८] १८

अथ तृचात्सके चतुर्थ-सूक्ते—

प्रथमा ।

पवस्वसोममहेदक्षायाश्चोननिक्तोवाजीधनाय ॥ १* ॥

हे “सोम !” “अश्वो न” अश्वइव “निक्तः” वसतीवरीभि-
रङ्गिर्निर्णिक्तः, † “वाजी” वेगवान् त्वं “महे” महते “दक्षाय”
बलाय ॥ “धनाय” धनार्थं “पवस्व” क्षर ॥

“महे”—“क्रत्वे”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

प्रतोसोतारोरसम्मादायपुनन्तिसोममहेद्युम्नाय ॥ २§ ॥

* ऊ० गा० २० प्र० २ अ० ४ सू० ।

† ऊ० आ० ५, १, ५, ४ (१ भा० ८७४ छ०) ऋ० वे० ७, ५, २०, १० ।

‡ ‘अश्वो न निक्तः’—न-अश्व उपसर्गात्तः अश्वइव स्थापितः—इति वि० ।

॥ ‘दक्षाय’—सर्गर्षये अथवा दक्षिणे शीघ्रकर्मणे यजमानाय—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ७, ५, २१, १ ।

“सोतारः” अभिषोतारः ऋत्विजः, हे सोम ! “ते” तव स्वभूतं “रसं” * “मदाय” मदार्थं “पुनन्ति” । तदेवोच्यते— “महे” महते “द्युन्नाय” [“द्युन्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति (निरु० नै० ५, ५) यास्कः] अन्नाय यज्ञसे वा पुनन्ति सोमं शोधयन्ति यद्वा, सोममभिषूयमाणं रसं पुनन्तीति एकवाक्यतया योजनीयम् ॥

“प्रते”-“तन्वे”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १४ २२
शिष्टुञ्जज्ञानं हरिम् जन्ति

३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ १
पवित्रे सोमन्देवेभ्य इन्दुम् ॥ ३† ॥ १८

“शिष्टम्” एषां पुत्रभूतं‡ “जज्ञानं” जायमानं “हरिं” हरितवर्णम् “इन्दु” दीप्तं सोमं “देवेभ्यः” “पवित्रे” ॥ “मृ-जन्ति” ऋत्विजा मार्जयन्ति ॥ ३ ॥ १८

२२ २ २ २ १
॥ विधर्मम् ॥ ओहोश्वा । ओहोश्वा । ओहो

* ‘रसं—वीर्यम्’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ७, ५, २१, २ ।

‡ ‘शिष्टु’—शंसनीयम्’—इति वि० ।

॥ ‘पवित्रे—वाल्मये’—इति वि० ।

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००}
 रवार३४ ओहो३वा । पवस्वसोममहेदक्षाया २३४५ ।

अश्वोननिक्तावा २जीधनारयार३४५ । प्रतेसोतारोरसम्

दायार३४५ । पुनन्तिसोममहेद्युन्नायार३४५ । शिशु

अज्ञानं हरिमृजन्तीर३४५ । पवित्रेसोमदेवेभ्यइन्दूर३

४५म् ॥ (१) पवस्वसोमार३४५ । महेदक्षाया २३४५ ।

अश्वोननिक्ताः । वाजीधनारयार३४५ । प्रतेसोतारा

र३४५ । रसम्मादायार३४५ । पुनन्तिसोमार३४५म् ।

महेद्युन्नायार३४५ ॥ (२) शिशुअज्ञाना१म् । हरिमृज

न्तीर३४५ । पवित्रेसोमार३४५म् । देवेभ्यइन्दूर३४५म् ।

ओहो३वा । २ । ओहो३वार३४ओहो३वा । ए३ । विध

र्मार३४५ (३) ॥ ४* ॥ [१] १८

अथ हृत्वात्मके पञ्चम-सूक्ते—

प्रथमा ।

१ २ २ २ २ १ २ २ १ २ २
उपोषुजातमसुरङ्गोभिर्भङ्गमरिष्कृतम् ।

१ २ २ १ २
इन्द्रुदेवाशयासिषुः ॥ १* ॥

“जातम्” प्रादुर्भूतम् “असुरं” वसतीवरीभिः प्रेरितम्
“भङ्ग” शत्रूणां भङ्गकम् “गोभिः” गोर्विकारेः पशूभिः “परि-
ष्कृतम्” अलङ्कृतम् “इन्द्रु” सोमं “देवाः” इन्द्रादयः “उपाया-
सिषुः” उपगच्छन्ति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ २ २ २ २ २ २ २ २
तमिद्वन्तुनोगिरोवत्संशिश्वरीव ।

१ २ २ २ २ २
यइन्द्रस्यहृदसनिः ॥ २† ॥

“यः” सोमः “इन्द्रस्य” “हृदसनिः”‡ हृदयस्य सञ्चिता
भवति “तमित्” तमेव सोमं “नः” अस्माकं “गिरः” स्तुति-
रूपा वाचः “संवर्षन्तु” संवर्षयन्तु । तत्र दृष्टान्तः—“वत्सं”

* इ० आ० ६, १, १, १ (२ भा० ४३ पृ०) = १ ईव १, २, १८, १ (२ भा० १६३ पृ०)
= ऋ० वे० ७, १, २०, १ ।

† ऋ० वे० ७, १, २०, ४ ।

‡ ‘हृदसनिः’—हृदिसाभः स्थितः—इति वि० ।

बालं “शिष्वरीरिव” यथा शिष्वर्यो वज्रपयस्त्वामातरो बत्सं
सम्यक् वर्द्धयन्ति तद्वदित्यर्थः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ २ २ २ २ २ २ २ ३ १ २
अर्षानः सोमशङ्खवेधुश्चपिष्यषीमिषम् ।

१ २ ३ १ १
वर्द्धासमुद्रमुक्थ ॥ ३* ॥ २०

हे सोम !” त्वं “नः” अस्माकां† “गवे” “शं” सुखम्‡
“अर्ष” चरणा । अपिच “पिष्यषीम्” प्रवृद्धाम्§ “इषम्”
अन्नं ॥ “धुञ्चस्व” प्रपूरय** । किञ्च हे “उक्थ” प्रशस्य ! ††
“समुद्रम्”‡‡ “वर्द्ध”॥॥ वर्द्धय ॥

“अर्षानः”-“अर्षाणि”-इति पाठौ, “उक्थ”-“उक्थम्”
—इति च ॥ ३ ॥ २०

* ऋ० वे० ७, १, २०, ५ ।

† ‘नः’ अस्माभ्यम्—इति वि० ।

‡ ‘शंगवे—गवां सुखार्थम्’—इति वि० ।

§ ‘अर्ष’—गच्छस्व द्रोणकलशम्’—इति वि० । मूलं त्वर्षा इति दीर्घान्तः पाठः

‘अचोऽतस्तिष्ठः (६, ३, १३५)’—इति तच्च दीर्घः ।

§ ‘पिष्यषीं—पान-समर्थाम्’—इति वि० ।

॥ ‘सोमलक्षण’—इति वि० ।

** ‘धुञ्चस्व—दुञ्चस्व’—इति वि० ।

†† ‘उक्था—उक्थानि सामानि’—इति वि० । एवञ्च “उक्था”—इति विष-
रण-पाठो गम्यते परं तत् प्रामादिकम् एव संहिता-पद-पुस्तकेषु तथा पाठादर्शनात् ।

‡‡ ‘समुद्र’—द्रोणकलशम्’—इति वि० ।

॥ ‘वर्द्धा’—इति संहितायां दीर्घः ।

॥ अधम् ॥ उपोषजा२तम् । अ१तुरो१वा । गोभि२

र्भ२ङ्गाम् । परिष्कृ२ताम् । इ२न्दुदे२वाअ । या२३ । मि

षा२उवा । अ१धिया२ ॥ (१) तमि१द्वर्द्धा२न्तु । नो१गिरो

वा । वा२त्स२स२श्रा२यि । अ२रौ२रिवा । य२इन्द्र२स्य२व । दा

२३म् । स२ना२उवा । अ१धिया२ ॥ (२) अ१र्जुनः२सो२रस ।

अ१ङ्ग१वो१वा । धु२क्ष२पा२यि । प्यु२षौ२मि२षाम् । व२र्हा२समु

द्र१म् । ऊ२र२ । वि॒य॒या॒उवा । अ१धिया२ । ए२र२हिया

३४३ । ओ२र२४५ई । डा(३) ॥ ५* ॥ [१]

॥ प्रती॒ची॒ने॒ड॒ङ्गा॒शी॒तम् ॥ उपोषजा२तम् । आ२

तुरा१म् । गोभि२र्भ२ङ्गाम् । प२रा॒यिष्कृ॒ता२३४म् । द्वा२हो

यि । इ२न्दुदे२वाअ२श्या । सि॒षूः । औ२र२हो२वा ॥ (१)

तमि१द्वर्द्धन्तु । नो१र॒गिराः । वा२त्स२स२श्रा२यि । अ॒श्रा॒यि

७ ३२ २ १ २ २ १
 रिवा२३४ । द्वाहोयि । यइन्द्रस्थाहार्हाम् । सनायिः ।

४ ५ १ २ २ २ १
 औ२३होवा ॥ (२) अर्षानःसाम । शारङ्गवायि । धूत्

२ १ ७ ३२ २ १ २
 स्वपि । प्युषायिमिषार३४म् । द्वाहोयि । वर्धसम्

२ २ १ २ ४ ५ ४ ५
 द्रा३म् । विथया । औ३होवा । ईडा(३) ॥ ११* ॥ (२) २०

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य दशमस्याध्यायस्य-

एकादशः खण्डः† ॥ ११ ॥

अथ द्वादश-खण्डः—

आघ्रायेअग्निमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
 आघ्रायेअग्निमिन्धतेस्तुण्निवर्द्धिरानुषक् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २
 येषामिन्द्रोयुवासखा ॥ ११ ॥

* ऊ० गा० १८ प्र० १ अ० ११ सू० ।

† 'यज्ञायज्ञीयमग्निष्टोमसाम'—इति वि० ।

‡ 'इदानीमुक्त्यानि'—इति वि० ।

¶ व० आ० २, १, ४, ८ (१ मा० ७२० पृ०) = ४० वे० ६, १५, ४२, १ = सू० वे०

“ये” ऋषयः “आ घा” आभिसुख्येन खलु “अग्निम्”
 “इत्यते” दीपयन्ति, येषाञ्च “युवा” नित्य-तरुणः “इन्द्रः”
 “सखा” भवति, ते “आनुषक्” आनुपूर्व्येण “बर्हिः” तृणन्ति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ १ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ २
 बृहन्निदिध्मणाम्भूरिशस्त्रं * पृथुः खलुः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २
 येषामिन्द्रोयुवासखा ॥ २ ॥

“एषाम्” ऋषीणाम्ः “इध्मः” ॥ “बृहत् इत्” § महान्
 खलु, “भूरि” बहु “शस्त्र” स्तोत्र-स्वरूपञ्च “पृथुः” महान् ।
 सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 अयुश्च इद्युः धावुतं शूर आजतिसत्वभिः ।

२ ३ ३ २ १ ३ १ २
 येषामिन्द्रोयुवासखा ॥ ३ ॥ २१

* “शस्त्र” — इति ऋ०-पाठः ।

† ऋ० वे० ६, ३, ४२, १ ।

‡ ‘येषां—यजमानाणाम्’—इति वि० ।

॥ ‘इध्मः—इत्यनाधीयः’—इति वि० ।

§ ‘इत्—इति षट्पूरणः’—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ३, ४२, ३ ।

“युवा इन्द्रः येषां सखा” तेष्वन्तर्भूतः कश्चित् “अयुध इत्”
 प्राग्योद्यैव सन् “युधाहतं” योद्धृभिर्भटैराहतं शत्रुं “सत्वभिः”
 आत्मोद्यैवजैः “शूरः” मन् “आजति”^{*} नमयति ॥ ३ ॥ २१

॥ ऐध्रवाद्याद्यम् ॥ ^{१२ ४ २} आद्याये ^{१ १} अग्निमिन्धानायि । ^१ ह्यण
^२ न्तिवर्धिरा ^२ तुषाक् ॥ (१) ^१ बृहन्तिदिधा ^{१२} आयिषाम् । ^{१२} भरिश्
^१ स्वल्पयुः ^{२ १ २} स्वहः ॥ (२) ^{१२ २} अयुद्धइद्यु ^{१२ २} धायात्ताम् । ^{१२ २} शूरआज
^{२ १ २} तिसत्वभायिः । ^२ येषामिन्द्रो ^२ युवाइद्या । ^२ ऊवायि । ऊ
^५ वो२३४ । ^४ वा । ^५ साप्रखोईहायि(३) ॥ ६१ ॥ [१] २१

अथ यएकइति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

^{२ ४ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २} यएकइद्विदयतेवसुमत्तायदाप्रुषे । ^{३ १ २}

^{१ २ १ १ २} देशानोअप्रतिष्कुतइन्द्रोअङ्ग ॥ १३ ॥ ^{३ १ २ ३ २}

* ‘अजलेपणे’—इति वि० ।

† क० गा० ६ प्र० १ अ० ६ सू० ।

‡ क० आ० ४, २, ५, ८ (१ भा० ७८८ पृ०) = ऋ० वे० १, ६, ६, २१

“यः” इन्द्रः “एकइत्” एकएव “दाशुषे” हविर्दत्तवते
 “मर्त्ताय” मनुष्याय यजमानाय “वसु” धनं “विद्यते” विशेषेण
 ददाति “अङ्ग” [—इति क्षिप्र-नाम (निरु० नै० ५, १७)] “अ-
 प्रतिष्कृतः” परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूल-शब्द-रहित इत्यर्थः ।
 एवम्भूतः स “इन्द्रः” क्षिप्रम् “ईमानः” सर्वस्य जगतः स्वामी
 भवति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

यश्चिद्विवावङ्गभ्यश्चासुतावाः आविवासति ।

उग्रन्तत्पत्यतेशवइन्द्रोअङ्ग ॥ २* ॥

“बहुभ्यः” मनुष्येभ्यः सकाशात् “यः चित् हि”† यएव
 खलु यजमानः “सुतावान्” अभिषुत-सोम-युक्तः सन् । हे इन्द्र !
 “त्वा” त्वाम् “आ विवासति” परिचरति [विवासतिः परि-
 चरणकर्त्ता (निघ० ३, ५, १०)] “तत्” तस्मै यजमानाय
 “उग्रम्” उङ्गूणं “शवः” बलम् “इन्द्रः” “अङ्ग” ‡ क्षिप्रं “आ
 पत्यते” आपतयति प्रापयति ॥ २ ॥

* ऋ० वे० १, ६, ६, ४ ।

† ‘चित्-क्षि-इति पदेपूर्वणौ’—इति वि० ।

‡ ‘अङ्गशब्दः पुतवाची’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

१ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

कदामर्त्तमराधसम्पदाक्षुमिवस्फुरत् ।

१ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

कदानः शुश्रवद्गिरिन्द्रो अङ्ग ॥ ३* ॥ २२

“अराधसं” हविलक्षणेन राधसा धनेन रक्षितमयष्टार-
मित्यर्थः । एवंविधं “मर्त्तं” मनुष्यम् “इन्द्रः” “पदा” पादेन
“क्षुममिव” अहिच्छत्रमिवः । “कदा” वा “स्फुरत्” स्फुरिष्यति
बधिष्यति ? यथा अहिच्छत्रं मण्डलाकारेण गयानं कश्चिदना-
यासेन हन्ति एवमिन्द्रोऽपि कदाम् अक्षुम् हनिष्यतीत्यर्थः
[स्फुरति-स्फुलतीति बध-कर्मसु (निघ० २, १८, १५-१६ पठि-
तत्वात्)] । “नः” अस्माकं यष्टृणां “गिरः” स्तुति-लक्षणा वाचः
“इन्द्रः” “कदा” कस्मिन् काले “अङ्ग” क्षिप्रं “शुश्रवत्” श्रोष्य-
तीति वितर्क्यते [अत्र निरुक्तम्—“क्षुममहिच्छत्रकम्भवति यत्
क्षुभ्यते * * * कदा मर्त्तमनाराधयन्तं पादेन क्षुममिवावस्फुरि-
ष्यति कदा नः श्रोष्यति गिर इन्द्रो अङ्ग (निरु० नै० ५, १७) ”
-इति क्षिप्र-नामैतत् ॥ ३ ॥ २२

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
॥ त्रैककुभम् ॥ यएकइद्विवायाश्तायि । वासुमर्त्ता१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यावदा । ऊम् । शु २ ३ ४ षाम् । आयिशानोअप्रति

* ऋ० वे० १, ६, ८, ३ ।

† ‘यस्य यज्ञार्थं राधसम्भवं न भवति, सोऽराधः’—इति वि० ।

‡ ‘क्षुमं प्रक्षेपणीयं दुर्बलं शत्रुं, यथा मर्दन्ति बलिजः’—इति वि० ।

^१ ^{२२} ^{१२} ^{११} ^१ ^५
 ष्कृतः । आयिशा । लोअप्रतायि । ष्कू २३४ताः ॥ (१)
^१ ^२ ^१ ^{१२२} ^२ ^१ ^१
 यश्चिद्धिवा । वज्रभ्याश्चा । सुतावाञ्चावीश्वा । ऊम् ।
^१ ^५ ^{२१} ^{१२१२} ^{१२} ^२ ^{११}
 सार३४तायि । उग्रन्तत्यत्यतेशवः । ऊग्रम् । तत्यत्यता
^१ ^५ ^{१२} ^२ ^{१२} ^{१२}
 यि । शार३४वाः ॥ (२) कदामर्त्तमराधाश्चाम् । यदा
^१ ^२ ^१ ^२ ^५ ^{११२} ^२
 चुम्यामौश्वा । ऊम् । स्फूर् ३४रात् । कदानः शुश्रव
^१ ^{१२२} ^३ ^{२१} ^१ ^५ ^१
 द्विरः । कादा । नः शुश्रवात् । गा२३४यिराः । चा
^{२२} ^१ ^३ ^{५२२} ^३ ^५
 यिन्द्रोअ । गा २ । या २ ३४ औचोवा । ई २ ३४
^५
 न्द्राः (३) ॥ ७॥ ॥ [१] २२

अथ गायन्तीति-तृचात्मकं सूक्तं तृतीयम्,

तच्च प्रथमा ।

^१ ^२ ^{३१२} ^{२२४} ^{२११} ^१ ^१
 गायन्तिवागायन्निणोर्चन्त्यर्कमर्क्षिणः ।

^{३१२} ^{३२३} ^{१२}
 ब्रह्माणस्त्वाशतक्रतुद्विंशमिवयेमिरे ॥ १७ ॥

* ऊ० गा० ६ प्र० १ अ० ७ सू० १० ।

† 'तृतीयमुक्त्यम्'—इति वि० ।

‡ ऊ० आ० ४, २, १, १ (१ भा० ६८४ पृ०) = ऋ० वे० १, १, १८, १ ।

हे “शतक्रतो” बहुकर्मन् बहुयज्ञ वा इन्द्र ! “त्वाम्”
 त्वाम् “गायत्रिणः” उद्गातारः “गायन्ति” स्तुवन्ति ; “अर्किणः”
 अर्चन-हेतु-मन्त्र-युक्ता हीतारः “अर्कम्” अर्चनीयम् इन्द्रम्
 “अर्चन्ति” स्तोत्र-शस्त्र-गतैर्मन्त्रैः प्रशंसन्ति ; “ब्रह्माणः” ब्रह्म-
 प्रभृतयः इतरे ब्राह्मणाः “त्वाम्” “उद्येमिरे” उन्नतिं प्रापयन्ति ।
 तत्र दृष्टान्तः—“वंशमिव” यथा वंशाग्रे नृत्यन्तः शिल्पिनः
 प्रौढं वंशमुन्नतिं कुर्वन्ति, यथा वा सन्मार्गवर्तिनः स्वकीयं कुल-
 मुन्नतं कुर्वन्ति, तद्वत् । एतामृचं यास्क एवं व्याचष्टे—“गायन्ति
 त्वा गायत्रिणः प्रार्चन्ति ते ऽर्कमर्किणी ब्रह्माणस्त्वाशतक्रत उद्ये-
 मिरे वंशमिव । वंशो वनशयो भवति वनच्छूयतइति वेति”
 (निरु० नै० ५, ५) । अर्क-शब्दश्च बहुधा व्याचष्टे—“अर्को देवो
 भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मन्त्रो भवति यदेनार्चन्त्यर्कमन्नं भवत्य-
 र्चति भूतान्यर्को वृक्षो भवति सहजः कटुकिन्ना (निरु० नै०
 ५, ४)—इति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१३ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १ ५
 यत्सानोत्सान्वारुहोभूर्यस्पष्टकर्त्तव्यम् ।

१३ ३ १ ५ ३ १ २ ३ १ २
 तदिन्द्रो अर्थञ्चेततियूथेनवृष्णिरेजति ॥ २* ॥

“यद्” यदा “सानोः सानु” यजमानः सानोः सानु, सीम-
 वल्ली-समिदाद्याहरणाय पर्वतप्रदेशम् “आरुहः” आरुढवान् ।

तथा “भूरि” बहुकर्म यागरूपम् “अस्यष्ट” स्पृष्टवान् उपक्रान्त-
वानित्यर्थः । “तत्” तदानीम् “इन्द्रः” “अथ” यजमानस्य
प्रयोजनं “चेतति” जानाति । ज्ञात्वा च “वृष्णिः” कामानां
वर्षिता सन् “यूथेन” मरुद्गणेन सह* “एजति” कम्पते,†
अस्य स्थानाद् यज्ञभूमिमागन्तुमित्यर्थः ॥

“सानोःसान्वाहः”—“सानोः सानुमाहत्”—इति पाठौ ॥३॥

अथ तृतीया ।

१ १७ २ २३ २३ १२ ३ २
युङ्क्त्वा हि केशिना हरीवृषणा कक्ष्य प्रा ।

१ २ ३ १२ १२
अथान इन्द्र सोमप गिरा सुपश्रुति चर ॥ ३३ ॥ २३

हे “सोमपाः” सोम-पान-युक्तेन्द्र ! “हरी” त्वदीयावञ्चौ
“युङ्क्त्वा हि” § सर्वथा संयोजय । “अथ” अनन्तरं “नः”
अस्मदीयानां “गिरां” स्तुतीनाम् “उपश्रुति” समीपे श्रवण
सुहिष्य “चर” तत्त्वदेशे गच्छ । कीदृशी हरी ? “केशिना”
स्नान्य-प्रदेशे लम्बमान-केश-युक्तौ, “वृषणा” सेचन-समर्थौ युवानौ,

* ‘यूथेन—देवसङ्घातेन’—इति वि० ।

† ‘एजति—आगच्छति’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० १, १, १९, २=य० वे० ८, ३४ ।

§ संहितायां “युङ्क्त्वा”—इति दीर्घान्तः तस्य “द्वाचः (१, २, १३५)”—इति
दीर्घः ।

॥ ‘कौलि षट्पूरणः’—इति वि० ।

“कक्ष्यप्राः” अश्वस्योदर-बन्धन-रज्जुः कक्ष्यः, तस्य पूरकौ पुष्टाङ्गा-
वित्यर्थः ॥

“युङ्क्ता”-“युक्ता”—इति पाठौ ॥

युङ्क्ता—सति शिष्टत्वेन प्रत्यय-स्वरः (३, १, ३)
शिष्यते, “क्षचोऽतस्तिष्ठः (३, १, ३)”—इति संहितायां
दीर्घत्वम् । केशिना—प्रशस्ताः केशाः अनयोः सन्तीति मत्वर्थीय
इनि-प्रत्ययः, “सुपांसुलुगित्यादिना (७, १, ३६) द्विवचनस्या-
कारादेशः । वृषणा—वृषु सृषु खेचने (भा० प०) “कनि-
न्यु-वृषि-तच्चि-राजि-धन्वि-द्यु-प्रति-दिवः”—इति कनिन्, “अग्नि-
त्यादिर्नित्यम् (६, १, १६७)”—इत्याद्युदात्तः, “वाषपूर्वस्य
निगमे (६, ४, ६)”—इति उपधायाः पक्षे दीर्घाभावः, पूर्व-
वदाकारः (७, १, ३६) । कक्ष्यप्राः—कक्ष्ययोर्भवं कक्ष्यं सूचं
तत् प्रातः पूरयतः पुष्टत्वादिति कक्ष्यप्रौ, प्रा पूरणे (अदा० प०),
“आतोऽनुपसर्गे (३, २, ३)”—क-प्रत्ययः, कृदन्तरपद-प्रकृति
स्वरेणान्तोदात्तत्वम् (६, २, १३६)—आकारः पूर्ववत् (७, १,
३६) । अथा—“निपातस्य च (६, ३, १३६)”—इति संहि-
तायां दीर्घः । नः—“अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८, १, १८)”—
इत्यनुवृत्तौ “बहुवचनस्य वक्तृसौ (८, १, २१)”—इति
नसादेशोऽनुदात्तः । इन्द्र!—सोमपा!—इत्युभौ “आमन्वि-
तस्य च (८, १, १६)”—इति सर्वानुदात्तौ । गिरां—“सा-

वेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः (६, १, १६८)—इति विभक्तिरु-
दात्ता । उप—शब्दो निपातत्वादाद्युदात्तः (फि० ४, १२),
श्रुति-शब्देन प्रादिसमासे कदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे प्राप्ते तादौ-
बनितिकृत्यचौ इति तु वर्जिततादि-परत्वात् गतेः प्रकृतिस्वरः
पर-निपातः ॥ ३ ॥ २३

॥ उद्व० शीयम् ॥ ^{१२} गायन्ति ^{१२} त्वागायन्नि ^२ आ । अर्च्य

^१ न्यर्क ^{१२} मर्क ^१ रश्मिणाः । ब्रह्माणस्त्वा ^{१२} र्हो ^१ शयि । शतक्रार

^१ शताउ । उद्व० शमिवया ^१ शयिमी ^१ शरे । उद्व० शार ^१ शमी ।

^{१३} वाया ^१ उवा ^१ इ । उप । मा ^१ ऽयिरो ^१ ऽपु ^{१२} ङायि ॥ (१) यत्सा

^{१२} नो ^१ स्मान्वा ^१ रु ^१ ह्वा । भूर्यस्य ^१ ष्टकर्त्तू ^१ र्वा ^१ म् । तदिन्द्रा

^१ र्हो ^१ शयि । अर्थचेता ^१ रश्तायि । यथेन ^{१२} वृष्णि ^१ स ^१ शयिजा ^१ श

^१ तायि । यूथेना ^{१२} रश् ^१ वृ । ष्णायिरा ^१ उवा ^१ इ । उप । जा

^१ रतो ^{१२} ऽपु ^{१२} ङायिः ॥ (२) यत्त्वा ^{१२} हि ^{१२} केशिना ^{१२} हरी ^{१२} आ । वृषणा

^१ कक्षिया ^१ रश्मा । अथानो ^{१२} र्हो ^१ शयि । इन्द्रो ^१ सोमा ^१ रश्पाः ।

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७}
गिरामुपश्रुताश्चिच्छात्रा । गिरामूर३४पा । सूताश्च

^{१ २ ३ ४}
वा३ । उप । चाऽऽरो३पुद्वायि(३) ॥ ८* ॥ [१]

^{५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
॥ द्विरभ्यस्तस्त्वाष्ट्रीसाम ॥ गाय । तित्वा३ । हा३

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
हा । गायत्रायिणार३४ः । अर्च । तिया३ । हा३हा ।

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
कमर्कायिणार३४ः । ब्रह्मा । णस्त्वा३ । हा३हायि ।

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
शतक्राता३४उ । उद् । शमा३यि । हा३हायि । व

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
या३हो३४ । वा । मापूयिरोद्वायि ॥ (१) यत्सा । नो

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
स्ता३ । हा३हा । नुवारुहार३४ः । भूरि । अस्या३ ।

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
हा३हा । वृकर्त्तूवार३४म् । तदि । द्रोआ३ । हा

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
३हा । थञ्चेताता३४यि । यूथे । नवा३ । हा३हा ।

^{१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११}
णिणार३हो३४ । वा । जापूतोद्वायि ॥ (२) युङ्क्ता ।

३ ९ २ २ ३ २ २ ५ २ २
 हिका३ । हा३हायि । शिनाहारा२३४यि । वृष । णा
 २ २ २ १ ५ ३ २
 का३ । हा३हा । क्षियाप्रा२ ३ ४ । अथा । नआ३ ।
 २ २ ३ २ २ ५ ३ २ २
 हा३हायि । द्रसोमापा२३४ः । गिराम् । उपा३ । हा
 २ ३ २ १ ५ ४ ५
 ३हायि । अता३यि ३ ४ । वा । चाप्रो३हा
 यि(३) ॥ १* ॥ [२]

५ ३ २ ४ २ ५ १
 ॥ गौरीवितम् ॥ गाय । तित्वा३ । गायत्रिणाः । अ
 १ २ २ ४
 र्चन्यर्कर्मर्किणा२३ः । ब्रह्माणस्त्वा३१२३ । शतापूक्रता
 १ २ ४ ५ ४ ५
 उ । ऊद्व३शमा३१२३यि । वयोवा । मापूयिरो३हा
 ४ ५ २ २ ४ ५ १ २
 यि ॥ (१) यत्सा । नोःसा३ । नुवारुहाः । भूर्यस्यष्ट
 १ २ २ ४ ५ ४ ५ ५ २
 कर्तुवार३म् । तादिन्द्रोआ३१२३ । यच्चे३ततायि ।
 १ २ २ ४ ५ ४ ५ ५ २
 यूथेनवा३१२३ । णिरोवा । जाप्रतो३हायि ॥ (२) युद्धा ।
 ३ ९ ४ २ ५ १ २ १
 हिका३यि । शिनाहारायि । वृषणाकक्षियाप्रा२३ । आ

५ २ ४ १ २ २
 यानआ३१२३यि । दसो५मपाः । गाथिरामुपा३१२३ ।

अतीवा । चापूरोद्वायि(३) ॥ ५* ॥ [३] २३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य दशमस्याध्यायस्य

द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तसौ हार्दं निवारयन् ।

पुमर्थाश्चतुरो देवाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ५ ॥

॥ इति पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्तक-

श्रीवीर-बुद्ध-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणा-

चार्येण विरचिते साधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे

उत्तराग्रन्य दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ अ० गा० १३ प्र० १ अ० पूसा० ।

† द्वादशाहस्य नवमसह सहस्रत्वारिंशत् स्तोमिकम्—इति वि० ।

१. 'पयः' प्रपाठकः समाप्तः इति वि०, मूल-पदयन्यादिसम्मतश्चेत् ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्धमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ ११ ॥

॥ अथैकादशोऽध्याय आरभ्यते* ॥

तत्र

प्रथम-खण्डे—

सुषमिद्वदिति चतुर्द्वचं प्रथमं सूक्तम्,†

तत्र प्रथमा ।

११ ३१ २ ३१ २ २ १२
सुषमिद्वोः‡ नआवहदेवाः॥ अग्नेहविश्वते ।

१ २ ३१ २
होतःपावकयक्षिच ॥ ११ ॥

हे “अग्ने !” “सुसमिद्वः” § एतन्नामकस्त्वं “नः” अस्म-

* इदानीं दशममन्तरव्याघ्रिष्टोमः । * * * । तस्य बहिष्पवमानं द्वितीय-प्रभुतीनां पञ्चानामङ्गामनुरूपं * * * नवर्चं सर्वं सधलादधीतन्तु,—इति वि० ।

† इदानीं सुषमिद्वी नआवह इति छथमस्याज्यानि भवन्ति—इति वि० ।

‡ “सुसमिद्वो”—इति ऋ०-पाठः ।

§ ऋ० वे० १, १, २४, १ ।

§ ‘सुष्टु, समिद्वः सुसमिद्वः’—इति वि० । ऋग्वेदीय-पाठ मूलमस्मैवात्र प्रतीक-प्रक्षणां कृतं सायणेन सुषमिद्व इति, मूलपाठस्तु मूर्द्धण्य-मध्यः सुषमिद्व इति “पूर्वषदात् (८, ३, १०६)” —इति च तत्र पलम् ।

दीयाय”* “हविष्मते” यजमानाय तदनुग्रहार्थं “देवान्”
 “आवह” । हे “पावक” शोधक ! “होतः” होमनिष्पादकाग्ने !
 “यच्चि च” यज च†॥ [सुसमिद्धः—समः क्रियाविशेषणत्वेन गति-
 सञ्ज्ञकत्वात् प्रादिसमासः, शीभन-वाचिनः सु-शब्दस्य तु “वि-
 शेषणं विशेष्येण बहुलम् (२, १, ५७)”—इति समिद्धपदेन
 कर्मधारयः समासः, सु-शब्दः प्रातिपदिक-स्वरेणान्तोदात्तः,
 “कर्मधारयेऽनष्टा (६, २, ४६)”—इति पूर्वपदप्रकृतिस्ररत्वं, क्रि-
 या-विशेषणत्वे हि सु-शब्दस्य गतित्वात् प्रादिसमासे ‘गतिरनन्तरः
 (६, २, ४८)’ इति “समो यदुत्तर इति समो यदुत्तरत्वं तदेव
 क्कदुत्तर-प्रकृति-स्वरत्वेन (६, २, १३८) स्थास्यतीति सु-शब्दो-
 ऽनुदात्तः स्यात् । देवां अग्ने—“दीर्घादटि समानपादे (८,
 ३, ८)”—इति नकारस्य रुत्वम्, “अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा
 (८, ३, २)”—“आतोऽटि नित्यम् (८, ३, ३)”—इत्यनु-
 नासिकः । हविष्मते—हविरस्यास्तीति मतुप्, “तसौ मत्वर्थे
 (१, ४, १८)”—इति भर्त्वन पदत्व-बाधितत्वात् रुत्वम् । होतः—
 पावक—एतच्छब्दयोरामन्वितयोः पृथक् पृथगेव क्रियान्वये
 परस्पर-सामर्थ्यात् पराङ्गवद्भावाभावान्न तन्निवन्धनमैकस्वर्यम् न च
 द्वितीयस्यामन्वितस्याष्टमिक- (८, १, १८)—निघातेनैकस्वर्यम्
 “आमन्वितं पूर्वमविद्यमानवद् (८, १, ७२)”—इति पूर्वस्या-
 विद्यमानत्वेन पदादपरत्वात् पादादित्वाच्च परस्य सामानाधि-
 कारण्येऽपि होतरित्यस्य विशेषत्वे समानमेवाविद्यमानवत्वम्,

* ‘नः—अस्माभ्यम्’—इति वि० ।

† ‘यच्चि च—यच्च भक्षणे, देवानावह भक्षय च’—इति वि० ।

अतएवाविद्यमानवत्त्वात् सामर्थ्येऽपि न पराङ्गवद्भावः,—इति नेक-
स्वर्थ-सिद्धिः, अतो होतरिति विशेष्यम् ; अतः पुनातीति पावकः
—इत्यवयव-प्रसिद्ध-स्त्रीकारेण विशेषणत्वाद् होतरिति विशेष्यम्,
तच्च सामान्यवचनम् इति “नामन्विते समानाधिकरणे (८, १,
७३)”—इत्यविद्यमानवत्त्व-प्रतिषेधात् पदात्परत्वादपादादि-
त्वाच्च द्वितीयामन्वितस्याष्टमिक-निघातेन वा पराङ्गवद्भावे सति
शेष-निघातेन वा सर्वानुदात्तत्व-सिद्धिः । यच्चि—यजेलीपः
सिपि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७३)—इति शपो लुक्, व्रश्वादिना
(८, २, ३६) षत्वम्. “षडोः कस्मि (८, २, ४१)”—इति
कत्वम्, खेर्हिरादेशश्छान्दसत्वान्न भवति, शिपः पिप्पेनानुदात्त-
त्वाद्वातुस्वरएव (६, १, १६२) शिष्यते, न च “तिङ्गतिङः (८,
१, २८)”—इति निघातः पूर्वस्य पावकेत्यामन्वितस्य विद्यमान-
वत्त्वेन पदादपरत्वात्, अतएव तस्याव्यवधायकत्वे होतरित्येव
निघातः स्यादिति चेत् न, यच्चि पदापेक्षया होतरित्यस्यापि पूर्व-
त्वेनाविद्यमानत्वात् ; ननु “नामन्विते समानाधिकरणे (८, १,
७३)”—इति तस्य नित्यमविद्यमानत्वम्, न च पावक-पदस्या-
विद्यमानवत्त्वेन समानाधिकरण-परत्वाभावः ; यच्चि-पदस्यैव हि
कार्यं प्रति पावक-पदं पूर्वत्वादविद्यमानवत् स्यात्, होतः-पदम-
विद्यमानवत्त्व-प्रतिषेधं प्रति तु परत्वादविद्यमानवदेवेति भवत्येव
होतरित्यस्याविद्यमान वत्त्व-प्रतिषेधः, अतस्तस्याविद्यमानव-
त्त्वान्तदपेक्षया यच्चीति निघातः प्राप्नोत्येव ? सत्यम् ;—अत्र
यच्चीत्यस्य च-शब्द-परत्वात् “चादिषु च (८, १, ५८)”—इति
निघात-प्रतिषेधो भविष्यतीत्यदोषः] ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ६ २ ३ १ २
 मधुमन्तन्तनूनपाद्यज्ञन्देवेषुनःकवे ।

३ १ २ ३ १ २
 अद्याकृणुह्यूतये ॥ २* ॥

हे “कवे” मिधाविब्रज्जे ! “तनूनपात्”†—एतन्नामकस्त्वम्
 “अद्य” अस्मिन् “नः” अस्मदीयं “मधुमन्तं” रसवन्तं “यज्ञ”
 यजनीयं हविः “देवेषु” “कृणुहि” कुरु प्रापयेत्यर्थः । किमर्थम् ?
 “उतये” अस्मद्रक्षणाय ॥

“उतये”—“वीतये”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ २
 नराशंसमिहप्रियमस्मिन्यज्ञउपह्वये ।

१ २ ३ १ २
 मधुजिह्वहविष्कृतम् ॥ ३‡ ॥

“इह” देवयजन-देशे “अस्मिन्” वर्तमाने यज्ञे “नराशं-

* कठ० वे० १, १, २४, १ ।

† “तनूनपादाद्यं” भवति नपादित्यन्तरायाः प्रजाया नामधेयं निर्णिततमा
 भवति गौरव तनूरुच्यते ततो अस्यां भोगास्तस्याः पथो जायते पथस्त आद्यं जायते ।
 अग्निरिति शाकपणिरापोऽत्र तन्व उच्यते तत अन्तरिक्षे ताभ्य ओषधिवनस्पतयो
 जायन्ते ओषधिवनस्पतिभ्य एष जायते । * * * ।”—इति निरु० दे० २, ५-६ ।

‡ कठ० वे० १, १, २४, ३ ।

अथ यद्वेति त्वचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,*

तत्र प्रथमा ।

१ २ २ ७ ३ २ २ १ २ ३ २
यद्वद्यमूरुदितेनागामित्रोऽर्थमा ।

३ १ २ ३ १ २ २ २
सुवातिसविताभगः ॥ १ ॥

“यत्” धनं “नः” अस्माकम् अपेक्षितं “तत्” “अद्य”
अस्मिन् काले “सूरे” “उदिते” सति प्रातःसमये “अनागाः”
पाप-हन्ता, “मित्रः”, “अर्थमा”, “सविता”, “भगः” च—एतत्
प्रत्येकं “सुवाति” प्रेरयत् [अथवा अनागा मित्रो अर्थमा भवतु,
तदौषितं भगो भजनीयः सविता सुवाति प्रेरयतु] ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ २ ७ ३ १ २ २ २
सुप्रावीरस्तु सक्षयः प्रनुयामन्सुदानवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
येनोऽहोतिपिप्रति ॥ २ ॥

“सक्षयः” स-निवासः “सुप्रावीरस्तु” सुष्ठु प्रकर्षेण रक्षितास्तु
[प्र-शब्द आदरार्थः] । “प्र” प्रकर्षेण “नु” क्षिप्रं भवत्विति
शेषः । कदा ? इत्युच्यते— हे “सुदानवः” सुदानाः ! युष्माकं

* ‘सैत्रावरुणमाज्यम्’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ५, ५, ८, ४ ।

‡ ऋ० वे० ५, ५, ८, ५ ।

उत्वेति ह्यचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,*

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
उत्त्वामन्दन्तु सोमाः कृणुष्वराधो अद्रिवः ।

१ २ ३ १ २
अवब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! “त्वा” त्वां “सोमाः” “उत्” एतत्कष्टं “मन्दन्तु”
मादयन्तु । हे “अद्रिवः !” वज्रवन्निन्द्र ! त्वं “राधः” अन्नं
“कृणुष्व” अन्नभ्यं कुरु ! किञ्च “ब्रह्मद्विषः” ब्राह्मणद्वेष्टुन्
“अव जहि” ॥

“सोमाः”—“सोमा”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ २ २ २ २ २ २ २ २ २ ३ १ २
पदापणीनराधसो निवाधस्वमहा असि ।

२ ३ ३ २ २ २ २
नहि त्वाक्श्चन प्रति ॥ २ ॥

“पणीन्” लुब्धान् ॥ “अराधसः” यष्टव्य-धन-रहितान्
केवल-धनान् “पदा” पादेनातिक्रम्य “निवाधस्व” नितरां

* ‘एन्द्रसाज्यम्’—इति वि० ।

† क० आ० ३, १, १, १ (१ भा० ४२१४०) = ऋ० वे० ६, ४, ४२, १ ।

‡ ऋ० वे० ६, ४, ४३, २ ।

॥ ‘पणीन्’—पणसभावान्—इति वि० ।

बाधस्य । हे इन्द्र ! त्वं “महान् असि” “त्वा” त्वया “प्रति”
प्रतिनिधि-सदृशः “कश्चन” कश्चिदपि देवोऽसुरो मनुष्यो वा “न
हि” नास्ति खलु ॥

“पणोनराधसः”-“पणोरराधसः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।

१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

त्वराजाजनानाम् ॥ ३ * ॥ ३

हे “इन्द्र !” “त्वं” “सुतानाम्” अभिष्टुतानां सीमानाम्
“ईशिषे” ईश्वरो भवसि, तथा “त्वम्” “असुतानाम्” वर्त्तमा-
नानाञ्च ईशिषे, किञ्च “त्वं” सर्वेषां “जनानां” “राजा”
भवसि ॥ ३ ॥ ३

इति साननेदार्घ्यप्रकाशे उत्तराश्विनस्य एकादशस्याध्यायस्य

प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीय-खण्डे *—

आजाष्टविरिति लृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१८ २४ १२ ३ १२ ३ १८
 आजाष्टविर्विप्रः सप्तमीनाम्

२८ ३ १ २ ३ १२
 सोमः पुनानो असदच्चमूपु ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
 सपन्ति यन्मिथुना सोनिकामा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अध्वर्यवोरधिगासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

“जाष्टविः” जागरणशीलः “ऋतम्” ऋतनां सत्य-भूतानां
 “मतीनां” स्तुतीनां “विप्रः” ब्राह्मणं “सोमः” “पुनानः”
 पूषमानः सन् “वज्रपु” वज्ररूपे “आ सदत्” आसीदति, “मिथु-
 नासः” परस्परं सङ्गताः, “निकामाः” गितरां कामयमानाः
 “रथिरासः” यज्ञ-नेतारः “सुहस्ताः” कल्याण-प्राणयः “अध्व-
 र्यवः” पवित्रेण “यं” सोमं “सपन्ति” स्पृशन्ति [सप्त समवाये
 (म्वा० प्र०) । ‘सपतिः स्पृशति-कर्त्ता’—इति नैहताः ॥]

“ऋतम्”—“ऋता”—इति पाठौ ॥ १ ॥

* ‘दृढाजी’ आध्वर्यवः सप्तमभिधीयते—इति वि० ।

† ऋ० वे० ३, ५, १८, २ ।

‡ ‘सपतिः’—कृत्वि परिश्रवणं कर्मसु (२, ५) स्पृशति-कर्मसु च (२, १४) दृश्यते

अथ द्वितीया ।

१ १ ३ २७ ३ २ ३ १ २ ३

सपुनानउपसुरेदधान

१२ २२ १ २ ३ १२ २२

ओभेअप्रारोदसीवोषआवः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

प्रियाचिद्यस्यप्रियसासज्जतो

३ २२ २२ ३ २ ३ १२ २२

सतोधनकारिणेनप्रयत्सत् ॥ २ * ॥

“पुनानः” पूयमानः “दधानः” यज्ञादि-कर्म-धारकः “सः” सोमः “सुरे” प्रेरके इन्द्रे “उप” गच्छति । किञ्च “उभे रोदसी” दावा-पृथिव्यौ “आ अप्राः” स्व-महिम्ना आ पूरयति । तथा “सोमः” “आवः” स्व तेजसा मां विवृणोति [वृणोते: “मन्त्रे ववेति (२, ४, ८१) चूर्लुक्, “छन्दस्यपि दृश्यते (६, ४, ७३)” —इत्यङ्गागमः । “पूर्वपदात् (८, ३, १०६)” —इति स-इत्यस्य साहितिकं षत्वम्] “प्रिया” [षष्ठ्या आकारः (७, १, ३८)] प्रियस्य “यस्य” “सतः” विद्यमानस्य सोमस्य [यद्वा, ‘प्रिया’ प्रियाणि प्रयच्छतः सोमस्य] “प्रियसासः” अत्यन्तं प्रियतमा धाराः “ज्जतो” ज्ञेयै रक्षणाय भवन्ति “सः” सोमः “नः” अस्मभ्यम् “धनं” “प्रयत्सत्” प्रयच्छतु [यच्छतेर्लोटे सिव्यङ्गागमः] । तत्र दृष्टान्तः—“कारिणे न” यथा कारिणे कृतकाय भूतिं प्रयच्छति तद्वत् ।

“दधानओभे”-“दधानोभे”—इति पाठौ, “सतोधनं”-“सतू-
धनम्”—इति च ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
सवर्द्धितावर्द्धनः पूयमानः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
सोमोमीढ्वा अभिनोज्योतिषावीत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
यन्नः पूवपितरः पदज्ञाः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्वर्विदो अभिगा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ * ॥ ४

“वर्द्धिता” देवानां स्व-कला-प्रदानेन वर्द्धयिता “वर्द्धनः”
स्वयं वर्द्धमानः “पूयमानः” पवित्रेण पूयमानः “मीढ्वान्”
कामानां सेक्ता “सः” सोमः “नः” अस्मान् “ज्योतिषा” स्व-
तेजसा “अभ्यावीत्” अभिरक्षतु “यन्न” यस्मिन् सोमे प्रसन्ने सति
“पदज्ञाः” पणिभिरपहृतानां गवां पदानि जानन्तः “स्वर्विदः”
सर्वज्ञाः सूर्यं जानन्तो वा “नः” अस्माकं “पूर्वे” चिरन्तनाः
“पितरः” अङ्गिरसः “गाः” पशूनां लब्धुम् “अद्रिम्” शिली-
क्षयम् “अभि” लब्धुं गन्तुम् “इष्णन्” ऐच्छन् ॥

“यन्नः”-“येनानः”—इति पाठौ, “इष्णन्”-“ष्णन्”—
इति च ॥ ३ ॥ ४

५२ २ ३२ ४ ५
॥ गौरीवित्तम् ॥ आज्ञा । गृवाश्रयिः । विप्रज्ञताम् ।

१ २ २ २ २ २ १ २
मतीनां सोमः पुनानो असदक्षमूपूरः । सापन्तिया ३१

४ २ २ २ १ १
२३म् । मिथुना सोनिकामा पृथ्व्या । वोरथिरा ३१२३ ।

४ ५ ४ ५ ३२ ४
सः सोवा । हाप्रस्तो ईहायि ॥ (१) सपु । नानाः । उ

२५ १२ २२ २२ २ २ १
पसूरायि । दधानः ओभे अपारोदसी वीषावा २३ । प्रा

२ २ ४ २ २२ २ १ २
याचिद्या ३१२३ । स्यप्रियसा सजती सापुतोधा । नाङ्गा

२ ४ ५ ४ ५ ५
रिणा ३१२३यि । नप्रोवा । याप्रस्तो ईहायि ॥ (२) सब

३ २ ४ ५ १२ २२ २२ २ २
द्विता ३ । वर्द्धनः पू । यमानः सोमो मीढा अभिनोज्यो

२ १ २ ४२ २
तिषावा २३यित् । यात्रनः पू ३१२३ । र्वपितरः पदत्वाः ह्य

१ २ ४ ५ ४
वर्वायि । दो अभिगा ३१२३ । अद्रोवा । आप्रयिष्मो

५
ईहायि (३) ॥ १४ * ॥ [१]

१ २ १ २
॥ अशनम् ॥ आज्ञा । गृविर्विप्रज्ञताम् । मती ३

^१नाम् । ^{२ १ १ १}सोमःपुना । ^{१ १}नोअस । ^{२ ३ ४ ५}दक्षमूषू । ^१सपन्ति
^२यन्मिथुनासो । ^०निकारश्माः । ^{१ २ १}अध्वर्यवो । ^{१ १ २}रथिरा ।
^२सारश्ः । ^{१ ४}सूहापुस्ताइपुइः ॥ (१) ^{१ १}सापू । ^{१ २}नानउपसू
^२रे । ^{२ १ २ १}दधाइनाः । ^{१ १ २}ओमिअप्राः । ^{२ ३ ४}रोइसी । ^{१ २ १}वीषथा
^५वाः । ^{१ २}प्रियाचिद्यस्थप्रियसा । ^०संजरइती । ^{१ २ १}सतोधनाम् ।
^{२ १ २}कारिणे । ^{२ ४}नाश्ः । ^{१ १}प्राश्वापुसाइपुइत् ॥ (२) ^{१ १}सावा ।
^{१ २}धितावईनःपू । ^{२ २}यमाइनाः । ^{२ १ २ २ १}सोमोमौळात् । ^{१ १}अभि
^{२ ३ ४ ५}नः । ^{१ २ १}ज्योतिषावीत् । ^०यचनःपूर्वपितराः । ^१पदार्श्ज्ञाः ।
^{१ १ १}सुवर्विदो । ^{२ १ २}अभिगाः । ^१आश्ः । ^{१ ४}द्राश्थिमापुयिष्णा
^{१ १ १}इपुईन् ३ ॥ ५ * ॥ [२]

^{४ २ ३}॥ यज्ञायज्ञीयम् ॥ ^{४ २ ४}आजाऽपुष्ट । ^{४ २ ४}वाश्वाश्थिप्रज्ञ
^५ताम् । ^{१ २ २ २}मातीनात्सोमःपुनानोअसा । ^{२ १ २ २}दाश्चामूश्षू ।

सपारन्तियन्मिथुनासोनि । कामारश्चा । ऊन्मायि ।

ध्वाश्या । वोरथिदासः सूरहस्ताड ॥ (१) तासाः । पुनः ।

नउपहरेदधानओभेअप्रारोदसी । वोश्पाआश्वाः ।

प्रियाश्चिदस्यप्रियसासः । जतीरश्ता । ऊन्मायि ।

तोश्धा । नाङ्गारिणेनप्राश्युड ॥ (२) सात्साः । वद्धि

तावद्धनः पूयमानः सोमोमीढाअभिनी । ज्योश्तीषाश्वी

त् । यत्रारनः पूर्वपितरः प । दक्षारश्मः । ऊन्मायि ।

वाश्वायि । दोअभिगाआद्रारयि । मिष्णाड । वारश्

४पू(३) ॥ १३* ॥ [३]

॥ गोष्टङ्गम् ॥ आजगृविर्विप्रः । कृताश्म । मा

रश्म । तोनासोमः । पूना । नोअसदक्षमृषुसपन्ति

यन्मिथुनासोनिकामाश्वाश्याश्च । वारज्जवायि । वोर

थि । रासः सोवा३ओ२३४वा । हा५स्तो ६ ह्यायि ॥ (१)

सपुनानउप । सरा३यि । दा२३४ । धानओमेअ ।

प्रारो । दसीवीषआवः प्रियाचिद्यस्य प्रियसासजतीसा२तो

धारे । हारेज्जवायि । नक्षारिणेनप्रोवा३ओ२३४वा ।

या५स्तो ६ ह्यायि ॥ (२) सर्वाङ्गितावद्ध । नः पू३ । या२३

४ । मानः सोमोमी । द्वा५आ । भिनोज्योतिषावीद्य

चनः पूर्वपितरः पदज्ञाः स२ रवर्वा३यि । हारेज्जवायि ।

दोअभिगाअद्रोवा३ओ२३४वा । आ५यिषणो ६ ह्या

यि(३) ॥ १०* ॥ [४] ४

अथ माचिद्व्यदिति प्रगाथात्मके द्वितीयसूक्ते—

प्रथमा ।

माचिद्व्यदिश५सतमुखायोमारिषण्यत ।

इन्द्रमिन्तोतावृण५सचासुतेमुऊरुस्थ्याचश५सत ॥ ११† ॥

* ऊ० गा० २६ प्र० २ अ० १० सा० ।

† ऊ० आ० ३, १, ५, १० (१ भा० ५०० ऊ०) = ऊ० व० ५, ७, १०, ११ ।

हे “सखायः” समान-स्थानाः स्तोतारः ! इन्द्र-स्तोत्रात्
 “अन्यत्” स्तोत्रं “मा चित् विशंसत” मैत्रीञ्चारयत, “मा रिष-
 श्यत” मा हिंसिता भवत अन्यदीय-स्तोत्रोच्चारणेन वृथोपचीणा
 मा भवत, “सुते” अभिषुते सोमे “वृषणं” कामानां वर्धिता-
 रम् “इन्द्रम् इत्” इन्द्रमेव हे प्रस्तोत्रादयः ! “सचा” सह
 “स्तोत” स्तुत । हे प्रशास्तादयः ! “उक्था च” उक्थानि
 शस्त्राणि च इन्द्रविषयाणि यूयं “सुहुः” पुनः पुनः “शंसत्” ॥१॥

अथ द्वितीया ।

३ १२ ३१२ ३१२ १ २२ ३ १२
 अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवङ्गान्न चर्षणी सहम् ।

३१२ ३१२ ३१ २२ ३ १२
 विद्वेषणं संवननं मुभयङ्गरं मंहिष्ठं मुभयाविनम् ॥२॥५

“वृषभं यथा” वृषभमिव “अवक्रक्षिणम्” अवचर्षणशीलं
 शत्रूणां हिंसितारं “जुवं” शौचकारिणं “गां न” गामिव वृष-
 भिवत् “चर्षणी सहम्” मनुष्याणां शत्रुसुतानामभिभूतितारं,
 “विद्वेषणं” विद्वेष्टारं शत्रूणां, “संवननं” सम्यक् सभजननीयं
 स्तोत्रभिः “उभयङ्गरं” निग्रहानुग्रहयोरुभयोः कर्तारं “मंहिष्ठं”
 दाह्यतमम् “उभयाविनं” दिव्य-पार्थिव-लक्षणेन उभय-विधा-
 नेनोपेतम् [यथा, स्थावर-जङ्गम-रूपेण द्विप्रकारेण रक्षितव्ये-
 नोपेतम् । अथवा उभयविधै स्तोत्रभिर्द्वैष्टृभिश्चोपेतम्]—एवं
 विधं मिन्द्रमिः स्तोतेति पूर्वनान्वयः ॥

“जुव”-“जुर”-इति पाठौ, “संवन्न”-“संवन्ना”-इति
च ॥ २ ॥ ५

॥ मैधातिथम् ॥ ^{२२}माचिद^{१ २}न्यदो^{३ २}हायि^४ । विशा^१३सा^२
^४ता । सखाया^{१ २}३हो^१शयि^२ । मा^१औ^२३हो^१ । रायिषा^१उवा^२ ।
^{१ २}पयाता^१उवा^{२ २} । इन्द्रमि^१त्सोता^{२ २}वृषणा^{१ २}औ^{१ २}३हो^{१ २} । साचा^{१ २}उ
वा^{१ २} । हता^१उवा^{२ २} । मुजुरु^१क्था^{२ २}औ^१३हो^{२ २} । चशा^१ । औ^{१ २ १}हो^१ ।
^{३ २ १}वा^१हो^{२ ४}२३४वा^४ । सा^४पूतो^४इ^२हायि^{१ २} ॥ (१) मुजुरु^{१ २}क्थो^{१ २}हायि^{१ २} ।
^{३ २}चशा^{४ ४}३सा^१ता^१ । मु^१जुरु^२हो^१३हो^{१ २} । कथा^{१ २}औ^{१ २}३हो^{१ २} । चाशा^{१ २}
उवा^{१ २} । साता^१उवा^{२ २} । अवक्र^१क्षिणं^{२ २}वृषभा^{१ २}औ^{१ २}३हो^{१ २} । याथा^{१ २}
उवा^{१ २} । जूवा^{१ २}उवा^{१ २} । गान्ना^{१ २}चा^{२ २}औ^१३हो^{१ २} । षणा^१ । औ^{१ २ १}हो^१ ।
^{३ २}वा^४हो^४२३४वा^४ । सा^४पू^४हो^४इ^{२ २}हायि^{१ २} ॥ (२) गान्ना^{२ २}चो^{१ २}हायि^{१ २} ।
^{३ २}षणा^{४ ४}३यिसा^{१ २}हाम्^{१ २} । गान्ना^{१ २}३हो^{१ २}शयि^{१ २} । चा^{१ २}औ^{१ २}३हो^{१ २} । पा^१
णा^{१ २}उवा^{१ २} । सा^{१ २}हा^{१ २}उवा^{१ २} । वि^{१ २}हो^{१ २}षण^{१ २}संवनन^{१ २}मा^{१ २}औ^{१ २}३हो^{१ २} ।

१ २ १ २ १ २ १ २
 भायाउवा । काराउवा । काराउवा । म^१हिष्टमा^२औ^३
 २ १ २ १ ३ २ ५ ४
 हो । भया । औहो । वाहो २३४वा । वापूयिने ।
 ५
 इहायि(३) ॥ १५* ॥ [१] ५

अथ उदुत्यइति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

२ २ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २
 उदुत्येमधुमत्तमागिरःस्तोमासईरते ।

३ १ २ ४ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
 सत्राजितोधनसाअक्षितोतयोवाजयन्तो रथाइव ॥ ११ ॥

“त्ये” ते प्रसिद्धाः “मधुमत्तमाः” अतिशयेन मधुराः “गिरा”
 स्तुति-रूपया वाचा “स्तोमासः” त्रिवृदादि-स्तोमाश्च “उदीरते”
 हे इन्द्र ! त्वामुद्दिश्य उद्गच्छन्ति ऊर्ध्वं प्रसरन्ति [ईर गतौ आदा-
 दिकः (आ०)] । तत्र दृष्टान्तः—“सत्राजितः” सहैव
 शत्रून् जयन्तः “धनसा” धनानि सम्भजन्तः [वन षण सम्भक्तौ
 (आ० प०), “जन-सन-स्वन-क्रम-गमो विट् (३, २, ६७),
 “विडुनीरनुनासिकस्यात् (६, ४, ४१)”—इत्यात्मम्, “अक्षि-
 तोतयः” अक्षिताः क्षय-रहिताः जतयो रक्षा येषां ते तद्योक्ताः
 [क्षियो भावे निष्ठा, “निष्ठायामण्यदर्थे (६, ४, ६०)”—इति

* ल० गा० ६ प्र० १ अ० १५ सा० ।

† ल० आ० ३, २, १, ८ (१ भा० ५१२ छ०) = ऋ० वे० ४, ७, १३३ ५ ।

पर्युदासाद्दीर्घभावः अतएव “क्षियो दीर्घात् (८, २, ४६)”
—इति निष्ठा-नत्वाभावश्च “वाजयन्तः” वाजमन्त्रमिच्छन्तः,
वाचि “न छन्दस्वपुत्रस्य (७, ४, ३५)”—इतीत्य-दीर्घयोः
प्रतिषेधः], एवङ्गुणविशिष्टाः “रथाइव” ते यथा विविधमित-
स्तत उत्तिष्ठन्ति तद्दुदौरतइत्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
काण्डाइवभृगवःसूर्याइवविश्वमिद्धीतमाशत ।

१ २ १ २ ३ २ २ १ २ ३ १ २
इन्द्रस्तोमेभिर्महयन्तआयवःप्रियमेधासोअस्वरन्॥२॥६

“काणवाः” कण्व-गोत्रोत्पन्ना ऋषयः “इव” स्तुवन्तः “भृगवः”
भृगु-गोत्रोत्पन्ना ऋषयः^१ “धीतम्” आध्यान्तम् “विश्वमित्”^२ व्
व्याप्तं तमेव “इन्द्रम्” “आशत” आनशिरे “सूर्याइव”
यथा सूर्य-रश्मयः सर्वं जगद् व्याप्नुवन्ति, तद्वत् अपि च
“प्रियमेधासः” प्रिययज्ञाः एतत्सञ्ज्ञका वाक् “आयवः”
मनुष्याः तमेवेन्द्रं “महयन्तः” पूजयन्तः “स्तोमेभिः” स्तोत्रैः
“अस्वरन्” अस्तुवन् [स्तु शब्दोपतापयोः भोवादिक् (प०) ॥
“आशत”-“आनशुः”—इति पाठौ ॥ २ । ६

* ऋ० वे० ५, ७, २८, १ ।

† अथाह यास्कः—“अर्चिषि भृगुः सम्बभूव भृगुर्भूज्यमानो न देहे”—इति निरु०
मे० ३, १७ । “भृगवः—भर्जनकराः सूर्याइव यथा आदित्य-रश्मयः”—इति वि० ।

‡ ‘इत्’—इति पाद-पूरणः—इति वि० ।

१ अथाह यास्कः—“प्रियमेधः प्रिया अस्य मेधाः”—इति निरु० मे० ३, १७ ।

५ ४ २ ४ ५ ४ ५ १
॥ अभीवर्त्तम् ॥ उदूश्येश्माधुमत्तमोवा । गायिर

१२ २ १ २ १ २ १
स्तोमा । सआयिराश्तायि । सात्राजितौ३१२३४ ।

३ ४२ ५ २ १ २ २ १ २ ३ १
धनमात्र । क्षितोताश्याः । बाजायाश्न्तारः । रथाः ।

१ ३ १ १ १ ५२ ४ २ ४ ५२ ४
आर३४५यि । वार ३ ४ ५ ॥(१) वाजाश्राशन्तोरथाद्वौ

५ १ २ १ २ १ २ २
वा । वाजयन्तः । रथाआशयिवाः । काण्वाद्वा३१२३

३ ४ ५२ ५ १ २ १ २
४ । भृगवः३ । रियाआशयिवाः । विश्वामाशयिद्वौ ।

१२ १ ५ १ १ १ ५ ४ २ ४
तमाः । शा३३४५ । तार३४५ ॥(२) विश्वाश्माशयिद्वौ

५२ ४ ५ १ २ २ १ २ १
तमाशतोवा । वायिश्चमिद्वौ । तमाशातारः । आयिन्द्र५

२ २ ३ ४ ५ २ १ २ १
स्तोमा३१२३४यि । भिर्मद्य । तआयाश्वाः । प्रिया

३ २ २ १ ३ १ १
मा शयिधा १ । सोआ ३ । स्वा २ ३ ४ ५ । रा २ ३

१ १
४ पुन्(३) ॥ १६* ॥ [१] ६

अथ पर्युष्यति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम्—

तत्र प्रथमा ।

१ ३ १ १ २ १ १ २ ३ १ २ १ २ १ २
पर्युषुप्रधन्ववाजसातयेपरिवृत्राणिससृणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्याक्वणयानईरसे ॥ १* ॥

हे सोम ! “सु” सुष्ठु “वाजसातये” अस्मभ्यमन्नदानायैव
“परि प्रधन्व” परितः प्रगच्छ [यदा, “वाजसातये” अजस्र
लाभाय सङ्ग्रामं प्रगच्छ] । किञ्च “ससृणिः” सहजशीलस्य
“वृत्राणि” शत्रून् परिगच्छ । तदेवोच्यते—“नः” अस्माकम्
“क्वण्या” क्वणानां यापयिता विनाशयिता त्वं “द्विषः” शत्रून्
“तरथ्यै” तरीतुं हन्तुम् “ईरसे” परिगच्छति ॥

“ईरसे”-“ईयसे”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अजौजर्नोहपवमानसूर्यविधारे शक्ननापयः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोजीरयार्हमाणः पुरन्ध्या ॥ २† ॥

हे “पवमान” सोम ! त्वं “पयः” पयस उदकस्य “विधारे”
विधारके अन्तरिक्षे “शक्नना” सामर्थ्येन बलेन “सूर्यम्”

* अ० आ० ५, १, ५, २ (१ भा० ८७१ अ०) = अ० वे० ७, ५, २२, १ ।

† अ० वे० ७, ५, २२, ३ ।

“गोजीजनः द्वि”* उत्पादितवान् भवसि खलु । कीदृशः ?
 “गोजीरया” स्तोत्रभ्यो गवां प्रेरकेण स्तोत्राणां प्रेरित-पशुकेने-
 त्यर्थः, तादृशेन†; “पुरभ्या” बहुविध-प्रज्ञानेन युक्तः‡ “रंक्ष-
 माणः” वेगं कुर्वाणस्त्वं सूर्यमजीजनः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनुदित्वा सुतः सोममदामसि ॥ ३ ॥ ७

—इति तृतीयाया ऋचः प्रतीकमिदम् । सा चान्यत्र (५, ९,
 ५, ६ = १ भा० ८७७ पृ०) व्याख्याता ॥ ३ ॥ ७

३ २

२ ४

५

२

॥ श्यावाश्वम् ॥ पराश्रयि । ऊश्व । प्रध । न्वा

४२

५

२

२

२

१

१२

इवा । एहियाजा । सातयेपा । रि । वृचा २ । एहि

१

२

४

५

२२

या २ । णिसृक्ष्णायिर्दाश्रयिषाः । तद्दशरा । ऐहा

१२

२१

२

४

२

शयि । एहिया २ । धियाक्ष्णयानाश्रि ३ । राश्रपुलो

५

३२

२

४

५

२

४२

इहायि ॥ (१) अजाश्रयि । जाश्रनो । क्षिप । वाहमा ।

* ‘द्वि-इति षट्-पूरणः’—इति वि० ।

† ‘गोजीरया रंक्षमाणः’—गोजीरयः संयुक्तायाः दक्षा वा मिथ्या, रंक्षमाणः वेगेन
 मञ्जमानः—इति वि० ।

‡ ‘पुरभ्या’—उदकेन—इति वि० ।

॥ अ० ५, १, ५, ६ (१ भा० ८७७ पृ०)—ऋ० वे० ७, ५, १२, ११ ।

^५ एहिया । ^१ ना । ^२ स्वरियंवायि । ^{२२} धा । ^{१२} रेशा^२ । एहिया
^{२१} २ । ^२ क्मनापृषोगो^३जी^३जी^३ । ^५ रा^{२२}३४या । ऐह्या^२यि ।
^{१२} एहिया^२ । ^{१२} र^२हमाणाःपू^४रा^३इम् । ^५ धा^३४५यो^३ई
^४ हायि ॥ (२) अनु^{३१} । हा^३यित्वा । सुतम् । सो^३म् ।
^५ एहिया । ^१ षा । ^२ दामसिमा । ^{२२} हे । ^१ समा^२ । एहिया
^२ २ । ^२ र्यराजियेवा^३जा^५इ । ^५ आ^{२२}३४भी । ऐह्या^२यि ।
^{१२} एहिया^२ । ^{१२} पवमाना^३प्रा^३गा^३ । ^५ हा^३४५सो^३ईहा
यि(इ) ॥ १८ * ॥ [१]

^{२२} ॥ आन्धीगवम् ॥ ^२ पर्युषुप्रधा^१न्वावा । ^{१२} जसात ।
^२ येपा^२३री । ^१ ऊम्मा^२३१५३ । ^{१२} वृचाणिम^२र्जणि^२र्दिषस्त^{२१}रा^{२३}११
^{११} ४५ । ^१ धारया^२उवा^२र्णा^१या । ^२ ना^२३ई । ^१ रसा । ^२ औ
^४ इहोवा ॥ (१) ^{२२} अजीजनो^२द्विपा^२शवा^२पज^२हरि । ^२ पवा^२३३

^{२ १ २२ २२ १२ २ २ ३ १ १ १ १}
यिधाऊम्मा २१५२ । रेशकनापयोगोजीरया २ ३ ४ ५ ।

^{१ २ ३ २ १ १}
रा०हाउवा । मा०पगम् । पू०राम् । धिया । औ

^{४ ५ २ २ २ २ २}
इहोवा ॥ (२) अनुदित्वातुता १० सोमा । मदाम । रु

^{२ १ १२ २२ ११ २ २ ३ १ १}
मा०र०हे । ऊम्मा २१५३ । समर्याराज्येवाजा ० अभीर०

^{१ १ २ २ १ १ १ २}
४५ । पावाउवा । मा०रना । प्रा०रगा । हसा । औ

^{४ ४}
इहोवा । हो५ई । डा(३) ॥ १८* ॥ [२]

^{३ २ ४ २ ४}
॥ विराट्सुवामदेव्यम् ॥ पा०५रि । ऊषू ३ प्रा०ध

^{२ ५ १ २ २ २ १ २ १ २ १ २}
न्वावा । जा । सातयेपरिवृत्राणिसक्षणिर्दिषस्त । रा ।

^{२ २ २ १ २ २ २ ४ १}
औइहोहायि । जा । सातयेपरिवृत्राणिसक्षणिर्दिषस्त ।

^{२ २ २ १ २ २ ३ २ २}
रा । औइहोहायि । धियार०कृण्याः । नऔहो३ ।

^{१ १ २ ३ २ ४}
ऊम्मा २ । रा०रसो३५हायि ॥ (१) आ०पुजी । जनो३

^{४ ५ १ २ २ १ २ २ २ २ २ २ २ २}
यिपवमा । ना । हरियंविधारेशकनापयोगोजीर ।

^१या । ^२औ३^१हो३^२हायि । ना । ^१हरि३^२यंवि३^३धारे३^४शक्ना३^५नापयो३^६गो
^{३२१}जीर । या । ^२औ३^१हो३^२हायि । ^१र३^२७^३दा३^४र३^५श्मा३^६णः । ^{३२}पुरी
^२हा३ । ^१ऊ३^२न्मा३ । ^१धा३^२र३^३यो३^४३५^५हायि ॥ (२) ^३आ३^४५^५नु ।
^४द्वि३^२त्वा३^३र३^४ह३^५त३^६७^७से३^८मा । मा । ^१दा३^२म३^३सि३^४म३^५हे३^६स३^७म३^८र्य३^९रा३^{१०}ज्ये
^{१२२२}वा३^२जा३^३७^४अ । मा । ^२औ३^१हो३^२हायि । मा । ^१दा३^२म३^३सि३^४म३^५हे३^६स३^७म
^२र्य३^३रा३^४ज्ये३^५वा३^६जा३^७७^८अ । मा । ^२औ३^१हो३^२हायि । ^१प३^२वा३^३र३^४श्मा
^{२१}मा३^२ना । ^{३२}प्र३^३गौ३^४तो३^५३ । ^१ऊ३^२न्मा३ । ^१धा३^२र३^३७^४सी३^५३५^६हा
यि(३) ॥ ८* ॥ [३]

^५॥ गौरी३^६वित३^७म् ॥ परि । ^{३२२}ज३^३षू३ । ^४प्र३^५ध३^६न्वा३^७वा । ^१ज३^२सा
^२तये३^३परि३^४वृ३^५त्रा३^६र३^७३ । ^१णा३^२यि३^३स३^४त्त३^५णा३^६३१२३^७यिः । ^४दि३^५षा३^६प्र३^७स्त३^८रा ।
^१ध्या३^२कृ३^३ण३^४या३^५३१२३^६ः । न३^७अ३^८वा । ^४रा३^५पू३^६सो३^७३^८हायि(१) ॥ ५† ॥ [४]

५ ४ २ २ ४ ५ २ १
॥ ओकोनिधनम् ॥ अजाइयिजनोद्विपवमा । नसू ।

२ २ १ २ १
रियंविधारेणकना २ पाया २ः । गोजा२यिराया२ ।

१ ५ २ १ ५ २ २ ५ २ ५ २
रहमा२३४णाः । पुरम् । धा२या२३४औहोवा । औ

२ ३ ५
होवा । ओ२३४काः(२) ॥ ६ * ॥ [५] ७

अथ परिप्रधन्वेति-टचात्मकं पञ्चमं सूत्रम्—

तत्र प्रथमायाः ऋचः

२ १ १ ३

परिप्रधन्व ॥ १ १ ॥

—इति प्रतीकमिदम् । सा चान्यत्र (५, १, ५, १ = २ भा०

८६८५०) व्याख्याता ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ २ २ १ २ २ २ ३

एवानुतायमहेक्षयाय

२ २ १ २ ३ २ ३ १ २

समूहोऽर्षदिव्यःपीयूषः ॥ २ ३ ॥

* अ० भा० २० प्र० २ ख० ६ सा० ।

† अ० भा० ५, १ ५, १ (२ भा० ८६८५०) = अ० वे० ७, ५, २०, १ ।

‡ अ० वे० ७, ५, २०, २ ।

हे सोम ! “शुक्रः” दीप्तः “दिव्यः” दिवि भवः
 “पीयूषः” देवैः पातव्यः “सः” त्वम् “अमृताय” अमरणाय
 “महे” महते “क्षयाय” निवासाय च “एव अर्ष” एवं पवस्व
 चर ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

^{१ २} ^{३ १ २} ^३
 इन्द्रस्तेसोमसुतस्यपेयात्

^{२ ३ १ २} ^{३ १ २} ^{३ २}
 क्रत्वेदक्षायविश्वेचदेवाः ॥ ३ * ॥ ८

हे “सोम !” “सुतस्य” अभिषुतस्य “ते” तव स्वभूतं
 (रसमिति शेषः) “इन्द्रः” “पेयात्” पिबतु [पिबतेराशी-
 लिङि रूपम्] । किमर्थम् ? “क्रत्वे” क्रतवे प्रज्ञानाय “दक्षाय”
 बलाय “च” किञ्च, अमी “विश्वे” सर्वे “देवाः” च त्वदीयं रसं
 पिबन्तु ॥

“पेयात्”-“पेयाः”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ८

१ १ १
 ॥ वाङ्मन्त्रनसौहविषम् ॥ प । र्येपारी । प्रधन्वा ।

^{२ २} ^{२ २} ^{२ १} ^{२ १} ^{२ २ १}
 होवाश्होयि । इन्द्रायसोमा । होवाश्होयि । स्वादु

^२ ^{२ १} ^{२ २ ३} ^१ ^४
 मित्राया । होवाश्होश्चयि । पूष्णौवाञ्चोश्चवा । भ

गा॒पू॒या॒उ ॥ (१) ए॒व । ए॒आ॒यि॒वा । ए॒व । ए॒आ॒यि॒वा ।
 अ॒मृ॒ता॒या । हो॒वा ३ हो॒यि । म॒हे॒क्ष॒या॒या । हो॒वा ३
 हो॒यि । स॒ण्ण॒क्रो॒अ॒र्षा । हो॒वा ३ हो॒र॒यि । दि॒व्यौ॒वा
 ओ॒र॒३४॒वा । पी॒यू॒षा॒उ ॥ (१) इ॒न्द्रः । ए॒आ॒यि॒न्द्राः ।
 इ॒न्द्रः । ए॒आ॒यि॒न्द्राः । ते॒सो॒मा । हो॒वा ३ हो॒यि । सु
 त॒स्य॒पे॒या॒त । हो॒वा ३ हो॒यि । क्र॒त्वि॒द॒क्षा॒या । हो॒वा ३
 हो॒र॒३४॒यि । वि॒श्वौ॒वाओ २ ३ ४ वा । व॒दा॒पू॒यि॒वा॒उ ।
 वा (३) ॥ २०* ॥ [१]

॥ वा॒र॒व॒न्तीय॑म् ॥ परि॒प्र॒धा॒ओ हो॒हा॒यि । न्वा॒ई॒र॒३४
 न्द्रा । य॒सो॒मा ३ ३४ हा॒यि । सा॒दु॒र्मि॒त्रा ३३ । औ॒हो॒वा ।
 इ॒हा ३ ३४ हा॒यि । उ॒ज्ज॒वा॒र ३४ या । पू । ष्णा॒यि॒भ॒गा ३४ ।
 औ॒हो॒वा । इ॒हा ३ ३४ हा॒यि । औ॒हो ३ १२ ३४ । या । ए

द्वियाईहा ॥ (१) एवामृताऔहोहायि । यामार३४चे ।

क्यायार३४हायि । मरुकोआ३४ । औहोवा । इहा

२३४हायि । उज्जवार३४र्षा । दित्याःपीयू३४ । औहो

वा । इहार३४हायि । औहो३१२३४ । वाः । एद्विया

ईहा ॥ (२) इन्द्रस्तेतोऔहोहायि । माह२३४ता । स्य

पेयार३४हायि । क्रत्वेदत्ता३४ । औहोवा । इहा २३

हायि । उज्जवार३४या । वि । श्वायिचदा३४ । औहो

वा । इहार३४हायि । औहो३१२३४ । वा । एद्वियाई

हा । होपुई । डा ३ ॥ १०* ॥ [२]

॥ सफम् ॥ परिप्रा३धान्वाई२३४न्द्रा । यमोमार३ ।

स्वार३३४दूः । मित्रा । यपूष्ण३भा३ । गा३४पूयोईहा

यि(३) ॥ ८ ॥ [३]

॥ वाजदावर्यम् ॥ परिप्रधा । न्वा^२र^१ई^१र^५३४^१द्रा । या
 र^१सो^३र^५३४^१मा । स्वा^१र^१दूः । मा^१र^१३^१यि^१त्रा । या
 र^१पू । ह्यो^१भो^१र^१३४^५वा । गा^५पू^५यो^५ई^{१२}हा^१यि ॥ (१) एवामृता ।
 या^१र^३मा^५र^५३४^५हे । क्षा^१र^३या^५र^५३४^१या । सा^१र^१ष्ट । क्रो^१र^३
 आ । पा^१र^१दा^१यि । व्यः^१पो^१र^५३४^५वा । यू^५पू^५षो^५ई^१हा^१यि ॥ (२)
 इन्द्र^१स्ते^१सो । मा^१र^३चूर^५३४^१ता । स्या^१र^३पे^५र^५३४^१यात् । का^१र^३
 त्वे । दा^१र^३क्षा । या^१र^३वा^१यि । श्व^१चो^१र^५३४^५वा । दा^५पू
 यिवो^५ई^५हा^५यि (३) ॥ ७* ॥ [४]

॥ स्वर्निधनम् ॥ परो^३ई^१हा^५यि । प्रधा^३र^५३४^३न्वा । इन्द्रा^३
 र^१हो । य^३सो^५र^१३४^१मा । स्वा^१दू^१र^१र्क्षो^१यि । मि^१त्रा
 र^५३४^१या । पू^१ष्णे^१र^१हो^१यि । भगा^१र^५३४^५या । पू^५ष्णे^५
 भगा^५य । पू^१ष्णा^१र^१४३ । ह्यो^१र^१४३^१यि । भा^१र^१गा^१पू^१या^१ई

^{३ २ १} ^३ ^५ ^{३ २ १}
 पु६ ॥ (१) एवा३होयि । अमृता२३४या । महे३होयि ।
^३ ^५ ^{३ २ १} ^{२ ३ ५} ^{३ २ १}
 क्षया२३४या । समृ३हो । क्रोआ२३र्षा । दिव्या३हो
^{२ ३} ^५ ^{४ ३ २ ५} ^{३ २}
 यि । पीयू२३४षाः । दिव्यः पीयूषः । दिव्या३४३ः ।
^२ ^{३ ४} ^{३ २ १} ^{२ ३}
 हो३४३यि । पी३यू५षा६पु६ः ॥ (२) इन्द्रा३हो । तेसो
^५ ^{३ २ १} ^{२ ५} ^{३ २ १}
 २३४मा । सुता३हो । स्यपे२३४यात् । क्रत्वे३होयि ।
^३ ^५ ^{३ २ १} ^३ ^५ ^{४ ३ २}
 दक्षा२३४या । विश्वे३होयि । चदा२३४यिवाः । विश्वे
^{४ २ ५ २} ^{३ २} ^२ ^{२ ४}
 चदेवाः । विश्वे३४३ । हो३४३यि । चा३दा५यिवा६पु
^३ ^१ ^{३ १ १ १ १}
 ६ः । ए३ । सुवर्बते२३४पु(३) ॥ ४* ॥ [५]

^१ ^२ ^१ ^२
 ॥ वाजजित् ॥ परिप्रधन्वा । होवा३होयि । इन्द्रा
^२ ^{२ १} ^२ ^२ ^२
 यसोमा । होवा३होयि । स्वादुर्भि३त्राया । होवा ३
^१ ^{२ २} ^२ ^{२ १ १} ^२ ^{५ २}
 होयि । पू३षे भगाया । होवा३हो२ । वा २ ३४औ
^२ ^{१ २ २} ^२ ^{२ १} ^२ ^२
 होवा ॥ (१) एवामृताया । होवा३होयि । महेक्षया

या । होवा३होयि । सप्रुक्रोअर्षा । होवा३होयि ।

दिव्यःपीयूषाः । होवा३हो२ । वा २ ३ ४ औहोवा ॥

इन्द्रस्तेहोमा । होवा३होयि । सुनस्यपेयात् । होवा

३होयि । क्रव्देक्षाया । होवा३होयि । विश्वे चडेवाः ।

होवा३हो२ । वा २ ३ ४ औहोवा । वाजीजिगीवाविश्वाध

नारनौ२३४५(२) ॥ ६* ॥ [६]

॥ पौष्कलम् ॥ परिप्रा३ध । न्वाई२३४ग्द्रा । यसो ।

मास्वा२३४दूः । मित्रा । या२३४५ । पू६५६ । ष्णा

गायार२३४५(१) ॥ १८† ॥ [७] द

इति सामवेदार्थप्रकाशि उत्तराग्रव्यस्य एकादशस्याध्यायस्य

द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीय-खण्डे —

सूर्यस्येवेति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
 सूर्यस्येवरश्ययाद्रावयित्तवो

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 मत्सरासः*प्रसुतःसाकमीरते ।

१ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३
 तन्तुन्ततम्यरिसर्गासआशवो

१ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ २
 नेन्द्रादृतेपवतेधामकिञ्चन ॥ १† ॥

“सूर्यस्य” सर्वस्य प्रेरकस्य सुवीर्यस्यादित्यस्य “रश्मय इव”
 सर्वतो व्यापकाः किरणा इव “द्रावयित्तवः” सर्वत्र द्रवणशीलाः
 “मत्सरासः” मदकराः “प्रसुतः” प्रकर्षेण सुताः अभिषुताः
 [एकवचनं छान्दसम् (३, १, ८५)] “आशवः” ग्रहेषु चमसेषु
 च व्याप्ताः “सर्गासः” सृज्यमानाः सोमाः “ततं” विस्तृतं “तन्तु”
 तन्तुभिः कृतं वस्त्रं दशापवित्रं “साकं” सह युगपत् “परि-
 ईरते” परितो गच्छन्ति । ते सोमाः “नेन्द्रादृते” इन्द्रं वर्ज-
 यित्वा अन्यत् “किञ्चन धाम”‡ देव-शरीरं लक्ष्मीकृत्य “न पवते”

* “प्रसुतः”—इति ऋ०-पाठः ।

† ऋ० वे० ७, २, १२, १ ।

‡ ‘इन्द्रं’ मुक्ता नाम्नात् सोमस्य स्यात्पञ्चमसि—इति वि० ।

न गच्छन्ति ॥ [इन्द्रस्य धाम्नी यष्टव्यत्वञ्च “अयानीन्द्रस्य प्रिय-
धामानि”—इति मन्त्र-वर्णादवगम्यते ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उपोमतिः पृच्यते सिच्यते मधु

३ १ २ ३ २ ३ १ २

मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव

१ २ ३ १ ३ ३ १ २

मधुमान्द्रस्यः परिवारमर्षति ॥ २* ॥

अग्निन् परिवाद-रूपे स्तोत्रे इन्द्रे “मतिः” स्तुतिरूपा
“पृच्यते” स्तोत्रभिः संयोज्यते [पृची सम्पर्के (दि० आ०)] ।
तथा “मधु” मद-करः सोमः इन्द्रार्थं “सिच्यते” अद्विर्यव-सक्तु-
भिश्च सिक्ती भवति, ततः “मन्द्राजनी” [अज गति-क्षेपणयोः
(अदा० आ०)—इत्यस्य ल्युटि ङोपि रूपम्] मदकरस्य रसस्य
प्रेरयित्रौ सोमधारा तस्येन्द्रस्य “आसनि” आस्ये “अन्तर्”
मध्ये “चोदते” प्रेर्यते [आस्य-शब्दस्य “पद्वीमासित्यादिना
(६, १, ६३) आसन्नित्यादेशः] । किञ्च “सन्तनिः” ग्रहादिषु
सम्यक् विस्तृतः “सुन्वताम्” अभिषुतवतां यजमानानां सम्बन्धिनी,

* ऋ० वे० ७, २, २१, २ ।

† ‘सन्तनिः—सन्तनिः, सुन्वतामिव—यथा सुन्वतां सन्तनिः कर्म-सन्तनिः एवं
सोमस्य धारयेति—इति वि० ।

“पवमानः” पूयमानः सोमः “द्रष्टः” द्रुत-गमन-शीलः “वारम्”
अवि-बालमयं पवित्रं “परि”परितः “अर्षति” गच्छति । “इव”
—इति पाद-पूरणः ॥

“सुन्वतामिव”—“प्रप्लतामिव”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उक्षामिमेतिप्रतियन्तिधेनवो

३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ २
देवस्यदेवीरूपयन्तिनिष्कृतम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
अत्यक्रमौदज्जुनंवारमव्यय

२ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
मत्कन्ननित्तमपरिसोमोअव्ययत ॥ ३* ॥ ८

“उक्ष” रेतसः सेक्ता वृषभः पुरतो “मिमेति” शब्दायते
[माङ् माने शब्दे च (ह्वा० आ०) तं वृषभं “धेनवः” गावः†
“प्रति यन्ति” अनुगच्छन्ति । तथा “देवस्य” द्योतमानस्य संस्कृतं
स्थानं “देवीः” देव्यः स्तुतयः “उप यन्ति” उपगच्छन्ति [अनेना-
हित-सोमः स्तुतिभिश्चाभिधीयते । सोमो हि द्रोणकलशाभि-
गमन-काले शब्दं करोति, तमनु धेनवः प्रीणयिष्यः स्तुतयः
परियन्ति देवस्य स्थानं स्तुतयोऽभि गच्छन्ति । तथा सोऽयं

* ऋ० वे० ७, २, २१, ४ ।

† धेनवः—घेद् पाने (स्वा०प०), पिबत्युदकानि आदित्य-प्रसवः । अथवा

* * *— इति वि० ।

सोमः “अर्जुनं” श्वेतवर्णम् “अव्ययम्” अविमयम् अवेः स्वभूतं
 “वारं” वालं पवित्रम् “अत्यक्रमीत्” “अतिक्रामति [अतिक्रम्य
 पात्राणि गच्छतीत्यर्थः] । किञ्च सोमः “अत्कं न” आत्मीय-
 क्वचमिव “नित्तम्” उज्ज्वलं अग्रण-द्रव्यम् “परि अव्यत” परितः
 संहणीति ॥

“मिमेति”—“मिमाति”—इति पाठौ ॥ ३ ॥ ८

॥ वाजजित् ॥ ^{२२ १२} ह्यर्यस्येवा । ^{२१ २} रश्मयोद्रा । ^{२२ १} वायिल्ल
 वाः । ^{२ १} होवाश्होयि । ^{२ १२} मत्सरासाः । ^{२१} प्रद्युतःसा । ^{२२} का
^{१२} मीरतायि । ^{२ १} होवाश्होयि । ^{२ १} तन्तुन्तताम् । ^{२१} परिसर्गा ।
^{२२ १२} साआशवाः । ^{१ १} होवाश्होयि । ^{१२ २ १} नन्दोद्वतायि । ^{२१ २} परतेधा ।
^{२२ १} माकिञ्चना । ^{२ १} होवाश्हो१ । ^३ वा ^{४ २ २} २ ३ ३ औहोवा ॥ (१)
^{२२ १} उग्रोमतायिः । ^{११ २} पृच्यतेसायि । ^{२२ १२} च्यातेमधू । ^{२ १} होवाश्हो
^{२ २ १} यि । ^{२२ १ २} मन्द्राजनायि । ^{२२ १२} चोदतेआ । ^{२२ १२} तारासनायि । ^{२ १} हो
^{२ १} वाहोयि । ^{२ १२} पवमानाः । ^{२ १} सन्तनिःसू । ^{२२ १२} न्वातामिवा । ^{२ १} हो
^{२ १} वाश्होयि । ^{२ १२} मधुमान्द्रा । ^{२ १} षःपरिवा । ^{२२ १} रामर्षतायि ।

^{२ २ २} नीचोदतेआ । ^{२ २ १} तरामाना २यि । ^{१ २} पवमानःसन्तनिःह ।

^{२ २ १} न्वतामायिवा २३ । ^{१ २ ४ ५} माधू३मान्द्रा । ^{२ १} सःपरायिवा २३ ।

^{२ २ ४} रामा३र्षापूताई५६यि ॥ (२) ^{२ १} उलोवा । ^२ मिमेतिप्रतिया ।

^{२ २ १} तिधेनवा २ः । ^{१ २ २ २} देवस्यदेवीरूपया । ^{२ १} तिनिष्कार्त्ता २म् ।

^{१ २} अत्यक्रभीदजनम्वा । ^{२ १} रमव्याया २३म् । ^{१ २ ४ ५} आत्का३न्नानौ ।

^{२ १} क्तम्परायिसो २३ । ^{१ २ ४} मोआ३व्यापुनाई५६(३) ॥ ११॥ [२] ८

अग्निन्नरइति त्वचात्मकं द्वितौयं सूक्तम्,†

तत्र प्रथमा ।

^{३ २ ४ ३ १ २} अग्निन्नरोदीधितिभिररण्यो

^{१ २} ईस्तच्युतञ्जनयतप्रशस्तम् । ^{४ २}

^{३ १ २ ३ १ २} दूरेदृशङ्गुदपतिमथव्युम् ॥ १३ ॥ ^{३ २}

* ज० गा० ८प्र० २ख० ११स० ।

† 'अग्निन्नः—एतदग्निहोमसाम । वामदेवम्—इति वि० ।

‡ ज० आ० १, २, १० (१भा० २१५ ४०) = ज० वे० ५, १, २३, १०

हे “नरः” नेतार ऋत्विजः ! यूयं “प्रशस्तं” प्रकर्षणं स्तुतं
 “दूरेदृशं” दूरे दृश्यमानं दूरे पश्यन्तं वा “गृहपतिम्” गृहाणां
 पालकम् “अथव्युम्” अगम्यम् अतनवन्तं वा “अग्निम्”
 “अरण्योः” सकाशात् “हस्तच्युतं” हस्तगतं “दौधितिभिः”
 अङ्गुलिभिः “जनयन्त” उत्पादयन्त ॥

“हस्तच्युतजनयन्त”-“हस्तच्युतोजनयन्त”—इति पाठौ,
 “अथव्युम्”-“अथर्व्युम्”—इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ २ २ ३ ३ १ २ २ ३ २ २

तमग्निमस्तेवसवान्यृणवन्

३ २ ३ १ २ २ ३ १ ३

सुप्रतिचक्ष्मवमकुतश्चित् ।

३ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २

दक्षाद्योयोदमआसनित्यः ॥ २* ॥

“यः” अग्निः “दमे” गृहे गृहे “दक्षाद्यः” पूजनीयो हविर्भिः
 समर्चनीयो वा “नित्यः” अजस्रः “आस” बभूव “तं” “सुप्रति-
 चक्ष्” सुप्रतिदर्शनम् “अग्नि” “कुतश्चित्” सर्वस्मादपि भय-
 हेतोः “अवसे” रक्षणाय “वसवः” वासकाः वसिष्ठाः स्तोतारः
 “अस्ते” गृहे “न्यृणवन्” न्यदधुः ॥ २ ॥

* सू० वे० ५, १, २३, २ ।

+ विवरण-नये आसनित्य इत्येकं पदम्, तथाहि—‘आसनित्यः—आशवासनं
 नित्यं यजमान-गृहे यस्व’—इति तदाख्यानम् । विषद्वद्भेत् पदकारादेःमानं

१ २ २ १ २ २

‘आस । नित्यः’—इति दर्शनात् वज्रवीहि-स्वराश्रुतेष्वेति विचार्यम् ।

अथ तृतीया ।

१२ २१२ २२ ३२२
 प्रद्वोअग्नेदीदिहिपुरो नोजस्रयाहर्म्यायविष्ठ ।

१२ २२ ३१२ ३ १ २
 त्वांशश्चन्तउपयन्तिवाजाः ॥ ३* ॥ १०

हे “यविष्ठ” युवतमाग्ने ! “प्रेद्धः” प्रकर्षेण समिद्धः त्वम्
 “अजस्रया” अमरणशीलया “सूर्म्या” ज्वालयया “नः” अस्मदर्थं
 “पुरः” पुरस्तात् आहवनीयायने “दीदिहि” दीप्यस्व । “त्वां”
 “शश्चन्तः” बहवः “वाजाः” अश्वानि हवींषि “उपयन्ति” उप-
 गच्छन्ति ॥ ३ ॥ १०

* ऋ० वे० ५, १, २३, ३ = अ० वे० १७, ७५ ।

† अनेयं महोदर-व्याख्या—“हे ‘यविष्ठ’ [अतिशयेन ध्रुवा यविष्ठः । अतिशय-
 यने तमविष्ठनौ, स्यादूरयुवेत्यादिना व-लोपे पूर्वगुणः] हे युवतस ! हे ‘अग्ने’ ! त्वं
 ‘नो’ऽस्माकं ‘पुरो’ अग्ने ‘दीदिहि’ दीप्यस्व [दीप्यतेर्विकरण-अत्ययेन जुहोत्यादित्वात्
 शयः स्त्री द्वित्वम्, तुजादीनामिति पूर्व-दीर्घः] । किमभूत्तत्त्वम् ? ‘अजस्रया’ अमृ-
 ण्यया ‘सूर्म्या’ समित्काष्ठेन ‘प्रेद्धः’ प्रकर्षेण दीप्तः [सूर्मी शब्दः क्राष्ट-वाचकः ; यद्वा,
 लोहमयी ज्वलन्ती सूर्मा सूर्मी । अजस्रया सूर्मा सूर्मी-समानया ज्वालयया दीदिहि ।
 सूर्मी-शब्दो ज्वालोपलक्षकः] । हे अग्ने ! यतः शश्वनो निरन्तर-भागिनो वाजाः
 अश्वानि हवींषि त्वामुपयन्ति प्राप्नुयन्ति अतो दीप्यसेत्यर्थः—इति ।

आयज्ञीरिति दृष्टान्तकं तृतीयं सूक्तम्,*

तत्र प्रथमा ।

१२ १२ ३ १२ ६ १२ ३ २
आयज्ञीः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरम्पुः ।

३ १२ ३ १ ३
पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ११ ॥

“गौः” गसनशीलः “पृश्निः” प्राष्टवर्णः व्याप्ततेजाः “अयं”
सूर्यः “आक्रमीत्” आक्रान्तवान् उदयाचलं प्राप्तवानित्यर्थः ।
आक्रम्य च “पुः” पुरस्तात् पूर्वस्थां दिशि “मातरं” सर्वस्य
भूतजातस्य निर्मात्रीं भूमिम् “असदन्” आसीदति प्राप्नोति
[सदेच्छान्दसो लुङ्, हृदिच्वात् क्लृप्तादेशः । ततः “पितरं”
पालकं द्युलीकं “च”-सञ्ज्ञादन्तरिचञ्च “प्रयन्” प्रकर्षेण शीघ्रं
गच्छन् “स्वः” सु अरणः शोभन-गमनी भवति [यद्वा, पितरं
सूर्युलीकं प्रयन् वर्त्तते] ॥ १ ॥

* ‘उक्तमग्निष्टोमसाम । इदानीं मानसं लोको भवति । * * * । मनसा हि-
करोति । मनसो ज्ञायति । मनसा प्रतिचरति । मनसा निघनमुपयन्ति । एतन्मानसं
येनात्यग्निष्टोमायज्ञौः पृश्निरक्रमीदिति’—इति वि० ।

† इ० आ० प० ३, ५, ४ (१ भा० ३४३ पृ०) = ऋ० वे० ८, ८, ४७, १ = अ०

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १
अन्तश्चरतिरोचनास्यप्राणादपानती ।

१ २ २ ३ १ २ २ २
व्यख्यन्महिषादिवम् ॥ २* ॥

“अस्य” सूर्यस्य “रोचना” रोचमाना दीप्तिः “अन्तः” शरीर-मध्ये मुख्य-प्राणात्मना “चरति” वर्तते । किङ्कुर्वती ? “प्राणादपानती” मुख्य-प्राणस्य प्राणाद्या वृत्तयः, तत्र प्राणानां नाडीभिरुद्धं वायोर्निर्गमनम्, तथाविधात् प्राणात् प्राणनात् अनन्तरम् अपानती, अपानं तन्नाडीभिरवाङ्मुखं वायोर्निर्गमनं तत् कुर्वती, [अप-पूर्वादनितेः लट्: शब्द, अदादित्वाच्छपोलुक्, “उगितश्च (४, १, ६)”—इति ङीप्, “शतुरनुमः (६, १, १०३)”—इति नद्यनुदात्तत्वम् । यद्वा, ‘अन्तर्’ व्यावाप्त्यर्थ-व्योर्मध्ये ‘अस्य’ सूर्यस्य ‘रोचना’ रोचमाना दीप्तिः ‘चरति’ गच्छति । रुच दीप्ती (भा० आ०), ‘अनुदात्तेतश्च हलादेः (३, २, १४६)”—इति युच् । किङ्कुर्वती ? ‘प्राणात्’ प्राणनात् उदयादनन्तरम् ‘अपानती’ सायं समये अस्तं गच्छतीति । ईदृश्या दीप्त्या युक्तः] अतएव “महिषः” महान् सूर्यः “दिवम्” अन्तरिक्षम् उदयास्तमययोर्मध्ये “व्यख्यन्” विचष्टे प्रकाशयति ॥ महिषः—महे: “अविमह्योष्टिषज् (उ० १, ४५)”—इति

औणादिकः षिषच् प्रत्ययः । व्यत्यन्—“चक्षिडः ख्याज् (२, ४, ५४)”, छान्दसे लुङि “अस्यतिवक्ति (३, १, ५२)”—
इत्यादिना चै रङादेशः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १४ ३ १ २ ३ १ २ १ १ २
त्रिंशद्वामविराजतिवाक्पतङ्गायधीयते ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रतिवस्तोरहद्युभिः ॥ ३* ॥ ११

“त्रिंशत्” “धाम” धामानि स्थानानि [वचन-व्यत्ययः
(३, १, ८५)] । “वस्तोः” वासरस्याहोरात्रस्यावयवभूतानि
“अह” [ग्रन्थोऽवधारणे] “द्युभिः” सूर्यस्य दीप्तिभिरेव “वि
राजति” विशेषेण दीप्यन्ते [व्यत्ययेनैकवचनम् (३, १, ८५)] ।
मुहूर्त्तान्यत्र धामान्युच्यन्ते ; पञ्चदश रात्रेः, पञ्चदशाह्नः] । “पत-
ङ्गाय” [पतन् गच्छतीति पतङ्गः सूर्यस्तस्मै] सूर्याय, स्तुति-
रूपा “वाक्” “प्रति धीयते” पतिमुखं धीयते प्रतिमुखं स्तोत्रभि-
विधीयते क्रियते [यद्वा, ‘वस्तोः’ अहनि ‘त्रिंशद्वामानि’ घटि-
काभिप्रायमेतत्, त्रिंशत् घटिकाः ; “अत्यन्त-संयोगे द्वितीया
(२, ३, ५)” । एतावन्तं कालं ‘द्युभिः’ दीप्तिभिः असौ
सूर्यो ‘वि राजति’ विशेषेण दीप्यते, तस्मिंश्च समये ‘वाक्’
त्रयीरूपा ‘पतङ्गाय’ ‘प्रतिधीयते’ प्रतिमुखं धीयते तं सूर्यं सेवत

* ऋ० आ० प० ३, ५, ६ (२सा० ३४८४०) = ऋ० वे० ८, ८, ४७, ३ = य०
वे० ३, ८ ।

इत्यर्थः । अग्रते हि—“ऋग्मिः पूर्वाङ्गे दिवि देव ईयते यजुर्वेदे
तिष्ठति मध्ये अङ्गः”—इत्यादि ॥ ३ ॥ ११

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य एकादशस्याध्यायस्य

तृतीयः खण्डः* ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हाहं निवारयन् ।

पुमथास्तुरो देवाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ११ ॥

॥ इति षष्ठस्य प्रथमोऽर्द्धप्रपाठकः ॥ ६ * ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्तक-

श्रीवीर-बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणा-

चार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे

उत्तरायन्य एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—000—

* 'समाप्तस्यायं द्वादशाहः सवात्मकोऽहीनात्मकश्च'—इति वि०

† 'षष्ठस्य प्रपाठकस्य प्रथमोऽध्यायः समाप्तः'—इति वि० ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्
निर्गमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ १२ ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्याय आरभ्यते* ॥

तत्र

प्रथमखण्डे उपप्रयन्ताइति चतुर्त्थं प्रथमं सूक्तम्†—

तत्र प्रथमा ।

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ १
उपप्रयन्तोऽध्वरम्नन्त्रोचेमाग्रये ।

३ २ ४ १ २ ३ २
आरेऽस्मेचगृण्वते ॥ १३ ॥

* 'इदानीं' गवामयनं संवत्सरं सन्नमुच्यते । तत्रादौ ज्योतिषोमेऽतिरावः पुनः प्रापणीयमहरं तदुक्तम् । पुनश्चत्वारोऽभिज्ञवाः । पृष्ठः षडहः समाप्तः । स द्वितीयः तृतीयः स चतुर्थः स पञ्चमः त्रयोऽभिज्ञवाः षडहः पृष्ठः षडहस्तयसि शारभ्यस्यत्वारोऽभिज्ञवाः समाप्ताः । स द्वितीयः स तृतीयः स चतुर्थः त्रयोऽभिज्ञवाः षडहः आशुष गौश्चे अहनी द्वादशाहानि महाव्रतञ्चातिरावस्य संवत्सरस्यैतद् ब्राह्मणम् । अचाक्रां परिणामं सषष्ठ्यानि त्रीणि शतानि । एकादशाष्टषष्ठाः पञ्चचत्वारिंशदभिज्ञवाः अभिजित् तत्राहं आशुषौ आशुषौ द्वादशाहस्य दशाहानि अतिरावः । चतुर्विंशत्या सह षष्ठो-मासः पूर्वस्मिन् पक्षसि प्रतातिराचाभ्यां प्रथम उत्तरास्मिन् गवामयने अतिरावसौदि-तम् अध्याय-परिसमाप्तेः ब्राह्मणेनोक्तानि आर्षच्छन्दोदैवतानि । इदानीं तेषां साम्नां स्तोत्रीयाः ते यत्तया इत्येवमारभ्यते—इति वि० ।

† 'आग्रयेमाग्र्यम्'—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० १, ५, ९, १ = य० वे० ३, ११ ।

“अध्वरं” हिंसा-प्रत्यवाय-रहितम् अग्निष्टोमादि-यज्ञम् “उप
 प्रयन्तः” उपेत्य प्रकर्षेण यन्तो गच्छन्तः प्राप्स्यविच्छेदेन सम्यग-
 सुष्ठितवन्त इत्यर्थः । तादृश वयम् “अग्नये” अङ्गनादि-गुण-युक्ताय
 देवाय “मन्त्र” मनन-साधनमेतत् सूक्त रूपं स्तोत्रं “वोचेम”
 वक्तव्यं भूयास्त इत्याशास्यते । कीदृशायाग्नये ? “अस्य अस्मै
 च शृणुते” च-शब्दोऽप्यर्थे आरे-शब्दात् परो द्रष्टव्यः आरे च
 दूरेऽपि स्थित्वास्माकं स्तुतीः शृणुते अस्मासु प्रीत्यतिशयेन सर्वत्र
 विद्यमानोऽग्निः अस्मदीयमेव स्तोत्रं शृणोतीति भावः ।
 [वोचेम—ब्रुवीवचिः (२, ४, ५३), लिङ्गाशिथङ्, “वचउम्
 (७, ४, २०)”—इत्युमागमः । शृणुते—“शतुरनुमः (६, १,
 १०३)”—इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ २२ ३१ २ ३१ २३ १२
 यः स्त्रीद्वितीषु पूर्व्यः सञ्जगमानासु कृष्टिषु ।

१२ ३२ २१ २

अरक्षद्वापुषे गयम् ॥ २* ॥

“पूर्व्यः” चिरन्तनः “यः” अग्निः “स्त्रीद्वितीषु” बधकारिणीषु
 “कृष्टिषु” शत्रुरूपासु प्रजासु “जगमानासु” सुसङ्गतासु सतीषु
 “दापुषे” हवींषि दत्तवते यजमानाय “गयं” धनम् “अरक्षत्”
 रक्षति । तस्मै मन्त्रं वोचेमेति पूर्व्येण सम्बन्धः । [स्त्रीद्वितीषु—

* ऋ० वे० १, ५, २१, २ ।

† ‘गयं’ प्राप्तम् यद्यपि सर्वासु बहुव्यजातिषु अन्तर्हृदयान्तःस्थितं ज्योतिः तथापि
 यः यजमानाः तेषां गयान् प्राप्तान् रक्षति—इति वि० ।

णिह स्नेहने चुरादिः ; “स्नेहयति”—इति वध-कर्मसु (निघ०
 २, १८, १३) पठितम् ; स्निह्यन्ते हिंस्यन्ते प्रजा आभिरिति
 स्नीहितवः करणे “तितुवेष्वग्रहादीनाम् (७, २, ८ वा०)”—
 इति वचनात् निश्चहीतिर्निपतितिवदिङागमः व्यत्ययेनैकारस्य
 ईकारः, क्तिनीदीर्घश्च ; निच्चादाद्युदात्तत्वम् । सञ्जग्मानासु
 —“समोगमि (१, ३, २८)”—इत्यात्मनेपदम्, लिटः कानच्,
 गमहनेत्यादिनीपधालोपः । अरक्षत्—“ऊन्दसि लङ्लुङ्लिटः
 (३, ४ ६)”—वर्त्तमाने लङ् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
 सनेवेदाअमात्यमग्नीरक्षतुशन्तमः ।

३ २ ३ ३ १ २
 उतास्मान्पात्वृक्षसः ॥ ३* ॥

“सः” अग्निः “नः” अस्माकं “वेदः” धनम् “अमात्यम्”†
 अन्तिके भवं सहभूतं वा “रक्षतु” शत्रोः सकाशात् पालयतु ।
 कीदृशः ? “शन्तमः” सुखतमः “उत” अपिच “अस्मान्” वसि-
 ष्ठान् “अंहसः” पापात् “पातु” रक्षतु ॥

“शन्तमः”—“विश्वतः”—इति पाठौ ॥ ३ ॥

* ऋ० वे० ५, २, १८, ३ ।

† ‘अस्यत प्राणः, प्राणत्वं हृदयावस्थितं श्रोतिः’—इति वि० ।

हे “देव” द्योतमानाग्ने ! तान् अश्वान् “युङ्क्ष्व” आत्मीये
 रथे योजय । “ये” “तव” त्वदीयाः “साधवः” साधकाः
 सुशीला वा “अश्वासः” अश्वाः “आश्ववः” शीघ्रगामिनः सन्तः
 “अरम्” अलम् पर्याप्तं त्वदीयं रथं वहन्ति “हि” खलु । तान-
 श्वान् रथे युङ्क्ष्वेत्यर्थः ॥

“युङ्क्ष्व” — “युङ्क्षा” — इति पाठौ, “आश्ववः” — “नान्यवः”
 — इति च ॥ २ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
 अश्वानायाद्यावद्वाभिप्रयांसिवीतये ।

२ १ १ २ २ २
 आदेवात्सोमपीतये ॥ २* ॥

हे अग्ने ! “नः” अस्मान् “अच्छ” आभिमुख्येन “याहि”
 आगच्छ, तथा “प्रयांसि” हविर्लक्षणाद्यन्नानि “अभि” लक्ष्य
 “देवान्” “आदह” । किमर्थम् ? “वीतये” तेषां हविर्भक्ष-
 णार्थं, तथा “सोमपीतये” सोमपानार्थञ्च ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
 उदग्नेभारतद्युमदजसेणदविद्युतत् ।

२ ३ १ २
 शोचाविभाह्यजर ॥ ३† ॥ ३

हे “भारत” हविषां भर्त्तरणे ! * “उत् शीघ्र” उन्नततरं दीप्यस्व । तदेव विवृणोति— हे “अजर” जरा-रहितान्ते ! “दविद्युतत्” भृशं द्योतमानस्त्वं “द्युमत्” द्युमता दीप्तिमता सुपांसुलुगिति (७, १, ३६) हवीया-लुक् “अजस्त्रेण” अविच्छेदेन “तेजसा” “वि भाहि” विशेषेण प्रकाशयस्व [यद्वा, भाति रन्तर्णीत-व्यर्थः । त्वं प्रथममुद्दीप्यस्व यद्वादात्म्येन तेजसा सर्वं जगत् प्रकाशयेति योजनीयम्] ॥ ३ ॥ २

अथ प्रसुत्त्वानायेति लघात्मकं हवीयं वृत्तम् ।

ततः प्रथमा ।

१२३१२ २२३ १३ १२३१२२

प्रसुत्त्वानायान्यसोमसोमवष्टुतद्वयः ।

२३१२ ३१२ २२३१२ २२

अपश्चानमराधसं हतापखलभृगवः ॥ १३ ॥

“सुत्त्वानाय” सुत्त्वानस्याभिषूयमाणस्य “अन्वसः” अदानी-यस्य सोमस्य “तत्” प्रसिद्धं “वचः” वचनं घोषं “भर्त्तरः” मारकः कर्म-विष्णुकारी श्वा “न वष्टु” [वष्टु कान्ती (अदा० प०) —इति धातुः] न कामयतां न शृणोत्विति यावत् । तथा, हे स्तोतारः ! “राधसं” साधक-धर्म-रहितं “ज्ञानम्” “अपहृत” ।

* “भारत—भरतामनुषास्त्रे निर्भयिताग्ने”—इति वि० ।

† इतानीमाभिष्टुविकानुच्यते—इति वि० ।

‡ क० आ० ६, २, १, ६ (२ भा० १६८ पृ०) = पुनरत्रैव मुरस्तात् १, २, २१, ३ (३ भा० २६० पृ०) = ऋ० वे० ७, ५, ३, ३ ।

तत्र दृष्टान्तः—“मखं न” यथा पुरा अपराङ् मखं एतन्नामानं
“भृगवः” अपहतवन्तः तथा अपहृतेत्यर्थः ॥

“सुन्वानाय”-“सुन्वानस्य”—इति पाठौ, “वष्ट”-“वृत्”—
इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ १२ २२ ३ २७ ३ २ २२
आजामिरत्केअव्यतभुजेनपुत्रओण्योः ।

१२ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १२
सरज्जारेनयोषणांवरोनयानिमासदम् ॥ २* ॥

“जामिः” बन्धुभूतो देवानां † सोमः “अत्के” आच्छादके
पवित्रे “आ अव्यत” आह्वणोति सम्बन्धी भवति । तत्र दृष्टान्तः—
“भुजे न” यथा “ओण्योः” रक्षकयोः मातापित्रोः भुजे “पुत्रः”
आह्वणोति, तद्वत् । ततः सोऽयं सोमो “योनिं” स्व-स्थानभूतं
कलशम् “आसद” आसत्तु “सरत्” सरति । तत दृष्टान्तद्वयम्
—“जारी न” यथा जारो “योषणा” असतीं स्त्रियं प्राप्तुं सरति,
यथा वा “वरः” कन्यां प्राप्तुं गच्छति, तद्वत् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २७ ३ १ ३ १ २
सवीरोदक्षसाधनेवियन्तस्तभरोदसी ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
हरिःपवित्रेअव्यतवेधानयानिमासदम् ॥ ३† ॥ ३

* ऋ० वे० ७, ५, ३, ४ ।

† जामिः—सोमस्य भगिनी—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, ५, ३, ५ ।

“दक्षसाधनः” बल-साधनः “सः” सोमः* “वीरः” समर्थो
भवति, “यः” सोमः “रोदसी” व्यावायुयिव्यौ “वि तस्तन्म”
स्व-तेजसा व्यस्तत्वात् आच्छादयदित्यर्थः । किञ्च “हरिः” हरित-
वर्णः सोमः “विधा न” यथा विधाता यजमानः स्व-गृहमासी-
दति, तद्वत् “योनि” स्व-स्थानं कलशम् “आसदम्” आसत्तु
पवित्रे “अव्यत” आवृणोत् सम्बद्धो भवति ॥ ३ ॥ ३

५ ३२ १ ४ ५
॥ मद्भागौरीवितम् ॥ प्रसु । न्वाना३ । यअन्धसाः ।

१ २ १ २ २ ४
मर्त्तानवष्टतद्वचारः३ । आपश्चाना३१२३म् । अरा५ध

१ २ २ ४ ५ ४
साम् । दातामखा३१२३म् । नभोवा । गा ५ वो ६

५
दाइ(१) ॥ १७† ॥ [१]

५ ३२ २२ ३ ४ ५ १ १ ३
॥ गौतमम् ॥ प्रसुन्वानायअन्धसाः । मर्त्तानवो ।

२ १ १ ३ ३ ४ १ २ २ १ ३
ष्टतद्वचारः । अपा । औहो२३४वा । श्वानमराधसा

* ‘सः—सोमः प्रजापतिः नृपो वा’—इति वि० ।

† क० गा० १ प्र० २ अ० १७ स० ।

१ १ १ १ २ २ २ २ २ २ २ २
 २३४५म् । हता । औदोर३४वा । मखा । औदोर३
 ४ ४ ४
 ४वा । नभुपुगवाः । होइ । डा(१) ॥ १८* ॥ [२]

५ २ २ २ ४ ५
 ॥ महामौरीवितम् ॥ प्रसु । न्वाना३ । यन्नन्यताः ।

१ २ २ २ ४
 मत्तिनिवष्टतद्वचा२३ः । आपश्वाजा३१२इत् । अराप्रभ

१ २ २ ४ ५ ४ ५
 साम् । हातामन्वा३१२इम् । नभोवा । गापूवोइहा

५ २ २ २ ४ ५ १ २
 यि ॥ (१) आजा । मिरा३ । त्क्विय्यता । भुजेनपुत्र

२ १ २ २ ४ १ २
 आणियो२३ः । सारज्जारा३१२३ः । नयोपूषणम् । वारो

२ ४ ५ ४ ५ २
 नयो३१२३ । निमोवा । सापूदोइहायि ॥ (२) सबौ ।

२ २ ४ २ ५ १ २
 रादा३ । हताधनाः । वियस्तस्तभरोदसा २ ३ यि ।

१ २ ४ २ १ २ २
 हारिःपवा३१२३यि । ने आपूव्यता । वायिधानयो३१२३ ।

४ ५ ४ ५
 निमोवा । सापूदोइहायि(३) ॥ १७* ॥ [३]

॥ श्रीकोनिधनम् ॥ आजाश्मिरत्केचव्यता । भुजा

यि । नपुत्रो रणायो ३ । सरञ्जारो नयो र्पाणा २

१२ ५ २ १२ ४ ५२ २
म् । वरीनार३४यो । निमा । सारहार३४चौहोवा ।

ॐ २३४ काः (२) ॥ १८* ॥ [४]

॥ औदलम् ॥ सवीरोदा । चासा रधनाः । वियस्त

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

व्यता । विधानाश्च । नार्शयिमाश्च । साश्च ४५ हो

५
इच्छायि(३) ॥ १८१ ॥ [५]

॥ साध्रम् ॥ प्रसुन्वाहनाय च न्यसाः । मर्त्तिनिवारः ।

४१ ४ ५ १११८ १२ १३ ११११
 छता३४५त् । वार३४चाः । अपञ्चानमराधसार३४५म ।

१ २ ३ ४ ५ ६
जाताओ २३४वा । माखाओ २३४वा । नभपुगवाः ॥ (१)

५४४ ९ ४५४ ४ ५११ ११ ५११ ११

अजामाश्विरत्ने अव्यता । मुजायिनपुत्र । जज्जोश

* ख० गा० इप्र० रस्य० एनसा० ।

† क० गा० इप्र० रस्य० १८सा० ।

४५ । ^३ णी^५ २३४योः । ^{१ २२ १२ २ ७ ११११} सरज्जारीनयोषणा^१ २३४५म् । वा

^{२ ३ ५ १ २ ३ ५ ४} राओ^३ २३४वा । ^५ नायाओ^१ २३४वा । ^४ निमा^५ ५सदाम् ॥ (२)

^{५ २ २ ४ ५ ४ २ ५ २ १ २ १ ५ २ ३} सवीरो^३ ३दक्षसाधनाः । ^{२ १ २ १ ५ २ २} वियास्तस्तार । ^३ भरो^५ ३४५ । दा

^{५ १ २ १ २ २ २ १ १ १ १ १ १ १ २ ३} २३४सी । ^{१ २ ३} हरिःपवित्रे^५ अच्यता^४ २३४५ । ^{१ २ ३} वाधिधाओ^५ २३४

^{५ १ २ ३ ५ ४ ४} वा । ^४ नायाओ^१ २३४वा । ^४ निमा^५ ५सदाम् । ^४ हो^५ ५ई ।

डा(३) ॥ २०* ॥ [६]

^{५ २ २ ३ २ ३ ४ ५ २ १ २ १} ॥ गौतमम् ॥ आजामिरत्के^५ अच्यता । ^{२ १ २ १} भजायिनपूत् ।

^{२ २ १ ३ २ ३ २ ५ २ २ १ २ २} चओ^५ णियोः । ^{३ २ ३ २ ५ २ २ १ २ २} सरा । ^५ औहो^५ २३४वा । ^{२ २ १ २ २} जारोनयोष

^{३ १ १ १ १ २ २ ३ २ ५ ३ २ ३ २} णा^५ २३४५म् । ^{३ २ ३ २ ५ ३ २ ३ २} वरा । ^५ औहो^५ २३४वा । ^{३ २ ३ २} नाया । ^{३ २} औहो

^{५ ४ ४} २३४वा । ^५ निमा^५ ५सदाम् । ^५ हो^५ ५ई । ^५ डा(२) ॥ १७ ॥ [७]

^{३ २ २ ४ ५ २ ४} ॥ श्यावाश्वम् ॥ ^{३ २ ३ २ ५ २ ४} प्रसू^५ ३१ । ^{५ २ ४} न्वा^५ ३ना । ^{५ २ ४} यश्च । ^{५ २ ४} धा^५ ३सः ।

^{५ १ २ २ १ १ २} ए^५ चिया । ^{५ १ २} मा । ^{५ १ २} तोनव^५ ह्या । ^{५ १ २} तत् । ^{५ १ २} वचा^५ २ः । ^{५ १ २} ए^५ चिया^५ २ ।

^{१२} ^२ ^४ ^५ ^{१२} ^{१२}
अपञ्चानामाश्राश । धार३४साम् । ऐचा२यि । एहि

^{२१} ^२ ^४ ^{२४}
यार । हतामखान्ना३भृ३ । गा३पुवोद्दहायि ॥ २* ॥ [८]

^{१२} ^२ ^१ ^१ ^{११२}
॥ औदलम् ॥ प्रसुन्वाना । याआरन्धसाः । मर्तो

^२ ^{१२३} ^५ ^{१२२१}
नवार । ह्यातद्धार३४चाः । अपञ्चानाम् । आरारध

^१ ^{११२} ^२ ^१ ^५ ^१
साम् । हतामार३खा३म् । नार३भृ३ । गा३४पुवोद्द

^५ ^{१११२} ^१ ^१ ^{११२} ^१
हायि ॥ १) साजामिरा । त्केआरव्यता । भुजेनपू३

^१ ^२ ^३ ^५ ^{१२२१} ^१
त् । त्राओणा२३४योः । सरज्जाराः । नायो२षणाम् ।

^{२१२} ^२ ^१ ^५ ^२ ^५
वरोना२३यो३ । नार३यिमा३ । सा३४पुवोद्दहायि ॥ (२)

^{११२२} ^१ ^१ ^{११} ^२ ^१ ^३
सवौरोदा । क्षासा२धनाः । वियस्तस्ता३ । भारोदा

^५ ^{१५} ^१ ^१ ^{१२१२}
२३४सायि । हरिःपवायि । वेआरव्यता । वेधाना२३

^२ ^१ ^५ ^२ ^५
यो३ । नार३यिमा३ । सा३४पुवोद्दहायि (३) ॥ ३* ॥ [९]

५ ३२ २२ ३ ४ ५

२ १ १ १

॥ गौतमम् ॥ प्रसुन्वानायचन्धसाः । मत्तीनिवा ।

२ १ ५ २ ३२ ५ १२ २२ १ ३
ष्टतद्वचारः । अपा । औहो २३४वा । श्वानमराधसा१ १ १ १ ३ २ ३२ ५ ३ २ ३२
२३४पुम् । हता । औहो २३४वा । मखा । औहो २३५ ४ ५ २ ३ २ ३२ ४ ५ १ १
४वा । नभृपुगवाः ॥ (१) आजामिरत्केच्यता । भजा२ १ २ २ १ ३ २ ३२ ५
यिनपूत् । चओणियो २ः । सरा । औहो २३४वा ।२ २ १ २ ३ १ १ १ ३ २ ३२ ५ ३ २
जारोनयोषणा २३४पुम् । वरा । औहो २३४वा । नया ।३ २ ५ ४ ५ २ ३ २ ३ ३ ४ २ ५
औहो २३४वा । निमाप्रसदाम् ॥ (२) सवीरोदक्षसाध२ १ २ १ १ २ १ ३ २ ३ २ ३२ ५
नाः । वियास्तस्ता । भरोदसारय । हरा । औहो५ २ १ २ २ ३ १ १ १ ३ २ ३२ ५
२३४वा । पवित्रेच्यता २३४पुम् । वधा । औहो २३४वा ।३ २ ३ २ ५ ४ ५ ३
नया । औहो २३४वा । निमाप्रसदाम् । होपूई ।

डा(३) ॥ १३* ॥ [१०]

२ १

४ २ ५

२ ३

५

॥ आकूपारम् ॥ प्रसुन्वारश्नाय । अन्धार३४साः ।

१ १ २ १ २ १ २ १
मर्त्तीरनवा । छतद्वचाः । अपश्चानारम् । अराध-

१ २ १ १ ४ २ ४
साम् । हतामाखारम् । नारम्भृम् । गा३४५वोद्हा

१ २ १ ४ ५ २ ३ ५ १
यि ॥ (१) आजामारम्भिरत्को । अय्यारम्भता । भुजा

१ २ १ २ १ २ १
रयिनपूत् । चओणियोः । सरज्जारोः । नयोषणाम् ।

१ २ १ ४ २ ५
वरोनायोः । नारम्भयिमाः । सा३४५दोद्हायि ॥ (२)

१ २ ४ २ ५ १ २ २ २
सवीरोः । साधारम्भनाः । वियारम्भस्तस्ता । भरो

१ २ १ २ १ २ २ १
दसायि । हरिःपावारयि । चओय्यता । वेधानायो

१ ४ २ ५
२३ । नारम्भयिमाः । सा३४५दोद्हायि (३) ॥ १६* ॥ [११]

२ ५ २ २ २ ३ ४
॥ दैवोदासोत्तरम् ॥ प्रा४सुन्वाना । हो । यन्नन्ध

५ ५ २ २ २ १ २ ४ ५ २
सा३४ । मर्त्तीनवष्टतद्वचोअपश्चानमराधाःसाम् । हता

३ १ ५ २ २ ५ ५ ५
मखाः । औहोवा । नारम्भृम् । गवोः३४५ई ।

डा (३) ॥ १४* ॥ [१२]

१ २ २ १ २ १ २
 ॥ शुद्धाशुद्धीयम् ॥ प्रसुन्वानायअन्धसाः । मर्त्ता
 २ १ २ १ २ २ २ १ २ १ २
 नवष्टतद्वा२३चाः । अपश्चानमराधा२३साम् । हतामा
 २ १ २ २ ५ २ ३ १ १ १ १
 २३स्वा३म् । नार । भृगा३४औहोवा । वा२३४५ः ॥ (१)
 १ २ २ १ २ २ १ २ २ १ २ १ २
 आजामिरत्केअव्यता । भुजेनपुत्रओणा२३योः । सर
 २ २ २ २ २ १ २ २ १ २ १
 ज्जारोनयोषा२३णाम् । वरोना२३यो३ । ना२३यो
 १ १ २ २ ५ २ ३ १ १ १ १
 ३ । ना२यिम् । आसा३४औहोवा । दा२३४५म् ॥ (२)
 १ २ २ १ २ १ २ २ १ २ १ २ १
 सवीरोदक्षसाधनाः । वियस्तम्भरोदा२३सायि । हरिः
 २ २ १ २ २ १ २ १ २ १ २ १ २
 पवित्रेअव्या२३ता । वेधाना२३यो३ । ना२यिम् । आ
 २ ५ २ २ ३ १ १ १ १ १
 सा३४औहोवा । दा२३४५म् ३ ॥ १७* ॥ [१३]

३ ४ २ २ ३ १ ५ २ ३
 ॥ वैश्वामित्रम् ॥ प्रसुन्वानायअन्धसः । मर्त्ताना२३४
 ५ २ १ २ २ १ २ २ १ २ १
 वा । ष्टा३ताद्वा३चाः । आपश्चाना२३हा३यि । अरा
 १ ३ ५ १ २ २ ३ ५ ४
 २धार ३ ४साम् । हतामाखौवाओ२३४वा । नभृपुग

वाः ॥(१) ^{३२ ४२}आजामिरत्के^{३२ ४५}अव्यत । ^{२ १ ३}भुजायिनार^{३ ४५} ३ ४५ ।
^{२ १ २ २}त्राश्चोणाश्वोः । ^{२ २ २ १ २}सारज्जाराश्च^{१ १ ३} ३ ४ ।
^५णाम् । ^१वरो । ^{२२ १ ३}नायोवाओ^{५ ४}श्च^४ ३ ४ वा । ^५निमापुसदाम् ॥(२)
^{३४ २}सवीरोदक्षसाधनः । ^{३२ ४ ५}वियास्तार^{२ १ ३}श्च^५ ३ ४ स्ता । ^{२ १ २ १}भाश्चोदा^२श्च^२ सा
^{१ २ १}यि । ^२हारिःपवा^१श्च^{१ १ ३} ३ ४ यि । ^५त्रेआरव्यार^५ ३ ४ ता ।
^१वेधाः । ^{२२ १ ३}नायोवाओ^{५ ४}श्च^४ ३ ४ वा । ^४निमापुसदाम् । ^४होपु
ई । डा(३) ॥ १६* ॥ १४

॥ स्वारकौत्सम् ॥ ^{२ २ २}प्रसुन्वानायाश्च^२अन्धसाः । ^{१ २}मर्त्तान
^{२ २ २}वष्टताश्च^२ ३ ४ चाः । ^{२ १ २ २}अपश्चानाश्च^२ ३ ४ म् । ^२आश्च^२ ३ ४ धाश्च^२ ३ ४ म् ।
^१आश्च^{२ १ ३} ३ ४ यि । ^५क्षतामखोर^{३ २ ४}श्च^४ ३ ४ यि । ^{३ २ ४}नभूश्च^४ ३ ४ गा^४ ३ ४ पु^४ ३ ४ वा^४ ३ ४ ५ ३ ४ ॥(१)
^{२२ २}आजामिरत्के^२श्च^{१ २}अव्यता । ^{२ २ २}भुजेनपुत्रओ^१णाश्वोः । ^{२ ३}सर
^२ज्जारोश्च^{२ १ २ २} ३ ४ नाश्वोषा^१णाम् । ^{२ ३}आश्च^३ ३ ४ यि । ^३वरोनयोश्च^३ ३ ४

नाऽ २ विमा । साराया २ ३४ औ होवा । दा २ ३

४ पूम् (३) ॥ २१* ॥ [१६]

॥ कश्चरयन्तरम् ॥ प्राप्तुवानायचव्यसाः । मर्त्तानवा ।

हाश्तादाश्वाः । अपश्चानमराधसार२३मैही । चता

मार३४खाम् । नभू३आउवार३ । ए३ । गवआ ॥ (१)

आजामिरत्केअव्यता । भुजेनपूत् । आ३ओणाश्योः ।

सरज्जारोनयोषणा२३मैही । वरीना२३४यो । निमा३

१उवा२३ । ए३ । सदमा ॥ (२) सावीरोदक्षसाधनाः ।

वियस्तस्ता । भा३रोदाश्सायि । हरिःपवित्रेअव्यता

२३४ऐही । वेधाना२३४यो । निमा३१उवा२३ । ए३ ।

सदमा (३) ॥ ०१ ॥ [१७] ३

इति सामवेदार्थप्रकाशि उत्तरायन्यस्य द्वादशस्याध्यायस्य

प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीय-खण्डे —

अभ्रातृव्यइति प्रगाथात्मकं प्रथमं सूक्तम्.

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ १ २२ ३ २ २ ३ १ २
 अभ्रातृव्योअनात्वमनापिरिन्द्रजनुषासनादसि ।

३ १ २ ३ १ २
 युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १* ॥

हे “इन्द्र !” त्वं “जनुषा” जन्मनैव “अभ्रातृव्यः” [“व्यन् सपत्ने (४, १, १४५)”—इति व्यन् प्रत्ययः] सपत्न-रहित इत्यर्थः, “अना” अनेलकः [“ऋतश्छन्दसि (५, ४, १५८)”—इति कपः प्रतिषेधः] अनियन्तृक इत्यर्थः, “अनापिः” बन्धु-वर्जितश्च, “सनादसि” चिरादेव भ्रातृव्यादि-वर्जितोऽसि, यत्र त्वया “आपित्व” बान्धवम् “इच्छसे” इच्छसि, तत्र “युधेत्” युधेनैव युद्धं कुर्वन्नेव स्तोतृणां सदा भवसि ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
 नकीरवत्सख्यायविन्दसेपीयन्तिसेसुराश्वः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
 यदाकृणोषिनदनुसमूहस्यादीत्यितेवह्वयसे ॥ २† ॥ ४

* ऋ० आ० ५, १, २, १ (१भा० ८१६४०) = ऋ० वे० ६, २, ३, ४ ।

† ऋ० वे० ६, २, ३, ५ ।

हे इन्द्र ! “रेवतं” केवल-धनवन्तं यागादि-रहित मय-
 षार माढा मन्यं मानवं “सख्याय” सखिभावाय “न किः
 विन्दसे” न लभसे नाश्रयस्तीत्यर्थः । अयष्टारो जनाः किं सन्ती
 त्यतआह—“सुराश्वः” [टु ओ श्वि गति-वृद्धो ; सुरया वृद्धाः
 तद्वत्] प्रमत्त-नास्तिकाः । “ते” त्वां “पीयन्ति” [पीयति
 हिंसा-कर्मा] हिंसन्ति तन्नाश्रयस्तीत्यर्थः । “यद्वा” त्वं
 “नदनु” [नद अव्यक्ते शब्दे (म्वा० प०)] यं स्तोतारं
 “क्षणेपि” मदीयोऽयमिति यदा भावयसि, तदानीं संवहसि
 धनादिकं तस्मै वहसि । “आदित्” अनन्तरमेव तेन लब्ध-
 धनेन स्तोत्रा “पिता इव” पालयिता जनक इव “ह्यसे”
 स्तुतिभिराह्वयसे स्तूयसे इत्यर्थः ॥ २ ॥ ४

॥ उच्यामहीयवम् ॥ ^{५ २ २ ४ २} अभ्रातृभ्योअनातुवाम् । अ ^२

^{१ २} नापाशयिराश्रयि । ^१ द्रजनुषासनाश्रदसायि । ^{१ २ २ २ १} यूधेदापा

^२ यि । त्वमाश्रयिच्छसाउ । वा३ ॥ (१) ^{५ २ २ ४ ५} युधेदाश्रपित्वमि

^{२ १ २} च्छसायि । ^१ नकायिराश्रयिवा२ । ^{१ २} त्सखियायवा२श्रयि

^२ न्दसायि । ^{१ २ १} पायियन्तितायि । ^२ सुरा २ ३ श्रुवाउ । वा

^{५ २ २ ४ २ ५ २} ३ ॥ (२) ^{२ १ २} पीयन्ताश्रयितेसुराश्रुवाः । ^२ यदाकाशणी२ । वि

युजः” ब्रह्मणा परिवृढेणेन्द्रेण युक्ताः [यद्वा, ब्रह्मणाऽस्मदीयेन
 स्तोत्रेण अस्माभिर्दत्तेन हविषा वा युक्ताः] “केशिनः” केशाः
 सटाः तैर्युक्ताः । किमर्थम् इन्द्रस्य वहनम् ? तदाह—“सोम-
 पीतये” सोमस्य पानाय यथाऽस्मदीयं सोमं पिबेत्, तथा वहन्त्वित्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ १ २ ३ २ २ १ २ ३ १ २
 आत्वारथेहिरण्ययेहरीमयूरशेया ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
 श्रितिपृष्ठावहतामध्वोअन्धसोविवक्षणस्यपीतये ॥ २* ॥

[पूर्व हयो विभूतिरूपा अश्वाः इन्द्र मावहन्त्विति प्रार्थितम्, अधुना तावेवेन्द्र मावहतामिति प्रार्थ्यते—] “हिरण्यये” हिरण्यये “रथे” युक्तो “मयूरशेया” मयूरवर्णः शेषो ययोस्तौ [सुपां सुलुगिति (७, ३, ३८) विभक्तेर्डादेशः] “श्रितिपृष्ठा” श्वेतपृष्ठौ† एवम्भूतौ “हरी” आश्वौ हे इन्द्र ! “त्वा” त्वाम् “आ वहताम्” । किमर्थम् ? “मध्वः” मधुर-रसस्य “विवक्षणस्य” वक्षामिहस्य स्तुत्यस्य‡ यद्वा वीढव्यस्य प्राप्तव्यस्य “अन्धसः” अन्नस्य सोमरूपस्य “पीतये” पानार्थम् ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ५, ७, १४, ५ ।

† ‘श्रितिपृष्ठौ—नीलपृष्ठौ’—इति वि० ।

‡ ‘अतिशयेन विवक्षितभूतस्य’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

२३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 पिबात्वाऽऽस्यगिर्वणः सुतस्यपूर्वपाद्भव ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 परिष्कृतस्यरसिनइयमासुतिश्चारुमदायपत्यते ॥ ३* ॥ ५

हे “गिर्वणः” गौर्भिर्वननीयः स्तुतिभिः सम्भजनीयेन्द्र !
 “सुतस्य” अभिषुतस्यास्य सोमस्य [क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति
 कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थ्यं षष्ठी (२, ३, ६२)] इममभिषुतं
 सोमं “नु” क्षिप्रं “पिब” । तत्र दृष्टान्तः—“पूर्वपाद्भव”† [पूर्वः
 पूर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रथमभावी सन् पिबतीति पूर्वपा वायुः, सच्चै-
 न्द्रवायवे मुख्ये ग्रहे सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं पिबति “यस्य देव
 दधिषे पूर्वपेयम्”—इति निगमान्तरम् ; तादृशः] वायुरिव
 त्वमपि सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं पिबेत्यर्थः । कीदृशस्य सोमस्य ?
 “परिष्कृतस्य” अभिषवादिभिः संस्कृतस्य [“सम्पर्युपेभ्यः (६, १,
 १३८)”—इति करोतेर्भूषणे सुट्, “परिनिविभ्यः (८, ३, ७०)”
 —इति सुटः षत्वम्], “रसिनः” रसवतः । अपिच “इयमा-
 सुतिः”‡ अयमासवो मदकरः “चारुः” शोभनः सोमरसः “मदाय”
 हर्षाय हर्ष-जननाय “पत्यते” सम्पद्यते [पत्त्य गतौ (स्वा०
 प०), यद्वा पत्यतिरेष्वर्थ-कर्मा । मदाय—मदस्य पत्यते ईष्टे
 मदीत्यादने शक्त इत्यर्थः] ॥ ३ ॥ ५

* सू० वे० ५, ७, १५, १ ।

† ‘पूर्वपातारो ये ते यथा पिबन्ति तद्वत् पिबन्त’—इति वि० ।

‡ ‘आसुतिरुपनिवित्यर्थः’—इति वि० ।

५२ ४ १ ४ ५२ ४ ५ १ २
 ॥ अभीवर्त्तम् ॥ आत्वा३सा२द्वसमाशतोवा । यूक्ता
 २ २ १ २ १ २ ३ ४
 रये । हिराण्या१या२रयि । ब्रह्मायुजौ३१२३४ । हरय
 ५ २ १ २ १ २ ३ २
 इ । न्द्रकायिशा१यिना२ः । वद्वान्दृ१सो२ । मपा३यि ।
 १ १ १ १ १ ५२ ४ २ ४ ५ ४ ५ १ २
 तार३४५यि ॥ (१) आत्वा३रा३थायिहिरण्ययोवा । हारी
 २ २ १ २ २ ३ ४ २
 मयू । रणायिपा१या२ । यितिपृष्ठा३१२३४ । वद्वता
 ५ २ २ १ १ १ १ ३ १ १
 म्मध्वोआन्धा१सा२ः । विवाशा१णा२ । स्यपा३यि । ता
 ३ १ १ १ १ ५ ४ ३ ४ ५ ४ ५
 २३४५ । या२३४५यि ॥ (२) पिबा३तू३वस्यगिर्वणोवा ।
 १ २ २ १ १ २ १
 दृतस्यपू । र्वापाआ१यिवा२ । पारिष्कृता३१२३४ । स्य
 ४ ५ २ १ १ २ १ २ १ २
 रसिनइ । यमाद्व१ता२रयिः । चाखुर्मा१दा२ । यपा३ ।
 १ ३ १ १ १ १ १
 त्या२३४५ । तार३४५यि (३) ॥ १५* ॥ १

२ २ २ १ २
 ॥ भारद्वाजम् ॥ आत्वासहा । समाशा १ ता२म् ।
 १ २ २ २ २ १ २ १ १ १
 यूक्ता२रयेहिरण्यये । ब्रह्मायू१जा२ः । हारयइ । द्रका

^१यि^१शा^१यि^१ना^१रः । ^१व^१ह्ना^१न्तू^१सो^१र^१३ । ^१मा^१र^१पा^१र^१३^५औ^१हो^१
^३वा । ^५ता^१र^१३^{१२}४^२ये ॥ (१) ^{१२}आ^१त्वा^१र^१था^१यि । ^१हि^१रा^१ण्य^१ा^१श^१या^१र^१
^१यि । ^१ह^१री^१म^१यू^१र^१शे^१घ्या । ^१शि^१ना^१यि^१पा^१र^१र्था^१र । ^१वा^१ह^१ता^१
^२म्ना । ^२ध्वो^१आ^१न्वा^१श^१सा^१रः । ^१वि^१वा^१क्षा^१श^१णा^१र^१३ । ^१स्य^१ार^१पा^१र^१
^५३^५औ^१हो^१वा । ^३ता^१र^१३^५४^२ये ॥ (२) ^२पि^१वा^१तु^१वा । ^१स्य^१गा^१यि^१र्वा^१
^१श^१णा^१रः । ^१सू^१त^१स्य^१पूर्^१व^१पा^१द्व । ^१परा^१यि^१ष्का^१श^१र्त्ता^१र । ^१स्य^१ार^१
^२सि^१न^१इ । ^१य^१मा^१ह्म^१श^१ता^१र^१यिः । ^१चा^१रु^१र्मा^१श^१दा^१र^१३ । ^१या^१र^१पा^१
^५२^५३^५औ^१हो^१वा । ^३त्यो^१र^१३^५४^२ते (३) ॥ १२* ॥ २

^{१२}॥ अ^१भि^१नि^१ध^१नं ^१का^१प^१व^१म् ॥ ^१औ^१हो^१हो^१हा^१यि । ^१आ^१या^१हो^१ ।
^१आ^१त्वा । ^३सा^१र^१३^५४^२हा । ^५स्वा^१मा^१श^१ा^१र^१३^५४^२ता^१म् । ^५यू^१क्ता^१रा^१र^१३^५४^२था^१यि ।
^२हो^१र^१ण्य^१या^१यि । ^२ऐ^१हो^१यि । ^३आ^१र^१३^५४^२यि^१हो^१ । ^५ब्रा^१ह्मा^१यू^१र^१३^५
^५४^५जो । ^५हारा^१या^१र^१३^५४^२ई । ^{१२}द्रा^१के^१शि^१नाः । ^२ऐ^१हो^१यि । ^३आ

^५ २३४यिही । ^२ वा ^३ इन्त२३४सो । ^५ मपा^३यिता^२पु^३या^३इ^३पु^३इ^३यि ॥ (१)

^{२२} १ ^२ औ^३हो^३हो^३हायि । ^१ आ^२यि^३ही । ^१ आ^२त्वा । ^३ रा^२३४^५यायि ।

^२ हा^३यि^५रण्या^२३४यायि । ^२ हारी^३मा^५२३४यू । ^{२२} रा^२शे^२पिया ।

^{२२} १ ^३ ऐ^५हो^२यि । ^२ आ^५२३४यि^३ही । ^१ प्रा^३यिता^३यि^५पा^२२३४^२र्त्ता । ^२ वा

^१ हा^३ता^५२३४^{२२}म्मा । ^{२२} ध्वो^३अ^३न्ध^३साः । ^३ ऐ^३हो^३यि । ^३ आ^३२३४^३यि

^५ ही । ^२ वा^३यि^३व^५ह्वा^३२३४^३या । ^३ स्या^३पा^३यिता^३पु^३या^३इ^३पु^३इ^३यि ॥ (२)

^{२२} १ ^२ औ^३हो^३हो^३हायि । ^१ आ^३यि^३ही । ^१ पा^३यि^३वा । ^३ तू^३३४^५वा ।

^२ स्या^३गि^३र्वा^५२३४^{२२}णाः । ^२ सू^३त^३स्या^५२३४^{२२}पू । ^{२२} वा^३मा^३इ^३वा । ^{२२} ऐ^३हो

^३ यि । ^५ आ^३२३४^३यि^३ही । ^२ पा^३रि^३ष्कार^५२३४^२र्त्ता । ^१ स्या^३रा^३ही^३२३

^५ ४^२नाः । ^२ इ^३य^३मा^३सु^३तायि । ^{२२} ऐ^३हो^३यि । ^३ आ^३२३४^५यि^३ही । ^२ हा

^३ रु^५म्मा^३२३४^३दा । ^३ य^३पा^३र^३त्या^५पु^३ता^३इ^३पु^३इ^३यि । ^३ आ^३२३४

^५ भी^३(३) ॥ ३ * ॥ [३] पु

अथ आसीतेति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आसीतापरिषिञ्चताश्वत्तोममभुरर्जस्तुरम् ।

३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षुदप्रुतम् ॥ १ * ॥

हे ऋत्विज ! “आसीत” सोमञ् अभिषुणुत [षुञ् अभिषवे
(स्वा० उ०), लोटि छान्दसो (२, ४, ७२) विकरणस्य लुक्,
“तप्तनप्तनयनाश्च (७, १, ४५)” — इति तस्य तवादेशः] । किञ्च,
“परिषिञ्चत” परितस्तं वसतीवर्यादिभिः सिञ्चत । कौटुशम् ?
“अश्वं न” अश्वमिव वेगिनं “स्तीमं” स्तीतव्यम्, “अभुरम्”
अन्तरिक्षस्थितानामुदकानां प्रेरकम् “रजस्तुरं” तेजसां प्रेरकम्,
“वनप्रक्षम्” उदकवत् क्षरणशीलम्, “उदप्रुतम्” उदके गच्छन्तं
प्लवमानं सोममभिषुणुत अभिषिञ्चत च ॥

“वनप्रक्षं” — “वनक्रक्षम्” — इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सहस्रधारं वृषभम्पयोदुहम्प्रियन्देवायजन्ने ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
ऋतेनयऋतजातो विवावृधेराजा देवऋतम्बृद्धत् ॥ २† ॥ ३

* छ० आ० ६, २, ४, ३ (२भा० १२८५०) ऋ० वे० ७, ५, १५, १ ।

† ऋ० वे० ७, ५, १५, ३ ।

“सहस्रधारं” बहुधारीपेतं, “वृषभं” कामानां वर्षकं, “पयो-
दुहं” क्षीरवत् सारभूतं रसं सिञ्चन्तं “प्रियं” प्रीणयितारं सोमं
“देवाय” देव-सम्बन्धिने “जन्मने” * देवेभ्यस्तदर्थम् अभिषुण्णत ।
“ऋतजातः” उदकाज्जातः “यः” “राजा” सोमः “ऋतेन”
वसतीवर्याख्येनोदकेन “वि वावृधे” विशेषेण वर्धते । कीदृशः ?
“देवः” द्योतमानः स्तोतव्यो वा, “ऋत” सत्यभूतः, “बृहत्”
महान् । तन्मासुनुतेति पूर्वण समन्वयः ॥

“पयोदुहम्”-“पयोवृधम्”—इति पाठौ ॥ २ ॥ ६

२२ ४२ ५२ २२ ३ ४ ५ ५
॥ वाचःसाम ॥ आसोतापा । होरिविञ्चता ई ए ।

१ २ २ १ ० १ २ ०
आश्वान्नस्तो । मामप्सुराहेम् । राजस्तुरम् । वानप्रा
१ २ ३ ४ ५
क्षारम् । ऊरुद्वार । प्र२४५तोऽह्वारि(१) ॥ २१ ॥ [१]

२२ ४२ ५२ २२ ३ ४ ५ ५
॥ वाचःसाम ॥ आसोतापा । हो । विविञ्चता ई ए ।

१ २ २ १ ० १ २ १ ०
आश्वान्नस्तो । मामप्सुराहेम् । राजस्तुरम् । वानप्रा
१ २ ३ ४ ५ ३ ४ ५
क्षारम् । ऊरुद्वार । प्र२४५तोऽह्वारि ॥ (१) वनप्रा
२ ३ ४ ५ ५ १ २ १ ०
क्षाम् । ह्ययि । उदम्ताहेम् । सावृधधा । राम्

* ‘जन्मनेनां मूलपुत्राय’—इति वि० ।

† ऊ० गा० १ म० १ ख० १ डा० ।

^{१ २ ३} षभा३ । ^{१ ७} पायोदुहम् । ^{१ ४} प्रायन्दायिवा२३ । ^{१ ४} यार३जा३ ।

^{२ ५} न्ना३४पू०^{२ ४ ५ ६} ईहायि ॥ (२) ^{२ ४ ५ ६} प्रियन्देवा । ^{२ ४ ५ ६} हो । ^{२ ४ ५ ६} यजन्मना३ए ।

^{१ २ ३} आर्त्तेनयः । ^{१ ७} आर्त्तजाता३ । ^{१ २ ३ ४} वायिवावृधे । ^{१ २ ३} राजादा

^{१ २ ३} १ यिवा २३ः । ^{१ ७} आ २३ ^५ त्ता ३म् । ^{२ ४ ५ ६} वृ३४ ^५ पू हो ३

^५ हायि(३) ॥ १७ * ॥ [२]

^{२ ४ ५ ६} ॥ सफम् ॥ ^{२ ४ ५ ६} आसीता३परि । ^{२ ४ ५ ६} पिच्चा२३४ता । ^{२ ४ ५ ६} अ

^{१ २ ३} श्वन्नस्तोमा३रम् । ^{१ ७} अमृ३रा३जा३ । ^{२ ४ ५ ६} स्तू३२ ३४राम् ।

^{१ २ ३} वना । ^{२ ४ ५ ६} प्रक्षामू३दा३ । ^{२ ४ ५ ६} प्रू३४पूतो३हायि ॥ (१) ^{२ ४ ५ ६} वनप्रा३

^{२ ४ ५ ६} क्षमु । ^{२ ४ ५ ६} दप्रू३२३ताम् । ^{२ ४ ५ ६} सहस्रधारा३रम् । ^{२ ४ ५ ६} वृषभाया३

^{२ ४ ५ ६} यो३ । ^{२ ४ ५ ६} दू३२३४हाम् । ^{२ ४ ५ ६} प्रियाम् । ^{२ ४ ५ ६} देवाया३जा३ । ^{२ ४ ५ ६} न्मा

^{२ ४ ५ ६} ३४पू०^{२ ४ ५ ६} ईहायि ॥ (२) ^{२ ४ ५ ६} प्रियन्देश्वाय । ^{२ ४ ५ ६} जन्मा२३४नायि ।

^{२ ४ ५ ६} क्षतेनयाआ३ । ^{२ ४ ५ ६} तजातो३श्वा३यि । ^{२ ४ ५ ६} वा३ २३४^५ हायि ।

^{२ १ २ १} ऋतेनयाआ२ । ^{१ २ ४} तजातोवा३यिवा३ । ^{२ ५} वा३२३४र्वायि ।

^{२ १ २ १} ऋतेनयाआ२ । ^{१ २ ४} तजातोश्वा३ । ^{२ ५} यि । वा३२३४र्वायि ।

^{२ २ १} राजा । ^{२ २ ४} देवाआ ३ र्त्ता ३ म् । ^{२ ५} वृ३ ४ ५ हो ईहायि(३)

॥ १३* ॥ [३] ई

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य द्वादशस्याध्यायस्य

द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीय-खण्डे —

अग्निर्वृत्राणीति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

^{३ २ ३ १ २} अग्निर्वृत्राणिजङ्घनद् ^{३ १ २ ३ १ २} विणस्युर्विपन्यया ।

^{१ २ ३ १ २} समिद्धः शुक्र आऊतः ॥ १† ॥

“विपन्यया” सुस्तूयमानः “द्रविणस्युः” द्रविणं धनं स्तोतृ-
णामिच्छन् [यद्वा, हविलं चणं धनमात्मन इच्छन् “अग्निः”

* ज० गा० १२प्र० १अ० १३सा० ।

† ज० आ० १, १, १, ४ (१भा० २८५०) = ऋ० वे० ४, ५, २७, ३ ।

“वृत्राणि” आवरकाणि रक्षः-प्रभृतीनि तमांसि वा “जङ्घनत्”
 हिंसन्तु । कीदृशोऽग्निः ? “समिद्धः” सम्यक् दीप्तः अतएव
 “शुक्रः” शुक्लवर्णः “आहुतः” हविर्भिरभिहुतः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
 गर्भमातुः पितुष्यताविदित्युतानो अक्षरे* ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २
 सोदन्नृतस्य योनिमा ॥ २† ॥

[अत्र मातृ-पितृ-शब्दाभ्यां भूद्यौषाभिधीयेते “द्यौः पिता,
 पृथिवी मातेति श्रुतेः] “मातुः” भूम्याः गर्भे” गर्भस्थाने मध्ये
 “अक्षरे” क्षरण-रहिते वेद्याख्ये स्थाने‡ “वि दिद्युतानः” विशे-
 षेण दीप्यमानः “पितुः पिता” द्युलोकस्य पालयिता हविषां
 प्रदानेन, एवम्भूतोऽग्निः “ऋतस्य” यज्ञस्य “योनिम्” उत्तरवे-
 द्याख्यं “धिष्णां” [सप्तम्यर्थे द्वितीया (३, १, ८५)] “आसौदन्”
 उत्तरवेद्यामुपविशन् अग्निवृत्राणि जङ्घनदित्यन्वयः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ब्रह्मप्रजावदाभरजातवेदोविचर्षणे ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २
 अग्नेयद्दीदयद्विवि ॥ ३¶ ॥ ७

* “अक्षरन्”—इति क० पु० पाठः ।

† ऋ० वे० ४, ५, २७, ४ ।

‡ ‘अक्षरे—अदीप्यमाने स्थाने’—इति वि० ।

¶ ऋ० वे० ४, ५, २७, ५ ।

हे “जातवेदः” जातानां वेदितः ! “विचर्यन्ते” विशिष्येण द्रष्टः
अग्ने ! “प्रजावत्” पुत्र-पौत्र-सहितं “ब्रह्म” अन्नम् “आ भर”
आहर “यद्” ब्रह्म “दिवि” व्युत्तोलोके “दीदयत्” दीप्यते । देवेषु
यत् प्रशस्तमन्नं राजते तदाहरेत्यर्थः ॥ ३ ॥ ७

अस्यप्रेषेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्यप्रेषाहेमनापूयमानो

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवोदेवेभिः समपृक्तरसम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सुतः पवित्रमर्थेति रेभन्

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

मितेव सङ्गपशुमन्ति द्योता ॥ १* ॥

“अस्य” सोमस्य “प्रेषा” [प्रेषतिर्गत्यर्थः क्विपि रूपं, “सावि-
काच (६, १, १६८)—इति विभक्त्येव दातृत्वम् ;] प्रेरणेन, “हे-
मना” हिरण्येन “पूयमानः” [“हिरण्यपाणिरभिषुष्योति”—इति
हिरण्य-सम्बन्धः, तादृशः] “देवः” दीप्यमानः सोमः “रसम्”
आत्मीयं “देवेभिः” देवैः सह “समपृक्त” सम्पर्कयति संयोजयति
[पृची सम्यर्के (अदा० आ०)] ततः “सुतः” अभिषुतः सोमः “रेभन्”
शब्दायमानः सन् “पवित्रम्” ऊर्णास्तुकेन निर्मितं “पर्थेति”

परिगच्छति । कमिव ? “होता” देवानामाह्वाता ऋत्विक् “मिता
इव” निर्मितान् “पशुमन्ति” बद्धपशून् “सन्न” सदनानि यज्ञ-
शृङ्गान् यथा पर्येति तद्वत् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३१ २१ ३२ १२

भद्रावस्त्रासमन्याऽऽवसानो

३ ३ २ ३१ २ ३१ २

महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।

१ १ ३१ २ ३१ २

आवच्यस्व चम्बोः पूयमानो

३१ २२ ३१ २

विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २* ॥

“भद्रा” भद्राणि कल्याणानि “समन्या” [समनमिति
सङ्ग्राम-नाम (२, १७, १६), तत्र साधुरिति यत्] सङ्ग्राम-
योग्यानि “वस्त्रा” वस्त्राणि आच्छादकानि तेजांसि “वसानः”
आच्छादयन् “महान्” “कविः” क्रान्तदर्शी अतएव “निवच-
नानि” नितरां वक्तव्यानि स्तोत्राणिः “शंसन्” “विचक्षणः”
विशेषेण सर्वस्य द्रष्टा “जागृविः” जागरणशीलः । हे सोम !
एवमभूतस्त्वं “देववीतौ” देवानां वीतिर्भक्षणं यस्मिन् तद्देववीति-
र्यज्ञः तस्मिन् “चम्बोः” अधिषवण-फलकयोः ॥ “आ वच्यस्व”
पात्राण्याविश [वचिर्गत्यर्थः (म्वा० प०) व्यत्ययेन श्यन् ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, ४, ११, २ ।

† ‘वचनानि—ऋग्यजुः-साम-लक्षणानि’—इति वि० ।

‡ ‘चम्बोः—अधिषवण-चर्मणोऽपरि’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

^{१ २ ३ १ २ ३ १ २}
समुप्रियोमृज्यते सानो अय्ये

^{३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २}
यशस्तरोयशसाङ्गैतो अस्मे ।

^{३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३}
अभिस्वरधन्वापूयमानो

^{३ १ २ ३ २ ३ १ २}
यूयम्पातस्वस्तिभिः सदानः ॥ ३ * ॥ ८

“यशसां” यशस्विनां मध्ये “यशस्तरः” अतिशयेन यशस्वी
“क्षैतः” क्षितो भावः “प्रियः” प्रीणयिता सोमः “सानो” समुच्छिते
“अय्ये” अवि-भवे पविते “अस्मे” अस्मदर्थं “समुज्यते” ऋत्विग्भिः
परिपूयते “उ” [—अवधारणे] “पूयमानः” त्वं “धन्वा” अन्त-
रिक्षे “अभि स्वर” अभितः शब्दय “यूयम्” [प्रजायां बहुवचनम्]†
हे सोम ! त्वं “नः” अस्मान् “स्वस्तिभिः” कल्याणतमैः पालनैः
“सदा” सर्वदा “पात” रक्षत पालयेत्यर्थः ॥ ३ ॥ ८

^{३ २ ३ २ ३ २}
॥ उङ्गवायिवासिष्ठम् ॥ उङ्गवायि । अस्या ३ ४ औ

^{४ २ ४ १ २ २ ३ ४ ५ ३ २ ३ २}
होवा । प्रेषा । हे श्मना । पूयमानाः । देवा ३ ४ औ

^{४ २ ५ १ २ २ १ २ २ ४ ५ ३ २}
होवा । देवायि । भौ ३ः सम । पुत्तरसाम् । सुता ३

* ऋ० वे० ७, ४, ११, ३ ।

† ‘यूयं पात—उङ्गवचनमिदं सह देवैरित्यर्थः’—इति वि० ।

२ २ २ १ २ १ २ ३ ४ ५ ३ २
४ औहोवा । पवायि । चा३परि । एतिरेभान् । मिता

३ २ ४ ५ १ २ १ २ १ ४
६ ४ औहोवा । वसा । द्या३पशु । मा३४३ । ती३हो

३ १ ३ २ ४ ५ १ १ १
५ ता६५६ ॥ (१) भद्रा३४ औहोवा । वस्त्रा । समनि ।

२ ३ ४ ५ ३ १ ३ २ ४ ५ १ १ १
यावसानाः । मद्वा३४ औहोवा । कवायिः । निवच ।

२ ३ ४ ५ ३ २ ३ २ ४ ५ १ १ १ २
नानिष्५सान् । आवा३४ औहोवा । च्यस्त्रा । चमुवोः ।

२ ३ ४ ५ ३ २ ३ २ ४ ५ १ २ १
पूयमानाः । विचा३४ औहोवा । क्षणे । जागृविः ।

२ ३ ४ ५ ३ २ ३ २ ४ ५ १ २ ३ २ ४ ५
दा३४३यि । वा३चा५यिता६५६उ ॥ (२) समू३४ औहोवा ।

१ २ १ २ २ ३ ४ ५ ३ २ ३ २ ४ ५
प्रियो । मृज्यते । सानोअव्यायि । यशा३४ औहोवा ।

१ १ १ २ २ ३ ४ ५ ३ २ ३ २ ४ ५
स्तरो । यशसाम् । क्षैतोअस्मायि । अभा३४ औहोवा ।

१ २ १ २ २ ३ ४ ५ २ २ ३ २ ४ ५
स्वरा । धनुवा । पूयमानाः । उज्जवायि । यूया३ औ

४ २ ५ १ २ १ १ २ ४
होवा । पाता । सुवस्ति । भा३४३यिः । सा३दा५

ना६५६ (३) ॥ ६ * ॥ [१] ८

अथैतोन्विन्द्रमिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१३ २२ १२ ३२ ३२ ३१ १
एतोन्विद्रं स्तवामशुद्धं शुद्धेन साम्ना ।

३२ ३१ २ ३१ २ ३२ ३१ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृद्धांस्संशुद्धैराशीर्वाग्निमत्तु ॥ १ * ॥

[अत्रेतिहासमाचक्षते—पुरा किलेन्द्रो वृत्रादिकान् असुरान् हित्वा ब्रह्महत्यादि-दोषेणात्मानं अपरिशुद्धं मित्यमन्यत अथ तद्दोष-परिहारार्थं यदेन्द्र ऋषीन्वोचत्—यूयं मपूतं मां युष्मदीयेन साम्ना शुद्धं कुरुतेति । ततस्ते च शुद्धात्पादकेन साम्ना शस्त्रैश्च परिशुद्धं मकार्षुः । पश्चात् पूतायेन्द्राय यागादिकर्मणि सोमादीनि हवींषि च प्रादुरिति । एषोऽर्थः शाट्यायनक-ब्राह्मणे प्रतिपादितः—“इन्द्रो वा असुरान् हित्वाऽपूत इवामेधो अमन्यत सोऽकामयत शुद्धमेवमासन्नं शुद्धेन साम्ना स्तुयुरिति स ऋषीन्ब्रवीत् स्तुतमिति ततएव ऋषयः सामापश्यन् तेनास्तु-वन्नेतोन्विन्द्रमिति ततो वा इन्द्रः पूतः शुद्धो मेधो भवदिति । तथाच अस्या ऋचोऽयमर्थः—] ऋषयः परस्परं ब्रुवन्ति—“तु” क्षिप्रम् “एत उ” आगच्छतैव । आगत्य च “शुद्धेन” शुद्धात्पाद-केन साम्ना, तथा “शुद्धैः” शुद्धि-हेतुभिः “उक्थैः” शस्त्रैश्च इन्द्रम् शुद्धमपापिनं कृत्वा “स्तवाम” स्तुयाम । ततः “साम्ना” शस्त्रैश्च “वावृद्धांसं” पाप-राहित्येन वर्द्धमानं तमिममिन्द्रं “शुद्धैः”

शुद्धात्पादकैर्गव्यादिभिः “आशीर्वान्” आश्रयणवान् [“छन्द-
सौरः (८, २, १५) ”—इति मनुषो वत्वम्, तादृशः सोमः]
“ममत्तु” तमिन्द्रं मादयतु [मादयतेऽष्टान्दसः (२, ४, ७६) श्लुः] ॥

“शुद्धैराशीर्वान्”—“शुद्धाशीर्वान्”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
इन्द्रशुद्धोनआगहिशुद्धःशुद्धाभिहृतिभिः ।

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
शुद्धोरयिनिधारयशुद्धोममद्विसोम्य ॥ २ * ॥

हे “इन्द्र !” “शुद्धः” अस्मदीयैः सामभिः शस्त्रैश्च परिशु-
द्धत्वं “नः” अस्मान् “आ गहि” आगच्छ “शुद्धाभिः” “जतिभिः”
जतयो मरुतः [अवन्ति सर्वत्र गच्छतीति वा] तेऽपि सामभिः
शस्त्रैश्च परिपूताः तैः मरुद्भिः सह “शुद्धः” पाप-रहितः त्वम्
आगहि । आगत्य च “शुद्धः” त्वं “रयि” धनं अस्मासु “निधा-
रय” अतितरां स्थापय । किञ्च, हे “सोम्य” सोमार्ह ! “शुद्धः”
त्वं “ममद्वि” सोमेन मादय [मदी हर्ष (दि० प०) लोटि
“बहुलश्रृण्वसि (२, ४, ७६) ”—इति शपः श्लुः] ॥

“ममद्विसोम्य”—“ममद्विसोम्यः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १२ २२ ३ २ २२ ३ १ २
इन्द्रशुद्धोद्दिनोरयिं शुद्धोरत्नानिदाशुषे ।

३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
शुद्धोवृत्ताणिजिघ्रसे शुद्धोवाजं सिषाससि ॥ ३ * ॥ ८

हे “इन्द्र !” “शुद्धः हिः” [—अवधारणे†] शुद्धएव त्वं “नः”
अस्मभ्यम् “रयिं” धनं प्रयच्छ । तथा “शुद्धः” त्वं “दाशुषे”
हविर्दत्तवते यजमानाय “रत्नानि” रमणीयानि कनक-गवादीनि
देहि । ततः “शुद्धः” पाप-रहितः त्व “वृत्ताणि” अपामावरकान्
कर्म-विघ्नकारिणं शत्रून् पापानि वा “जिघ्रसे” हंसि । ततः
“शुद्धः” शत्रु-हनन-दोष-परिहाराय अस्मदीयैः सामभिः शस्त्रैश्च
परिशुद्धस्त्वं वाजमन्नमस्मभ्यं “सिषाससि” प्रदातुमिच्छसि ‡
[यदा शत्रून् हं हव्यां तदा शुद्धात्पादकैः सामभिः शस्त्रैश्च यूयं मां
परिशुद्धं कुरुतेत्येवमस्मभ्यं धनमन्नञ्च दातुमिच्छसीत्यर्थः] ॥ ३ ॥ ८

२२ २ १
॥ शुद्धाशुद्धीयोत्तरम् ॥ एतोन्विद्रुस्तवाइमा । शु
२ १ १ २ २ १२
द्धं शुद्धे । न । साम्ना २ । शुद्धायिहृश्वथाश्विः । वा
१ ५ २ १२ २ १ २ १
वारद्वारं ३४ साम् । शुद्धैरारं ३ शी । वान्ममत्तु । इडा

* ऋ० वे० ६, ६, २१, ४ ।

† “हि तस्मादर्थे, शुद्धस्त्वं यस्मात् रयिं धनं शुद्धं निधारय — इति वि० ।

‡ ‘सिषाससि—साधयसि’—इति वि० ।

२३ ॥ (१) इन्द्रशुद्धोनवागाश्चै । शुद्धः शुद्धा । भिह ।

तायिभारयिः । शुद्धोराश्वीश्म । निधारारश्वा ।

शुद्धोमारश्मा । धीसोमिय । इडा २३ ॥ (२) इन्द्रशुद्धो

द्विनोराश्वीश्म । शुद्धोरत्नानिदा । प्रृषारयि । शुद्धो

वाश्वाश्वा । णिजारश्वाश्वासायि । शुद्धोवा २३ जाम् ।

सायिषासमि । इडा २३ भा ३४ ३ । ओ २३ ४ ५ ई ।

डा (३) ॥ १२ * ॥ [१] ८

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य द्वादशस्याध्यायस्य

तृतीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ चतुर्थ-खण्डे—

अग्नेस्तीममिति त्वचात्मकं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

अग्नेस्तीममनामहेसिद्धमद्यदिविस्पृशः ।

देवस्यद्रविणस्यवः ॥ १ ॥

“द्रविणस्यवः” द्रविणं धनमिच्छन्तो वयं “दिविस्तृणः”
सूर्यरूपेण आकाशं व्याप्नुवतो “देवस्य” द्योतमानस्य “अग्नेः”
“सिद्ध” पुरुषार्थानां साधकं “स्तोमं” स्तोत्रम् “अद्य” अस्मिन्न-
हनि “मनामहे” ब्रूमः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ २ २
अग्निर्जुषतनोगिरोहोतायोमानुषेष्ठा ।

१ २ ३ २ ३ १ २
सयच्छदैव्यञ्जनम् ॥ २ * ॥

“होता” देवानामाह्वाता होम-निष्पादको वा “अग्निः”
“मानुषेषु” “आ” वसति । “यः” अग्निः “नः” अस्माकं “गिरः”
स्तुतीः “जुषतां” सेवताम् “सः” अग्निः “दैव्यं जनं” देव-सम्ब-
न्धिनं जनं† “यच्छत्” यजतु ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमग्नेसप्रथाअसिजुष्टोहोतावरेण्यः ।

१ २ ३ १ २ २ २
त्वयायज्ञं वितन्वते ॥ ३ ‡ ॥ १०

* ऋ० वे० ४, १, ५, ३ ।

† “दैव्यं जनं”—देवानां खभूतं वस्तु-दत्त-सकृत्-प्रभृतिकं जनम्—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ४, १, ५, ४ ।

हे “अग्ने !” “जुष्टः” सर्वदा प्रीतः “वरेण्यः” सर्वैर्वरणीयः
 “ह्रीता” त्वं “सप्रथाः असि” सर्वतः पृथुर्भवसि [तथाहि यास्कः—
 “सप्रथाः सर्वतः पृथुः (निरु० नै० ६, ७)”—इति] । किञ्च, सर्वे
 यजमानाः “त्वया” साधनेन “यज्ञं” “वि तन्वते” * ॥ ३ ॥ १०

अभित्रिपृष्ठमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,†

तत्र प्रथमा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १
 अभित्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा

० ३ १ २ ३ १ २
 मङ्गोषिणमवावशन्तवाणी ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 वनावसानो वरुणो न सिन्धु-

१ २ ३ १ २ ३ १ २
 विरत्नधादयते वार्याणि ॥ १ ॥ ‡ ॥

“त्रिपृष्ठं” त्रीणि पृष्ठानि स्तोत्राणि सवनानि वा यस्य स
 तथोक्तस्त्वं “वृषणं” वर्षकं “वयोधाम्” अन्नस्य दातारम् “अङ्गो-
 षिणम्” अपोषवन्तं सोममभिलक्ष्य “वाणीः” स्तोतृणां वाचः
 “अवावशन्त” गच्छायन्ते । “वना” वनानि उदकानि “वसानः”
 आच्छादयन् “वरुणो न” वरुणो यथा सिन्धूनाच्छादयति तद्वत् ।

* ‘कृत्विजः विस्तारयन्ति’—इति वि० ।

† ‘पञ्चमस्याङ्गः सम्यक्त्वा मध्यन्दिनम्’—इति वि० ।

‡ इ० आ० ६, १, ४, ६ । २ भा० १२० अ०) = ऋ० वे० ७, ३, २६, २ ।

“सिन्धुः” स्यन्दनशीलः, “रत्नधाः” रत्नानां दाता सोमः “वार्याणि” धनानि “दयते” प्रयच्छति स्तोहभ्यः ॥

“अङ्गोषिणम्”—“अङ्गूषाणम्”—इति पाठो, “सिन्धुः”—“सिन्धून्”—इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्

१ २ ३ १ २ ३ १ २
जेता पवस्व सनिता धनानि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अषाढः साङ्गान्पुतनासु शत्रून् ॥ २* ॥

हे सोम ! त्वं “पवस्व” । कीदृशस्त्वम् ? “शूरग्रामः” शूराणां ग्रामः सङ्घो यस्य सः, “सर्ववीरः” सर्वे वीरा यस्य स तथोक्तः, “सहावान्” सहनवान् “जेता” जयशीलः “सनिता” सम्भक्ता “धनानि” धनानां, “तिग्मायुधः” तीक्ष्ण-प्रहरण-साधनः,† “क्षिप्रधन्वा” क्षिप्र-सहनशील-धन्वा, “समत्सु” सङ्ग्रामेषु “अषाढः” असौढा, “साङ्गान्” अभिभवन् । कुत्र ? “पुतनासु” शत्रु-सेनासु । कान् ? “शत्रून्” ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, ३, २६, ३ ।

† तीक्ष्णायुधः—अक्षि-परशु-पाश-प्रभृतिभिर्दोषधैः सम्यक्—इति नि० ।

अथ तृतीया ।

^{३ १ २ ३ १ २ ३ १}
उरुगव्यूतिरभयानिक्कपवन्

^{२ ३ १ २ २ ३ १ २}
समीचीने आपवस्वापुरन्धी ।

^{३ १ २ २ ३ २ ३ १ २}
अपःसिषासन्नपसःस्वाऽऽर्गाः

^{१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २}
सच्चिकदोमहो अस्मभ्यंवाजान् ॥ ३१ ॥ ११

हे सोम ! “उरुगव्यूतिः” विस्तीर्ण-मार्गः त्वम् “उभयानि”
स्रोतभ्यः “क्कपवन्” कुर्वन्, “पुरन्धी” ‡ इमे द्यावापृथिव्यो
“समीचीने” सङ्गते कुर्वन्, “आ पवस्व” आक्षर । “अपः”
“उषसः” “स्वः” आदिव्यं “गाः” रश्मीश्च “सिषासन्” सञ्चतु-
मिच्छन् “सं चिक्रदः” ॥ सङ्गृह्यसे । “मदः” महतः महान्ति
“वाजानि” अन्नानि अस्मभ्यं दातुमिति शेषः ॥ ३ ॥ ११

^{२ १ ५ २ ३ २ २}
॥ सम्यावैयश्वम् ॥ ओ३हायि । ओ३हा । ओहा ।

^{१ ५ २ २ २ २ १ २ ३}
इयार । ओ३हा३ । अभिन्निपा । छा३वुष । एम्ब

* “स्व” — इति ऋ० पाठः ।

† ऋ० वे० ७, ३, २६, ४ ।

‡ “पुनं धारयितः” — इति वि० ।

॥ “चिक्रदः” — इत्यं कुर्वन् — इति वि०

^{४ ५} योधाम् । ^{२ १२} अङ्गोषिणाम् । ^{२ १२} भवाव । ^{१ ३ ४ ५} शन्तवाणीः । ^२ व
^{१२} नावसा । ^{२ १} नोश्चक् । ^{२ ३ ४ ५} णीनसिधूः । ^१ विरल्लधाः । ^{२ १} दय
^२ ते । ^१ वा३४३ । ^{२ ४} रीयाप्रणा६५६यि ॥ (१) ^{२ १ २ २} शूरग्रामाः ।
^{२ १ २} सर्ववी । ^{२ ३ ४ ५} रःसहावान् । ^{२ १ २} जेतापवा । ^{२ १} स्वा३सनि । ^१ ता
^{३ ४ ५} धनानी । ^{२ १ २} तिग्मायुधाः । ^{२ १} क्षिप्रध । ^{२ ३ ४ ५} न्यासमत्सू । ^{२ १ २} अषा
^{२ १} ढःसा । ^{२ १} क्काश्न्युत । ^{२ ४} ना३४३ । ^{२ ४} सू३शाप्र३५६५६न् ॥ (२)
^{२ १} उरुगव्य । ^२ ती३भर । ^{२ ३ ४ ५} यानिष्ठपवान् । ^{२ १ २ २} समीचीने ।
^{२ १} आ३पव । ^{२ ३ ४ ५} स्वापुरन्वी । ^{२ १} अपःणिषा । ^{२ १} सा३शुष । ^१ सः
^{३ ४ ५} सुवर्गाः । ^{२ १} ओ३हायि । ^{२ १} ओ३हा । ^{२ १ २} ओ३हा । ^१ इया३२ ।
^{४ २ २} ओ३हा३२ । ^१ सञ्चिकदी । ^{२ १} महीष । ^१ ना३४३ । ^१ भ्या
^४ वाप्रजा६५६न् (३) ॥ १० ॥ [१] ११

अथ त्वमिन्द्रेति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्.

तत्र प्रथमा ।

१ १ ३ १ २ ३ १ २ २ २ १ २
त्वमिन्द्रयशा असृजोषीशवसस्पतिः ।

२ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पूर्वनूत्तचर्षणीधृतिः ॥ १० ॥

हे “इन्द्र ! “त्वं” “शवसस्पतिः” शवसोऽन्नस्य बलस्य वा पालयिता, “ऋजोषी” ऋजोषोऽभिपुतः सोमः तद्दान्, त्वं “यशा असि” यशस्वी भवसि । कथमस्य यशस्वित्वं ? तदाह—
“अप्रतीनि” बलिभिरपि अप्रतिगतानि “वृत्राणि” रक्षांसि
“अनुत्तः” अन्यैर्नैतुमशक्यः त्वम् “एक इत्” एक एव असहाय
एव “चर्षणीधृतिः” रक्षात्वेन यजमानादि-मनुष्याणां धारकः
“पुरु” बहुलं यथा भवति तथा “हंसि” सम्ग्रहरसि । अतएवास्य
यशस्वित्वम् ॥

“शवसस्पतिः”—“शवसस्पते”—इति पाठौ, “इत्पूर्वनूत्तच-
र्षणीधृतिः”—“न एक इदनुत्ता चर्षणीधृता”—इति च ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ १ ३ १ २
तमुत्वानूनमसुरप्रचेतसं राधोभागमिवेसहे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मदीवकृत्तिः शरणात इन्द्रप्रते सुज्ञानो अश्रवन् ॥ २१ ॥ १२

* ऋ० णा० ३, २, १, ६ (१ भा० ५१२४०)=सं० वे० ६, ६, १२, ५ ।

† ऋ० वे० ६, ६, १२, ६ ।

हे “असुर” बलवत् ! प्राणवत् ! वा हे “इन्द्र !” यः उक्त-
 गुणोऽस्ति “ते” च “प्रचेतसं” प्रकृष्ट-ज्ञानं “त्वा” “उ” [—इत्यव-
 धारणे] पितृवत् पोषकं त्वमिव “राधः” धर्मादि-साधनं धनं
 “नूनम्” * इदानीम् “इमहे” याचामहे । तत्र दृष्टान्तः—“भाग-
 मिव” यथा कश्चित् पितृतो भागभूतं धनं याचते, तद्वत् ; इन्द्रो
 यजमानेभ्यः स्त्रीहभ्यश्च धनं प्रयच्छत्येव तस्मात् भागभूतं धनं
 यष्टारो वयं याचामहे । किञ्च हे इन्द्र ! “महीव कृत्तिः” [कृत्ति
 र्यशोऽन्नं वा कृत्तीच्छेदने, (रु० प०) करणे क्तिन् । कृतन्यनेनेति,
 ईदृशी] कृत्तिरिव “ते” तव “शरणा” शरणं गृहम् अन्तरिक्षं
 द्युलोके महद् वर्धते [अत्र यास्तः—“कृततेर्यगोवानं वा । महीव
 कृत्तिः शरणा त इन्द्र । सुमहत् इन्द्र शरणमन्तरिक्षे कृत्तिरिव
 (निरु० नै० ५, २२)—इति] । किञ्च, “ते” तव स्व-भूतानि
 “सुम्ना” सुम्नानि मन्त्रादिविषय-सुखानि च “नः” अस्मान्
 “प्राप्नुवत्” प्रकर्षेणाप्नुवतां व्याप्नुवन्तु [अश्रोतेर्लृट् डागमः
 (३, ४, ८४)] ॥ २ ॥ १२

५ ४ २ ४ ५ २ ४ २ ५ १
 ॥ अभीवर्त्तम् ॥ तुवाश्माश्चिन्द्रयशाश्चसोवा । आ
 २ १ २ १ २ १ २ ३
 जीषीश । वसास्याशतारयिः । त्वम्वृचाश्चरश्च । पि
 ४ ५ २ २ २ १ २ १ १ १
 द्दस्यप्रतीनि । कआयिपूश्चर । अनूत्ताश्चर ।
 ३ २ १ ३ १ १ १ १ ५ ४ २ ४
 पणाहयि । धारश्चपु । तारश्चपुयिः ॥ (१) अनूत्ताश्च

^{५८ ४ ५ १ २ १ २ १}
 र्पणीधृतीवा । आनुत्तश्च । पणायिधाशर्त्तारयिः । ता

^{२ २ ३ ४ ५ २ १ २ २ १}
 मुत्वानू३१२३४ । नमसुर । प्रचायिताशसारम् । राधो

^{२ १ ३ २ १ ३ १ १ १ १}
 भाशगारम् । इवाशयि । मार३४५ । हार३४५यि ॥ (२)

^{५८ ४ २ ४ ५८ ४ ५ १ २ २ १ २}
 राधो३भा३गमिवेमहोवा । राधोभागम् । इवायिमाश

^{२ २ १ ३ ४ ५ २ १ २}
 हारयि । माहोवका३१२३४ । तिःशरणा । तआआश

^{१ २ ३ २ १ १}
 यिन्द्रा२ । प्रतायिद्धशम्भार । नोआ३ । आ२३४५ ।

^{३ १ १ १ १}

वार३४५नू(३) ॥ १८० ॥ [१]

^{२ १ ४ ५८}
 ॥ दिदिङ्कारम्बामदेव्यम् ॥ तुवमारशयिन्द्रयशाअसा

^{१ २ २ २ १ २ १ २ १}
 यि । आज्जीषीशवसस्पतिस्त्वन्वृत्राणिहृत्स्यप्रतीनआयि

^{१ ३ २ २ १ १ २ १ २ ३ २ २}
 कचौहो३ । ऊम्मा२ । पू२३४ । अनुत्तशार्पणीहो३ ।

^{१ १ ४ ५ २ १ ४}
 ऊम्मा२ । धृतायिः । औ२३होवा ॥ (१) अनुत्तार३श्च

^{५८ १ २ २ २}
 र्पणीधृतायिः । आनुत्तशर्पणीधृतस्तमुत्वानूनमसुराऽप्र

^{१२ २} चोहो३ । ^१ ऊम्मा२ । ^{१ २} तार३साम् । ^{१२ २ २} राधोभागाऽमिवौ

^२ हो३ । ^१ ऊम्मा२ । ^{१ २ ४ ५} मद्या । ^{१२ १२} औ३होवा ॥ (२) राधोभा

^{४ ५ २} शमिवेमद्यायि । ^{१ २ २} राऽधोभागमिचेमहेमहोवृत्तिः शरणा

^{२ ३ २} ऽतऔहो३ । ^१ ऊम्मा२ । ^{१ २} आ३शयिन्द्रा । ^{१ २} प्रतेसुम्नाऽन

^{३ २} औहो३ । ^१ ऊम्मा२ । ^{१ ४ ५} अवान् । ^४ औ३होवा । ^४ हो५ई ।

डा(३) ॥ ७ * ॥ [२]

^{१ २ १} ॥ यशम् ॥ ^{२ १ २} त्वमिन्द्रा । ^{२ २} यशाः । ^{२ २} असायि । ^{२ २} ऋजो

^{१ २} षौशवसः । ^१ पतायिः । ^{२ २ २ ३ २} त्वम्बृजाणी३हृ३सिया । ^{१ २} प्रतौ

^१ नाए२ । ^{२ १ ३} कद्रत्पूहृ२हो३ । ^{४ ५ २} तश्च । ^{४ ५ २} पा३रणा२३४ औहो

^{३ ५} वा । ^{१ २ १ २} धा३३४त्ताः ॥ (१) अनुत्तश्वा । ^{१ २} अनुत्तश्वा । ^{१ २} षणी ।

^{२ २} धृतायिः । ^{१ २ २} अनुत्तश्चर्षणी । ^{२ २ २} धृतायिः । ^{२ २ २} तमुत्वानू३नम

^{३ २} सुरा । ^१ प्रावा२यि । ^{१ १ २} तामा२म् । ^{१ २} राधा२हो३यि ।

^{४ १} ^१ ^३ ^{५ २ २} ^३ ^४
 भागम् । आरयिवा^{२३}औ^३होवा । मा^२ ३ ४ हे ॥ (२)
^{१ २ २ २ १} ^{२ २ २ २} ^{१ २} ^{२ २}
 राधोभागाम् । राधोभागाम् । इवे । महायि । राधो
^{२ २ १} ^{२ २} ^१ ^{२ ४} ^{२ ३ २} ^१
 भागमिवे । महायि । महीवका^३र्त्तिः शरा । णाता^२
^१ ^१ ^{२ २} ^{२ १}
 यि । आयिन्द्रा^२ । प्रता^२रयिहो^१शयि । सुम्ना । नो^१
^३ ^{५ २ २} ^३ ^४
 आ^{२३}४औ^३होवा । आ^{२३}४वान्(३) ॥ १४ * ॥ [३] १२

यजिष्ठत्वेति प्रगाथात्मकं चतुर्थं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

^{१ २} ^{३ १ २ ३ १} ^{२ २ ३ १ २}
 यजिष्ठत्वाववुमहे देवन्देवत्राहोतारममर्त्यम् ।

^{३ २ ३ १ २ ३ १ २}
 अस्ययज्ञस्यसुक्रतुम् ॥ १ ॥

हे अग्ने ! “यजिष्ठं” यष्टृतमं “त्वा” त्वां “ववुमहे” वृणी-
 महे सम्भजामहे । कीदृशं त्वाम् ? “देवत्रा” देवेषु मध्ये “देवम्”
 अतिशयेन दानादि-गुणकम्, “होतारं” देवानामाह्वातारम्,
 “अमर्त्यम्” अविनाशनम्, “अस्य” “यज्ञस्य” यागस्य “सुक्रतुं”
 सुष्ठु कर्त्तारम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३१ २२ ३१ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २

अपान्नपात^३सुभग^४*सुदीदितिमग्निमुश्रेष्ठ^५शोचिषम् ।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २

सनोमित्रस्यवरुणस्यसोअपामासुन्नयक्षतेदिवि ॥ २३ ॥ १३

“जर्जः” अन्नस्य “नपातं” न पातयितारं [यद्वा, नप्तारं चतुर्थं हविर्लक्षणेनानेन आपो जायन्ते, अद्वाश्वीषधिवनस्पतयस्तेष्व एष जायत इति चतुर्थत्वम्] । “नभ्रान्नपात् (६, ३, ७५)”—इति नञ् प्रकृतिभावः] “सुभगं” शोभनधनं “सुदीदिति” सुष्ठु दीदयन्तं “उश्रेष्ठशोचिषं” प्रशस्यतमतेजस्कम् अग्निं स्तौमीति शेषः । स तादृशोऽग्निः “नः” अस्मादर्थं “दिवि” द्योतमाने देवयजने द्युलोके वा “मित्रस्य” देवस्य “वरुणस्य” च “सुन्न” सुखम् “आ” अभिलक्ष्य “यक्षते” यजतु । तथा सोऽग्निः “अपाम्” अद्देवतानाञ्च सुन्नमभि यजतु ॥ २ ॥ १३

३ ४ २ ४ ५
॥ साध्यम् ॥ याऽ५जि । छन्त्वाश्वाश्वाश्वमद्यायि ।२२ १२ २२ २ १ २ १ ७
देवन्देवत्राहोतारऽराम । आमर्त्तियम् । आस्ययाज्ञा

* “जर्जनिपातं”—इति ऋ० पाठः ।

† “अग्निश्रेष्ठ”—इति च ऋ०-पाठः ।

‡ ऋ० वे० ६, १, २८, ४ ।

¶ ऋग्वेदीयपाठमवलम्बित्वं व्याख्यानम् ।

§ ‘अपां नपातम्—अपां पीतमग्निम् । अपां पुत्रका वृक्षाः, तेषु सञ्जातं पुत्रं पीतम्’—इति वि० ।

२३ । स्या२३सू३ । का३४५तो६हायि ॥ (१) आऽपुस्य ।

यज्ञा३स्या३सुक्रतूम् । अपान्नपात७सुभा२३गाम् । सुदी

दितम् । अग्निमू३श्रे२३ । ष्टा२३शो३ । चा३४५यिषो

६हायि ॥ (२) आऽपुग्निम् । उ३श्रे३ष्टा३शोचिषाम् । स

नोमि३स्यव३र३णा । स्यासो३अपाम् । आसु३न्नाया२३ ।

स्या२३रता३यि । दा३४५यिवो६हायि (३) ॥ ३* ॥ [१]

॥ ऐध्मवा३हसम् ॥ यजि३ष्ठत्वाव३वृमा३हायि । दे३वन्दे३व

वा३होतारमम३र्त्तियाम् । अस्य३यज्ञस्य३सु३इहा । अस्य३यज्ञ

स्य३सू३इहा । ज३यायि । ज३वो२३४वा । का३५तो६हा

यि ॥ (१) अ३साय३ज्ञस्य३सुक्रा३तूम् । अपान्नपात७सु३भग७

सु३दी३दितायिम् । अ३ग्निमु३श्रे३ष्टशो३इहा । अ३ग्निमु३श्रे३ष्टा३शो

ऽइहा । ज३वायि । ज३वो२३४ । वा । चा३५यिषो६हा

यि ॥ (२) ^२अग्निमु^२श्रेष्ठ^२शोचा^२यिषाम् । ^१सुनो^१मित्र^१स्यवरुण

^१सोअ^१पाम् । आसु^२न्तयक्षताऽइहा । जवायि । जवो२

३४ । वा । दाप्र^४यिवोईहायि(इ) ॥ ३३ ॥ [२] १३

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य द्वादशत्याध्यायस्य

चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम-खण्डे —

यमग्नइति त्वचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

^१यम^२ग्रेपृ^३त्सु^४मर्त्य^५मवा^६वाजे^७षुय^८ञ्जुनाः ।

^१सय^२न्ता^३ग्रश्च^४तीरिषः† ॥ १३‡ ॥

हे “अग्ने !” “पृत्सु” सङ्ग्रामेषु “यं” “मर्त्यं” यजमानम्
“अवाः” अवसि रक्षसि, “यं” पुरुषं “वाजेषु” सङ्ग्रामेषु
“ञ्जुनाः” अवसि, “सः” नरः यजमानः “ग्रश्चतीरिषः” नित्यान्ध-

त्रानि “यन्ता” नियन्तुं समर्थी भवति [पृक्—“पदादिषु मांस्य-
त्सूनामुपसङ्गानम् (६,१,६३)”—इति पृतना-शब्दस्य पदादेशः
“सावेकाच (६,१,१६८)”—इति विभक्तेरुदात्तत्वम् । अवाः
—अवः अकाराकारयोर्विपर्ययः, यद्वा लेटगडागमः, “इतश्च
(३, ४, ६७)”—इति सिप इकार-लोपः । जुनाः—जुइति
गत्यर्थः सौत्रो धातुः, लङ्, सिप्, क्तादिभ्यः आ ; “बहुलव्य-
न्दस्यमाङ्योगेऽपि (६,४,७५)”—इत्यङ्गागमाभावः ; यद्वृत्तयो-
गात् (८,१,३०)’ अनिघातः । यन्ता—हृनी निच्चादाद्युदा-
त्तत्वम् (६,१,१६७) । शश्वतीः—“उगितश्च (४,१,६)”—
इति ङीप् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १२ २२
नकिरस्यसहन्त्यपर्येताकयस्यचित् ।

१ २ ३ १ २
वाजोअस्तिअवाय्यः ॥ २* ॥

हे “सहन्त्य !” शत्रूणामभिभवन-शीलान्ने ! “अस्य” त्वङ्ग-
त्तस्य यजमानस्य “कयस्यचित्” कस्यापि “पर्येता नकिः” आक-
मिता नास्ति । किञ्चास्य यजमानस्य “अवाय्यः” अवणीयः
“वाजः अस्ति” बल-विशेषोऽस्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ २२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
सवाजं विश्वचर्षणि र्वङ्गिरस्तुतरता ।

१ २ ३ १ २
विप्रेभिरस्तुसनिता ॥ ३* ॥ १४

“विश्वचर्षणिः” सर्वैर्मनुष्यैरुपेतः† “सः” अग्निः “अर्वङ्गिः”
अश्वैः‡ “वाजं” सङ्ग्रामं “तरता” तारयिता “अस्तु”
“विप्रेभिः” मेधाविभिः ऋत्विग्भिः सहितः तुष्टोऽग्निः
“सनिता” फलस्य दाता॥ [विश्वचर्षणिः—विश्वे चर्षण्यः अस्य
“बहुव्रीहौ विश्वं सज्ज्ञायाम् (६, २, १०६)”—इति पूर्वपदा-
न्तोदात्तत्वम् । अर्वङ्गिः—ऋ गतौ (स्वा० प०), “अन्येभ्यो-
ऽपि दृश्यते (३, २, ७५)”—इति वनिप्, भिसि “अर्वणस्ससा-
वनजः (६, ४, १२७)”—इति नकारस्य ढ-इत्ययमादेशः ।
तरता—तृ प्लवन-तरणयोः (स्वा० प०), अस्मात् “ग्रसित-स्त्रभित-
(७, २, ३४)—इत्यादौ ढन्नन्तो निपातितः, निपातनादेविकाव-
स्योत्वम्] ॥ ३ ॥ १४

* ऋ० वे० १, २, २३, ४ ।

† “विश्वस्य दृष्टा”—इति वि० ।

‡ “अर्वङ्गिः—तृतीयावज्जवचनं चतुर्थीवज्जवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम्, अर्वङ्गाः”—
इति वि० ।

॥ “विप्रेभिः—विप्रभ्यः सनिता, त्वां मुक्ता न कश्चिदन्यो दाता”—इति वि० ।

अथ साकमुक्षइति तृचात्मकं द्वितीयं सूत्रम्,

तत्र प्रथमा ।

२ १ २ ३ १ २ ३
साकमुक्षोमर्जयन्तस्वसारो

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दशधीरस्यधीतयोधनुत्रीः ।

२ ३ १ २ ३ २ २ २ २ ३
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य

१ २ ३ २ ३ २ ३ २
द्रोणन्ननक्षेत्र्योनवाजी ॥ १* ॥

“साकमुक्षः” सह युगपत् सिद्धयः [उक्त सेचने (भा० प०)
क्षिपि रूपम्, तादृश्यः] “स्वसारः” कर्म-करणार्थम् इतस्ततः
सुष्ठु गच्छन्त्यः अङ्गुलयः “मर्जयन्त” सोमं शोधयन्ति [मृजू शोध-
नालङ्करणयोः (अदा० प०)] । तथा “दश” दश-सङ्ख्याकाः
“धीतयः” [अङ्गुलि-नामैतत् (निघ० २, ५, ७)] “धीरस्य”
समर्थस्य यज्ञस्य वा देवैर्ध्यातव्यस्य काम्यमानस्य वा सोमस्य
“धनुत्रीः” प्रेरयित्तरो भवन्ति । ततः “हरिः” हरितवर्णः
सोमः “सूर्यस्य” “जाः” प्रादुर्भूता जाया दिशः ताः “पर्यद्रवत्”
परितो गच्छति [सूर्यस्य तेजसा हि आविर्भवन्तीति दिशान्तस्य
जायात्वम्] “अत्यः” अतनशीलः “वाजी न” अश्वद्वय स्थितः
सोमः “द्रोणं” द्रोणकलशं “ननक्षेत्र्यो नवाजी” व्याप्नोति [नक्षत्रिर्व्याप्ति-
कर्मा (निघ० २, १८, २)] ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ३ २२ २ १२
सम्नातृभिर्नशिषुर्वावशानो

२२ २ १ २ ३ २
वृषादधन्वेपुरुवारोऽग्निः ।

२ ३ १२ २२ २ २ २ १२
मर्यानीयोषामभिनिष्कृतं यत्

२२ २ १ २ २ १ २
सङ्गच्छते कलश उस्त्रियाभिः ॥ २* ॥

“वावशानः” देवान् कामयमानः “वृषा” कामानां वर्षकः
अतएव “पुरुवारः” बहुभिर्वरणीयः सोमः “अग्निः” मातृ-
भूताभिः वसतीवरीभिः “सं दधन्वे” सन्धार्यते । तत्र दृष्टान्तः—
“मातृभिर्न शिषुः” कामयमानः पुत्रो यथा मातृभिः पयःप्रदा-
नेन सन्धार्यते [षवि गत्यर्थः (स्वा० प०) कर्मणि लिटि रूपम्]
“मर्या न” मनुष्यो यथा “योषां” युवतिम् अभिगच्छति तद्वत्,
“निष्कृतं” संस्कृतं स्वस्थानम् “अभि वन्” अभिगच्छन्
“कलशे” द्रोणाभिधाने “उस्त्रियाभिः” अग्निः गोर्विकारैः
क्षीरादिभिर्वा “सङ्गच्छते” [गमेरकर्मकात् “समोगम्युच्छि-
भ्याम् (१, २, २८)”—इत्यात्मने पदम् ॥ २ ॥

* ऋ० वे० ७, ४, २, २ ।

† ‘आदित्यरश्मिभिः’—इति वि० ।

अथ तृतीया ।

२ १ २ २ २ २ २ २ २

उतप्रपिष्य ऊधरध्याया

२ २ २ २

२ २

इन्दुर्द्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २

मूर्ध्नि नङ्गावः पयसा च मूषभिः

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २

श्रीणन्ति वसुभिर्न नित्तैः ॥ ३* ॥ १५

“उत” अपि च “अज्ञायाः” [“अज्ञा”—इति गो नाम (निघ० २, ११, १)] अहं तथाविधाया गोः “ऊधः” पयः-स्थानं सोमः “प्रपिष्ये” शीषध्यादिषु सोमः प्रविश्य प्रकर्षणं प्राययति [प्रायतेर्लिङि “लिङाङीष् (६, १, २८)”—इति षी-भावः] “सुमेधाः” शोभन-प्रज्ञः सोऽयम् “इन्दुः” सोमः “धाराभिः” “सचते” सजवेति सङ्गच्छते । ततो “गावः” “चमूषु” [चमन्ति भक्षयन्त्यत्र सोममिति चम्बो ग्रहादयः, तेषु] स्थितं “मूर्ध्नि” समुच्छितमिमं सोमं “पयसा” उदकेन “अभि श्रीणन्ति” अभित आच्छादयन्ति† । तत्र दृष्टान्तः—“नित्तैः” प्रक्षालितैः “वसुभिः” वस्त्रैः यथा आच्छादयन्ति तद्वत् ॥ ३ ॥ १५

* ऋ० वे० ७, ४, २, २ ।

† ‘अभि श्रीणन्ति मिश्रयन्ति’—इति वि० ।

॥ इक्ष्वाक्षसिद्धम् ॥ ^{१२ १२ ३२ २} औहोवाक्ष ३ होयि । ^१ इक्ष्वा । ^{३ २}

^१ साकमुत्तो । ^{२ १} मर्जय । ^{२ ३ ४ ५} तस्वसाराः । ^{२ १ २} दशधीरा । ^२ स्या

^{१२} र्धोत । ^{२ ३ ४ ५} योधनुनीः । ^{२ १} चरिःपर्या । ^{२ १ २} द्रवज्जाः । ^{२ ३} हरि

^{४ ५} यस्या । ^{१२} द्रोणनना । ^{२ १} चोश्चति । ^२ योश्च ४३ । ^{२ ४} नाश्वा ५

^{२ १२} जा ६ ५ ६यि ॥ (१) ^{२ १} सम्भातभायिः । ^{२ ३ ४} नमिष्टुः । ^{२ ३ ४} वावग्ना

^५ नाः । ^{२ १२} वृषादधा । ^{२ १} न्वेष्टुद । ^{२ ३ ४ ५} वारोचद्वायिः । ^{२ १२} मर्या

^{२ १} नयो । ^{२ ३ ४ ५} पाश्मभि । ^{२ १} निष्कृतंयान् । ^२ सङ्गच्छतायि । ^२ क

^{१२} लशे । ^२ ऊश्च ४३ । ^{२ ३ ४} स्त्रीश्यापुभा ६ ५ ६यिः ॥ (२) ^{२ १} उत्तप्रपायि ।

^{२ १२} प्याश्च ४३ । ^{२ ३ ४ ५} अग्नियायाः । ^{२ १२} इन्दुर्द्वारा । ^{२ ३} औश्चसच्च ।

^{२ ३ ४ ५} तिसुमेधाः । ^{२ १२} मूर्द्धानज्जा । ^{२ १} वाहःपय । ^{२ ३ ४ ५} साच्चमपू । ^{१२} औ

^{१२ ३२ १} होवाक्षश्चोयि । ^{२ ३} इक्ष्वा । ^{१ २} औमिश्चीणा । ^{२ ३} तीश्चसु । ^२ भा

^{२ ४} ४४३यिः । ^{२ ४} नाश्नापुयिक्ता ६ ५ ६यिः (४) ॥ ७ ॥ [१]

॥ पार्थम् ॥ ओ३हो३होयि । साकमुजो । मर्ज
 य । तस्वसाराः । दग्धधीरा । स्वा३धीत । योधनु
 नीः । चरिःपय्या । द्रवज्जाः । स्वरियस्या । द्रोणज
 ना । जे३अति । यो३४३ । ना३वा३जा३५३यि ॥ (१)
 सम्मातृभायिः । नशिषुः । वावशानाः । वृषादधा ।
 न्वे३पुरु । वारो३अङ्गायिः । मय्यी३नयो । पा३म३भि । नि
 ष्क३त३यान् । सङ्ग३च्छतायि । कलशे । ज३४३ । स्त्री
 श्या३भा३५३यिः ॥ (२) उतप्रपायि । प्या३ज३धः । अघि
 यायाः । इन्दु३र्द्धारा । भो३ःसच । तेसुमेधाः । मूर्द्धा
 नङ्गा । जा३ःपय । साचमूष् । ओ३हो३होयि । अभि
 श्रीणा । ती३वसु । भा३४३यिः । ना३ना३यि३क्ता३५३
 यिः (३) ॥ ८ ॥ [२]

॥ औशनम् ॥ साकाम् । उलोमर्जयन्ता । स्वसा

राः । दशधीरा । स्थाशधीत । योधनुत्रीः । चरिः

पर्यद्रवञ्जाःसू । रियारश्स्या । द्रोणन्नना । लेहअति ।

योह४३ । नाहवाप्रजाहृयि ॥ (१) साम्ना । तृभिर्न

शिप्रुर्वा । वशाशनाः । वृषादधा । न्नेहपुरु । वारो

अङ्गायिः । मर्यान्नयोषासभिनायिः । कृतारश्यान् ।

सङ्गच्छतायि । कलशे । जह४३ । स्त्रीश्याप्रभाहृयि

यिः ॥ (२) जता । प्रपिष्यजधरा । धियाश्याः । इन्द

र्द्वारा । भौशःसच । तेसुमेधाः । मूर्धनानङ्गावःपयसा ।

चमूरश्षू । अभिग्रीणा । तीश्वसु । भाश४३यिः । ना

इनाप्रयिक्ताहृयिः (३) ॥ ४ ॥ [३] १५

अथ पिबासुतस्येति प्रगाथाककं तृतीयं सूक्तम्—

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
पिबासुतस्यरसिनोमत्स्वानइन्द्रगोमतः ।

३ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
आपिनीबोधिसधमाद्येवृधेऽस्माअवन्तुतेधियः ॥ १ ॥

हे “इन्द्र !” “रसिनः” रक्षवतः “गोमतः” गोविंकारैः
मयः-प्रभृतिभिः अपण-द्रव्यैर्युक्तस्य “नः” अस्मादीयस्य “सुतस्य”
अभिषुतस्य [“क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्”—इति कर्मणः सम्प्रदान-
त्वाच्चतुर्थ्यर्थे (२, ३, ६२)—षष्ठी] ईदृशं सोमं “पिब”, पीत्वा च
“मत्स्व” ह्यसौ भव । अपि च त्वं “सधमाद्ये” सह मादयितव्ये
सहितैरस्माभिस्तर्पयितव्ये सोमे “आपिः” आपयिता वन्तुः सन्
“नः” अस्माकं “वृधे” वृद्धमानाय “बोधि” बुध्यता “ते”
त्वदीया “धियः” बुद्धयः अनुगृह्णात्मिकाः “अस्मान्” स्तोतृन्
“अवन्तु” रक्षन्तु ॥

“सधमाद्ये”-“सधमाद्यः”—इति पाठो ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
भूयामतेसुमतीवाजिनोवयम्मानन्तरभिमातये ।

३ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
अस्माच्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरानःसुम्नेषुयामय ॥ २ ॥ १६

* ऋ० षा० ३, ४, ५, ७ (१भा० ४८५४०) = ऋ० वे० ५, ७, २५, १ ।

† ऋ० वे० ५, ७, १५, २१ ।

हे इन्द्र ! “सुमतौ” शोभनायां बुद्धौ अनुग्रह-बुद्धौ “वाजिनः”
हविष्मन्तो वयं “भूयाम” वर्त्तमाना भवाम “अभिमातये”
अभिमन्यत इत्यभिमातिः शत्रुः * तस्मै तदर्थं “नः” अस्मान्
‘मा स्तः’ माहिंसौः [स्तुङ् हिसायां (क्रा० प०) माङि
स्तुङि कान्दस्ये लृक्] । अपितु “अभिष्टिभिः” अभ्येषणीयाभिः
प्रार्थनीयाभिः “चित्राभिः” चायनीयाभिः बहुविधाभिर्वा त्वदी-
याभिः “जतिभिः” “अस्मान्” “अवतात्” [अव रक्षणे (आ०
प०)] । तथा “नः” अस्मान् “सुम्नेषु”† सुखेषु “आ यामय”‡
आयतान् कुरु सर्वदा सुखिन एव कुरु ॥ २ ॥ १६

॥ अभीवर्त्तम् ॥ पिवा३सू३तस्यरसिनोवा । मात्स्वान
इ । द्रगोमा१ता२ः । आपिर्न्निवा३१२३४ । धिसधमा ।
दियेवा१र्द्धा२यि । अस्मा३श्वा१वारः । तुता३यि । धा
२३४५ । या२३४५ः ॥ (१) अस्मा३श्वा३वन्तुतेधियोवा ।
आस्मा३श्वा । तुतायिधा१श्या२ः । भूयामता३१२३४
यि । सुमतौवा । जिनोवा१श्या२म् । मानास्ता१श्या२ ।

* ‘अथवा कश्चिद्भोगः’—इति वि० ।

† ‘सुम्नेषु—सुखेषु’—इति वि० ।

‡ ‘आयामयेत्यर्थः’—इति वि० ।

^{५ २} ^१ ^{३ १ १ १ १} ^{५ २ ४ २}
 भिमा३ । ता२३४५ । या२३४५यि ॥ (२) माना३स्ता३
^{४ ५ ४ ५} ^{१ २} ^{१ २} ^{१ २}
 रभिमातयोवा । मानस्तर । भिमाताश्या२यि । आस्ता
^२ ^{३ ४ ५ २} ^{२ १ २}
 च्चिना३१२३४ । भिरवतात् । अभायिष्टा१यिभा२यिः ।
^{२ १ २} ^{३ २} ^१ ^{२ १ १}
 आनाः३श्मन्ना२यि । घुया३ । मा२३४३ । या२३
^{१ १}
 ४५ (३) ॥ * ॥ [१]

^{४ २ ४ ३ ४ ५ ४ ५} ^{२ ३ २}
 ॥ उत्सेधम् ॥ पिवास्तुतस्वरसिनः । मत्स्वा । नआ
^{४ २ ४ ५} ^{२ १ २} ^२
 ३४औहोवा । द्रगोमताऽ२ः । हा३१उवा२३ । ऊ३४
^{५ ३ २ २} ^{४ २} ^{५ ४ ५} ^{१ २ १}
 पा । आपा३यिर्नो । औहोवाहायि । धायिसधमा ।
^{२ २ १ २ २} ^{२ ५} ^{३ २}
 दियेवाङ् । हा३१उवा२३ । ऊ३४पा । अस्ता
^४ ^{५ ४ ५} ^{३ २} ^४
 ३५अव । औहोवाहायि । तुता३यिधा५या६५६ः ॥ (१)
^{४ ३ २ ४} ^{२ ५ २} ^{३ २} ^{३ ४ ५}
 अस्ता५अवन्तुतेधियो । स्नान् । अवा३४ औहोवा ।
^{२ १ २} ^{२ ५} ^{३ २ २ ४}
 तुतेधियाऽ२ः । हा३१उवा२३ । ऊ३४पा । भूया३म

ता । औहोवाहायि । ह्रमतौवा । जिनोवायम् ।

हा३१उवार३ । ऊ३४पा । माना३स्तर । औहोवाहा

यि । भिमा३तापूया६५६ ॥ (२) मानस्तरभिमातये । मा

नः । स्तरा३४औहोवा । भिमातयाऽरयि । हा३१उवा

२३ । ऊ३४पा । अस्मा३च्चिन्ना । औहोवाहायि ।

भायिरवतात् । अभिष्टायिभिः । हा३१उवा । ऊ३४

पा । आना३ःसुन्ने । औहोवाहायि । पुया३मापूया

६५६ । ऊ२३४पू(३) ॥ १५* ॥ [२]

॥ निषेधम् ॥ पिबासुतस्या३रसिनाः । मत्स्वानआ

यि । द्रगोमता३ः । इहा३ । आपा३यिर्नो । हा

हो२३४हा । धायिसधमा । दियेवार३र्द्धायि । इहा३ ।

आस्मा३आवा । हाहो२३४हा । तुता३यिधापूया६५

^{२ २} ६ः । ^{२ २} अस्मा^१ अवनू^२ तेधियाः । ^{१ २ १} अस्मा^१ अवा । ^{१ २ १} तुतेधि
^{१ २} या^२ २ः । ^{१ २ ४ ५} इहा^३ ३ । ^{२ ३} भूया^४ ३ मातायि । ^५ हा^१ चो^२ २ ३ ४ हा । ^१ सु
^{२ २ १} मती^२ वा । ^{२ २ १ २} जिनोवा^३ २ श्याम् । ^{१ २} इहा^३ ३ । ^{१ २ ४ ५} माना^३ ३ स्तारा ।
^{१ ३} हा^२ चो^३ २ ३ ४ हा । ^{३ २ ४} भिमा^३ ३ ता^४ पूया^५ ३ पू^६ ६ यि ॥ (२) ^{२ २} मान^३ स्तर
^{२ २} भी^३ ३ मातयायि । ^{२ १ २ १} माना^३ ३ स्तरा । ^{२ २ १} भिमा^३ ३ तया^४ ३ यि । ^{१ २} इहा^३ ३
^{१ २ ४ ५} ३ । ^{२ ३} आस्मा^४ ३ श्वायिना । ^५ हा^१ चो^२ २ ३ ४ हा । ^{१ २ १} भायि^३ ३ रवतात् ।
^{२ १} अभि^३ ३ ष्टा^४ ३ श्यिमायिः । ^{१ २} इहा^३ ३ । ^{१ २ ४ ५} आना^३ ३ शः^४ ३ स्मनायि । ^२ हा
^३ चो^४ २ ३ ४ हा । ^{३ २ ४} पुया^५ ३ मा^६ पूया^७ ३ पू^८ ६ । ^{३ १ १ १ १} चो^२ २ ३ ४ पू^३ (३) ॥ १६* ॥ [३]
^{५ ४ २ ३ ४ ५} ॥ पृष्ठम् ॥ ^{१ २} पिवा^३ ३ श्चु^४ तस्य^५ रसिनाः । ^{१ २} मत्स्वान^३ इन्द्र^४ गो
^१ मता^२ ३ चो^३ ३ इया । ^{२ २ १ २ २} आपि^३ ३ नी^४ ३ बो^५ ३ धिस^६ ३ धमा^७ ३ चो^८ ३ वृ^९ ३ धा २ ३ चो^{१०} ३ इ
^{२ १ २} या । ^२ अस्मा^३ ३ आ^४ ३ रवा । ^१ तुता^२ यिधा^३ ३ इया ३ ४ ३ः ॥ (१)
^{५ ४} अस्मा^३ ३ अवनु^४ तेधियाः । ^{२ ३ ४ २ ५} अस्मा^३ ३ अवनु^४ तेधिया^५ २ ३ चो^६ ३

इया । भूयामतेसुमतीवाजिनोवयार३० ह्योइया । मा

नस्तार३रा । भिमातार३या३४३यि ॥२॥ माना३स्तर

भिमातयायि । मानस्तरभिमातयार३यिहोइया । अस्मा

च्चित्राभिरवतादभिष्टिभार३यिह्योइया । आनःसूर३न्ना

यि । धुयामार३या३४३ । ओ२३४५ई । डा(३) ॥१२*॥[४]

॥ जमदग्नेःसाम ॥ पिवाचुतस्यरमिनोमत्स्वाहाउ ।

नारः । इन्द्रा३गोमता३ः । हाउ । आपिन्ना३वो ।

धिसाधमार । दियेवृधार३ । हाउ । अस्मा३अवा

२३ । हा । तुने३हो२ । यार३४ओहोवा । धियज

२३४५ ॥१॥ अस्मा३अवन्तुतेधियोस्मान्हाउ । आ२ ।

वन्तु३तेधियार३ः । हाउ । भूयामा३स्ते । सुमतीवा

३ । जिनोवयार३म् । हाउ । मानास्तार३ । हा ।

^{३ २ १ १} ^३ ^{५ २ २} ^{२ ३ १ १ १ १}
 भिमाश्चोर । या २३४ औचोवा । तयज २ ३ ४ ५ ॥ (२)

^{२ २} ^{२ २ २ २} ^१ ^१ ^{१ २}
 मानस्तरभिमानयेमानोहाउ । स्तारः । अमारयिमा

^२ ^{१ २} ^२ ^{१ ०}
 तयारयि । हाउ । अस्माच्चारयिचा । भिरावता २

^१ ^२ ^{२ १ ०}
 त् । अभिष्टिभारयिः । हाउ । आनाःसुम्नारयि ।

^{१ १} ^{३ २} ^{१ १} ^२ ^{५ २ २} ^{२ ३}
 हा । पुयाश्चोर । या २३४ औचोवा । मयज

^{१ १ १ १}
 २३४ ५ (३) ॥ १६* ॥ [५] १६

अथ त्रिरश्मिसेति तृचात्त्रकं चतुर्थं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

^{१ २} ^{३ २ ३ १ २}
 त्रिरश्मैसप्तधेनवोदुदुहिर

^{३ २} ^{३ १ २ ३ १ २}
 सत्यामाशिरम्यरमेव्योमनि ।

^{३ २} ^{३ १ २} ^{२ २} ^{३ २ ३}
 चत्वार्यन्याभुवनानिनिर्णिजे

^{१ २} ^{३ २ ३ १ २ २}
 चारुणिचक्रेयद्वतैरवद्धत ॥ १७ ॥

“परमे व्योमनि” विविधमीममवनं गमनं देवानामत्रेति व्योमा यज्ञः, तस्मिन् स्थिताय यद्वा परमे व्योमनि अन्तरिक्षे वर्त्तमानाय “त्रिः सप्त” एकविंशति-सङ्ख्याकाः “धेनवः” ग्रीण-यित्रो गावः “सत्यां” सत्यं यद्यार्थभूतम् “आशिरम्” आश्रयमाणं “दुदुह्निरे” दुहन्ति [यद्वा, त्रिःसप्त द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवः त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश इति, एतैः सर्वैः सह गोषु उत्पद्यन्ते तद्भावो दुहन्तीति] । किञ्चायं सोमः “अन्या” अन्यानि “चत्वारि” “भुवनानि” उदकानि वसतीवरीस्तिस्रैकधना इति, तानि चतुःसङ्ख्याकानि “चारुणि” कल्याणानि उदकानि “निर्स्मिजे” निर्स्मिजनाय परिशोधनाय “चक्रे” करोति । “यद्” यद्वा अयम् “ऋतैः” यज्ञैरेव “वर्द्धितः” वर्द्धितवान् तदा करोति ॥

“दुदुह्निरे,” “परमेव्योमनि”-“दुदुह्ने,” “पूर्वेव्योमनि”— इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१२ २२ ३ १ २ ३ १ २

समक्षमाणोऽमृतस्य चारुण

०२७ ३ १ २ ३ १ २

उभेद्यावाकाव्येनाविश्रमथे ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३

तेजिष्ठा अपोमध्वनापरिव्यत

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यदौदेवस्यश्रवसासदोविदुः ॥ २* ॥

“सः” “भक्ष्यमाणः” “चारुणः” कल्याणस्य “अमृतस्य” उदकस्य [“क्रियाग्रहणमिति कर्मणः सम्पदान-सञ्ज्ञा, “चतुर्थ्यर्थं बहुलम् (२, ३, ६२)”—इति पाठौ] चारुदकं भक्ष्यमाणः [इकारलोपश्चान्दसः (३, ४, ६०)] भिष्यमाणः यष्टृभिः याच्यमानः सन् “उभे” “द्यावा” [द्यावादेशस्य द्वन्द्वे विहितत्वात् उत्तरपदाभावेऽपि द्वन्द्वः प्रतीयते] उभे द्यावापृथिव्यो “काव्येन” कवि-कर्मणा “वि शश्वये” * विवृतकारातिशयेन निमित्तेन प्रह्वे-नोदकेन सम्पूरयतीत्यर्थः । किञ्च “तेजिष्ठाः” अतिशयेन दीमानि “अपः” उदकानि “मंहना” महत्त्वेन “परि व्यत” तदा परित आच्छादयति । “यदि” यदा ऋत्विजः “देवस्य” द्योतमानस्य सोमस्य “सदः” स्थानं “अवसा” † हविषा युक्ताः सन्तः “विदुः” यागार्थं जानन्ति लभन्ते तदा आशुणीतीति । [विद ज्ञाने (अदा० प०) “सिजभ्यस्त (३, ४, १०६)”—इति मेर्जु-सादेशः ॥

“भक्ष्यमाणः”—“भिष्यमाणः”—इति पाठौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ ३१२ २२ ३१
तेअस्यसन्तुकेतवोमृत्यवो

२ ३१२ ३१२ २२
दाभ्यासोजनुषीउभेअनु ।

* ‘विशश्वये—विविधं शिथिलीकरोति’—इति वि० ।

† ‘अवसा—अग्नेन बलमेव वा’—इति वि० ।

१ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १
येभिर्नमणाच्चदेव्याचपुनत

१२ ३ १ १

आदिद्राजानमननाअगृभणत ॥ ३* ॥ १७

“अस्य” एतादृशस्य सोमस्य “केतवः” प्रज्ञापकाः सर्वे ज्ञाव-
नीया रश्मयः । कौटुशाः ? “अमृत्यवः” मरण-धर्म-रहिताः अत-
एव “अदाभ्यासः” [“दभेष्टेति वक्तव्यम् (७, २, ६६ वा०)”—
इति ख्यत्] परैरहिंस्यास्वेतादृशा अस्य रश्मयः “उभे”
“जनुषी” जन्मना स्यावर-जङ्गमात्मके द्वे “अनु” लक्ष्मीकृत्य
“सन्तु” रचन्तु [ओषधीनामग्रे सोमो रेतो निषिञ्चति यज्ञः
मनुष्याणाञ्च धाराः स्रवति स्रुतु] सोऽयं “येभिः” यैः केतुभिः
“नृग्णा” नृग्णानि बलानि “देव्या” देवार्हाणि चात्रानि “पुनते”
प्रेरयति । “आदि” अभिषवानन्तरमेव । “राजानं” सोमं
“मननाः” मननीयाः स्तुतयः “अगृभणत” परिगृह्णन्ति प्राप्नु-
वन्तीत्यर्थः “हृग्रहीः”—इति कान्दसो भकारः ॥ ३ ॥ १७

१

५२ ४५२ ४५२ ४

॥ मारुतम् ॥ चार ३ ४यिः । अस्मैसप्रधेनवोदुदौ ।

४

५

२ १२ २

२ २ १

होद्वायिरायि । सत्यामाशिरम्परमायि । वियोमानौ २ ।

^{१८ २} चत्वार्यन्याभुवना । ^{२ १} निनिर्णायिजा२३यि । ^{२ १ ३} चारुणा२३

^५ ४यिवा । ^{२२ १ २२} क्रोयद्वतैः । ^{५ २ ४} आवा३र्द्धा५ता६५६ ॥ (१) ^१ सार२३

^{५ २ २ ४ ५ २ ४ ५} ४ः । ^{१ २ २ २ २} भक्षमाणोअमृतस्यचौ । ^{१ २ २ २ २} चारुणाः । ^{१ २ २ २ २} उभेद्यावाका

^{२ २ २} येना । ^{२ २ २} विशश्चाथा२यि । ^{२ २ २} तेजिष्ठाअपोमहना । ^२ परि

^{२ १ ३} व्याता२३ । ^५ यादीदार३४यिवा । ^{२ १ २२} स्यश्रवसा । ^{१ २} सादो३

^४ वापुयिदू६५६ः ॥ (२) ^१ ते२३४ । ^{५ २ ४ ५ २ २} अस्यसन्तुकेतवोअमौ ।

^{४ ५} होर्च्यावाः । ^{१ २ २ २} अदाभ्यासोजनुषी । ^{२ २ १} उभेआनू२ । ^{१ २} येभि

^{२ २} नृम्णाचदेव्या । ^{२ १} चपुनादार३यि । ^{२ २} आदिद्रा २ ३ ४जा ।

^{२ १ २२} नमननाः । ^{१ २ ४} आगाश्मर्णा५ता६५६ (३) ॥ १२* ॥ [१] १७

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य द्वादशस्याध्यायस्य

पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—

अभिवायुमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ २ ३ क २ र ३ २
अभिवायुंवौत्पर्षागृणानो

२ ३ १ र १ र ३ १ २
ऽभिमित्रावरुणापूयमानः ।

३ १ र २ र ३ १ २ ३ २
अभौनरन्धीजवनरथेष्टा

३ १ ३ १ २ ३ १ २
मभौन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १* ॥

हे सोम ! “गृणानः” सूयमानस्त्वं “मित्रावरुणा” मित्रा-
वरुणौ च पानाय “अभि” गच्छ । किञ्च “नरं” सर्वस्य नेतारं,
“धीजवनं” बुद्ध्या समं वेगं कुर्वाणं,† “रथेष्टां” रथे तिष्ठन्तम्
[अनेनाश्विनावभिधीयते ; एकवचनन्तु प्रत्येक-विवक्षया समु-
दाय-विवक्षया वा ; एतादृशावश्विनौ चाभिगच्छ] । तथा “वृषणं”
कामानां वर्षकं “वज्रबाहु” वज्र-युक्त-हस्तम् “इन्द्र” च त्वं
पानाय “अभि” गच्छ ॥ १ ॥

* ऋ० वे० ७, ४, २०, ४ ।

† धीजवनं—धीर्बुद्धिः तथा जवनं वेगवन्तम् अथवा मनोजवैरश्वैः गन्तारम्
—इति वि० ।

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अभिवक्ष्यासुवसनान्यर्षाभिधेनूःसुदुषाःपूयमानः ।

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभिचन्द्राभर्त्तवेनोहिरण्याभ्यश्चान्रथिनोदेवसोम ॥ २* ॥

हे “सोम !” अस्माकं “सुवसनानि” सुपरिधानानि “अभि” गमय । यद्वा, सुवसनानि शोभन-वस्त्र-संहितानि “वस्त्रा” वस्त्रा-ग्राह्यादकानि धनानि “अभि” गमय । किञ्च “पूयमानः” पवित्रेण त्वं “सुदुषाः” सुष्ठु पयसो दोग्ध्रौः “धेनूः” नवप्रसूति-का गाः “अभि” प्रापय । अपिच “चन्द्राणि” आह्लादकानि† “हिरण्यानि” “भर्त्तवे” भरणाय पोषणाय “नः” अस्माकम्‡ “अभि” गमय । तथा हे “देव” स्तोतव्य ! हे “सोम !” “रथिनः” रथवतः अश्वान् अस्माकम् “अभि” प्रापय ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
अभीनोअर्षादिव्यावसून्यभिविश्वापार्थिवापूयमानः ।

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभियेनद्रविणमश्रवामाभ्यार्षेयञ्जमदग्निवन्नः ॥ ३१ ॥ १८

हे सोम ! पवित्रेण “पूयमानः” त्वं “दिव्या” दिव्यानि

* सू० वे० ७, ४, २०, ५ ।

† ‘चन्द्राणि—कान्तानि’—इति वि० ।

‡ ‘नः—अस्माभ्यम्’—इति वि० ।

॥ सू० वे० ७, ४, २१, १ ।

दिवि भवानि “वसूनि” धनानि “नः” अस्माकम् “अभ्यर्ष”
अभिगमय तथा “पार्थिवा” पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि
“विष्ठा” विष्ठानि सर्वाणि धनान्यभिगमय । तथा “येन”
त्वदीयेन सामर्थ्येन “द्रविणं” धनं “वयम्” “अश्वाम” अभि
व्याप्नुयाम तत् सामर्थ्यम् “अभि” गमय । किञ्च “आर्षेयम्”
ऋषीणां ऋषिपुत्राणां योग्यं धनं “जमदग्निवत्” जमदग्नेर्यथा
त्वं प्रापय एवं “नः” अस्माकमपि अभ्यर्ष [यद्वा, आर्षेयम्,
ऋषीणां योग्यं मन्त्रं जमदग्नेः स्वभूतं मन्त्रं यथा स्वादुतमम्
अकार्षीः एनमस्माकं तादृशं मन्त्रं स्वादुतमं कुर्विति मन्त्रं ज्ञप्त्वा
स्तोता कुक्षी नाम ऋषिः प्रार्थयते] ॥ ३ ॥ १८

॥ पार्थम् ॥ ओ३हो३होयि । अभिवायूम् । वी३

तिप । षा३णानाः । अभिमित्रा । वरूणा । पू३यमानाः ।

अभौनराम् । धी३जव । न३रथेष्ठाम् । अभि३न्द्राम् ।

वृषणम् । वा ३४३ । आ३वापू३ह ६५ ६म् ॥ (१)

अभिवस्त्रा । सुवस । नानियर्षा । अभिधेनूः । सह३

घाः । पू३यमानाः । अजि३चन्द्रा । भर्त्तवम् । नो३हिर

ण्या । अभि३यश्चान् । रथि३नः । दा३३४३यि । वा३स्तो

२ २ १२ २ १ २ ३ ४ ५
 पूमा६पू६ ॥ (२) अभीनोआ । पा३दिवि । यावहनी ।

२ १ २ १ २ १ ३ ४ ५ २ १२
 अभिविश्वा । पा३र्थिवा । पूयमानाः । अभियेना ।

२ १ २ ३ ४ ५ २ २ २ १२
 द्रविणम् । अश्रवामा । औ३हो३होयि । अभियर्ष ।

२ १ २ २ ४
 या ३ जमत् । आ ३ ४ ३ । ग्रा ३ यिवा ५ ज्ञा ६ पू ६ :

(३) ॥ १४* ॥ [१] १८

अथी यजायथाइति तृवात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, .

तत्र प्रथमा ।

१२ १२ ३ १ २ ३ १ २
 यजायथाअपूर्वमघवन्वृत्रहत्याय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
 तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तन्नाउतोदिवम् ॥ १३ ॥

हे “अपूर्व” ॥ त्वत्तो व्यतिरिक्तेन पूर्वेण वर्जित ! हे “मघवन्”
 मंहनीय-धनवन् ! “इन्द्र !” “वृत्रहत्याय” वृत्रहननायऽ “यद्”
 यदा त्वं “जायथाः” उत्पन्नः प्रादुर्भूतोऽसि “तत्” तदानीमेव

* ऊ० गा० ८ प्र० १ अ० १४ सा० ।

† ‘उक्तोऽभिज्ञवः । उक्तः प्रष्टाः । उक्तोऽभिजित् । इदानीं स्वरसामानः’—
 इति वि० ।

‡ ऊ० वे० ६, ६, १२, ५ ।

॥ ‘अपूर्वगुण !’—इति वि० ।

§ ‘वृत्रहत्या इन्द्रोऽभिधीयते, तस्मै वृत्रहत्याय हविर्दद्या इति वाक्यशेषः’—इति वि० ।

“पृथिवी” प्रथमानां भूमिम् “अप्रथयः” प्रथितां दृष्टामकरोः ।
 “उत” अपि च “तत्” तदानीमेव “दिवं” द्युलोकम् अन्तरि-
 क्षेण “अस्तन्नाः” निरुद्धामकार्षीः [एतादृशं वीर्यं त्वदन्यस्य न
 सम्भवतीत्यर्थं द्योतयति अपूर्व्येति पदम्] ॥

“उतोदिवम्”-“उतद्याम्”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तत्तेयज्ञो अजायत तदकं उत हस्कृतिः ।

१ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

तद्विश्वमभिभूरसियज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ २* ॥

हे इन्द्र ! “यद्” यदा त्वम् अजायथाः तदानीं “ते”
 त्वदर्थं “यज्ञः” अग्निष्टोमादिः “अजायत” सोम-पानार्थमभूत् ।
 “उत” अपि च “तद्” तदानीं “हस्कृतिः” [हस हसने (म्वा० प०)
 हासकारी प्रीत्यर्थं क्रियमाणो हर्ष-सूचको द्वितीय-मन्त्रोऽपि
 अजायत । किञ्च तदा “यद्” “जातं” भूतजातं “यच्च”
 “जन्त्वम्” [कृत्यार्थे त्व-प्रत्ययः] जनितव्यं विश्वमस्ति, “तत्”
 “विश्व” सर्वम् “अभिभूः असि” स्व-महिम्ना अभिभूत-
 वानसि ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

आमासुपक्वमैरय आह्वयं १० रोहयोदिवि ।

३ २

३ १ २ २

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

घर्मन्नसामन्तपतासु वृत्तिभिर्जुष्टं विवर्णसेवुच्चत् ॥ ३ ॥ १८

हे इन्द्र ! “आमासु” अपक्वासु गोषु “पक्वं” पयः “ऐरयः”
 ग्रेरय [तथा च मन्त्रः—“आमासुचिद्दधिषे पक्वमन्तः” इति ।
 किञ्च, “दिवि” द्युलोके “सूर्यम्” “आरोहयश्च” [पूर्वं पण्यो-
 नामासुरा अङ्गिरसां गा अपहृत्यान्वकारावृते कस्मिंश्चित् पर्वते
 स्थापितवन्तः, ततोऽङ्गिरसः इन्द्रं स्तुत्वा गाः पुनरस्त्रभ्य-
 माहरेति तैरुक्तम् इन्द्रो गवां स्थानं तमसावृतं दृष्ट्वा तत्र गो-
 प्रदर्शनाय द्युलोके सर्वप्रकाशकं सूर्यमारोहितवान्] स्थापित
 वानसि [“चादि-लोपे विभाषा (८, १, ६२)”—इति पूर्वस्य
 ऐरयइत्यस्य न निघातः । अथ परोक्षतोऽर्द्धः—] हे
 स्तोतारः ! “सुवृत्तिभिः” शोभनाभिः स्तुतिभिः “न तपत”
 इन्द्रं तीक्ष्णोक्कुरुत [इन्द्रं स्तुतिभिः यथा तपन्ति तद्वत्] ।
 ततः “गिर्वणसे” गौर्भिर्वननीयायेन्द्राय “जुष्ट” प्रीतिकरं
 पर्याप्तं वा “वृहत्” महत् वृहदाख्यं वा “साम” गायत ॥३॥१८

अथ मत्स्यपायीति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१२ २२ ३ २ ३ १ २

३ १२ २२

मत्स्यपायितेमहःपात्रस्येवहरिवोमत्सरोमदः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषातेवृषइन्दुर्वाजीसहस्रसातमः ॥ १* ॥

हे “हरिवः” हरिभ्यां तद्वन्निन्द्र ! “महः” महान् पूज्यो-
 ऽयं सोमः “पात्रस्येव” पात्रेणैव सोमपात्रेण यथा धार्यते सोमः,

तत्सदृशेन त्वया [तृतीयार्थे षष्ठी (३, १, ८५) । यद्वा,
 'पात्रस्य' 'ते' तव स्वभूतः 'महः' महान् सोमइति वा
 योजना] "अपायि" पीतः [आशंसाया विवक्षितार्थत्वात् भूते-
 ऽर्थे प्रयोगः] यतः पिब अतो "मत्सि" माद्यसि माद्यस्व वा ।
 "मत्सरः" मद-साधनः, "मदः" तर्पयिता ; "वृषा" वर्षिता,
 "इन्दुः" क्षेदयिता आह्लाद-कारीत्यर्थः, "वाजी" अन्नवान्
 अन्नकार्य-वृत्ति-सद्भावात् अन्नवानित्युच्यते, "सहस्रसातमः"
 अपरिमित-दाढतमः सहस्र-पुरुष-सम्भजन-पर्यन्त-शक्त्यतिशयो वा
 एवं महानुभावः सोमः सम्पादितस्तं पिबेत्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 आनस्तेगन्तुमत्सरोवृषामदोवरेण्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
 सहावाङ्इन्द्रसानसिःपुतनाषाडमर्त्यः ॥ २* ॥

हे इन्द्र ! "ते" त्वां "मत्सरः" मर्षण-साधनः सोमः
 "आगन्तु" आगच्छन्तु । कीदृशोऽयम् ? "वृषा" वर्षकः "मदः"
 तर्पयिता, "वरेण्यः" वरणीयः, "सहावान्" सहायवान् अस्म-
 द्दत्तेन सोमेन सहायवान् सन् "सानसिः" अस्माभिः सम्भज-
 नीयः, "पुतनाषाट्" शत्रुसेनाया अभिभविता अमर्त्यश्च
 भवेति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१७ ३ १ २ ६ २ ३ १ २ ३ १ ०
त्व॒हि॒शूरः॑ स॒निता॑ चो॒दयो॑ म॒नुषो॑ रथम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
स॒हावा॑ न्द॒स्युम॑ व्रत॒मोषः॑ पा॒त्रन्न॑ शो॒चिषा ॥ ३* ॥ २०

हे इन्द्र ! “त्वं” “हि” खलु “शूरः” शौर्यौपेतः “सनिता” दातासि । अतः “मनुषः” मनुष्यस्य से “रथं” रंहणं स्यन्दनं मनोरथं वा स्वर्ग-गमन-साधनं यज्ञार्थं रथं वा “चोदयः” प्रेरय । किञ्च त्वं “सहावान्” भूत्वा “दस्युम्” उपक्षयितारम् “अव्रतम्” अकर्त्माणम् अननुष्ठायिनम् “ओषः” † दह । किमिव ? “शोचिषा” दीप्त्या ज्वालयामि अग्निः “पात्रन्न” स्वाधारं पात्र-विशेषमिव यागाधिकारी सन् यो न यजते, तं देहीत्यर्थः ॥ ३ ॥ २०

५ २ ५ ५ ४ २ ५ २ २ २ २ १
॥ काले॑ यम् ॥ म॒त्सि॒थाऽ॒पायि॑ते म॒हाः । पा॒त्रास्ये॑ वा ।

२ ३ २ २ २ ३ २ २ १ २ २ २
ह॒रि॒वो॒मा॒२३ । त॒स्रो॒म॒दा॒३ः । वा॒२३४ । पा॒ते॒वृ॒ष्णे ।

२ २ १ २ ३ २ २ ५ ४
आ॒३यि॑न्दूः । वा॒जा॒यि॑स॒हौ । वा॒३४३३ओ॑३४वा । स॒सा

५ २ ४ ५ ४ ५ २ १ २ १ २ ३
पू॒त॒माः ॥ (१) आ॒न॒स्ते॒ऽग॒न्तु॑म॒स॒राः । वृषा॑म॒दो । व॒रे

* ऋ० वे० २, ४, १८, २ ।

† ‘ओषः पात्रं न—दीप्तेः पात्रं न’—इति वि० ।

२ १ २ १ ५५ २ २
 णियार३ः । सहा३ । वा२२३४ । इन्द्रसा । ना३सा
 १ ३२ २ २ ५ ४
 यिः । पुतनापौ । वा३४३ओ३४वा । अमापुर्त्तियाः ॥ (२)
 ५ २ ४२ ५ ४ २ १ २२ १ ३३२ २ १
 तुव॒हौ३शूरःसनिता । चोदायोमा । नुषोरयार३म् ।
 २ १ ५ २ २ १२
 सहा३ । वा२३४न् । दस्युम । ब्रा३ताम् । ओषाः ।
 ३२ २२ २ ५ ४ ४
 पात्रौ । वा३४३ओ३४वा । नशो५चिषा । ह्यो५ई ।

डा(३) ॥ १६* ॥ [१] २०

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य द्वादशस्याध्यायस्य
 षष्ठ खण्डः ॥ ६ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हाईं निवारयन् ।
 पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ १२ ॥

॥ इति षष्ठस्य द्वितीयोऽर्द्धप्रपाठकः ॥ *

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-
 श्रीवीर-बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणा-
 चार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे
 उत्तराग्रन्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

यस्य निःस्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्गमे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ १३ ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्याय आरभ्यते ॥

तत्र,

प्रथमे खण्डे—

पवस्ववृष्टिमिति पञ्चर्चं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ २७ १ २ ३ २ ३ १ २
पवस्ववृष्टिमासुनोपामूर्मिन्दिवस्परि ।

३ १ २ ३ १ २
अयच्छाबृहतीरिषः ॥ १* ॥

हे सोम ! त्वं “दिवः” द्युलोकात् “वृष्टि” वर्षं “नः”
अस्माकं “सु” सुष्ठु “आ पवस्व” समन्तात् चरन् । एतदेव दर्श-
यति—“अपाम्” उदकानाम् “जर्मि” तरङ्गं दिवः “परि”
आपवस्व । अपिच “अयच्छाः” यज्ञ-रहितानि अनामयानि
“बृहतीः” महान्ति “रिषः” अन्नानि आपवस्व ॥ १ ॥

* ऋ० वे० ७, १, ६, १ ।

† विवरण-मते तु ‘आसु’—इत्येकं पदम् अतएव ‘आसु सोमधारासु’—इति
याख्यातम् ।

अथ द्वितीया ।

१२ ३१ २३२ ३ १ २३१२ २२
तयापवस्वधारयाययागावद्द्वागमन् ।

१ २ ३१२ २ २
जन्यासउपनोगृहम् ॥ २* ॥

हे सोम ! त्वं “तया” तादृश्या “धारया” “पवस्व” क्षर ।
कीदृश्येत्यवाह—“यया” यादृश्या त्वदीयया धारया “जन्यासः”
जन्याः शत्रु-जनपद-भवाः† “गावः” “इह” अस्मिंस्त्रीके “नः”
अस्माकं सम्बन्धि “गृहम्” “उप आ गमन्” उपागच्छन्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३१२ २१२ ३१२ ३१२
धृतम्यवस्वधारयायज्ञेषुदेववीतमः ।

३१ २ ३ १२ २२
अस्मभ्यंवृष्टिमापव ॥ ३‡ ॥

हे सोम ! “यज्ञेषु” “देववीतमः” अतिशयेन देवकामः त्वम्
“अस्मभ्यं” स्त्रीलभ्यः “धृतम्” उदकं “धारया” “पवस्व” क्षर ;
“वृष्टिं” वर्षञ्च “आ पव” ॥ ३ ॥

* ऋ० वे० ७, १, ६, २ ।

† ‘जन्यासः—जनसन्निताः’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ७, १, ६, ३ ।

अथ चतुर्थी ।

१ २ ३ ४

१ २ ३ ४ ५

२ १ २

सनऊर्ज्ज्याऽऽव्ययं पवित्रं धारया ।

३ १ २ ३ ४ ५ १ २

देवासः शृण्वन् हि कम् ॥ ४७ ॥

हे सोम ! “सुतः” अभिषुतस्त्वं “नः” अस्माकम् “ऊर्ज्ज्या”
अन्नाय “अव्ययम्” अविमयं “पवित्रं” धारया सम्पाति “वि धाव”
प्राप्नुहि “देवासः” देवा अपि “हि कं शृण्वन्” गमन-विलाया-
मुत्सन्नं त्वदीयं शब्दं शृण्वन्तु ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१ २

३ १ २

२ १ २

पवमानोऽसिध्यद् दत्तां स्यपजङ्घनत् ।

३ २ ३ २ ३ १ २

प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५ § ॥ १

“रक्षांसि” राक्षसाः “अप जङ्घनत्” “रुचः” आत्मीया
दीप्तौः “प्रत्नवत्” पुराणवत् “रोचयन्” दीपयन् “पवमानः” सोमः
“असिध्यद्” स्यन्दते ॥ ५ ॥ १

• “अव्ययं”—इति ऋ०-पाठः ।

† ऋ० वे० ७, १, ६, ४ ।

‡ ‘अथवा वि अन्तरिक्षात् अव्ययं पवित्रं धाव’—इति वि० ।

§ ‘देवासः शृण्वन् हि कम्—एतच्छृण्वन् हे देवाः ! कं प्रजापतिरूपं सोमम्
अथवा कं पानीयं सोमं’—इति वि० ।

§ ऋ० वे० ७, १, ६, ५ ।

अथ प्रत्यस्मादिति चतुर्त्थं द्वितीयं सूक्तम्,
तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मैपिपीषतेविश्वानिविदुषेभर ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमायजगमयेपश्चादधुनेनरः ॥ १* ॥

हे अध्वर्यो ! “नरः” नेता यजानां त्वम् “अस्मै” इन्द्राय
“प्रति भर” अभिभर सोमं प्रयच्छेत्यर्थः । कौटुशायेन्द्राय ? “पिपी-
षते” पातुमिच्छते “विश्वानि” सर्वाणि वेद्यानि “विदुषे” जानते
“अरङ्गमाय” पर्याप्त-गमनाय “जगमये” यज्ञेषु गमन-शीलाय
“अपश्चादधुने” [दक्षिर्गतिकर्मा निघ० २, १४, ६२)] अपश्चात्त-
मनाय सर्वेषामयगामिने ॥

“नरः”-“नरे”—इति पाठो ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एमेनम्यत्येतनसोमेभिःसोमपातमम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अमवेभिर्हजोषिणमिन्द्रसुतेभिरिन्दुभिः ॥ २† ॥

हे अध्वर्यवः ! “सोमेभिः” सोमैः करणभूतैः “सोमपातम्”
अतिशयेन सोमस्य पातारम् “एनम्” इन्द्रम् “आ” अभिसुखं

* अ० आ० ४, २, २ (१भा० ७१८ ३०) = अ० वे० ४, ७, १४, १ ।

† अ० वे० ४, ७, १४, २ ।

“प्रत्येत” प्रतिगच्छत [“ईम्”—इति निपातोऽनर्थकः] । कीदृश
मिन्द्रम् ? “अमत्रेभिः” अमत्रैः सोमपात्रैः ग्रह-चमसादिभिः
“ऋजीषिणम्” ऋजीषं शत्रूणामुपार्जकं बलं, तद्वन्तः, [यद्वा,
ऋजीषिणमित्युत्तरत्र सम्बन्धनीयं, ‘सुतेभिः’ अभिषुतैः ‘इन्दुभिः’
सोमैः, ‘ऋजीषिणं’ गतसारः सोमः ऋजीषः तद्वन्तम् । अथवा
अमत्रैः अपरिमितैरभिषुतैः सोमैः ऋजीषिणम् । ऋजेर्गत्यर्था-
होणादि-साधन ऋजीष-शब्दः, ततो मत्वर्थीयइति सङ्गतमित्यर्थः ।
एवंविधमिन्द्रं प्रति गच्छतेत्यन्वयः । अन्य आह—अमत्रेभिः
ग्रहचमसादिभिः गतैः सोमैः ऋजीषिणं बलवन्तमिन्द्रं प्रति
गच्छतेति] ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२ ३२ ३४ २३ १२ ३ १२
यदीसुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषय ।

२३ १२ ३ १२ ३२३ ३ १२ २२
वेदाविश्वस्य मेधिरोधृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३* ॥

हे अध्वर्यवः ! “सुतेभिः” अभिषुतैः “इन्दुभिः” उन्दनशील
दीप्तैर्वा “सोमेभिः” सोमैः “यदि प्रतिभूषय” इन्द्रं प्रति यदि
यूयं गच्छथ [भू प्राप्तौ (स्वा० उ०)—इत्यस्यैतद्रूपं] तदानीं
“मेधिरः” मेधावीर् [मेधी यज्ञः (निघ० ३, १७, ४) तद्वान् वा]
स इन्द्रः “विश्वस्य” विश्वं सर्वं भवद्दीयं कामं “वेद” वेत्ति
जानाति ज्ञात्वा च “धृषत्” शत्रूणां धर्षकः सन् “तमित्” तं तं
काममेव “एषते” प्रापयति ॥ ३ ॥

* ऋ० वे० ४, ७, १४, ३ ।

† ‘मेधिरः’—पयसः पश्यादेः, धृषत् धारणार्थम्—इति वि० ।

अथ चतुर्थी ।

३ १ २३२७ ३ १ २४१२ ३२

अस्माअस्माद्दन्धसोध्वर्योप्रभरासुतम् ।

३ १२ ३१२ ३१२३ १२ ३१२

कुवित्समस्यजेन्यस्यशर्द्धतोभिगस्तोरवस्वरत्* ॥ ४१ ॥ २

“अस्माअस्माद्” अस्माएवेन्द्राय नान्यस्मै, हे अध्वर्यो ! त्वम्
“अन्यसः” सोम लक्षणस्यात्रत्य “सुतम्” अभिषुतं रसं “प्र भर”
प्रहर प्रयच्छेति यावत् । सचेन्द्रः “समस्य” सर्वस्य जेतव्यस्य
“शर्द्धतः” उत्सहमानस्य शत्रोः “अभिगस्तोः अभिशंसनात् तत्-
कृतात् हिंसनात् “कुवित्”ः३वहुगः “अवस्वरत्” अस्मान् पालय-
त्वित्यर्थः ॥

“अवस्वरत्”-“अवस्वरद्”—इति पाठौ ॥ ४ ॥ २

३ ४ ५ ४ ५ ३२ १

॥ नानदम् ॥ प्रत्यस्मैपिपी । पताइयि । वार३४यि ।

१ ५ १ ४ ५ ४ ३२ ४ ५ ५

श्वानिविदुषे । भारा । अरङ्गमायज । गमयो२३४हायि ।

१ २ १ २ १ ५ ४ ५ ३२ २५

आपश्वादा । धूनो२३४वा । नापूरो३हायि ॥ (१) एमन

४ ५ २ २ १ २ ५ २ ४ ५

म्प्रये । तना३ । सो२३४ । मेभिःसोमपा । तामाम् ।

* “अवस्वरत्”—इति ऋ०-पाठः ।

† ऋ० वे० ४, ७, १४, ४ ।

‡ ‘कुवित्’—कु-शब्देन वृथिव्यभिधीयते, तस्या वित्—इति वि० ।

^{३ ४ ३ ४ ५ २} अमत्रेभिर्ऋजी । ^{३ ५} पिणो२३४हायि । ^{४ २ ३ ४ ५ २} अमत्रेभिर्ऋजी ।

^{३ ५} पिणो२३४हायि । ^{१ २ १ २} आयिन्दुहतायि । ^{१ ४} भिरो२३४वा ।

^{४ ५} दू५भो६हायि ॥ (२) ^{४ ५ २ ३ ४ ५ ३ २} यदीतुतेभिरि । ^१ दुमा३यिः । सो

^{२ ५ २ ४ ५ ३ ४ २ ३ ४ ५ २ ३} २३४ । मेभिःप्रतिभू । पाथा । वेदाविश्वस्यमोधिरो२

^{५ ४ २ २ ४ ५ २ १ ५ १ २ १} ३४हायि । वेदाविश्वस्यमोधिरो२३४हायि । धार्षणा

^{२ १ ५ ४ ५} ताम् । इदो२३४वा । पा५तो६हायि (३) ॥ १ * ॥ [१]

^{५ ३ २ ४ २ ५} ॥ गौरीवितम् ॥ प्रति । अस्मा३यि । पिपीषतायि ।

^{१ २ १ २ ४} विश्वानिविदुषेभरा२३ । आरङ्गमा३१२३ । यजा५ग्मया

^{१ २ २ ४ ५ ४ ५} यि । आपश्वादा३१२३ । ध्वनोवा । नापूरो६हायि ॥ (१)

^{५ २ २ ४ २ ५ १ २ २ २ २} एमे । नम्प्रा ३ । तियेतना । सोमेभिःसोमपातमा २

^{१ २ २ ४ १} इम् । आमत्रेभा३१२३यिः । ऋजा५यिषिणाम् । आयि

^{२ ४ २ ४ ५} द्रुसुता३१२३यि । भिरोवा । दू५भो ६हायि ॥ (२)

यदी । सुताइयि । भिरिन्दुभायिः । सोमेभिःप्रतिभू
 षथा२३ । वायिदाविश्वा इ१२३ । स्यमाप्रयिधिराः ।
 धार्षत्तन्ता ३१२३म् । इदोवा । षा ५ तो ६ हायि
 (३) ॥ १२* ॥ [२] २

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायन्यस्य त्रयोदशस्याध्यायस्य
 प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीय-खण्डः—

बभ्रवेन्निति षडृचं प्रथमं सूक्तम्,
 तत्र प्रथमा ।

बभ्रवेनुखतवसेरुणायदिविस्पृशे ।

सोमायगाथमर्चत ॥ १ ॥

* ऊ० गा० १ प्र० १ अ० १९ सा० ।

† 'उक्ताः खरसामानः'—इति वि० ।

‡ 'इदानीं विषवानभिधीयते'—इति वि० ।

॥ ऋ० वे० ६, ७, ३६, ४ ।

हे स्तोतारः ! “बभ्रवे” बभ्र-वर्णाय “स्वतवसे” स्व-बलाय
 “अरुणाय” कदाचिदरुणवर्णाय “दिविस्पृशे” दिवं स्पृशते सीमाय
 “गाथं” स्तुतिरूपां वाचम्* “अर्चत” उच्चारयतेत्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
 हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतम् सोममुनीतन ।

२ ३ १ २ ३ १ २
 मधावाधावतामधु ॥ २ § ॥

हे ऋत्विजः ! “हस्तच्युतेभिः” हस्त-प्रच्युतैः “अद्रिभिः” अभि-
 षव-ग्रावभिः “सुतम्” अभिषुतं “सोमं” “पुनीतन” पवित्रे
 पावयत । अपिच “मधौ” मदकरे सोमेन “मधु” गन्धं पयः “आ-
 धावत” प्रक्षिपत ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २
 नमसेदुपसौदतदध्रेदभिः श्रीणीतन ।

२ ३ १ २
 इन्दुमिन्द्रेदधातन ॥ ३ § ॥

* ‘स्व’ इति पादपूरणे—इति वि० ।

† ‘गाथं’—मन्त्रक्रमात् यज्ञसामलक्षणम्—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० ६, ७, ३६, ५ ।

§ ‘मधौ’—मधुभृते द्रोणकलशे—इति वि० ।

हे ऋत्विजः । “नमसेत्” नमस्कारेणैव* “उप सीदत्” सोम-
मुपगच्छत “दधेत्” दधेव† “अभि श्रीणीतन” सोममभि
श्रीणीत च । “इन्द्रे” “इन्दु” सोमं “दधानत”‡ धत्ते च ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी ।

३ १२ २२ ३१२ ३१ २२.
अमित्रहाविचर्षणिः पवस्वसोमशङ्गवे ।

३१२ ३२
देवेभ्योऽनुकामकृत् ॥ ४ ॥

“अमित्रहा” “विचर्षणिः” विद्रष्टा “देवेभ्यः” “अनुकाम-
कृत्” अभीष्ट-कर्त्ता§ त्वं “गवे” अस्माकं पशवे “शं” सुखं
“पवस्व” क्षर ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी ।

१ २ ३१२ ३१२ ३१२
इन्द्रायसोमपातवेमदायपरिषिच्यसे ।

३ १२ २२ ३१
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

“इन्द्राय” “सोमपातवे” “मदाय” “परिषिच्यसे” परितः
पात्रेषु सिच्यसे ॥ ५ ॥

* ‘इच्छब्दः पादपूरणः’—इति वि० ।

† ‘इत् शब्दः एवेत्यर्थः’—इति वि० ।

‡ “श्रीणीतन”, “दधानत”—इत्यत्र “तप्तनप्तनयनाश्च (७, १, ४५)” —इति तनप् ।

§ ऋ० वे० ६, ७, ३७, २ ।

§ ‘अनुकामकृत्’—ये देवानां कामाः, तेषां कर्त्ता सोमः—इति वि० ।

अथ षष्ठौ ।

१९ ३१ २ २१ २
 पवमानसुवीर्यं रयिं सोमरिरीहिणः* ।

२ ३ १ २ ३ ३
 इन्द्रविन्द्रेणनोयुजा ॥ ६१ ॥ ३

हे “इन्द्रो” क्लियमान “पवमान” सोम ! त्वं “सुवीर्यं”
 शोभन-वीर्योपेतं “रयिं” धनं “नः” अस्माकं सम्बन्धिनम् “इन्द्रेण”
 “युजा” सहायेन “नः” अस्मभ्यं “रौरिहि” देहि ॥ ६ ॥ ३

अथोद्देदभीति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

२७ ३ २ १ २ ३ १ २ २
 उद्देदभिश्नुतामघंवृषभन्नर्यापसम् ।

१ २
 अस्तारमेपिसूर्य्य ॥ १३ ॥

हे “सूर्य्य” [द्वादशसु भानुषु इन्द्रोऽपि सूर्यात्मना पठितः ।
 तस्मात्] सूर्यात्मक ! सुवीर्य्य ! हे इन्द्र ! “श्रुतमघं” सर्वदा देवत्वेन
 विख्यात-धनम्, अतएव “वृषभं” याचमानानां धनस्य वर्षितारं
 “नर्यापसं” नर-हितं नर्यं नर-हित-कर्माणम् “अस्तारम्” दान-

* “रौरिहिणः”—इति ऋ०-पाठः ।

† ऋ० वे० ६, ७, २७, ४ ।

‡ ऋग्वेदीय-पाठ-प्रतीकमिदम् ।

शीण्डम् औदार्यवन्तमेतादृशं स्तोतारम् “अभि” लक्ष्य “उदेवि”
[ईदवधारणे] त्वमेव तस्य यज्ञे सूर्यात्मना उद्गातासि । “व”
—इति प्रसिद्धौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

नवयोनवतिम्पुरोविभेदवाङ्मोजसा ।

१ २ ३ १ २

अहिञ्चवृत्रहावधीत् ॥ २* ॥

“यः” इन्द्रः† “नवति” नवति-सङ्ख्याकाः ततः नव-सङ्ख्याकाः
एकोनशत-सङ्ख्याकाः शम्बरस्य “पुरः” पुरीः “वाङ्मोजसा”
बाहु-बलेनैव “विभेद” दिवोदासाय भिनत्ति स्म [तथाच
मन्त्रान्तरे—“दिवोदासाय नवतिञ्च नवेन्द्रः पुरोध्वैरच्छम्बरस्य”
—इति] । स च “वृत्रहा” वृत्रासुरस्य हन्ता । स इन्द्रः “अहिं
च” केनाप्यहन्तव्यं मेघमपामावरकं वृत्रासुरं वा अवधीत् । स
इन्द्रोऽस्माकं धनं ददात्वित्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

सनइन्द्रःशिवःसखाश्ववद्गोमद्यवमत् ।

३ १ २

उरुधारेवदोहते ॥ ३‡ ॥ ४

* ऋ० वे० ६, ६, २१२ ।

† अथ इन्द्र इति सूर्याऽभिधीयते तथाच ताण्ड्यम्—“दिवाकीर्त्तयामा भवति
सर्वाभुवा” —इत्यादि ।

“सः” पूर्वोक्त-गुण-विशिष्टः “शिवः” कल्याणतमः “सखा”
यष्टृयष्टव्य-स्तोत्रस्तोतव्य-लक्षणेन सम्बन्धेन “नः” अस्माकं
मित्तभूतः एतादृश इन्द्रः “अश्ववत्” अश्वयुक्तं “गोमत्” पश्यादि-
सहितं “यवमत्” [“अयवादिभ्यः”—इति प्रतिषेधात् मनुषो
वत्त्वाभावः । यव इति धान्य-विशेषः] धान्ययुक्तं* धनं “नः”
अस्मभ्यं “दोहते” दोग्धुं ददातु । तत्र दृष्टान्तः—“उरुधारेव”
दोहन-काले प्रभूत-पयोधारा यदा बहूनां पोषयित्री गौः
यथा वत्सस्य पयो दोग्धि तथा प्रभूत-धनम् अस्माकं दोग्धुं
ददातु [दुहेर्लेटगङागमः (३, ४, ८४) ॥ ३ ॥ ४

॥ स्वारसौपर्णम् ॥ उडेदभिश्चुतामाश्चाम् । वृषभ
नर्या । ऊम् । पार३४साम् । आस्ताश्चवा । रामा
यि । पिह२३४वा । रा५यो६हायि ॥ (१) नवयोनवति
म्पू३राः । बिभेदबाऊवो । ऊम् । जार३४सा । आहा
श्चवा । चवृ । चक्षो२३४वा । वा५धो६हायि ॥ (२)
सनइद्रःशिवःसाश्खा । अश्वावज्जोमद्या । ऊम् । वार३

* ‘यवमत्’—यवयक्षणेमुपलक्षणात्, धान्य संयुक्तम्—इति वि० ।

५ १ २ २ १ १ ५ ४
४मात् । अराउवा । धारे । वदो२३४वा । हा५तो

५
ईहायि(३) ॥ १६* ॥ [१] ४

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्यस्य तयोदशस्याध्यायस्य

द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीय-खण्डे—

विभ्राडिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,†

तत्र प्रथमा ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३
विभ्राड्बृहत्पिबतुसोम्यम्

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मध्वायुर्ध्वजपतावविहृतम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वातजूतोयोअभिरक्षतित्मना

३ १ २ ३ १ २ २ २
प्रजाःपिपत्तिवज्रधाविराजति ॥ १‡ ॥

“विभ्राट्” विभ्राजमानः विशेषेण दीप्यमानः सूर्यः “बृहत्”
परिवृष्टं “सोम्यं” सोममयं “मधु” “पिबतु” । किं कुर्वन् ? “यज्ञ-

* ज० गा० १४प्र० १अ० १६सा० ।

† ‘महादिवाकीर्त्यम् पृष्ठम्’—इति वि० ।

‡ ज० आ० प० ३३० ऋ० वे० ८, ८, २८, १ ।

पती” यजमाने “अबिक्रुतम्” अकुटिलम् “आयुः” “दधत्” कुर्वन्
 “यः” सूर्यः “वातजूतः” वातेन महावायुना प्रेर्यमाणः सन्
 “क्षना” आत्मना स्वयमेव “अभि रक्षति” सर्वं जगदभिपश्यन्
 पालयन्ति [राशि-चक्रस्य वायु-प्रेर्यत्वात् सूर्यस्यापि तत्प्रेर्यत्वम्] ।
 स सूर्यः “प्रजाः” “पिपर्त्ति” वृष्ट्यादि-प्रदानेन पालयति “बहुधा
 वि राजति” विशेषेण दीप्यते च ॥

“पिपर्त्तिबहुधा”-“दुपोषपुरुधा”—इति पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३
 विभ्राड्बृहत्सुभृतंवाजसातमं

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 धर्मन्दिबोधरुणेसत्यमपितम् ।

३ १ २ ३ १ १ ३ १ २ ३
 अमित्रहावृत्रहादस्य हन्तम्

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
 अजोतिर्जज्ञे असुरहासपत्न्या ॥ २* ॥

“विभ्राट्” विभ्राजमानं, “बृहत्” प्रौढं, “सुभृतं” सुपुष्टं,
 “वाजसातमं” वाजस्यान्त्रस्य बलस्य वा दाढतमं, “धर्मन्” धर्म्मणि
 वायुना धारयितव्ये “दिवः” दुलीकस्य “धरुणे” धारके सूर्य-
 मण्डले “अपितं” निक्षिप्तं, “सत्यम्” अनश्वरम् “अमित्रहा”
 अमित्राणामप्रियाणां हन्तृ, “वृत्रहा” आवृण्वतां हन्तृ, “दस्य-

हन्तम्” दसूनामुपक्षपयितृणां हन्तृतमम्, “असुरहा” असुराणां
क्षेमृणां घातकं “सपत्नहा” सपत्नानां शत्रूणामपि घातकम्,
ईदृग्भूतं “ज्योतिः” सौरं तेजः “जज्ञे” प्रादुर्भवति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१२७ ३ १ २३ १ २-३१

इदं श्रेष्ठञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरुत्तमं

२३ १२३ १२ ३२

विश्वजिह्वनजिदुच्यतेबृहत् ।

३ २ ३ २७ ३१२ ३२

विश्वभ्राट्भ्राजोमहिह्यर्षीदृश

३१२ ३२३२ ३ १२

उरूपप्रथेसहस्रोजोअच्युतम् ॥ ३ *॥ ५

“इदं” सौरं तेजः “श्रेष्ठ” प्रशस्यतमं “ज्योतिषाम्” अन्येषां
ग्रहनक्षत्रादीनामपि “ज्योतिः” प्रकाशकम् अतएव “उत्तमम्”
उत्कृष्टं “विश्वजित्” विश्वस्य सर्वस्य जेत “धनजित्” धनस्य
जेत “बृहत्” प्रभूतमुच्यते एवंगुणविशिष्टमिति सर्वैरभिधीयते
अपिच “विश्वभ्राट्” विश्वस्य प्रकाशयिता “भ्राजः” भ्राजमानः
“महि” महान् “सूर्यः” “दृशे” दर्शनाय “उरु” विस्तीर्णं
“सहः” तमसोऽभिभवित “अच्युतं” च्युति-रहितम् अविनाशम्
“ओजः” तेजोरूपं बलं “पप्रथे” विस्तारयति ॥ ३ ॥ ५

अथ इन्द्रक्रतुमिति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रक्रतुन्नआभरपितापूत्रेभ्यो यथा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूतयामनि

३ १ २ २ २
जीवाज्योतिरशीमहि ॥ १ * ॥

हे “इन्द्र !” “नः” अस्मभ्यं “क्रतु” कर्म प्रज्ञानं वा
“आ भर” आहर । अपिच “यथा” “पिता” “पुत्रेभ्यः” प्रय-
च्छति तथा “नः” अस्मभ्यं “शिक्ष” धनं देहि । हे “पुरुहूत”
बहुभिराहुत ! “यामनि” यज्ञे “जीवाः” वयं “ज्योतिः” सूर्यम्
“अशीमहि” प्रतिदिनं प्राप्नुयामः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
मानो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽऽमाशिवा सो वक्रमुः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वया वयम्युवतः शश्वतीरपोतिः पूरतनामसि ॥ २ ‡ ॥ ६

हे इन्द्र ! “अज्ञाताः” अज्ञात-गमनाः “वृजनाः” हिंसकाः
“दुराध्यः” दुष्टाभिसन्ध्यः “नः” अस्मान् “मा अव क्रमुः” माव

* ऋ० आ० ३, २, २, ७ (१भा० ५३५ पृ०) = ऋ० वे० ५, ३, २१, ६ ।

† ऋ० वे० ५, ३, २१७ ।

‡ ‘वृजनाः—वक्र-कर्षणः’—इति वि० ।

१३ अ० ३ ख० २ सू० १, २] उत्तरार्चिकः ।

५२८

चक्रमुः । हे "शूर!" "त्वया" "वयं" स्तोतारः "प्रवतः" प्रव-
णकाः सन्तः "गच्छतीः" बह्वीः "अपः" "अति तरामसि" अति-
तरामः ॥ २ ॥ ई

१ २ २ १ २ १ २
॥ महावैष्टभम् ॥ इन्द्रक्रतो ह्ययि । न आभरो वा ।

२ २ २ १ ५ २ २ २ १
पायिता पुत्रे । भियो याश्च २३ । हो वा ३ ह्ययि । शि

२ २ २ १ २ २ २ २ २
क्षाणी अस्मिन्पुरुषे । तया मा १ नी २३ । हो वा ३ ह्ययि ।

१ २ २ १ २ २ १ २
जीवाज्योश्च २३ ह्ययि । हो वा ३ ह्ययि । अशी । मा २

३ ५ २ २ १ २ २ २ १ २ २ १
हार ३४ औ हो वा ॥ (१) जीवाज्योतो ह्ययि । अशीम हो

२ १ २ २ २ २ २ २ १ २ २
वा । जायि वाज्योतिः । अशायि मा १ ह्य २३ ह्ययि । हो वा

२ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २
३ ह्ययि । मानो अज्ञाता वृजनाः । दुराधा १ या २ ३ ।

१ २ २ १ २ २ २ २ २ २ २
हो वा ३ ह्ययि । माशायि वा १ सा २३ । हो वा ३ ह्ययि ।

१ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
अव । क्रा २ मू २३ औ हो वा ॥ (२) माशिवामो ह्ययि ।

२ १ २ १ २ २ २ २ २ २ २
अवक्रमो वा । माशिवामः । अवाक्रा १ मू २३ । हो वा

४:। ओ३हा। त्वयावयम्प्र। वाता३शः। अतार
यिः। आ३र३४पाः। अति३गूराता३रा। ऊम्मायि।
मारसार३४ओ३होवा। वार३४सू(३) ॥ १६ * ॥ [२]

॥ नौधसम् ॥ आ३र३४यि। द्रक्तुन्नया। भार।

पितापुत्रे। भी३योया३था। आ३र३यि३त्ता। ऐ३अस्मिन्।

पुरु। हू। तायामार३४नो। जा३र३यिवाः। ज्योतिर

शो३३४वामार३४हो॥ (१) जा३र३४यि। वाज्योतिरशी।

माहायि। जीवाज्योतायिः। आ३शायिमा३हायि।

मार३नो। आ३ज्ञाताः। वृज। नाः। दूराधार३४

याः। मार३शायि। वासोअवो३३४वा। का३र३४मू ॥ (२)

मार३४। शिवासीअव। कामूः। माशिवासो। आ३

वाक्रा३म्। त्वार३या। वायम्प्र। वनः। शा। अना

३ ५ १ २ १ २ ३ १
 यिरार३४प्राः । आ२३तायि । गृ२रतरो२३४वा । मा२३
 ५
 ४सी(३) ॥ १ * ॥ [३]

५ ५ ३ २ २२ ४ ५ १
 ॥ पौरुमीढम् ॥ इन्द्रक । तुन्ना३४औहोवा । आ

३ १ २ २ २ १ २ १
 भरे । पितापुत्रे । भियोयार३था । शिक्षाणोआ । सि

२ १ २ २ २ १
 न्युह२३ह । तयामनायि । जीवाज्यो२३तीः । अशी

५ ४ ४ ४ ५ २ ४ ४ ४
 मार३४५हाई५६यि ॥ (१) जीवाज्यो । तिरा३४औहो

५ १ १ २ २ १ २ २
 वा । गायिमहि । जीवाज्योतिः । अशीमा२३हायि ।

२ १ २ १ २ २
 मानोअज्ञा । तावृजार३नाः । दराधिया । माशिवार

२ १ ५ ४ ४ ५ ३ २
 ३साः । अवक्रा२३४५मू६५६ः ॥ (२) माशिवा । सोआ

३ २ ४ ५ १ २ १ २ २
 ३४औहोवा । वाक्रमुः । माशिवासः । अवक्रा२३म् ।

१ २ २ १ २
 त्वयावयाम् । प्रवता२३शाः । श्वतीरपाः । अतिगृ२३

२ २ १ २ १ २ १ २ २
 रा । तरामार३४५सा६५६यि । दत्ता३या२३४५

(३) ॥ १८ * ॥ [४]

॥ मानवाद्यम् ॥ इन्द्रक्रतूम् । नञ्भाभार३४रा । न

आमार३४रा । पायितापुत्रे । भियोया१था२ । शि ।

शा । णोअ । स्मायिन्पुरुह३ । तया२मार३४नी । जी

वाज्योता२३यि । आ२शा२३४औहोवा । मार३४हो ॥ (१)

जावाज्योतायि । अशीमार३४हायि । अशायिमार३४

हायि । जायिवाज्यातिः । अशायिमा१हा२यि । मा ।

नः । अज्ञा । तावृजना३ः । दुरा२धा२३४याः । मा

शिवामार३ः । आ२वार३४औहोवा । क्रा२३४मूः ॥ (२)

माशिवासाः । अवक्रा२३४मूः । अवाक्रा२३४मूः । मा

शिवासः । अवाक्रा१मू२ः । त्व । या । वयम् । प्रावतः

शा३ । श्वता२यिरा२३४पाः । अतिष्ठरा२३ । ता२रा

२३४औहोवा । मार३४मी(३) ॥ १ * ॥ ५

॥ भारद्वाजम् ॥ इन्द्रक्रतूम् । नञ्भाभार२ । पा
 यितापुत्रेभ्योयथा । शिन्नाणो१आ२ । स्मायिन्पुरु२
 तयामाशनी२ । जीवाज्यो१तार३यिः । आर३शार३४औ
 होवा । मार३४हौ ॥ (१) जीवाज्योतायिः । अशायि
 मा१ह्य२यि । जायिवाज्योतिरशीमहि । मानोआ१ज्ञा
 २ । तावृजनाः । दुराधाश्या२ः । माशायिवा१सार३ः ।
 आ२वा२३४औहोवा । क्रार३४मूः ॥ (२) माशिवासा ।
 अवाक्रा१मू२ । माशिवासोअवक्रमुः । त्वयावा१श्या२म् ।
 प्रावतःश । श्वतायिरा१शवा२ः । अतायिशू१शार३ । ता
 रार३४औहोवा । मार३४सी(३) ॥ ५ * ॥ [६] ६

मिश्रयिता । किमर्थम् ? “वीर्याय”* वीर्यं कारणाय “उभा”
उभौ “बाहू” “वृषणौ” कामानां वर्धकौ “या” यौ बाहू “वज्रम्”
आयुधं “नि मिमिक्षतुः” परिगृह्णीतः ॥ २ ॥ ७

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरायण्यस्य त्रयोदशस्याध्यायस्य
तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ-खण्डे—

जनीयन्त इत्येकर्चः† प्रथमं सूक्तम्‡
समीच्यते ।

३ २३ १२ ३१२ ३१२
जनीयन्तीन्वग्रवःपुत्रीयन्तःसुदानवः ।

१२
सुरस्वन्तश्चवामहे ॥ १ ॥ ८

“जनीयन्तः” [जायन्तआस्वपत्यानीति] जनयः जायाः
ता इच्छन्तः, § “पुत्रीयन्तः” पुत्रान् कामयमानाः, “सुदानवः”
शोभन-दानाः, “अग्रवः” उपगन्तारी वयं ‘नु’ अथ॥ “सुर-
स्वन्त” तं देवं मध्यम-स्थानं “हवामहे” आह्वयामहे ॥ १ ॥ ८

* ‘वीर्याय—चतुर्थेषा तृतीया-स्थाने द्रष्टव्या, वीर्येण युक्तः’—इति वि० ।

† विवरणमते त्वेत्युक्तं प्रगाथात्मकं न लेकर्चं तथाच उतनइत्यदिना चरक्
खल्लस्यैव सूक्तस्य द्वितीया न तु सूक्तान्तरम् ; मूलपाठदर्शनसालावुकूलमिति ध्येयम् ।

‡ ‘इदानीं विश्वजित्’—इति वि० ।

॥ १० वे० ५, ६, २०, ४ ।

§ ‘जनीयन्तः—जननं कुर्वन्तः’—इति वि० ।

॥ ‘उ’—इति पाठपूरणः—इति वि० ।

उतनप्रत्येकध्वं द्वितीयं सूक्तम्,

सैषोच्यते ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उतनः प्रिया प्रिया सुसप्तस्वसा सुज्ज्ञा ।

१ २ ३ १ २

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥ ८

“उत” अपि च “नः” अस्माकं “प्रियासु” प्रियाणां मध्ये
“प्रिया” प्रियतमा “सप्तस्वसा” गायत्र्यादीनि सप्त कृन्दांसि स्व-
सारो यस्यास्तादृशी नदीरूपया स्तुत्या गङ्गाद्याः सप्त नद्यः
स्वभारः “सुज्ज्ञा” सुष्ठु पुरातनैर्ऋषिभिः सेविता, एवम्भूता “स-
रस्वती” देवी “स्तोम्या”† भूतस्तोतव्या “भूत्” भवतु ॥ १० ॥ ८

अथ तत्सवितुर्वरेण्यमिति तृतीयसूक्तरूपा, ‡

सैषा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तत्सवितुर्वरेण्यभर्गो देवस्य धीमहि ।

२ ३ १ २ ३ १ २

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ११ ॥ १०

* षष्ठं वे० ४, ८, ३१, ४ ।

† ‘कोम्या—कोमानां क्रतुनाम् अथवा तृप्त्यश्च दशप्रभृतौनाम्’—इति वि० ।

‡ अत्रायंकि सतान्तरम्, तथाहि—विवरणमते संहितादि-सप्त-सूक्त-ग्रन्थ-जिपि-
दर्शनाच्चैतत् तृचं सूक्तम् एवञ्चाग्निमे सोमानं स्वरणमिति अग्न्यायूषौति च द्वे कृत्वा-
वक्ष्येव द्वितीय-तृतीयं न तु सूक्तान्तरे इति विवेकः ।

§ षष्ठं वे० १, ४, १०, ४ ।

“यः” सविता देवः “नः” अस्माकं “धियः” कर्माणि, धर्मादि-
विषया वा बुद्धीः “प्रचोदयात्” प्रेरयेत्, “तत्” तस्य “देवस्य”
द्योतमानस्य “सवितुः” सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः
परमेश्वरस्य “वरेण्य” सत्स्वरूपतया ज्ञेयतया च भजनीयं
“भर्गः” अविद्या-तत्कार्ययोर्भजनात् भर्गः स्वयंज्योतिस्तेजः
परब्रह्मात्मकं “धोमहि” वयं ध्यायामः । इदं भर्गो धियः प्रचोद-
यति तद् ध्यायाम इति समन्वयः । [यद्वा, यः सविता सूर्यः
‘धियः’ कर्माणि ‘प्रचोदयात्’ प्रेरयति, तस्य ‘सवितुः’ सर्वस्य
प्रसवितुः ‘देवस्य’ द्योतमानस्य सूर्यस्य ‘तत्’ सर्वैर्दर्शनीयतया
प्रसिद्धं ‘वरेण्य’ सर्वैः सभजनीयं ‘भर्गः’ पापानां तापकं तेजो-
मण्डलं ‘धोमहि’ ध्येयतया मनसा धारयेम । यद्वा, भर्ग-शब्दे-
नान्नमभिधीयते ‘यः’ सविता देवः ‘धियः’ प्रचोदयति, तस्य ‘देवस्य’
प्रसादात् ‘तद् भर्गः’ अन्नादि-लक्षणं फलं ‘धोमहि’] धारयामः
तस्याधारभूता भवेमेत्यर्थः । भर्ग-शब्दस्यान्न-परधैवमाथर्वणिक-
वेद-च्छन्दसि—“सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य क्रवयोऽन्नमाहुः,
कर्माणि धियस्तनुते प्रब्रवीमीति प्रचोदयात् सविता याभि-
रेतीति* । भर्गः—असृज पाके (तु० उ०) असृज “असृजोप-
धयोऽमन्यतरस्याम् (६, ४, ४७)” —इति रोपधयोर्लोपो रमागमश्च,
न्यङ्गादि-पाठात् कुत्वम् (७, ३, ५३) । धोमहि—ध्यायते लटि
“बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७६)”—इति सम्प्रसारणं, व्यत्ययेनात्मने-
पदम् ; यद्वा धौङ् आधारे (दि० आ०) लिटि “बहुलञ्छन्दसि

* ‘यः’ अस्मादीया बुद्धयः प्रकर्षेण चोदयति ध्यान-धारणा-समाधिभिः तस्य सवितु
देवस्य दानादिभिर्गुणैर्गुणैस्तत्परं प्रविशाम इति सङ्क्षेपः—इति वि० ।

१३अ०४ख०४-६सू०१,१,१] उत्तरार्द्धिकः ।

५३६

(२,४,७३)"—इति विकरणस्य लृक् । प्रचोदयात्—चोदयते-
लृटि आडागमः, यद्वृत्तयोगादनिधातः, आगमस्यानुदात्तत्वे
णित्स्वरः ॥ १ ॥ १०

अथ

३ २ ३ १ २
सोमानाखरणम् ० ॥ १* ॥ ११

—इति,

१ ३ १ २
अग्न्यायूष्प्रपवसे ० ॥ १† ॥ १२

—इति, चतुर्थ-पञ्चम-सूक्तात्मेकयोर्द्वयो ऋचोः प्रतीके;
ते चान्यत्राज्जाते (क० आ०=२, १, ५, ५; १भा० ३२६पृ०),
(उ० आ० ७, ११, १२, १) ॥ १ ॥ ११—॥ १ ॥ १२

अथ तानःशक्तमिति ढचात्मकं षष्ठं सूक्तं,

तत्र,

१ २ ३ १ २
तानःशक्तमर्थिवस्य ० ॥ १ ‡ ॥

—इति प्रथमाया ऋचः प्रतीकमिदं सा चान्यत्र (उ० ४,२,
४, ३) आम्नाता ॥ १ ॥

* क० आ० २, १, ५, ५ (१भा० ३२६पृ०) = ऋ० वे० १, १, ३४, १ ।

† उ० आ० ७, १, ११, १ = ऋ० वे० ७, २, १०, ४ ।

‡ उ० आ० ४, २, ४, ३ = ऋ० वे० ४, ४, ६, ३ ।

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ २ ४ १ २ ५ १ २ २ ४
ऋतमृतेनसपन्तेपिरन्दशमाशाते ।३ १ २ ३ १ २
अद्रुहादेवौवर्द्धते ॥ २* ॥

“ऋतेन” उदकेन निमित्त-भूतेन “ऋतं” यज्ञं “सपन्ता”
सृग्मन्तो “इषिरम्” एषणवन्त “दक्ष” प्रवृद्धं यजमानं हविषी
“आशाते” व्यापृतः “अद्रुहा” अद्रोम्भारी “देवौ” द्योतमानौ
मित्रावरुणौ “वर्द्धते” प्रवृद्धौ भवत ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ १ २ ३ ४ २ ४ २ ४ ३ १ २
वृष्टिद्यावारीत्यापेषस्पतीदानुमत्याः ।३ २ ३ १ २
बृहन्तङ्गर्त्तमाशाते ॥ ३† ॥ १३

“वृष्टिद्यावा” वृष्ट्यर्था द्यौः स्तुतिर्यद्योस्तौ वृष्टिद्यावा अथवा
वृष्टि-वर्षिका द्यौरन्तरिक्षं याभ्यां तौ तादृशौ, “रीत्याप” [रो-
गति-रेषणयोः (क्र० प०)] रीतिः प्राप्तिः सैव आप्निरभिमत-
प्राप्तिर्यद्योस्तौ तादृशौ, “इषः” अन्नस्य “पती” स्वामिनौ [वृष्टि-
प्रदत्वात् स्वामित्वम्], “दानुमत्याः” दानमत्याः दातुमुचिताया
इत्यर्थः एतद्विशेषणम् एवमहानुभावौ मित्रावरुणौ “बृहन्त”

महान्तं "गर्तं" * रथम् "आगते" व्याप्तः अधितिष्ठतो
यागार्थम् ॥ ३ ॥ १३

अथ युञ्जन्तीति तृचात्मकं सप्तमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

युञ्जन्ति ब्रध्नमरूपश्चरन्तमपरितस्थुषः ।

१ २ ३ २ ३ २

रोचन्ते रोचनादिवि ॥ १ १ ॥

इन्द्रो हि परमेश्वर्य-युक्तः परमैश्वर्यं चाग्निवाय्वादित्य-नक्षत्र-
रूपेणावस्थानात् उपपद्यते "ब्रध्नम्" आदित्यरूपेणावस्थितम्,
"अरुषम्" हिंसारहिताग्निरूपेणावस्थितं, "चरन्तं" वायुरूपेण
सर्वतः प्रसरन्तमिन्द्रं "परि तस्थुषः" परितोऽवस्थिता लोकत्रय-
वर्तिनः प्राणिनो "युञ्जन्ति" स्वकीये कर्मणि देवतात्वेन सम्बन्धं
कुर्वन्ति । तस्यैवेन्द्रस्य मूर्तिविशेषाणि "रोचना" नक्षत्राणि "दिवि"
द्युलोके "रोचन्ते" प्रकाशन्ते [अस्य मन्त्रस्योक्तार्थपरं ब्राह्मण-
न्तरे व्याख्यातम्— "युञ्जन्ति ब्रध्नमित्याह—असौ वा आदित्यो
ब्रध्नः आदित्यमेवासौ युनक्ति । अरुषमित्याह—अग्निर्वा अरुषः
अग्निमेवासौ युनक्ति । चरन्तमित्याह—वायुर्वै चरन् वायुमेवासौ
युनक्ति । परितस्थुष इत्याह—इमे वै लोकाः परितस्थुषः इमा-
नेवासौ लोकान् युनक्ति । रोचन्ते रोचना दिवीत्याह—नक्षत्रा-
ण्येवासौ रोचयतीति ॥ १ ॥

* 'गर्तं' गरणीयम्—इति वि० ।

† अ० वे० १, १, ११, १ = अ० वे० ३३, ४ ।

अथ द्वितीया ।

३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसारथे ।

१ २ ३ १ ३ १ २
शोणाधृग्नून्वाहसा ॥ २ * ॥

“अस्य” ब्रध्नादि-ग्रन्थ-प्रतिपाद्यस्यादित्यादि-मूर्त्तिभिस्तत्र तत्रावस्थितस्येन्द्रस्य “रथे” “हरी” एतन्नामानौ हावश्वौ सारथयो “युञ्जन्ति” [इन्द्र-सम्बन्धिनोरश्वयोर्हरिनामत्वं “हरी इन्द्रस्य”-“रोहितोऽग्नेः” (निघ० १, १५, १-२)—इति पठितत्वात् । कौटुशौ हरी ? “काम्या” कामयितव्यौ “विपक्षसार” विविधे पक्षसौ रथस्य पार्श्वौ ययोस्तौ विपक्षसौ रथस्य द्वयोः पार्श्वयोर्योजितावित्यर्थः,† “शोणा” रक्तवर्णौ, “धृष्णू” प्रगल्भौ, “नृवाहसा” नृणां पुरुषाणामिन्द्र-तत्त्वारथि-प्रमुखाणां वोढारौ ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
केतुङ्गएवन्नकेतवेपेशोमर्याअपेशसे ।

२ ३ १ २

समुपङ्गिरजायथाः ॥ ३ * ॥ १४

* ऋ० वे० १, १, ११, २ = य० वे० ३३, ६ ।

† ‘यत्र पक्षसौ न विद्येते स विपक्षौ रथः’—इति वि० ।

‡ ऋ० वे० १, १, ११, ३ = य० वे० २८, ३७ ।

हे “मर्याः” मनुष्याः ! इदमाश्चर्यं पश्यतेत्यध्याहारः । कि-
माश्चर्यम् ? इति तत्रोच्यते—आदित्यरूपोऽयमिन्द्रः, “उषद्भिः”
दाहकैः रश्मिभिः प्रतिदिनमुषःकाले वा सम्भूय “अजायथाः”
उदपद्यत [अथवा सूर्यस्वेवास्तमये मरणमुपचर्य व्यत्ययेन बहु-
वचनं कृत्वा सम्बोधनं क्रियते—हे मर्य ! प्रदिदिनं त्व मजायथा
इति योज्यम्] । किङ्कर्तव्यं ? “अकेतवे” रात्रावभिभूतत्वेन
प्रज्ञान-रहिताय प्राणिने “केतुं कृण्वन्” प्रातः प्रज्ञानं कुर्वन्*
“अपेशसे” रात्रावन्धकाराहतत्वेनाभिव्यक्तत्वात् रूप-रहिताय
पदार्थाय प्रातरन्धकार-निवारणेन “पेशः” [रूपनामैतत्
(निघ० ३, ७, १०)] रूपमभि-व्यज्यमानं कुर्वन् [अकेतवे,
अपेशसे—इति चतुर्थीषष्ठार्थे द्रष्टव्यौ] ॥ ३ ॥ १२

इति सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रस्य त्रयोदशस्याध्यायस्य

चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे—

अयं सोमइति त्वचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत् प्रथमा ।

३ १२ २२ ३ १ २ ३

अयं सोमइन्द्रतुभ्यं सुन्ते

१ २ ३ १ २

तुभ्यमवतेत्वमस्यपाहि ।

* ‘केतुर्ध्वजः तं कृण्वन्, अकेतवे ; यः कश्चित् मर्त्तः अकेतुरध्वजः तस्मिन् केतु-
वत्तं कुर्वति अतिबलसम्पन्नत्वात्—इति वि० ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वच्छयश्चक्रेष्वं ववृष

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमदाययुज्यायसोमम् ॥ १ ॥

हे “इन्द्र ।” यः सोमः इन्द्राय “तुभ्य” “सुन्वे” सूयते [सु-
नोतेः कर्मार्थे लटि “लोपस्त आत्मने पदेषु (७, १, ४१)”—इति
लोपः] “तुभ्य” त्वदर्थमेव “पवते” पूयते । त्वच्च “अस्य” अमुं
“पाहि” पिब “त्वं ह” “यम्” “इन्दु” “सोमं” “चक्रेष्वं”
करोषि “त्वं” च यं “ववृषे” वृत्तवानसि । किमर्थम् ? “मदाय”
मदार्थं “युज्याय” सहायाय [सोम इन्द्राय बलकरत्वात् सहाय
इति प्रसिद्धम् । यमेवं करोषि त्वं तं पाहीति समन्वयः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सईरथोनभूरिषाडयोजि

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महःपुरुषिमातयेवहनि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
आदीं विश्वानज्ज्याणिजाता

२ ३ १ २ ३ १ २
स्पर्षातावनज्जुर्नवन्त ॥ २ ॥

“स ईम्” सोऽयं “भूरिषाट्” भूतस्य भारस्य सोढा “रथो न”
रथइव “अयोजि” युज्यते, कौटुम्भः सः ? “महः” महान् ।

किमर्थमयोजि ? “पुरुषि” बह्विनि “वसूनि” धनानि “सातये”
 अस्मभ्यं दातुम् “आदी” योगानन्तरं “विश्वा” विश्वानि
 कर्माणि “नहुष्याणि” नहुषो मनुष्याः तेषां सम्बन्धीनि “जाता”
 जातानि अस्मद्विरोधीनि “जङ्घा” उन्मुखानि “वने” वननीये
 “स्वर्षाता” स्वर्षाते [—सङ्ग्रामनामैतत् स्वर्गलाभ-युक्ते सङ्ग्रामे*
 “नवन्त” गच्छन्तु [नवतिगति-कर्मा (२, १४, २६) । यद्वा,
 सोऽयं सङ्ग्रामे युद्धार्थिनः सङ्गच्छन्ति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

३ २३ ३ १२ २२ ३ १
 शुष्मीशर्द्धीनमारुतम्यवस्वा

२ ३ २३ ३ २
 नभिश्स्तादिव्यायथाविट् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 आपोनमत्सुमतिर्भवानः

३ १ २ ३ २३ ३ २
 सहस्राप्ताः पृतनाषाडनयज्ञः ॥ ३ १ ॥ १५

हे सोम ! “शुष्मी” बलवांस्त्वं “शर्द्धी न मारुतं” मरुतां
 बलमिव “पवस्व” । तत्र दृष्टान्तमेव स्पष्टयति—“यथा” “दिव्याः”
 “विट्” ‡ प्रजाः “अनभिश्स्ताः” अभिश्स्ता निन्दिताः अनि-

* ‘स्वर्षाता—खल्लोकस्य दाना’—इति वि० ।

† ऋ० वे० ७, २, २४, ३ ।

‡ ‘विट्—पृथिवी’—इति वि० ।

रुहिताः* पवन्ते [“मरुतो वै देवानां विशः”—इति हि ब्राह्म-
णम्] किञ्च “आपो न” उदकानौव “मच्च” क्षिप्रं पवमानस्त्वं
“सुमतिः भव” “नः” अस्माकं । किञ्च, “सहस्राप्साः” [अप्स
इति रूपनाम (निघ० ३, ७, ६)] बहुरूपस्त्वं† “पुतनाषाट्
न” पुतनानामभिभवितेन्द्र इव “यज्ञः” यष्टव्यो भवतीति

॥ ३ ॥ १५

॥ इहवदामिष्ठम् ॥ औहोवाहाऽहोयि । इहा । अ

य॑सोमाः । इन्द्र॑तु । भ्य॑स्तुन्वायि । तुभ्य॑म्भवा । ता

इयि॑तुवम् । अस्य॑पाही । तुव॑ह्याम् । चक्र॑षे । त्वं

ववृ॑षायि । इन्द्रु॑म्भदा । या॒श्व॒जि । या॒३४३ । या॒३

सोप॑मा६५ईम् ॥ (१) सई॑रथो । नभु॑रि । पा॒डयो॑जी ।

महः॑पुरु । णी॑रसात । यायि॑वह्मनी । आदौ॑विश्वा ।

न॒ऊषि॑ । या॒णिना॑ता । सुव॑र्षाता । वन॑ऊ । ध्वा॑३४३ ।

ना॒त्रा॒पुन्ता॑ई५६ ॥ (२) शु॒क्ली॑शर्दी । नमा॑रु । तम्य॑व

* ‘अनभिगृह्णा—अभिग्राह-रुहिता’—इति वि० ।

† ‘सदृशाप्सा बहुदवाइत्यर्थः’—इति वि० ।

५ १ १ २ १ २ २ ४ ५ २ २ २ २
स्वा । अनभिशा । स्तादिवि । यायथावीट् । आपो

२ १ २ ३ ४ ५ १ २ २ ३ २ १
नमा । क्षुक्षुम । तिर्भवानाः । औक्षोवाहाहोयि ।

५ २ १ २ २ २ २ २ २ ४
इहा । सहस्राप्ताः । पृथना । पा३४३ट् । नाइयापू

ज्ञाद्वि५६ः(३) ॥ ५ * ॥ [१] १३

अथ त्वमग्नइति लृचात्प्रकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३
त्वमग्नयज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषेजने ॥ १४ ॥

हे “अग्ने !” “त्वं” “विश्वेषां” सर्वेषां सत्तत्संस्थारूपेण भि-
न्नानां “यज्ञानां” “होता” होम-निष्पादकोऽसि । यद्वा, यज्ञानां
सम्बन्धी देवानामाह्वाता भवसि । कुतः ? इत्यत आह—यस्मात्
त्वं “मानुषे” मनोः सम्बन्धिनि मनुष्ये “जने” यजमाने “देवेभिः”
देवैः “हितः” होतृत्वेन निहितोऽसि तस्मादित्यर्थः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २
 सनोमन्द्राभिरध्वरेजिह्वाभिर्यजामहः ।

१ २ १ २ ३ १ २
 आदेवान्वक्षियन्ति च ॥ २ * ॥

हे अग्ने ! “सः” त्वं “नः” अस्माकं “अध्वरे” यज्ञे
 “मन्द्राभिः” मदकरौभिः” स्तुतिभिर्वा “जिह्वाभिः” काव्यादिभिः
 “महः” महतः देवान् यज हविर्भिस्तर्पय च । कथं तत् ?
 इति चेत्, उच्यते—“देवान्” यष्टव्यानिन्द्रादौन् “आ वक्षि”
 आवह ततो “यक्षि च” यज च हवींषि तेभ्यो देहीत्यर्थः ॥२॥

अथ तृतीया ।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 वेत्थाहि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।

१ २ ३ १ २
 अग्ने यज्ञेषु सुकतो ॥ ३ ॥ १६

हे “वेधः” विधातः ! “सुकतो” शोभन-कर्मन् ! “देव”
 दानादि-गुण-युक्त अग्ने ! त्वं “यज्ञेषु” दर्शपौर्णमासादि-यागेषु
 “अध्वनः” महामार्गान् “पथश्च” सुवमार्गाश्च “अञ्जसा”

* ऋ० वे० ४, ५, २१, २ ।

† कास्ती, कराली, सनीजवा, सुलोहिता, सुधूमवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वरूपा,
 लीला इति काव्यादयः ।

‡ ऋ० वे० ४, ५, २१, ३ ।

आजवेण “वेत्थ” जानासि “हि” यस्मादेवं तस्मात् यन्न-मार्गात्
अष्टं यजमानं पुनस्तं मार्गं प्रापयेत्यर्थः ॥ ३ ॥ १४

अथ* होतादेवइति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
होतादेवोऽमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।

३ १ २ ३ १ २
विदधानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥

“होता” होम-निष्पादकः “अमर्त्यः” मरण-रहितः “देवः”
द्योतमानः “विदधानि” विदितव्यानि कर्माणि “प्रचोदयन्”
सोऽग्निः “मायया” कर्म-विषयाभिज्ञानेन युक्तः सन् “पुरस्तात्”
कर्म-प्रारम्भ-काले एव “एति” अस्मानागच्छति ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ १ २ २२ ३ २ ३ १ २
वाजीवाजेषु धीयते ध्वरेषु प्रणीयते ।

१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रोयज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

“वाजी” बलवान् अग्निः “वाजेषु” युद्धेषु “धीयते” देवैः
शत्रु-हननार्थं निधीयते । किञ्च “अध्वरेषु” अग्नि-होत्रादिषु

* ‘उक्ती विश्ववृज् । इदानीं महाव्रते भवान्याच्यानि—इति वि० ।

† ऋ० वे० ३, १, २८, १ ।

‡ ऋ० वे० ३, १, २८, २ ।

“प्रणीयते” अध्वर्यादिभिः प्रकर्षेणाहवनीयादि-स्थानेषु प्रक्षि-
प्यते अतएव “विप्रः” मेधावी सन्नग्निः “यज्ञस्य” अग्निहोत्रादेः
“साधनः” साधको भवति ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २
धियाचक्रेवरेण्योभूतानाङ्गर्भमादधे ।

१ २ ३ २ ३ १ २

दक्षस्यपितरन्तना ॥ ३ * ॥ १७

योऽग्निः “धिया” आधान-पवमानेष्टि-रूपेण कर्मणा “चक्रे”
आहवनीयरूपतया कृतोऽभूत् अतएव “वरेण्यः” सर्वैर्यजमानैः
कर्माङ्गत्वेन वरणीयः यथाग्निः “भूतानां” स्थावर-जङ्गमात्म-
कानां भूतजातानामन्तः “गर्भं” स्वात्मानमेव गर्भरूपतया
“आ दधे” सर्वत्र दधार “पितरं” सर्वस्य जगतः पालकं तमि-
ममग्निं “दक्षस्य” दक्षप्रजापतेः† “तना” तनया वेदिरूपा
भूमिर्दशपौर्णमासाग्निहोत्रादिकर्म-सिद्ध्यर्थं धारयति [भूमेर्दक्ष-
दुहितृत्वे मन्त्रवर्णः—“अदितिर्ह्यजनिष्ठदक्षस्यदुहिता तव”—
इति ॥ ३ ॥ १५

इति सामवेदार्थप्रकाशे-उत्तरायण्यस्य त्रयोदशस्याध्यायस्य

पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे —

आसुतेसिञ्चतमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१ ३ १ ५ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आसुतेसिञ्चतश्चि०रोदस्योरभिश्चियम् ।

३ १ २ ३ २
रसादधीतवृषभम् ॥ १ * ॥

“सुते” दुग्धे गो-पयसि “श्चियं” अग्रणमाज्यं पयः “आसि-
ञ्चत” आसिञ्चन् । कौटुशमाज्य ? “रोदस्योः” [कर्मणि षष्ठी]
द्यावापृथिव्यौ “अभिश्चियम्” अभिश्चियन्तम् अग्नि-संयोगात्
तावत् पर्यन्तं प्रवृद्धमित्यर्थः [अथवा “तत्कावश्विनौ द्यावापृथि-
व्यावित्येके (निरु० दै० ६, १)”—इति यास्केनोक्तत्वात्
अश्विनोरभिश्चियमित्यर्थः] । सेचनानन्तरं “रसा”† रसे
आज्ये पयसि “वृषभं” वर्षकमग्निं “दधीत” धारयेत् [अजाया
आग्नेयीत्वात् क्षीरस्याप्यग्नि-संयोजनसुचितम् “आग्नेयी वा
एषा यदजा”—इति हि ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

१ २ २ २ ३ २ २ ३ १ ३ २ ३ १ ३
तेजान्तस्वमीक्याऽ३०संवत्सा सोनमादभिः ।

३ १ २ ३ १ २
मिथोनसन्तजामिभिः ॥ २ ‡ ॥

“प्रणीयते”
प्यते अतएव
“साधनः” सा

३
धि

“ते”* ता गावः “जानत” ज्ञानवत्यः [अथवा सामान्या-
कारेण ते इति पुनर्निर्देशः । किम् ? “स्वम्” स्वकीयम् “अक्रियम्”
निवासं महावीरं तत्र दोग्धुमगमन्नित्यर्थः । तदेवाह—
“वत्सासो न” यथा वत्साः “माहमिः” जननीभिः सहतया सङ्ग-
च्छन्ते जामिभिर्वन्धुभिः सहिता गावः “मिथः” प्रत्येकं “नसन्त”
सङ्गच्छन्ते महावीरम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ ३

उपसृक्तेषु वसतः कृण्वते धरुणं दिवि ।

१ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३

इन्द्रे अग्नामस्यः ॥ ३ ॥ १८

योऽग्निः
आहवनीयरूप
कर्माङ्गत्वेन
कानां भूतः
“आ दधे” र
ममग्निं “दधे”
भूमिर्दर्शणीर्ण
दुहित्वे म
इति ॥ ३ ॥

इति सामं

महावीरस्य “सङ्क्षेपु” “वसतः” ज्वालयता भक्षयतोऽग्निः
“नमः” अन्नं “धरुणम्” “इन्द्रे” “अग्ना” — इति वक्ष्यमाणत्वात्
इन्द्राग्न्योर्द्वारकमन्नं “दिवि” अन्तरिक्षेऽः “उप कृण्वते” उप
कुर्वते ऋत्विजः यदाग्निर्महावीरं दहति तदा तस्योपर्युभयविधं
वीरम् आसेचयन्तीति शेषः ॥ ३ ॥ १८

• ‘इन्द्राग्नी’ — इति वि० ।

† ऋ० वे० ६, ५, १६, ५ ।

‡ ‘दिवि’ — अश्लोके इन्द्रे अग्नौ नमस्कारं कुर्वते स्वर्गलोकस्थार्थायेत्यर्थः
— इति वि० ।

* ऋ० वे० २

† ‘दधे’ —

अथ तदिदासइति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्,

तत्र प्रथमा ।

१२ २२ ३ १२ ३ २ ११ १ ३ २ १ २ ३ १२

तदिदासभुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेप नृमणः ।

११ २३ १२ २२ १ ३ २ ३ २ ३ ३ १ ३ २

सद्योजज्ञानोनिरिणातिशन्नूनूर्यविश्वेमदन्त्यूमाः ॥ १ * ॥

“तत्” जगत्कारणत्वेन सर्ववेदान्त-प्रसिद्धम् । “इत्” [गन्धो-
ऽवधारणे] “भुवनेषु” [भू सत्तायां (म्वा० प०)] सत्सु पृथिव्यादिषु
लोकेषु मध्ये तत् जगत्कारणं ब्रह्मैव “ज्येष्ठ” प्रशस्ततमम्
“आस” बभूव, तस्य परमार्थ-सत्वात् तद्व्यतिरिक्तानां व्यावहा-
रिक-सत्वात् [यद्वा, ज्येष्ठं वृद्धतमं जगत्कारणत्वेन सर्वेषां
मादिभूतं बभूव । अस्ते लैटि “छन्दसुभयथा (३, ४, ११७)”
—इति सार्वधातुकत्वाद् “अस्तेर्भूः (२, ४, ५२)” —इति भू-
भावाभावः । यद्वा, वृद्धं तदेव ब्रह्म स्वप्रकाशतया सन्दीदीपे ।
अस गति दीप्तादानेषु (म्वा० उ०), अस्माकृति रूपम्]
“यतः” उपादानभूतात् यस्माद् ब्रह्मणः “उग्रः” उद्गूर्णः त्वेष-
नृमणः प्रदीप्त-बलः सूर्यात्मकइन्द्रः “जज्ञे” जातो बभूव [अयते
हि—“चक्षोः सूर्यो अजायत”—इति, “सूर्याचन्द्रमसौ धाता
यथापूर्वमकल्पयत्”—इति च । “जनिकर्तुः प्रकृतिः (१, ४,
३०)” —इति प्रकृतेरुपादान-सज्ज्ञायां यत इति पञ्चमी ।

* ऋ० वे० ८, ७, १, १ ।

† ‘तत्’ इति पादपुरणः—इति वि० ।

५५०

“प्रणी
प्यते
“साध

५५२

कारि
निव
“वह
च्छः
सङ्ग

यो
आहवः
कर्माङ्ग
कानां
“आ दं
ममग्निं
भूमिर्दग्
दुहित्वे
इति ॥

इति

५५४

सामवेदसंहिता । [६ प्र० ३ अ० १८ सू० १, २, ३]

जज्ञे इति “गमहनेत्यादिनोपधा-लोपः (६, ४, ८८), “द्विर्वचने ऽचि (१, १, ५८)”—इति तस्य स्थानिवद्भावात् द्विर्वचनादि,
“यद्वृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६)”—इति—निघात-प्रतिषेधः । स च
“जज्ञानः” जायमानः “सद्यः” शीघ्रं “शत्रून्” शातयितृन्
सन्देहादीन् राजसान् “नि रिणाति” निहिनस्ति [यद्वा, उपा-
सकानां पापरूपान् शत्रून् निहन्ति । यथा च “सद्यो ह्येष जातः
पाप्मानमपहत” —इति । जज्ञान इति जनेर्लेटः कानचि रूप-
मेतत् । रिणाति—रोगति रेषण्योः क्रैय्यादिकः (प०),
“प्रादीनां ऋस्वः (७, ३, ८०)”—इति ऋस्वतम्] “विश्वे”
सर्वे जनाः [अवन्ति रक्षन्तीति] “जमाः” प्राणिनः [अवतेरीणा-
दिकी मन् प्रत्ययः “ज्वरत्वरेत्यादिना (६, ४, २०) ऽकारोपधयोः
स्थाने ऊट्] सर्वे प्राणिनः “यं” सूर्यात्मकमुद्यन्तमिन्द्रम “अनु”
लक्ष्य “मदर्थमुदगात् मदर्थमुदगात्”—इति “मदन्ति” ह्वयन्ति
[मदौ हर्षे (दि० प०) व्यत्ययेन शप् (३, १, ८५) ; तथाच
ब्राह्मणम्—“भूतानि वै विश्वजमास्तएनमनुमदन्ति उदगादुद-
गादिति”—इति । तैत्तिरीयकञ्च—“तस्मात्सर्व एव मन्यते मां
प्रत्युदगादिति”—इति । यद्वा, यं स्तुत्यादिभिर्माद्यन्तमनुपश्चात्
सर्वे प्राणिनः अभीष्ट-प्राप्त्या ह्वयन्ति “अनुर्लक्षणे (१, ४, ८५)”—
इति अनोः कर्मप्रवचनीयत्वात् “कर्मप्रवचनीय-युक्ते द्वितीया
(२, ३, ८)” स इन्द्रो जज्ञे इत्यन्वयः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

२ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
 वावृधानःश्वसाभूर्योजाःशत्रुर्हासायभियसन्दधाति ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
 अव्यनच्चव्यनच्चसस्त्रिसन्तेनवन्तप्रभृतामदेषु ॥ २ * ॥

“श्वसा” बलेन “वावृधानः” वर्द्धमानः, अतएव “भूर्योजाः”
 “शत्रुः” शातयिता[†] इन्द्रः “दासाय” उपक्षय-कारिणि शत्रवेः
 “भियसं” भीतिं “दधाति” विदधाति करोति “अव्यनत् च
 व्यनत् च” [विविधमनिति श्वसितौति व्यनत्, स-प्राणकं जङ्गमं,
 तद्विलक्षणमव्यनत् स्थावरम्] तदुभयमपि “मस्त्रि” संस्त्रातम्
 इन्द्रेण सम्यक् शोधितं भवति [स्त्रातिः “आट्टगमहनः (३.२.१७१)”
 —इति व्यत्ययेन कर्मणि किन् प्रत्ययः । यद्वा, अन्तर्णीत-स्यर्थात्
 कर्त्तर्यैव किन्, वृद्ध्यादिना सम्यक् स्त्रापयिता शोधयिता भवति ;
 “न लोकाव्यय (२, २, ६६)” —इति कर्मणि षष्ठाः प्रतिषेधः] ।
 शिष्टः पादः प्रत्यक्षकृतः—हे इन्द्र ! “ते” तव “मदेषु” हर्षेषु
 हविषा स्तुत्या च जन्त्रेषु सत्सु “प्रभृता” प्रभृतानि प्रकर्षेण धृतानि
 पोषितानि वा सर्वाणि भूतजातानि “सन्नवन्तं” सङ्गच्छन्ते स्तोतुं
 हवींषि च दातुं समूहोभवन्तीत्यर्थः [नवतिर्गति-कर्मा (निघ०
 २, १४, २६) । प्रभृता—प्रपूर्वात् विभर्त्तेः कर्मणि निष्ठा, “जे-

* ऋ० वे० ८, ७, १, २ ।

† शात्रुः—प्रथमैकवचनमिदं षष्ठीकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् शत्रोः—इति वि० ।

‡ ‘दासाय’—चतुर्थैकवचनं षष्ठीकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् । दासस्य दमन-
 स्वभावस्य—इति वि० ।

५५१

५५२

५५६

सामवेदसंहिता । [६प्र० ३अ० १८ सू० ३ ।

“प्रणं

प्यते

“सा

कावे

नित

“व

च्छ

सज्ञ

ये

आहव

कर्माङ्ग

कानां

“आ द

ममभि

भूमिर्दः

दुहितृ

इति ॥

इति

कन्दसि बहुलम् (६, १, ७०)”—इति शैलीपः, “गतिरनन्तरः
(६, २, ४८)”—इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया ।

२३ ३१ २ ५ ६ २३ ३ १ २
त्वेक्रतुमपिबृज्जन्तिविश्वे द्विर्यदेतेत्रिर्भवन्त्यमाः ।

३ १२ २२ ३ १ २ ३
स्वादोः स्वादीयः स्वादुनाह जा

२६ २३ ३ १ २ ३ १ २
समदः सुमधुमधुनाभियोधीः ॥ ३ * ॥ १८

हे इन्द्र ! “त्वे” त्वयि “सुपां सुलुक् (७, १, ३८)”—इति
सप्तम्येकवचनस्य शि आदेशः] “विश्वे” सर्वे यजमानाः “क्रतुम्”
अनुष्ठेयं कर्म “वृज्जन्ति” समापयन्ति “अपि” [—शब्दो ब्राह्म-
णोक्तः सर्वभूतानां सर्वमनसां समुच्चयार्थः सर्वाणि पृथिव्यादीनि
भूतानि सर्वेषां प्राणिनां मनांसि सर्वे यज्ञक्रतवश्च व्याप्ते त्वय्येव
यजमानैः परिसमाप्यन्त इत्यर्थः । तथा च ब्राह्मणम्—“त्वयी-
मानि सर्वाणि भूतानि मनांसि सर्वे क्रतवोऽपि वृज्जनीत्येतदाह”
—इति] “यद्” यस्मात् “एते” “जमाः” तर्पकाः† [अवतेस्तर्प-
णार्थादीणादिको मन् प्रत्ययः, “ज्वरत्वरत्यादिना (६, ४, २०) वका-
रोपधयोरूठ्] ईदृशा यजमानाः पूर्वमेकाकिनः सन्तः पश्चात्
“द्विः” द्विवारं स्त्रीरूपेण पुंरूपेण च जाताः सन्तः पुनरपत्येन
सार्धं “त्रिः” त्रिवारं जन्मभाजो भवन्ति । एक एवात्मा स्त्रीपुं-

* ऋ०

†

* ऋ० वे० ८, ७, १, ३ ।

† ‘जमाः देवाः’—इति वि० ।

१३अ० २ख० ३सू० १, २, ३] उत्तरार्चिकः ।

रूपेण जायते “अद्वैता एष यत् पत्नीति” श्रुतेः । पुत्रोऽप्यात्मैव
 “आत्मा वै पुत्रनामासि”—इति श्रुतेः । यत एवमेभिर्द्वैता भवति,
 ततो वा गम्यते त्वय्येवानुष्ठितं सर्वं कर्म परिसमापयन्तीति; तथा
 च ब्राह्मणम्—“द्वौ द्वौ सन्तौ मिथुनौ प्रजायेते प्रजापत्यै”—इति
 हे इन्द्र ! त्वच्च “स्वादोः” प्रियाद् गृहधनादेरपि “स्वादीयः”
 स्वादुतरं प्रियतरमपत्यं “स्वादुना” स्वादुभूतेन मातापित्रात्मकेन
 “संसृज” संयोजय [यद्वा, “स्वादुना” मिथुन-भावेनोत्पन्न
 तदपत्यमपि संयोजय] ! एतदेवाह—“अदः” अपत्यं “मधु”
 मधुरं “मधुना” मद-हेतुना मिथुनान्तरेण पौत्रेण वा “सु” सु-
 “अभि योधीः” अभियोधय अभितः क्रीडय [धातूनामन-
 कार्थत्वात् युङ्गति रत्र क्रीडार्थे वर्तते । “मिथुनं वै स्वादु प्रजा
 स्वादु”—इत्यादि ब्राह्मणमत्रानुसन्धेयम् ॥ ३ ॥ १८

॥ श्यैतम् ॥ तदिदासभुव । नेषू३४ औहोवा । ज्या

यिष्ठं यतोजन्यउग्रः । त्वेषानृमणार३४ः । ओईहा । म

द्योजज्ञानः । नायिरार३यिणा । ति । जूर३४

ना । नुयंविश्वायिमा३दा । ऊन्मायि । रमार३४ यो

* ‘स्वादोः’ सीमस्य, स्वादीयः आस्वादनकरा, स्वादु

+ ‘सुमधु—शोभनं मधु सोमाख्यं, मधुना—द्रोणव

मुख्येन बोधयति’—इति वि० ।

रूपेण जायते “अद्वैषा एष यत् पत्नीति” श्रुतेः । पुत्रोऽप्यात्मैव—
 “आत्मा वै पुत्रनामासि”—इति श्रुतेः । यत एवमेभिर्हृद्वा भवन्ति,
 ततो वा गम्यते त्वय्येवानुष्ठितं सर्वं कर्म परिसमापयन्तीति; तथा
 च ब्राह्मणम्—“हौ हौ सन्ती मिथुनौ प्रजायेते प्रजापत्यौ”—इति]
 हे इन्द्र ! त्वच्च “स्वादोः” प्रियाद् गृहधनादेरपि “स्वादीयः”
 स्वादुतरं प्रियतरमपत्यं “स्वादुना” स्वादुभूतेन मातापित्रात्मकेन*
 “संसृज” संयोजय [यद्वा, “स्वादुना” मिथुन-भावेनोत्पन्नं
 तदपत्यमपि संयोजय] । एतदेवाह—“अदः” अपत्यं “मधु”
 मधुरं “मधुना” मद-हेतुना मिथुनान्तरेण पौत्रेण वा “सु” सुष्ठु
 “अभि योधीः” अभियोधय अभितः क्रीडया† [धातूनामने-
 कार्यत्वात् युद्धाति रत्र क्रीडार्थे वर्त्तते । “मिथुनं वै स्वादु प्रजा
 स्वादु”—इत्यादि ब्राह्मणमन्त्रानुसन्धेयम् ॥ ३ ॥ १९

॥ श्यैतम् ॥ तदिदासभुव । नेषू३४औहोवा । ज्या
 यिष्ठं यतोजन्यउग्रः । त्वेषानृमणा२३४ः । ओईहा । स
 द्योजज्ञानः । नायिरा२३यिणा । तिशा२ । जूर३४
 ना । नुयंविश्वायिमा३दा । ऊम्मायि । तूर२मा२३४औ

* ‘स्वादोः सोमस्य, स्वादीयः आस्वादनकराः, स्वादुना सोमेन’—इति वि० ।

† ‘सुमधु—शोभनं मधु सोमाख्यं, मधुना—द्रोणकसंज्ञेन, अभियोधीः—आभि-
 मुञ्च्येन योषयति’—इति वि० ।

सईस्ममादमहिकर्मकर्त्तवे महामूर्ख

सैनस्यदेवादेवसत्यइन्दुःसत्य मिन्द्रम् ॥ १ ॥

“महिषः” महान् पूज्यः “तृविशुषः” बहु बलः “तृम्पत्”
[तृप प्रीणने तुदादिः (प०)] तृष्यन् इन्द्रः “त्रिकटुकेषु”
ज्यतिर्गौरायुरिल्लितनामकेषु आभिप्लविकेष्वहःसु “सुतम्” अभि-
षुतं “यथाशिरं” यवमयसक्तुभिर्मिश्रितम् [आङ्पूर्वस्य श्रीणातेः
किपि “अपस्पृधेश्राम् (६, १, ३६)”—इत्यादिना “शिरइत्यादेशः”
तं “सोमं” “विष्णुना” सह “अपिबत्” “यथावशम्” अवशत्
पूर्वं यथा तं सोमं तथा अपिबत् [वश कान्ती (अदा० प०)] “बहु-
लञ्छन्दसि (२, ४, ७३)”—इति शपो लुगभावः] पीतः “सः”
सोमः “महां” महान्तम् “ऊरु” तेजसा विस्तीर्णम् “ईम्”
एनम् इन्द्रं “ममाद” अमादयन् । किमर्थम् ? “महि” महत्
तृष-हननादि-लक्षणं कर्म कर्त्तवे कर्त्तुं “सत्यः” “इन्दुः”
स्रवन् “देवः” द्योतमानः “सः” सोमः “सत्यं” यथार्थभूतं
“देवं” सोमं कामयमानम् “ईम्” एनम् “इन्द्रम्” “सद्यत्”
[सद्यतिर्यासि-कर्मा] व्याप्नोतु ॥

“तृम्पन्”—“तृम्पत्”—इति पाठौ, “सत्यइन्दुसत्यमिन्द्रम्”
—“सत्यमिन्द्रंसत्यइन्दुः”—इति अस्मिन्नुच्चे प्रत्येकमृगवसाने
व्यत्ययेन पाठौ ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ।

३ २ ३ १२ १२ ३ १२ २२
साकञ्जातः क्रतुना साकमोजमाववन्निय३ २ ३ २ ३ २ २ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३
साकवृद्धो वीर्यैः सासहिः सुधो विचर्षणिः ।२ २ २ २ २ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३
दाताराधस्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैन३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२
सश्वदे वो देव सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ * २ ॥

हे इन्द्र ! त्वं “क्रतुना” कर्मणा प्रज्ञया वा “साकं” सह
 “जातः”† “साकम्” “ओजसा” बलेन “ववन्निय” विश्वं
 वोढुमिच्छसि [वहेः सन्नन्तस्य लिटि मन्त्रत्वादाम् न भवति] ।
 किञ्च हे “प्रचेतन” प्रकट-ज्ञानेन्द्र ! त्वं “वीर्यैः” शत्रु-हननादि-
 लक्षणैः पराक्रमैः “साकं” “वृद्धः” प्रवृद्धः “सुधः” हिंसकान्
 सङ्गृह्णामान् वा “सासहिः” [“न लोकाव्ययेति (२, ३, ६८) षष्ठी-
 प्रतिषेधः] तेषामभिभविता‡ “विचर्षणिः” पुण्यकृतोऽपुण्यकृतश्च
 विशेषेण द्रष्टा “स्तुवते” स्तोत्रं कुर्वाणाय यजमानाय “राधः”
 साकं “काम्यं” प्रार्थनीयं “वसु” धनं “दाता” सन् ववन्नियेति
 समन्वयः । सैनमिति परोक्ष-निर्देशः सिद्ध्यर्थः ॥

“प्रचेतन” — इति छन्दोगानां विशेष-पाठः ॥ २ ॥

* ऋ० वे० २, ६, २८, ३ ।

† ‘साकं जातः सदा जातः सद्यो वा जातः’ — इति वि० ।

‡ ‘सासहिः — साधनशौकः’ — इति वि० ।

आ
क
का
“
म
भू
दु
इति

अथ तृतीया ।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १
अधत्विषीमां अभ्योजसा कृविं युधा

६ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
भवदारोदसी अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३
अधत्तान्यञ्जठरे प्रेमरिच्यत प्रचेतय

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २ २
सैनं सञ्चदे वो देव सत्य इन्द्रः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३१ ॥ २०

“अध” अथ सोमपानादनन्तरं “त्विषीमान्” इन्द्रः “ओजसा”
लेन “कृविं” कृत्रि-नामासुरं; “युधा” युद्धेन “अभ्यभवत्”
प्रभिभूतवान् । किञ्च स इन्द्रः “रोदसी” व्यावापृथिव्यौ “आ
प्रवृणत्” स्वतेजसा समन्तात् पूरयामास । तथा “अस्य”
सोमस्य सोमस्य “मज्मना” बलेन “प्रवावृधे” प्रकर्षेण वर्द्धते
यद्वा, ‘अस्य’ कृवेः असुरस्य ‘मज्मना’ सारेण ‘रोदसी’ अपू-
रयत् स इन्द्रः सोमं द्विधा विभज्य “अन्य” भागं स्वकीये “जठरे”
“अधत्त” । “ईम्” एनम् अपरं भागं देवेभ्यः “प्रारिच्यत”
प्रारिचयत् [एतेनार्द्धमिन्द्राय अर्द्धमन्येभ्योऽपि देवेभ्य इत्युक्तं भवति ।

* “कृविं”—इति क० पु० पाठः ।

† कृ० वे० २, ६, २८, २ ।

‡ ‘कृविं—कूपस्यानीयम्’—इति वि० ।

तथाच तैत्तिरीयकम्—“यत् सर्वेषामवेमिन्द्रं प्रति तस्मादिन्द्रो
 देवतानां भूयिष्ठभाक्तमः”—इति । हे इन्द्र ! त्वं “प्रचितय”
 एवम्भूतं सोमं देवांश्च सम्यक् ज्ञापय प्रापयेत्यर्थः । अन्यत् पूर्ववत् ॥
 “प्रचितय”—इति विशेष-पाठः ॥ ३ ॥ ८०

इति सामवेदार्धप्रकाशे उत्तराग्रन्यत्र त्रयोदशोऽध्यायस्य

षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

वेदार्धस्य प्रकाशेन तमो हाई निवारयन् ।

पुमर्थोऽथतुरी देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ १३ ॥

॥ इति षष्ठः प्रपाठकः* ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकभार्गववर्चस्क-

श्रीवीर-शुक्ल-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण साधना-

चार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्धप्रकाशे

उत्तराग्रन्यत्र त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

—०००—